

ने संस्कृत नहीं' मानते हैं' वे एक १० तें १० ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि भाषाटीकामें आये हुये संकेतों की सूची और अर्थ ।

इस अर्थके प्रत्येक पृष्ठके उपरि भागमें इस मोडशास्त्रके एक और संस्कृत वृत्ति खैगी, मध्य भागके बाहीं ओर अर्धपुंसक सूत्रका और वृत्तिका पदच्छेद विभक्ति आदि सविव लक्षणा की बिना आयाग कितनेका अर्थव्याख्या अर्थ वृत्तिलि ओरके भागमें आजाय और नीचेके भागमें भाग प्रकाशकी विषयविषय बिना आयेगी ॥

संस्कृतमें कर्ता प्राया प्रथमा विभक्ति, कर्म द्वितीया विभक्ति, क्रय्य तृतीया विभक्ति सम्प्रदान चतुर्थी विभक्ति अणायान पंचमी विभक्ति, संबन्ध षष्ठी विभक्ति, अर्थव्याख्या सप्तमी विभक्ति और सम्बोधन प्रथमा विभक्ति होता है । इनमेंसे प्रथम छहको आरम्भ भी कहते हैं ॥ संबन्ध षष्ठी विभक्तिको आरम्भ नहीं माना है क्योंकि संज्ञा और क्रियामें परस्पर यह किसी प्रकारके संबन्धका प्रादुर्भाव नहीं करता है ।

संस्कृतमें एकवचन द्विवचन और बहुवचन होते हैं तथा तीन ओं मुख्य अर्धपुंसक विभक्ति होते हैं ।

आड़ी (—) आरम्भके ऊपरकी संज्ञा विभक्तिकी और नीचेकी संज्ञया १, २, ३ यथा क्रमसे एक वचन द्विवचन, बहुवचनकी और ऊपर की संज्ञाके वाचिनीओर एक आड़ी आरम्भके पूर्वकी ओर आड़ी आरम्भकी ओर तीन आड़ी आरम्भके अर्धपुंसक विभक्तिकी आरम्भ है । अर्धपुंसक विभक्ति एक वचन अर्धपुंसक संकेत है । १^१—कर्म द्वितीया विभक्ति द्विवचन अर्धपुंसक संकेत है । १^२—क्रय्य तृतीया विभक्ति बहुवचन अर्धपुंसक विभक्ति है । १^३—चतुर्थी विभक्ति बहुवचन स्त्रीविभक्ति आरम्भ है । १^४—सम्बोधन प्रथमा विभक्ति द्विवचन अर्धपुंसक विभक्ति आरम्भ है । १^५—अणायान पंचमी विभक्ति बहुवचन अर्धपुंसक विभक्ति आरम्भ है । अर्थात् इसी प्रकार और भी जानना चाहिये ॥ २ लक्षणा आदि ॥ २ लक्षणाका संकेत है ।

अर्थके पास निम्न लिखित संकेत नीचे लिखी हुई व्याकरण अर्थकी संज्ञाओंके आरम्भके हैं ॥

* = अणायान

† = क्रिया

× = मूलशब्द

+ = संयोजक मूलशब्द

- = हेत्वच इत्यन्त

|| = पठनागत क्रान्त

यहाँ पर अणुआपी व्याकरणके १४ सूत्र और उनसे उत्पन्न हुये प्रत्याहार अर्थसाहित लिखते हैं—

- (१) आइत् । इसमें आत्त्य सूची हलंका होमेसे एक 'अत्' प्रत्याहार बनता है ।
- (२) आइत् । इसमें आत्त्य सू की हलंका होमेसे तीन प्रत्याहार अत्-इत्-उत् बनते हैं ।
- (३) एओत् । इसमें आत्त्य सू की हलंका होमेसे एक एत् प्रत्याहार बनता है ।
- (४) ऐओत् । इसमें आत्त्य सू की हलंका होमेसे अत्-इत्-ऐत् ये चार प्रत्याहार बनते हैं ।
- (५) इयत् । इसमें आत्त्य सू की हलंका होमेसे अत् प्रत्याहार बनता है ।
- (६) इत् । इसमें आत्त्य सू की हलंका होमेसे अत् इत् यत् बनते हैं ।
- (७) आत्त्यम् । इसमें आत्त्य सू की हलंका होमेसे अत् यम् अम् ये चार प्रत्याहार बनते हैं ।
- (८) अत्त्म् । इसमें आत्त्य सू की हलंका होमेसे एक यत् प्रत्याहार बनता है ।
- (९) अत्त्त्म् । इसमें आत्त्य सू की हलंका होमेसे अत् अत्त् ये दो प्रत्याहार बनते हैं ।
- (१०) अत्त्त्त्त्म् । इसमें आत्त्य सूची हलंका होमेसे अत्-इत्-अत्त्-अत्त्त् ये चार प्रत्याहार बनते हैं ।
- (११) अत्त्त्त्त्त्त्म् । इसमें आत्त्य सूची हलंका होमेसे एक अत्त् प्रत्याहार बनता है ।
- (१२) अत्त्त्त्त्त्त्त्म् । इसमें आत्त्य सूची हलंका होमेसे अत्त्-अत्त्त्-अत्त्त्त् ये चार प्रत्याहार बनते हैं ।
- (१३) अत्त्त्त्त्त्त्त्त्म् । इसमें आत्त्य सूची हलंका होमेसे अत्त्-अत्त्त्-अत्त्त्त्-अत्त्त्त् ये पांच प्रत्याहार बनते हैं ।
- (१४) अत्त्त्त्त्त्त्त्त्त्त्म् । इसमें आत्त्य सूची हलंका होमेसे अत्त्त्-अत्त्त्त्-अत्त्त्त्त् ये छह प्रत्याहार बनते हैं ।

ये चौदह सूत्र अक्षर सामान्य कहते हैं । काममें आनेवाले केवल ४२ प्रत्याहार हैं ।

अनुसार-विसर्ग-विष्णुमूर्तीय-उपध्यायीय उपयुक्त सूचीमें अन्तगत्त गरी है ।

इ-य-य इत्यादिमें अन्तका अक्षर बच्चारणकेद्विसे है और अन्तका अतिमित वा निरा वा सुह अन्तगत्त (इ-य-य-इ इत्यादि)

प्रायः कृष्णमै ह्यु लंकाके दे शान्तिमीन का पखरायक नही है । भावाय--व्याकरनसंघंपी रूप वाक्य इत्यादि कानामें कुछ कार्यकारी नही होते है ॥

प्रत्ययार वक व्याकरनसंघंपी संकेत है आ आदिपय और भास्यपर्यं आ इसंभक रे उसके माय मित्रके कपने स्वरूप और मन्वस्यो का पाठक हागा है श्रेय हल् प्रत्याहारन मयंभ्वंजोते अभिप्राय है आ पौषये सुत्रके व से प्राप्त होते है और अंतके व इत्यत्रके अन्तर पूर्व नदमें है, अर्थात् आदिपय इ अण्नी और वीचके अन्तर (अंतके म् इत्यत्रके पूर्व पूर्व) इत्यन्त--छ--अमरद्वय -अम व्प-अमरद्वय-तत्प्रत्ययपटन-रूप-नायस का पाठक है । हल् प्रत्याहारसे शुभं सुत्रसे अभिप्राय नही हो सका क्योंकि एत इत्यं है आदिवा पर्यं वा है, वीचका काई भी अन्तर नहीं है ॥





नमः परमात्मने वीतरागाय ।

पदच्छेदसहित मायानुवाच ।

ॐ नैमाः परमात्मने ॐ वीतरागाय ॐ

- = (१) नारममें परमात्मा वीतरागकेलिये नमस्कार हो ।
- = (२) मंगलमम ईश्वर वीतरागके लिये मंगलम हो ।
- = (३) ब्रह्म चिक्वात्सा वीतरागके लिये प्रजति हो ।
- = (४) पंचपरमेष्ठी परमात्मस रामरहितकेलिये नमस्कार हो ।
(ओम् शब्दके बहुत अर्थ हैं उनमेंसे चार नारमम मंगलमय, ब्रह्म, पंचपरमेष्ठी अर्थोंको लेकर अनुवाद किया है)

१ । संकट मायका नियम है कि प्रवचन ठया सूत्रकार भी अपने अपने अपने प्रवचनी आविमें एक ऐसा मौखिक शब्द खाते हैं जो हुमका पाबक हो और उसका कुछ अर्थ और तात्पर्य भी निकलता हो जैसे यह ॐ दिया है ॥ पुण्यपाव स्वामीने "मोक्षमार्गच्छ" दिया है । इसीप्रकार श्रीक्यास्वामी छुरिले इस तात्पर्यमोक्षशास्त्रके प्रथम सूत्रप्रकारम् "सुम्यन्-श्च शब्द (सम्पद शब्द) खाकर किया है ॥ अस्मिन् पाबिलिने क्या प्रवचने प्रथम सुत्र "बुद्धिचैतन्य" में (बुद्धिचैतन्यक भा ये भी है) बुद्धि पद दिया है । ॐ मोक्ष, सम्पद, बुद्धि ये चारों शब्द मंगलवाची हैं और किस किस शास्त्रमें पाये हैं उसके प्रकार्य और तात्पर्यसे भी संक्षेप रक्ते हैं जैसा कि आगे बखकर बात होगी । बुद्धिचैतन्यका अर्थ क्यार बिना ही दिया है ।

एत शब्दका रूप वर्णमै आम्-ओम्-ॐ ऐसा है । यदि इसके पश्चात् कोई शब्द हो जिसका आरम्भ किसी व्यंजनसे हो तो निम्नलिखित व्याकरणिके सूत्रानुसार मूला अनुस्वार हो जाता है जैसे ओं वाम । ओं नमः । ओं नमः । ओं नमः । ओं तसत् । ओं तसत् । ओं तसत् । ओं तसत् ।

(१) ओऽनुस्वारः । ओऽनुस्वारः शानेका नियम एव मकार है-

एत सूत्रमें 'प्लव्यं' की अनुवृत्ति आद्याध्यायी अपराधाय ८ पाद १ सूत्र १४ वें (पवस्य) से है और 'हलि' शब्दकी अनुवृत्ति 'हलि सपेणम्' ८ । ३ । २३ । सूत्रसे ली गई है इसलिये 'ओऽनुस्वारः' (पवस्य १ मा १ अनुस्वारः १ हलि १) का अर्थ, मकारान्त पदको अनुस्वार हा यदि कोई इत् अर्थात् व्यंजन परचासमें हो तो, यह होता है ॥

(२) नुम्मा अं । ५ । ४ । ११ । भीगुम्बानिदित्थित्तं उनेम्ब्रम्बिक्का पृष्ठ १९ तथा शम्भर्यवचंत्थिहा धीत्तोमोवेषुदित्थित्थिता पृष्ठ २११

एत सूत्रमें 'हलि' ५ । ४ । १० वें सूत्रसे अनुवृत्ति आती है ॥ और सूत्रार्थ-

नुम्मा १ = नुम् (= न्) ओ सदैव अपवाप्त हो जाता है और

मा १ अं १ = प्लव्य मकारको अं अनुस्वार होता है-

हलि १ = व्यंजन यदि उक्त म् और म् के परचात् आये तो और यह अनुस्वार एक विधी है । अकार अघोष वा बोधनेके क्रिये है । जैसे-द्वारस्यते ॥ ररस्यते इतिपाय रमता है । यन्-यस्यते = ययस्यते = बहुत यम करता है । पायम् इति = पायं इति = पापको पाय करता है । मतम् ररसि = मतं ररसि = मतको पाजता है । धर्मम् शुक्लोति = धर्मं शुक्लोति = धर्मको सुजता है ।

(३) मम्मो हलि तो । १ । १ । १११ । शाकटावमस्याकरब्धं ।

मामामस्य १

परावस्य १ व० मकारस्य १

पररावऽनुनासिकोऽनुस्वारः १ पर्यायिण १

भवति हलि १ परे १

कर्मविभवात् व्यंजनस्ये चकुस्यते रूप भाते है इस शब्दमें च और क के मध्यका म भागम है । तस्म करोति = तस्कुरोति स्व करोति । इस शब्दका तथा अन्य शब्दोंके कितने अंतमें पश्चात् मकार होता है और शिबके परचात् किसी व्यंजनसे आरम्भ होनेवाले शब्दका प्रयोग नहीं किया जाता है जैसे वेपथ ओं-ओं-ओं-ॐ-सत्यश्रीर्षं [सुप्र २ अर्थात् १] मोघास्त्यं (सूत्र ४ अ० १) आनं (सूत्र ३) येसा टिक्ख

= तस् आगतका ओ सदैव अपवाप्त होता है

= और परराव मकारको

= परसव्ये अनुनासिक और अनुस्वार पर्याय अर्थात् विकस्यसे

= हो जाते है यदि म् तथा मकारके कोई व्यंजन परे हो । जैसे क्म पातुक्का

देते है यह उपयुक्त वैचारको द्वारा रचित सूत्र द्वारा प्रकृत है । इसमें संदेह नहीं है ऐसे इस कलापरम्पराके अर्थात् कार्त्तव्य रूप मात्रा व्यापक रूपके निम्नलिखित सूत्रानुसार विद्वान्मते हुए समझे जा सकते है ।

मोऽनुस्वारं व्यंजने ॥

प्राप्तके मकारको अनुस्वार होता है व्यंजनके परे रखते अर्थात् यदि व्यंजन म् के पश्चात् आवै तो यथा लम् वासि = ल वासि । यथाक तो कालकल्पमात्मके रचयिताका मत अर्पयुक्त तीन वैचारकोसे सिद्धता है । परंतु

मः † अनुस्वार † व्यंजने † -

वा विद्यते ॥

वा० मकारस्य † परास्य † -
अनुस्वार † अवति T विद्यते † -

म् को पश्चात् हो वसको विद्वान्मते करि अनुस्वार हो जाता है यदि म्के पश्चात्में विराम हो अर्थात् ओ म्के पीछे कोई भी व्यंज वा अक्षर न आवै । जैसे वैषाम् = देवानो । रामान्म = रामान्मो वैष्म = देवै ।

इम (अनुस्वार) ने विद्यते अवस्थामें सर्वत्र म् को लिखा है । म् को अनुस्वार उन्नी अवस्थामें किया है जहां मकारके पश्चात् कोई शब्द व्यंजनसे प्रारम्भ हुआ है ।

जहाँ नहीं पर इनको जैसे परास्य अवस्थामें कोयको अवधिमें तथा वीम्वद् वीम्वद्वद् अनुस्वारित अष्टाध्यायीके भाषिमें

" ०० म् चित्वाग्ने नमः " अग्रे परमाग्ने नमः ' वाक्य लिखते है अर्थात् आरम्भमें व्यंजनसे आनेवाले शब्दोंके जानेपर मी म् का अनुस्वार नहीं हुआ । इसका कारण यह है कि संस्कृतमें एक पदमें और धातु उपसर्गमें और समास एव तीनों स्थानोंमें तथा संधि होती है । परन्तु वाक्यमें पका चाँही तो संधि करै, चाँही न करे । अब इसको संधि करनी होती है तभी पर्वत मकारको अनुस्वारमें परिवर्तन करते है ०० चित्वाग्ने नमः । अग्रे परमाग्ने नमः' इव दोनों वाक्योंमें हमने संधि नहीं की यदि हम संधि करना चाँही तो ०० चित्वाग्ने नमः और ओ परमाग्ने नमः वाक्य होगै ।

एव शब्दके अन्त अर्थ अन्तकार चित्वाग्ने अग्नेसे यह अभिप्रायः है कि म् केवल नासिका द्वारा उच्चारण किया हुआ अक्षर नहीं है क्योंकि इसका उच्चारण नासिका धोष द्वारा होता है इसी प्रकार न् का उच्चारण कंड नासिका द्वारा, ए का तालु नासिका द्वारा ए का मूर्धनासिका द्वारा न का श्व नासिका द्वारा होता है और उरुके स्थानमें यह अनुस्वार हुआ है । हुए वा स्वर अर्थात् अतिश्रित वा निरतिश्रित नासिका द्वारा बंधा अनेवाला अनुनासिक केवल अनुस्वार ही है ।

कहीं कहीं पर जो और मू के मध्यमें देखा ३ तीनअसा चिह्न कर देते हैं अर्थात् ओ३म्-ओ३म्-ओ३म् लिखते हैं। यह '३' चिह्न प्रारंभ करता है कि आ स्वर प्लुत संबन्ध है क्योंकि स्वर इत्य वीर्य और प्लुत संबन्ध होते हैं अर्थात् एकमात्रिक-द्विमात्रिक-त्रिमात्रिक-चत्वारण्य वीर्य स्वर क्रमसे इत्य वीर्य और प्लुत संबन्ध हैं। माथार्थ-विस्तार करने बोलनेमें उ के मूल्य काज खगे इसको इत्य विसके उच्चारणमें वीर्य उ के समाज काज खगे वसको वीर्य और विसके बोलनेमें वदुध बढ़े वा कित्ते हुये ऊ के अकार समय जगे वस स्वरको प्लुत कहते हैं अतः मनु धूयते सोमरघुत । बहुधा दुःखदुःख प्राप्त कालमें बोलते हैं वगैरी बोलनेमें इस इत्य वीर्य प्लुतका एक अण्डा उदाहरण मिलता है जैसे कु-कु ३ ३ उपयुक्त चिह्नके विकल्पसे प्रायः तीनकी पद्यनामा बहुधा पाठकोंका मन हो जाता है इसलिये ओ३म्-ओ३म्-ओ३म् ३ के स्थानमें कहीं कहीं पर ओम्-ओम्-ओम् लिख देते हैं इस ३ चिह्नकी धारणा उच्चारणके समय इत्यमें कर लेते हैं। प्लुत स्वर पावे दोने चिह्नाने धारिकमें बना जाता है। हमने कई स्थानोंमें देखा है कि लेखकोंने उच्चारणकोके वशमें अथवा प्रगावके वशमें आकर प्लुत ३ चिह्नको उ समय कर ओम् देता यहाँ तक प्लुत लिखा दिया है। आम् किसी प्रकारसे ग्रह नहीं है।

इस अक्षरको सर्व अंगमठावर्धनियोंने धार्यसमाजियोंने धर्मसमाजियोंने वेप्राप्तियों धारिकने मंगलीक माना है और अण्डारोने तथा शम्भुकारोने अण्नी ३ रचनाकी धारिमें इत शब्दका प्रयोग बहुलतासे किया है ॥

"ओम्" अक्षर प्रकथ । अ उ और म् इत तीनोसे बना हुआ एक अक्षर । धार्यन स्वीकार-मानना-इतना-माग्य-अण्ड-अनने योग्य निकाजना (पद्य धर्मकोष पृष्ठ ८७)

" स्यादोमेय परमं मते " ओम्, एवं परमं ये तीन नाम अंगीकारके हैं (अमरकोश पद्य २४ इत्यादि १२)
 अत्र सम्प्रदायमें यह शब्द पंचपरमेष्ठीका वाक्य निम्नलिखित आर्यां कृत् प्राय ३ ३

अर्हता १ अक्षरीता १ आरिया १ यह अक्षरका १ मुखियों १
 अर्हता १ अक्षरीता १ आरिया १ तथा उपाध्यायाः १ मुखय १

पञ्चमकार-विषयबोध १ अकारो १ पंचपरमेष्ठी १
 प्रथम-अक्षर-निष्पन्न १ अकारो १ पंचपरमेष्ठी १

अर्हताको धारिक अक्षर ' अ ' अक्षरीती (सिद्ध) काचर्य उपाध्याय व मुनिके
 अक्षर म ' धार्यका अर्हताको अक्षर म ' अक्षरीती (सिद्ध) का धारिक
 अक्षर उ मुखियों (साधुओं) का धारिक अक्षर ' म ' इस प्रकार

ले है यह अणुलक्षित वेदाकारणों द्वारा उचित मूल द्वारा अणुलक्षित है । इसमें संश्लेष नहीं है ऐसे ही कलापयणकारण अर्थात् कालत्र रूप मात्रा व्याक
रको निम्नलिखित ध्वन्यनुसार विच्छेदसे श्रुत्य समझे जा सके है ।

मोऽनुस्वारं ध्वञ्जने ॥

मः † अनुस्वारं † ध्वञ्जने † -

प्राक्कारके मकारको अनुस्वार होता है व्यञ्जनके परे रहने अर्थात् यदि ध्वञ्जन म् के
पश्चात् भाष्ये तो यथा त्वम् वासि = त्वं वासि । पक्षीतक तो कालत्ररूपमात्राके
स्वयिताका मत अणुलक्षित धीन वेदाकारणोंसे मिथता है । परंतु

वा पितृमे †

वा० मकारस्य † पश्चात्स्य † -
अनुस्वारं † मपक्षि ११ पितृमे † -

म् ओ पश्चात् हो उसके विच्छेद करि
अनुस्वार ही जाता है यदि म्के पश्चात्से पितृम हो अर्थात् ओ म्के पीछे
कोई भी वर्ण वा अक्षर न भाष्ये । जैसे देवानाम् = देवानौ । रामाणाम् = रामाणां
वेवम् = वेवं ।

इम (अनुस्वारक) ने पितृमकी अपख्यामें सर्वत्र म् को मिथता है । म् का अनुस्वार उतरी अपख्यामें किया है अहां मकारके पश्चात् कोई
शब्द ध्वञ्जने मारम्स हुआ है ।

करी करी पर इनको जैसे पक्षकम् कोपकी भाषिमें तथा ओम्स धोत्रकम् अनुपदित अष्टाध्यायीके भाषिमें
" ०-० म् विद्यामने ममः " ओम् पश्यामने ममः " पाप्य मित्रो है अर्थात् मारम्समें व्यञ्जनसे भाषेवाले व्यञ्जनके जानेपर भी म् का
अनुस्वार नहीं हुआ । इसका कारण यह है कि संस्कृतमें एक पक्षमें और धातु रूपमोंमें और समास एत तौनी स्थानोंमें सदा संधि होती है ।
परन्तु पाप्यमें यद्य चाहै तो संधि करे, चाहै न करे । अब हमको संधि बन्ती होती है तभी पूर्वत मकारकी अनुस्वारसे परिपलन करते है
०-० विद्यामने ममः । ओम् पश्यामने ममः इन दोनों पाप्योंमें ध्वनने संधि नहीं की यदि हम संधि करना चाहै तो ०-० विद्यामने मम और
ओ पश्यामने मम पाप्य होगे ।

इस शब्दके उपर ऊर्ध्व अक्षराकार विच्छेदे अंगानेसे यह धर्मिप्रायः है कि म् केवल नासिका द्वारा उच्चारण किया हुआ अक्षर नहीं है
क्योंकि इसका उच्चारण नासिका अंग द्वारा होता है इसी प्रकार म् का उच्चारण कंठ नासिका द्वारा, म् का लघु नासिका द्वारा य का मूचों
नासिका द्वारा, न का श्वेत् नासिका द्वारा होता है और उसके स्थानोंमें यह अनुस्वार हुआ है । श्रुत्य पा स्वप्न अर्थात् धर्मिपित वा निरपिनि
नासिका द्वारा होता जानेपादा अनुनासिक केवल अनुस्वार ही है ।

नहीं नहीं पर जो और मू के मध्यमें येसा ३ तीनअसता सिद्ध कर देते हैं अर्थात् ओ३म्-ओ३म्-ओ३म्-ओ३म् लिखते हैं । यह '३ सिद्ध
 प्रपट करता है कि आ स्वर प्लुत संबन्ध है क्योंकि स्वर इत्य वीर्य और प्लुत संबन्ध होते हैं अर्थात् एकमात्रिक-विमात्रिक-विमात्रिक-
 स्वर अन्तसे इत्य वीर्य और प्लुत संबन्ध है । माथार्थ-विस्तर स्वरके बोलनेमें उ के मुन्त्र काज करे अन्तको इत्य अन्तके उच्चारणमें वीर्य
 उ के समाप्त काज करे अन्तको वीर्य और अन्तसे बोलनेमें बहुवचने पा किंच दूये उ के परापर समय वये वस स्वरको प्लुत करते हैं अत
 मनु मूयते सोमसुत । बहुधा कुशुड्ट प्राण काजमें बोलते हैं उनही बोलनेमें इस इत्य वीर्य प्लुतका एक अक्षरा उवाहरण्य सिद्धता है अन्ते
 कु-कु-कु ३ अत्युक्त सिद्धके चिह्नान्तसे प्रायः तीनही पञ्चनाभा बहुधा पाठनोंको ज्ञय हो जाता है इत्सखिये ओ३म्-ओ३म्-ओ३म्-ओ३म् ३ के
 स्थानमें नहीं नहीं पर ओम्-ओम्-ओम् लिख देते हैं इस ३ त्रिवृत्की धारणा उच्चारणके समय इत्यमें कर लेते हैं । प्लुत स्वर, गाने रोने
 चिह्नाने आधिक्यमें बाधा जाता है । हमने कई स्थानोंमें देखा है कि लोककवि प्रधानताके वक्षमें अथवा प्रमाणके वक्षमें आकर प्लुत ३ चिह्नको
 उ समझ कर ओम् येसा यही तक अत्युक्त ठिकता दिया है । ओ३म् किसी प्रकारसे टुट नहीं है ।

इस अन्तको सर्व वैतनतावकस्मिन्बोले आर्यसमाजियोंमें धर्मसमाजियोंमें यैकान्त्रियों आधिक्यने भागीक माना है और प्रयकारोने तथा
 शब्दकारोने अन्तों ३ टयनाही आदिमें इस शब्दका प्रयोग बहुजलासे किया है ॥

"ओम्" अथवा प्रवच ! म उ और मू इन तीनोंसे बना हुआ एक अक्षर । आरम्भ स्वीकार-मानना-हुटाना-भगल-प्रहा-आतने योग्य
 निष्कलना (पञ्च अक्षरकोप पृष्ठ ८७)

"स्वातोर्वं परमं मते" ओम् एवं परमं ये तीन नाम अंगीकारके हैं (अमरकोर पृष्ठ २४ श्लोक १२)

अतः सम्प्रदायमें यह शब्द पंचपरमेष्ठीका वाक्य निम्नलिखित आर्यां संक्ष् प्राप्त है ॥

- अरहंता ! अक्षरीरा ! आरिया ! तद अक्षरकया ! मुखियो !
- अहंता ! अक्षरीरा ! आर्यानां ! तथा उपाध्यायाः ! मुनयः !
- पञ्चमन्त्र-विषयका ! ओकारो ! पञ्चपरमेष्ठी !
- प्रथम-अक्षर-निष्पन्न ! ओकारो ! पंचपरमेष्ठी !

- अर्द्धत अक्षरीर (सिद्ध) आचार्य उपाध्याय व मुनिके

- प्रथम अक्षरसे निष्पन्न वा सिद्ध हुआ
- ओकार वा ओम् सारंपरमेष्ठी (का वाक्यक) है । अर्थात्
 अर्द्धतको आधिक्य अक्षर 'अ' अक्षरीरी (सिद्ध) का आधिक्य
 अक्षर 'म' आचार्यका आधिक्य अक्षर था उपाध्यायका आधिक्य
 अक्षर उ मुनियों (छात्रुओं) का आधिक्य अक्षर 'मू' इस प्रकार

प्रथमोऽर्थाय ॥

मोक्षमार्गस्य नेतार भेत्तार कर्मसुमृतासु ।

जो नंदिसचके पहलूर अिनकस्य नामके आचार्य हुए हें वे श्रीसहा परवार से श्रीर धवत् ३४८ में जो पूज्यपाद भाजाय हुए हें वे पचावती पुरवार से येसा पहलूरजियोमें सिखा हुआ सिद्धता है । जैनद्वितीयी कस्य भाग अंक ११-१२ पृष्ठ ४५ । येसा जान पड़ता है कि पूज्यपाद स्वामीका अस्तित्व ३४५ वि.स.म संवत्में या परंतु अगम संवत् ३०५ सेष सुदी १० का हुआ या । "सिद्धिमिय पञ्चवास्तुक भाषि कर मंत्र मी पूज्यपादके बनाये हुए मसिध है परंतु बहुत करके ये दूसरे पूज्यपाद महारकके बनाये हुये हैं ।" जैनद्वितीयी कृता भाग पृष्ठ ४३ अंक ४-६ " पूज्यपाद द्वितीयकृत-युगाकरा सिद्धिमिय पाकिनीयसूत्रवृष्टि अष्टिका (श्लो० ३००) जेनेश्वर्यभाष्यापीकी टीका पचवास्तुक भाष्यकावाट, वैद्यक जेनेश्वर्यभाष्यकी लघुटीका ॥- इस भागको ठो अन्त्य धर्मके सिद्धान्त मी मानते हैं कि अष्टिकाका कर्ता कोई जेनी है" जैनद्वितीयी (मासिक पत्र) भाग ३ अंक ५-६ पृष्ठ ४१ ।

१ । अब व अथवा जो अक्षर अक्षरमें हों पहलूर इस पहाल ए अथवा पाके अक्षर (अ) भावै ठो यह अ, ए अथवा ओमें समा जाता है या अक्षरस्य हो जाता है अथवा अ तो यह अक्षर बोला ही जाता है और न सिखा हो जाता है । इस अके स्थानमें बहुधा ५ येसा सिद्ध कर दिया जाता है जैसे कि (१) मुने+अब मुनेष वा मुनेऽब (२) ते+अब = तेब वा तेऽब (३) प्रथमोऽर्थायः वाक्योऽे प्रगट है ॥ इस सिद्ध ५ को अर्थ अक्षर करते हैं ।

२ यह श्लोक मंगलाचरणकर श्रीमश्वर्यपादकृत है ॥ श्रीमत्सालाविसृति कृत तत्वायसूत्रका भाग नहीं है ॥ इसके सप्तममें प० अथवद्विभे सिखा है कि " तथा प्रथमही सर्वार्थसिद्धिदोषाकार मंगल अर्थि प्राप्तका प्राप्तारक विरोधकर श्लोक रच्य है, सा स्थितिसे ही ॥ "मोक्ष मार्गस्य नेतारं इत्यादि" । अथिअतर प्रतियोगिं यह तत्वायसूत्र 'सम्पद्योगान्तराविधि मासमंगल" ॥ इस सूत्र ही करि प्रारम्भ किया है परंतु कुछ प्रतियां देखी हैं जिनस यह मूलकता है कि उण्युक्त श्लोक मी सूत्रकारने रचा है सो यह मूल है क्योंकि माथ्यकारोंकी यह प्रथा है कि प्रथम से मंगलाचरण लिखते हैं जेसे कि श्रीमश्वर्यपादके तत्वायसूत्राचार्यसिद्धिदोषाकारिं " प्रथम्य सर्वसिद्धान्त " इत्यादि श्लोक श्री मश्वर्यपादसिद्धिदोषाकारिं अर्थिमें "श्रीवर्षमन्त्रमाथ्याय" इत्यादि देखे सिद्ध निश्च दो श्लोक मंगलाचरण रूप लिखे हैं ॥ समाप्य

बाणरूपसहायकीसकृप पदच्छेद निमग्नसर्बसहित सर्वाभिस्त्रिदिका ब्रह्मरुद्रः द्विती अनुवाह ।

वेन्दे तद्गुणलब्धये ॥ १ ॥

वेन्दे ग सयुजसम्भवे ५११ = कहीं (मोक्षमार्गप्रदायन-कर्मभेदन-विभक्तत्वज्ञान) गुणोंकी मासिकेच्छिये प्रणाम करता हूँ वा करना करता हूँ अर्थात् मैं पूरुषपाद आचार्य इस सर्वाभिस्त्रिद्विद्विषिका रचयिता ठकरीनों गुणोंके उपार्जनके लिये उसकी ओ मोक्षमार्गका नेहा है, जो कर्मोंका विनाशक है, ओ नद चेतन सर्व वास्तुओंका युक्तपद एक समयमें द्रावण है, तमस्कार करण हूँ ॥ १ ॥

हे और यह मत प्रगट किया है कि तत्र कण्ठके स्थानमें तत्त्व कण्ठ अन्त ईप्सु वा कुन्ठेक दुष्ट रूप है, कुन्ठ भी हो प्रमावपश वा असावधानीसे या सुगमताके हेतुमे तत्त्व कण्ठ इस श्रुतिमें तथा अन्य अन्य कोश व शास्त्रोंमें पचासो स्थानों विख्या है ० इसलिये त्वय तत्र दोला एक है ।

१ । कहीं कहीं पर वीरे और कहीं कहीं कान्ठे कण्ठ पुस्तकोंमें प्राया है उनमें वीरे अशुद्ध है । (देखा अष्टाध्यायी ८।३।२४ ८।४।५८ और ८।४।५१ वं सूत्र ॥

२ । जस्य अन्त र्शीच्छिन्न है । सव्यय वस्तुर्षी (सम्प्रदान) विमक्तिका एक चलन है इसका रूप एते बना है कि य वस्तुर्षीका चिह्न है इ मया इ थ गुण य है, व धयथा क का गुण ओ है थु का = अरु है लु का अलु है । र्शीच्छिन्न सङ्घाके अन्तके इ या व वस्तुर्षी (सम्प्रदान) पंचमी (अपदान) और पञ्ची (संबन्ध) विमक्तियोंके प्रत्ययोंके पहिले अपनी अपनी गुण सङ्घामें पलट आते हैं इसलिये जस्यिका तत्त्वे हो जाता है । य वस्तुर्षीका चिह्न जाइनेसे तत्त्वे + य हुआ । संस्कारमें ओ स्वर बिना सिद्धे हुये प्रायः नहीं रह सके है । वर्तमान स्थानमें ओ नियम लागू है यह यह है कि पहिले भाये हुये य दे थो झों का यथावत्स्य [= अन्तसे] परिवर्तित अन्त आए, अन्त, आपूर्णें हो जाता है तब परचात्तका स्वर जोड़ देते हैं जैसे जस्येकी य का अन्त होकर अन्त्य हो गया परचात्त य जोड़नेसे (ओ वस्तुर्षीका चिह्न है) जस्यय + य हुअ्य अर्थात् जस्यये हो गया ॥ संसेयताः य दे ओ झों का अन्तसे अन्त आया अन्त आया हो जाता है यदि इसके पीछे कोई स्वर आये तो, एषाऽयथायाकः अष्टाध्यायी १।१।७ वं सूत्र ॥

कश्चिद्भ्रूव्यं प्रत्यासन्ननिष्ठं प्रज्ञावान् स्वहितमुपलिप्सुर्विविक्तं परमरम्ये भव्यसत्त्वविश्रामास्पदे क्वचि-
दाश्रमपदे मुनिपरिषदेषु सान्निषण्ण मूर्धमिव भोक्षमार्गमवाग्विसर्गं

- कश्चिद्भ्रूव्यं भ्रूव्यं † प्रत्यासन्ननिष्ठः †
- प्रज्ञावान् † स्वहितम् † उपलिप्तम् † विविक्ते †^{१११}
- परमरम्ये †^{१११} मय्यसत्त्वविश्रामास्पदे †^{१११} क्वचित्क
- आश्रमपदे †^{१११} मुनिपरिषदेषु †^{१११} सान्निषण्णं †
- मूर्धमिव † विसर्गं †^{१११}
- कोई मय्य भवत्यन्व निष्ठ है सिद्धि बिसक्त
- = पुदिमान् अपने हितको उपलुप्त निर्जन
- = भवत्यन्व सुन्दर मले लीबोंके विश्राम (= विश्राम)
- स्वाममें (= ब्रामदे) क्वसी (= क्वचित्)
- = आश्रम स्वाममें (= पदे) मुनिपोंकी समामें येठे हुये
- = वचन (= बाग्) दान (= विसर्ग) रहित (= ब्र)
- अर्थात् विना ही वचनके

१ चित् अथवा अग्नि इत दो द्रव्ययोका यदि किम्के सब किन्कोके साथ जोड़ दें तो यह [अर्थात् उष्ण हुआ] वाक्य अग्निचित्त अर्थ का घटक होगा जैसे चित्चित् = कुछ वस्तु अपना कोई पस्तु ; कश्चित् [= कः †] चित्] कोई पुरुष अपना कोई जन । वैलो मातृकारकर मातृपौत्रिणा पृष्ठ १२१ ।

२ मध्यः = सम्पत्सम्पत्तान्तकारित्वाभोजन मरिच्यति इति मय्यः = संस्यर्कणं मय्येषाम् सत्यकृत्वारिष मातृकरि, जो होगा अथवा परिचयेना सा मय्य है [रात्र्यार्थिक पृष्ठ ७७]

३ क्वचित् = पय - क्वचन - क्वचित् - ये हीनों क्वचय कहां क्वचमें आते है (पञ्चकर्मकोप पृष्ठ १२०)

४ यथापमं यह शब्द यान् स्त्रीकिगी वाक्य वचन वाची क्वचमा आदि अर्थमें आता है और वाचा शब्द भी स्त्रीकिगी है और इसी अर्थमें आता है [देखा पञ्चकर्मकोप पृष्ठ १४२]

यापूश्वा चकार ए में कैसे पकट गया ? चाः कुः [क्वचि पदान्ते] अष्टा ८-२-३० ॥ अनेत्यप्याकर ५ । ३ । १५वां सूत्र । च-क्-श्-स्-स्-स् (बु) के स्वानमें क्वमते क्व-क्-श्-स्-स् इ- ०० कु) हो यदि मन्स् प्रयागार परचात्में हो वा पचात्में च्-क्-श्-स्-स् हो इसलिये पाकके पचात् चकारका क्व होकर वाक् हागया ।

वपुषा निरूपयन्त युक्तरागमकुशल

=अच्छे स्वरूप [=वपुषा] वा मशस्ताकारकरि (=वपुषा ।)

प्रयात् अपने शरीरहीकी श्रात मद्राकार

मृन् ३ इव मोधमार्गमः निरूपयन्तः मुक्ति-व्यायम-कुशलः =मानो मूर्च्छिन् मोसमार्गको निरूपण करतै, युक्ति तथा आगममें प्रनीण

वपुषा ३ ११

क का परिवर्तन गर्में हो जानेका यह नियम है कि जब किसी शब्दके आसका स्पंजन [इ-श्र-ञ्-न्-म् स्पंजनोंको छोड़कर) वृत्तरे शब्दके प्रथम पाप स्पंजन (= गु-पू-इ । अ-म्-स् । इ-इ-म् । इ-पू-न् । इ-श्र-म् । इ-र-क पू-इ) वा प्रथम स्वरके साथ संयुक्त वा संयोजित किया जाये वा यह फलका स्पंजन अपने फोंके दोसरे स्पंजनमें परिवर्तित हो जाता है अतः पपाङ्क+मिसर्गका बायापू+यिसर्ग हो गया । भियायिदोषक सवा अनुसर्वाङ्गिण पथ एक पचम होता है इसलिये यहाँ भवायिसर्ग निकाल दिव्याका विशेष्य होतैल अनुसर्क ङ्गिण एवं पर पचम हागया है ।

इसी प्रकार मगपाट् + आगच्छतिश्च मगपाट् = आगच्छति = मगपाट्वागच्छति हागया (मा० मागोवदेशिका पृष्ठ ५८) ।

१ । वपुषा—वपुन् अनुसर्क निगी शब्द प्रशस्ताकार वा अच्छे स्वरके अर्थमें है । पश० का० पृ० ३३६) यहाँ पर श्रांत मुद्राकप शरीर इस तात्पर्यमें रिया है । वपुर्गमें मन् (= आ) वृत्तियावरख विभक्तिका चिन्ह लगाकर और स् को निम्नलिखित नियमसे पू में पलट कर वपुषा बना लिया है ॥

जब पू वा कि आशान्त हो और ओ आदेश अथवा अथवा का अश वा डुकरा हा, अ-आको छोड़कर किसी स्वरके पीछे भाये, पू-र-ल-ए के परयात् भाये, इ-म्-पू-इ के परे भाये, मयथा इ के परचाव भाये ता यह स् पलट कर प हो जाता है, अष्टाध्यायीके ८-३ के ५५-५७-५९ श्लोके अनुसार ॥

भाग्यसहाय पक्षीसङ्घत परच्छेदविमलपर्ययसहित सर्गार्थसिद्धिका सम्बन्ध हिंदी अनुवाद ।

परहितप्रतिपादनेः कार्यमार्थनिषेधेन्य निरग्रथाचार्यवर्गमुपसद्य सविनय परिपृच्छति स्म । भगवन्

परहित-प्रतिपादन-एक-कार्यम् १
 भाग्य-निषेध १
 २-श्री-आचार्य-वचनम् १ उपसद्य-
 =इसके हित करनेवा है केवल (एक) काम जिन (आचार्य) को
 =श्रेष्ठ पुरुषोंकरि सना (= नि) सेवने योग्य
 =निग्रन्थ अर्थात् परिग्रहाहित विमन्तर आचार्योसिं सुकप तिनको
 भाग हीकर

॥ श्री-पृच्छति त स्म ० भगवन् २
 =विनयसहित पूछता हुआ कि हे स्वामी !

-नि (भाव्य) = सदा (देखो पद्यबन्धुकोय पृष्ठ २१) अर्थात् प्रथम पद्यके सेह आत्मनेपदी पाठमें इय प्रत्यय लगानेसे ।
 । इ एव संकष्य होनेसे लोपको प्राप्त होता है और केवल य एव जाता है और इसलिये निम्नोक्त-इय = निम्नोक्त-य = निम्नोक्त्य पुर्योक्त
 यमसे (देखो पृष्ठ १५) सञ्चरका परिसर्जन प्रकारमें हो गया और विवेक्य रूप प्राप्त हुआ जो द्वितीया विमलिक एक यवम् पुरिगामे है ।
 इ एव सर्वप्रकृत कृतम् है । इसके बतलके य ए नियम है कि धातुमें ला प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे श्रु (= सुलभा)
 श्रुत्वा (= प्रवच्य करके) बतला है । यदि धातुसे पहिले उपसर्ग आया तब तो ला प्रत्ययके स्थानमें य लगाने है
 उपसर्ग आकर धातु बतलाया इसका संबोधकमूल कृतम् धातुमें य जोड़नेसे अनुसूय (= प्राप्त होना) शब्द बना पद्यात्
 कृतम् सुश्रुति अथवा कृतम् सुश्रुतिपद्यके सव धातुमें उप उपसर्ग लगानेसे उपसव (= प्राप्त होना) शब्द बना पद्यात्

१ (= प्राप्त होकर) येना कृत्य बना । इसी समस्यकमूल कृत्यके कान्तेमें अय ग विशेष यह है कि यदि धातुके अंतमें कृत्य
 हो या इस य से पहिले र आया जाता है जैसे अनुकृत्य = अक्षरका विधि करके । अतएव = अक्षर्य करके । यदि धातु सेह हो तो ला के
 अगकर सवप्रकृतम् कृतम् बतलाने है जैसे शीव धातुमें र जोड़नेसे शीव + इ हुआ पद्यात् तथा अयाकर ओषि रया बना (देखो
 निषेधिका पृष्ठ २१)

अथय है जो यहाँ पर भाष्यपूर्यबके लिये आया है ।
 क सम्पद्य है । "विमन्ड । अतीत (परीक्षाया) पायका पूरा करना" देखो पद्यबन्धुकाय पृष्ठ २३० प

५ भागवन्-यह समाख्य परिसिद्धा शब्दका सम्भाव्य है ४

किं ललु आत्मने हित स्यादिति ॥ स आह भोक्ष इति ॥ स एवं पुन प्रत्याह किंस्वरूपोऽसौ भोक्षः
कश्चास्य प्राप्नुयाय इति ॥

किं ललु आत्मने १ इति १:१:१ भाव इति स १ आह १ = भास्करके लिये क्या हितकारी है ? आचार्य (= स्व) करते है
भोक्षः १ इति १ । स १:१ एव १
पुनः १ प्रति+आह (= प्रत्याह)
किंस्वरूप १ असौ १:१ भोक्ष १:१ १ १
आय १:१ प्राप्ति-उपाय १ इति

१ इति-पस कलम् यहाँ पर वाक्यकी समाप्तिके लिये है ।

७ स आह स, एव विलसंभीयके पहिले सहाय (स) हो, और उसके पञ्चात्ममें अ स्वर के अतिरिक्त कोई, कल्प स्वत आये तो विलसंभीय
कल्प हो जाता है । अतः स आह = स आह । स एव = स एव । पुन इच्छति = पुन इच्छति इत्यति (देखा भाष्यकारकार मागोपदेशिका पुनर ७)
८ प्रत्याह-प्रति+आह उच्यत इति (= प्रति) अगवा फिरे (= प्रति) पूछता है-प्रत्यत करता है । प्रति=फिरे-उच्यत इति (देखा पञ्चात्मक
पुन १४४) इसलिये मनुवाचमें पुन के लिये फिरे शब्द आये है और प्रति शब्दके लिये लोटकर या पलटकर शब्द मनुवाचमें आये है ।

आह-यह इति (= कहा-बखला) द्वितीय अक्षरि फल समय पर (परस्मै-पद, और प्राप्तने-पद) प्राप्तसे बना है ३ अन्वयपर एक पञ्चन
वर्तमान वाक्यमें इस शब्द (इ) का रूप आह विना किसी श्वाकारके नियमसे बना है ३ आह=बखला है-बखला है । परन्तु भीमाचार्यकेलिये
समान, भास्कर या प्रतिष्ठा प्रसन्न करनेके लिये बहुत पैस कल्प वर्तमानकाल कियामें "भक्षते ही" ऐसा अनुवाद किया है ।

१ असौ-यह शब्द कर्त्ता प्रथम कारक एक पञ्चन पुञ्जिग वाचस् शब्दका अर्थ वह अथवा यह दोनों हैं यहाँ पर 'असौ'का
अर्थ 'यह' पला किया है पञ्चिक कच्चास्य प्राप्नुयाय इति' इस वाक्यमें भव्य शब्द शब्दकी यहाँ विभक्ति पुञ्जिग पर एक पञ्चन है जिसका
अर्थ है 'इत (मास) का' ।

१० प्राप्नुयाय-अह ६, उ थू, और इ (इस हो अथवा सीधे हो) भवमान स्वरके पहिले हो तो परात्म (नमसे) ए व र और ए का

तदपि परिकल्पनमसदेव विशेषलक्षणशून्यस्यावस्तुत्वात् ॥ प्रदीपनिर्वाणकल्पमात्मनिर्वाणमिति च । तस्य खराविषाणवत्कल्पना तैरेवाहत्य निरूपिता । इत्येवमादि ॥ तस्य स्वरूपमनवधमुत्तरत्र वक्ष्याम* ॥ तत्प्राप्त्युपाय प्रत्यपि ते विसवदन्ते— ज्ञानादेव चारित्रनिरपेक्षात्तप्राप्ति ,

तत् १.१११ अपि परिकल्पनम् १.११२ असत् १.११३ एव *
 विशेषलक्षणशून्यत्वात् १.११४ अवस्तुत्वम् १.११५
 च प्रदीपनिर्वाणकल्पम् १.११६
 आत्मनिर्वाणम् १.११७ इति
 तस्य १.११८ कल्पना १.११९ स्वरूपमनवधम्
 तै १.१२० एव आहत्य* निरूपिता १.१२१ इति एवम्* अपि १.१२२ = [तैः ए॥] उनने ही प्रसिद्ध ठहरा विवा है । इसीप्रकार और भी है

तस्य १.१२३ स्वरूपम् १.१२४ अन्वयम् १.१२५ उत्तरत्र* एवम् १.१२६ = तस्य [मोक्ष] का स्वरूप एवार्थे प्राणै (हय) कहैनि
 सत्यापि—उपाय १.१२७ प्रति * ते विधेय* १.१२८ = तिस [मोक्ष] के साधनके प्रति भी ये [अन्वयार्थी] बाह
 = विवाह करते हैं अर्थात् मोक्षके उपार्जनके उपायोंको भी एकमत दूसर मतके बिल्कुल बताया है ।
 १.१२९ एव चारित्रनिरपेक्षात् १.१३० तस्यापि १.१३१ = ज्ञान [मात्र] सेही चारित्रके विना सर्वत्रते तिस [मोक्ष] की प्राप्ति [एवार्थे है]

१.१०* कस्य साक्षात् प्रथमै कल्पए प्रत्यव होता है जैसे—पितृकल्पः पुरुकल्पः—पुरुके समाप्त निर्वाणकल्पम् । एवम्* उत्तरकोष पृष्ठ १०१ ।

श्रद्धानमानदेव वा, ज्ञाननिरपेक्षाचारित्रमात्रादेवेति च ॥ व्याप्यभिमृतस्थं तद्विनित्युपायमुतभेषजवि
पयन्यस्तेज्ञानादिसाधनत्वाभाववत् ॥ एव व्यस्त ज्ञानादि मोक्षप्राप्त्युपायो न भवति । किं तर्हि ? तत्रितय
समुदितामिर्याह—

- वा * श्रद्धानमात्राए १.१.१ एव *
- व * ज्ञाननिरपेक्षाए १.१.१ चारित्रमात्राए १.१.१ एव* इति
- व्याधि-भिमृतस्य १
 वदू-विनिवृत्ति-उपाय-सूत्र-
 भेषज-विषय-स्मरण-ज्ञानादि-
 साधनत्व-अप्राप्तवत् * एव *
 मयत् १.१.१ ज्ञानादि १.१.१
 मोक्ष-प्राप्ति-उपाय १ न मर्यादि
 कि १.१.१ वरिष्ठ
 वदू-त्रितयं १.१.१ समुदिर्यं १.१.१
 इति-आह
- = ज्ञयया अदान [विचार] मात्रसे ही [ज्ञान चारित्र्यके बिना
 मोक्षकी प्राप्ति कहते हैं]
 = वदुति ज्ञान संबन्धसे रहित चारित्र्यमात्रसे ही इत्यकार (मोक्ष
 की प्राप्ति कहते हैं)
 = रोगसे बचाराये हुए (रोभी) के
 = चरु (रोग) के दूर करनेके कारणयुक्त
 = औषधके संबंधमें ज्ञान, अदान, आचरणमें कोई एक
 = साधन जितप्रकार दूर करनेमें असमर्थ है तिस प्रकार
 = ज्ञान-चारित्र्य-श्रद्धानमेंसे एक एक (= व्यस्त)
 = मोक्षके प्राप्ति का साधन नहीं होता है
 = तौ (= तर्हि) क्या (मोक्षकी प्राप्ति का उपाय है ?)
 = उन तीनों (ज्ञान-इच्छन-चारित्र्य) की एकता है
 = ऐसे [भीतमास्थामी प्राचार्ये सूत्र] कहते हैं

१ भिमृत (नि०) घबराया हुआ बचाया हुआ । पचन्मृतकोय देखो पृष्ठ १७ ।

२ व्यस्त (नि०) सारे पदार्थोंमेंसे एक एक । देखो पचन्मृतकार पृष्ठ १७२

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्याणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्याणि १.१.१

मोक्ष-मार्गः १.१

= सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र्य (इन तीनोंका समुदाय अथवा संगम)

= मोक्षका मार्ग है अथवा मोक्षकी प्राप्ति का उपाय है अर्थात् पदार्थों के पथार्थ ज्ञानके विषयमें अज्ञान व प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है जिस जिस भाँति धीमादिह पदार्थ सिद्ध हैं विस विसमकार ज्ञानना सो सम्यग्ज्ञान है । संसारके हेतुओं (आसन्न-बन्ध) की निवृत्ति करनेके लिये सधमी सम्यग्ज्ञानी पुरुषके कर्मों का प्रवर्ण करनेवाली क्रियाका त्याग सो सम्यक्चारित्र्य है । अनुभवसे यह बात प्रत्यक्ष है कि संसारके जितने कार्य हैं उन सर्वमें ही प्रथम ज्ञान, दूसरे अज्ञान वा विश्वास तीसरे आचरणाकी प्रावण्यका होती है यदि इन तीनोंमेंसे एक भी जाति हो तो कोई कार्य कदाचित् सिद्ध नहीं हो सका है वैसे ही मोक्षकी प्राप्तिमें भी इन तीनों हीकी प्रावण्यका है । ध्यान रहे कि प्रथम ज्ञान होता है उसके पश्चात् सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति है उस सम्यक्तत्वकी प्राप्ति होते ही वही ज्ञान जो सम्यग्दर्शनके पहिले अज्ञान या सम्यग्ज्ञान हो जाता है (विशेष ज्ञानकेलिये नीचे का पुरुषार्थ देखो)

'१ इस तात्पर्यवृत्त प्रस्यकी रचनाके विषयमें कर्माटकभाषाकी तत्त्वापवृत्ति भाष्यकीकाकी प्रस्तावनामें एक वही मूलोपदेशक कथा लिखी है, वह इस प्रकार है कि—

सौचद्र (गुञ्जण) देशके किसी नगरमें एक पवित्राशुः करण और निरालिप्तक शिष्टार्थमें त्वर ब्रह्मार्थान् श्रेयायक नामक भावक रहता था । यह बड़ा विद्वान् था । और इसलिये कहता था कि किसी इष्टम समयकी रचना करने परन्तु गार्हस्थ्यनंदाजके कारण धनवकाशुभयुक्तः कुछ कर नहीं सका था । निश्चान एकदिन उसने प्रतिष्ठा की कि, प्रतिशिव अब एक सूत्र बना लूंगा, तब ही मोक्षन करेगा, अथवा उपवास करूंगा । और मोक्षशास्त्रके कानेका नियम करने उसी दिन उसने "वर्णनदानवारिआणि मोक्षमार्गी" यह प्रथम सूत्र बनाया । तथा विशारद हा जानेके मयसे अपने पहले एक सम्भेपर उसे लिखा दिया ।

इसके पञ्चाद्वेसरे दिन यह भावक किसी कार्यके निमित्त नहीं आसन्न बाजा गया और उसके घर एक मुनिराज आहारके लिये आये । मुनिके दर्शनसे श्रेयायककी सुशीला गुणवती भावनि अत्यन्त प्रसन्न होकर नयनमन्किर्पुर्णक ऊई मोक्षन कराया । मोक्षनपारम्भ मुनिराजने कनेपर ठिन्ना हुआ वह सूत्र जो श्रेयायकने लिखा था देखकर किञ्चित् विचार किया और तत्काल ही उसके पहिले सम्यक् विशेष्य लिख कर यह से बाल दिये । तदनन्तर अब श्रेयायक थाया, तो उसे अपने शिष्य हुए सूत्रमें सम्यक् विशेष्य अर्थिक लिखा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और ताय ही सूत्रकी शुद्धता (निर्दोषता) से धनंद् भी हुआ । भायिके पुननेसे विधित हुआ कि, मुनिराज आहारके निमित्त प्यारे ये, क्पाचित् ये लिखा गये होंगे । तब थावक उसी समय बड़ी आतुरतासे उनके दूतनेको निरुद्धा । यत्र तत्र गदूत भद्रकनेके पञ्चात् एक रमणीक बनम उसे एक मुनिपत्रके दर्शन हुए । ये एक बड़े भारी मुनियोंके सर्वके नायक थे । उनकी मुद्राके दर्शनमात्रसे यह भावक जान गया कि इन्हीं महात्मने मेरे सूत्रको शुद्ध करनेकी कृपा की होगी और गदूद होके उनके चर्योंपर पड़ गया । बोला माणन् । उस मोक्षशास्त्रको आप ही पूर्य कीजिये । ऐसे महात्पत्रके रचनेका सामर्थ्य मुझमें नहीं है । आपने बड़ा उपकार किया, जो मेरी यह बड़ी भारी भूल सुधार की । सच है दर्शन हाव और चारित्र मोक्षका माग नहीं है किन्तु सम्यक्चरित, सम्यग्दान और सम्यक्चारित्र ही मोक्षमार्ग है । अतएव "सम्यक्चरितान् चारिवाचि मोक्षमार्गः" ही परिपूर्व और चिद्युत् सूत्र है । थावकके एक आग्रह और प्रार्थनाको मुनिपत्र टाल नहीं सके, और निदान उन्हेनि इस तत्वायुत्न (मोक्षशास्त्र) को उनके पूर्व किया । पाठक ! ये मुनिपत्र और कोई नहीं, इनारे इस खेबके मुख्यनायक भगवान् उमास्वामी ही थे ।"

भगवद् उमास्वामि श्रीमत्कृष्ण कुम्भ आचार्य शिष्टरति धर्मक प्रयोगकी रचनाकी है उनके शिष्य थे । उमास्वामि सुरिका ग्राम शिवम्बर सग्न शयकी पदुयशियोंके अनुसार विक्रमशुक्र ५७ (अधिकम सम्वत् ११२) में हुआ था ११ वर्षकी वयन धयमें आपने त्रिन शीषा प्रहृषकी और

संभ्यागीत्यव्युत्पन्न शब्दो व्युत्पन्नो वा । अञ्चते' क्री समञ्चतीति सम्यगिति । अस्यार्थः प्रशसा ।

सञ्चय+इति अ+स्युत्पन्न १

=सम्यग् येसा (पद्) अच्युत्पत्ति पद्य (व्याकरणकी रीति रहित) बासा

वा स्युत्पन्नः ५ सञ्च' १

=प्रथवा व्युत्पत्ति पद्य (व्याकरणकी रीति) बाला सुन्द हो सकता है अर्थात् । यह अच्युत्पत्ति पद्य अथवा तो कहि संज्ञक है

अच्यते १ की १^{११} समञ्चति १ इति संज्ञक १ इति

= और व्युत्पत्त्यपत्त अथवा या सम् चयस्य पूर्वक अच्य वाच्यते पूनम वा अञ्चमार्यमें (अच्य = पूनायाय गवौ) किय् इत्यप अनेपर सम्बद्ध बनता है ।

बस १ कर्' १ प्रथसा १

= इस (सम्यक् सुन्द) का अर्थ (इस सूत्रविषे) प्रशसा है । पद्यस्य=उचय = अञ्चसनीय

२५ वर्ष दीक्षित रहनेके पश्चात् कार्तिक द्वादशा = विक्रमशक १०१ में मंदिनचके पद् पर विराजमान होकर आचार्य पद् खाम किया ० कर्को ने ५० वर्ष ८ दिन आचार्य पद् पर सुशोभित रहकर परम धर्मका उपदेश किया । इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और विगम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें एक है ॥ तत्प्राय सूत्र दोनों संस्कारोंमें माना जाता है । विगम्बर सम्प्रदायका मत है कि वे विगम्बर व्याचार्य वे और कनका नाम उपास्यमि है । श्वेताम्बर आश्रायतासे उनको उपास्यारिके नामसे श्वेताम्बर आचार्य मानते हैं । कुछ मी हो इसमें संदेह नहीं है श्रीमदुमास्वा मिनै एक ही तत्प्राय शास्त्र रहा था । परन्तु अपने अपने अपने प्रमाणोंके प्रतियोगके लिये जहाँ जहाँ सूत्रोंमें पाठ भेद कर दिया गया है । प्रायः ऐसा होता है कि जो अर्थ नति उचय होता है और किञ्चक उचरिता कथ्यत प्राय और प्रसिद्धाश्री प्रसिद्ध होता है उस प्राय तथा व्याचार्यको प्रत्येक शास्त्राधी बनता अथवाया करती है ॥ यही कारण है कि-जहाँ जहाँ सूत्रोंमें भेद है ॥

१ । साम्यः—सम् अपसर्गमें अञ्च चातु प्रकृत वा प्रशसा अर्थमें जोडकर तथा किय् प्रलय अगालेसे सम्+अञ्च+किय् एसा रूप हुआ । इस सम् अपसर्गके स्थानमें समिक भाषेश अथवायायी ६-१-१३ सूत्रमें होकर समि+अञ्च+किय् बना । किय् प्रलय सात ही उच्यताया है और

काण्डसप्तहास्यकीकृष्ण परच्छेद और निमलसर्पसहित सर्वांसिद्धिका दृश्यः हिंदी अनुवाद ।

स प्रत्येक परि समाप्यते । सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र्यमिति । प्रतेषां स्वरूप लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद्विस्तरेण निर्देक्ष्याम' ॥ उद्देशमात्रं त्विदमुच्यते । भावानां याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसप्रधार्य दर्शनस्य सम्यग्निर्देशेणम् । येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्थां व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानम् ।

स १: प्रत्येकं १:१११ परिसमाप्यते १

सम्यग्दर्शनं १:११२ सम्यग्ज्ञान १:११२

सम्यक्चारित्र्य १:१११ इति ४

पदार्थां १:११३ स्वरूपं १:११३ लक्षणतः ४

च विधानतः ४ पुरस्तात् ४ विस्तरेण १:११२ निर्देक्ष्याम' १

उद्देश्यार्थं १:१११ तु ४ इदं १:११३ उच्यते १

भावानां १ याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसप्रधार्यं १:११२

दर्शनस्य १:११३ सम्यक् विक्षेपणम् १:१२२

येन १ येन १:१ प्रकारेण १:१ जीवादयः १:१ पदार्थां १:१

व्यवस्थिताः १:१ तेन १:१ तेन १:१ कवगम १:१ सम्यग्ज्ञानम् १:१११ = तिष्ठे हैं तिस तिस प्रकार जानना (सो) सम्यग्ज्ञान है ।

=सम्यक् पद अक्षय ब्रह्मण (तीनोंपर) ज्ञायाया जाता है

=तब सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और

=सम्यक्चारित्र्य इस प्रकार (तीनों पर) होते हैं ।

=इन (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्बन्धकारित्र्य)के स्वरूपको खसब

=तथा वेदसे आये विस्तारकर कहेंगे ।

=परंतु संक्षेपमात्र पर (इस सूत्रमें) कहा जाया है

=पदार्थोंके स्वार्थ ज्ञानके विषयमें अज्ञानको ग्रहण करनेके लिये

=दर्शनके सम्यक् (पद) विक्षेपण है

=खिस २ पाठि जीवादिक पदार्थ

=तिष्ठे हैं तिस तिस प्रकार जानना (सो) सम्यग्ज्ञान है ।

धर्मु प्रायः इत्यन्वयी रहता है इसलिये समि+अच्छू रूप हुआ । अब ३, ४ अ, और ल, (इत्य अथवा ईर्ष्य, हों) किसी अज्ञान स्वार्थके प्रथम भावें तो पर्याप्तमते सू-न्-र-त् का प्रयोग करनेके स्थानमें हो । इसलिये समि+अच्छू = सम्यच्छू हुआ । (ऐको अष्टाध्यायी ३ १-७७ नी सूत्र) सम्यच्छूके श्रु का शीघ्र शोभर सम्यक् सिद्ध हुआ । अक्षयश्रुकोय गृह ४:४ में सम्यज्ज को अक्षय मी लिखा है ॥ सम्यज्ज का सू योष अक्षरके पहिले ए में पठत जाता है इसलिये सम्यज्ज दर्शन और सम्यग्ज्ञान रूप हुये और अयोप अक्षरके पहिले इ में इस श्रु का परिकल्पन हो जाता है इसलिये सम्यक्चारित्र्य हुआ ॥ इस सूत्रके प्रत्येक शब्द वर्तमान-ज्ञान और चारित्र्यके साथ सम्यज्ज-सम्यक् पद ज्ञाना चाणिये । (१) यदि यह है जो प्रकृति और प्रत्येकके प्रणयनी अथवा किये बिना उत्पन्नपव शक्ति (सार शुद्ध सामर्थ्य) से "अर्थलोकतायै १" इति वद है जो

सम्यग्निशेषणम् ॥ स्वयं पश्यति हृष्यतेऽनेनेति दृष्टिमात्र वा दर्शनम् ॥ जानाति ज्ञायतेऽनेन ज्ञानमात्र वा ज्ञानम् । चरति चर्यतेऽनेन वरणमात्रं वा चारित्र्यम् । नन्वेव स एव कारणमित्यायातम् । तत्र विरुद्ध-

वचनविशेषणम् १११

स्वयं च पश्यति T इति वचनम् १११

दृश्यते T ज्ञेयं १११ इति वचन १११

वा दृष्टिमात्रं १११ इति दर्शनम् १११

जानाति ज्ञानम् १११

ज्ञास्यते ज्ञेयं १११ ज्ञानम् १११

वा च ज्ञायते १११ ज्ञानम् १११

चरते चारित्र्यम् १११

चर्यते ज्ञेयं १११ चारित्र्यम् १११

वा च वरणमात्रं १११ चारित्र्यम् १११

वचनं एव च १ । एव कदा १ । स १ । एव च करण १११

इति भाष्यम् १११ तत्र १११ विरुद्धं १११

= सम्प्रतिशब्धेण (लगाया) है ।

= आपही भाष्य अर्थान करे सो दर्शन है [यहाँ कर्तृसाधन मया, करनेवाला आत्मा है सो ही दर्शन है]

= अद्विधे विसर्करि तो दर्शन है [यहाँ करण साधन मया]

= अथवा अर्थान सो दर्शन है [यहाँ भाव साधन हुआ, दर्शन क्रियाको ही दर्शन कहा]

= जो जाने सो ज्ञान है [यहाँ कर्तृसाधन हुआ, जाननेवाले आत्माहीका ज्ञान कहा]

= जाकरि जानिये [सो] ज्ञान है [यहाँ करण साधन हुआ]

= अथवा जानना सो ज्ञान है [यहाँ भाव साधन मया, जानना रूप क्रियाको ज्ञान कहा]

= भाष्यवा है सो चारित्र्य है [यहाँ कर्तृसाधन हुआ क्योंकि आत्मा ही चारित्र्य है]

= विसर्करि आचरण किया भाव सो चारित्र्य है [सप्रकार करण साधन मया]

= अथवा आचरण मात्र है सो चारित्र्य है [यहाँ भाव साधन मया] अर्थात् आचरनेहीको चारित्र्य कहा गया ।

= प्रत्यन्त-समकार तो वही कर्ता वही कारण [= साधन]

= ऐसा प्राप्त हुआ सो विरुद्ध है ।

सत्य, स्वपरिणामपरिणामिनोर्भेदविवक्षायां तथा भिधानात् । यथाऽग्निर्दहतीन्धन दाहपरिणामेन ॥
उक्त कर्त्रादिभिः साधनभाव पर्यायपर्यायिणोरेकत्वानेकत्वं प्रत्यनेकान्तोपपत्तौ स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्यवि
वक्षोपपत्तेरेकस्मिन्नपर्यये न विरुध्यते । अग्नौ दहनादिक्रियाया कर्त्रादिसाधनभाववत् ॥ ज्ञानग्रहणमादौ
न्याय्य, दर्शनस्य तत्पूर्वकत्वात् अत्यान्तरत्वाच्च ॥ नैतदुक्तं,

दस्य, स्वपरिणाम- [नहीं, वह] अहं है क्योंकि अपने परिणाम

परिणामिनो ११ विवक्षानां १११ तथा

विधानात् ११११

यथा अग्ने ११ दहति १ इत्यन ११११ दाहपरिणामेन ११

उक्तं ११ कर्त्रादिभिः ११

साधनभावः १

पर्यायपर्यायिणोः ११ एकर-अनेकत्व ११११ प्रति अनेकान्त-

उपपत्तौ ११ स्वातन्त्र्य-पारतन्त्र्य-

विवक्षा-उपपत्ते १११ एवमित् ११ अपि न विरुध्यते १

अग्नौ १११ दहनादिक्रियायां १११

कर्त्रादि-साधनभाववद् १

ज्ञानग्रहणमादौ ११ न्याय्य ११११

वर्तमानत्व ११११ उत्पत्तिवत्त्वात् ११११

न्याय्यपरिणामात् ११११ + १११

न + एव ११११ युक्त ११११

= [नहीं, वह] अहं है क्योंकि अपने परिणाम

= और परिणामी / दोनोंकी) येव विवक्षामें बैसा

= विधान है । अर्थात् वही कर्ता वही कर्म वही कार्य हो सकता है

= जैसे अग्नि अपने दाह परिणामसे लक्ष्मीको जलाती है ।

= (भाषार्थ) कहा गया जो कर्ता कर्म क्रियासे

= साधनभाव (कर्तादि)को प्रधान मानकर कीहुई व्युत्पत्ति)

= वह पर्याय और पर्यायसक एकरपना और अनेकपना अनेकत्वसे

= स्वीकार कर लेनेपर एकरपता और परतत्रताकी

= विवक्षा होनेसे एक पदार्थमें भी विरुद्ध नहीं पड़ता है

= जैसे-अग्निमें दहन आदि क्रियाकी

= [पृष्ठ और एक मान लेनेपर] कर्ता आदिमें सिद्धि हो जाती है ।

= (अग्नि) धर्ममें ज्ञानका ज्ञाना आदि विषे उचित वा

= क्योंकि दर्शनके वस्तु ज्ञानका कारणपना है

= दर्शनसे ज्ञानके ज्ञान अक्षर होनेके कारण [क्योंकि

व्याकरणमें इदं समासविषे जित बन्धमें अस्य अक्षर होते है वह

प्रथम प्राता है] सेमी प्रथम ज्ञान योग्य है ।

= अक्षर-एव सुम्भता कहना या एक ठीक नहीं है

नागराजशासनकीकृत परच्छेद और निपत्सबैसहित सर्वांसिद्धि का शब्दकः सिद्धि अत्रुवाद ।

युगपदुत्तरे' ॥ यदाऽस्य दर्शनमोहस्योपशमात्क्षयात्क्षयोपशमाद्धा आत्मा सम्यग्दर्शनपर्यायेणाविर्भवति तदैव तस्य मत्प्रज्ञानश्रुतज्ञाननिश्चिपूर्वकं मतिज्ञान श्रुतज्ञान चाऽविर्भवति । वनपटलविगमे सवितुः प्रतापप्रकाशाभिव्यक्तवत् ॥ अत्यान्तरादम्यार्हितं पूर्वं निपत्तति । कथमम्यर्हितत्व ? ज्ञानस्य सम्यग्ब्य-पदेशेऽहेतुत्वात् ॥ चारित्रात्पूर्वं ज्ञानं प्रयुक्तं,

अज्ञान + उत्पत्तेः १११

यथा * + अत्स ११ दर्शनमोहस्य ११

उपशमात् १ । कर्णात् १ । वा ह्योपशमत् ११ वा

आत्मा १ । सम्पदपूर्वनपर्याय १ । आविर्भवति १

उपश + इव तस्य १ । गति + अज्ञान द्रुत + अज्ञान निश्चिपूर्वकं १ ॥

मतिज्ञानं १ ॥ ११११ अज्ञानं १ ॥ ११११ आविर्भवति

वनपटलविगमे ११ अद्विष्ट ११

मतापपन्नस्य - अस्मिन्विषय १

अस्यात्प्राप् ११११ अम्यर्हित ११११ पूर्वं ११११ निपत्तति १

कथम् * अम्यर्हितत्व ११११

ज्ञानस्य ११११ सम्पत्पूर्वहेतुत्वात् ११११

चारित्रात्पूर्वं ११११ ज्ञानं ११११ प्रयुक्तं ११११

= यपोंकि दर्शनज्ञानकी एक काष्ठ उत्पत्ति है

= अथ इस (आत्मा) का दर्शन मोहका

= उपशमसे तस्यसे, अथवा अयोपशमसे

= चेतन सम्यग्दर्शनकी पर्याप्तसहित प्रकाशित होता है । अर्थात् चेतनके सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है

= वही तिस चेतनके अमति अमुतका अभाव होकर

= परिज्ञान और अज्ञान प्रकृत होते हैं ।

= बादलोंकी ओटके दूर होनेपर सूर्यके

= तेज व रूप (= आकाश) के (एक साथ) प्रकट होनेके सद्य दर्शन व ज्ञानकी उत्पत्ति एक साथ है ।

= योहे अंतर वाले (अत्यन्त अल्प शब्द)

= से अल्प (व्याकरणके अनुसार) पहले आता है ।

= कैसे दर्शनको ज्ञानसे पूर्ववचना है ?

= सम्यग्दर्शन ज्ञानको सम्यक् नाम देनेका हेतु है ।

= अर्थमें चारित्रसे पहले ज्ञान कहा ।

नमः कुर्यात्सायपकीकृत वरच्छेद गौर विमलवर्णशरिण सर्वाथसिद्धि का कृतः हिंदी अनुवाद ।

तत्पूर्वकत्वाच्चारित्रस्य ॥ सर्वकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः । तत्याद्युपायो मार्गः । मार्ग इति चैकवचन-
देश समस्तस्य मार्गभावज्ञापनार्थः । तेन व्यस्तस्य मार्गत्वनिवृत्तिः कृता भवति ॥ अतः सम्यग्दर्शन
स्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र्यभित्पेतत्त्रितय समुद्धित मोक्षस्य सोक्षान्मार्गो वेदितव्यः ॥ तत्रादावुचिष्टस्य
अपरदर्शनस्य लक्षणनिर्देशार्थं भिदमुन्यते-

तस्यैव अत्राह ३३ चारित्र्य ३॥

सर्वकर्मविप्रमोक्षः ३ । मोक्ष ३
तत्यासि + उप य ३ । मार्ग ३
मार्थ ३ इति च एकवचननिर्देश ३
समस्तस्य ३ । मार्गभावज्ञापनायः ३

येन ३ व्यस्तस्य ३ । मार्गत्वनिवृत्तिः ३ ॥ ३ ॥ अत्राह ३ ॥ ३ ॥

अत्र ३ सम्यग्दर्शनं ३ ॥ ३ ॥
सम्यक्चारित्र्यं ३ ॥ ३ ॥ अत्रिभ्योपल्ल ३ । अत्रिभ्यं ३ ॥ ३ ॥
मोक्षस्य ३ । साक्षात्पर्याय ३ । वेदितव्य ३ ॥
तत्र + भावो ३ ॥ ३ ॥ अर्थात्स्य ३ ॥ ३ ॥
सम्यग्दर्शनस्य ३ ॥ ३ ॥
अपरदर्शनस्य ३ ॥ ३ ॥ इत्यु ३ ॥ ३ ॥ उच्यते

= क्योंकि चारित्र्यके पहिले परज्ञान होता है अर्थात्
चारित्र्य सब ही सम्बन्ध होता है जिस समय सद्गन्धान हो जाता है ।
= समस्त कर्मका अत्यन्त ज्ञान [सो] मोक्ष है ।
= उन [मोक्ष] की प्राप्तिके लिये ध्यान करना [सो] मार्ग है
= और [अत्रमें] मार्ग [अर्थ] एकवचनमें कहा है
= सो अपूर्ण सम्म्यग्दर्शन, सम्म्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्यके [एक ही]
मार्गभाव ज्ञानार्थके लिये है ।

= जिस [मार्ग अर्थ एकवचन] करि छुदे छुदे [सम्म्यग्दर्शन
सम्म्यग्ज्ञान सम्म्यक्चारित्र्य] को मार्गपनाका बर्तना होता है ।
= इसलिये सम्म्यग्दर्शन, सम्म्यग्ज्ञान [अर्से प्रकारका ज्ञान]
= अर्से प्रकारका आचरण ऐसे वे तीनों मिले हुए
= मोक्षका अत्यन्त मार्ग ज्ञानना चारिये ।
= यहाँ (अत्रमें) चादिभिषे उपदेशित
= सम्म्यग्दर्शनका
= उत्पन्न करनेकेलिए पर (अर्थात् जागेका अर्थ) कहा जाता है ।

३ सम्म्यग्दर्शन सम्म्यग्ज्ञान सम्म्यक्चारित्र्यका एक देखाया परस्यप मोक्षका कारण है और समस्तका (- पूर्वका) साक्षात् मोक्षका कारण
जाताहै यहाँ ऐसा अर्थके ज्ञानेका भाव है ।

नमरूपसहायककीसकृद पदच्छेद और विभक्त्यर्थवहित सर्वावसिद्धिका प्रत्यय-हिरी अनुपाद ।

॥ तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥

तत्त्वशब्दो भावसामान्यवैधी । कथम् ? तदिति सर्वनामपदम् । सर्वनाम च सामान्ये वर्तते । तस्य भावस्वरूपम् ॥ तस्य कस्य ?

- (क) सुवार्थ-सत्त्वाथे = शब्देन १:१:१ + अर्थः १:१ = यथावधीयत रूप करि [तत्त्वेन] जो निश्चय क्रिया जाय पदार्थ श्रद्धाने १:१:१
- [ल] सत्त्वार्थे = तत्त्वम् १:१:१ एव + अर्थः १:१:१ = एषावस्थित [= सत्त्व] ही [= एव] वस्तु [= अर्थः] की सत्त्वार्थे १:१:१ सम्यग्दर्शनम् १:१:१ = सो सम्यग्दर्शन है—अथवा प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है ।
- [ग] तत्त्वार्थ (= तत्त्वम् १:१:१ एव + अर्थः १:१:१) = जो जिस प्रकार मवस्थित है [= तत्त्व] उस ही [= एव] वस्तु मद्धान १:१:१ सम्यग्दर्शनम् १:१:१ = (अर्थ) की उस ही प्रकार प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थवहित सर्वावसिद्धि द्वयिका भाषानुवाद ।

- तत्त्वशब्द १:१:१ भावसामान्यवधी १:१:१ = (इस सूत्रमें) तत्त्व शब्द (वाचके) भाव स्वरूप या धर्मका वाचक है कथम् । तद् इति सर्वनाम-पदम् १:१:१ । = (तत्त्व) कैसे (याव सामान्यवधी) है तद् ऐसा शब्द सर्वनाम पद है सर्वनाम १:१:१ च सामान्ये १:१:१ वर्तते । = और सर्वनाम सादृश्य प्रयोगकर्म [वाचकीको जतलानेवाले धर्म] में वर्तता है तस्य १:१:१ भाव १:१:१ सत्त्वम् १:१:१ ॥ तस्य १:१:१ कस्य १:१:१ । = तिस (सत्त्व) का भाव सो तस्य है ॥ वह (याव) किसका है ?

(२) श्रुतों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है । (२) वाचा—यह शब्द मन्कापाल्य वाचिद्-पुंल्लिङ्गका प्रथमा विभक्ति एक वचन है ए प्रथमा विभक्ति पुंल्लिङ्ग एक वचनका चिन्ह है इस ए को वाचिद् में जोड़नेसे वाचिद् + सू हुला ॥ अब पदान्तमें एक स्वञ्जसे अधिक हों तो पहिला स्वञ्जन सू जाता है और साम्यका जोष हो जाता है (भाष्यकारर मार्गोपदेशिका पृष्ठ २७) वाचिद् + सू, वाचिद् + त्रिष पुंल्लिङ्ग शब्दके अन्तमें इस हो तो ए का प्रथमा विभक्ति एक वचनमें और विभक्तियौके अर्थ अथ प्रत्ययोंके पहिले जो स्वञ्जवचने (प्रत्यय)

उक्तावाशिष्टप्रहरणार्थं शेषप्रहरणम् ॥ के पुनरुक्तावाशिष्टा ? कल्पवासिन ॥ स्पशश्च रूप च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषा ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥

(ऐशानानुदूर्ध्वं) शेषा (कल्पोपपत्नान्देवा) स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा (यथासत्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ऽ। ऊर्ध्वम् ऽ शेषा' । कल्पोपपत्ता ऽ। इवा ऽ।
= ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपत्त देव है
(अर्थात् तीसरे स्वर्गसे सोलहवाँ स्वर्ग तक के देव द्वांगनाबों के)
= स्पशे करनमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मत्तक विचारनेमें

स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि-
प्रविचाराः ऽ। वषाईस्वप्नम् ऽ॥। मवन्ति ऽ
पुनरुक्ता-उक्त-अवाशिष्ट-
प्रारण-अय ऽ॥। शेष-अक्षयम् ऽ॥। पुनर-उक्त-
अवाशिष्टा । के । कल्प-वासिनः ऽ।
स्पर्शः ऽ। च ऽ रूपः ॥। च शब्दः । च मनः ऽ॥।
स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि ऽ। तेषु ऽ॥।
प्रविचारः ऽ। येषा ऽ। ते ऽ। स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि-प्रविचाराः ।। = काम सेवने हैं स्पर्श-रूप-शब्द-मन प्रविचारा हैं

इस सबके विज्ञानसे दोनों सम्प्रदायों के अर्थ निकलता है कि मजगतासी बेवोधि ठेकर माहोत्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् कल्प प्राप्त और स्वयंन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आन्त कल्प, प्राक्त कल्प, आरंभ कल्प, अत्युत्तर कल्प इन्में भी काम सेवन एकसा है परन्तु बार कल्प मानने में ' इषोक्तयोः ' वाक्य लागू नहीं होता है ॥ एषा प्रकृत्यस्या प्रबोक्तकल्पका उक्तकल्पका, कापिपुत्रकल्पका सो दोनों आचार्यों में काम सेवन रूप बर्कित से होता है परन्तु कल्पोंमें प्रबोक्त कल्प और कापिपुत्रकल्पको नहीं माना है । इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्रकल्प, सातारकल्प, सहास्राकल्प इन्में अथवा प्राप्त काम सेवन होता है परन्तु उनके पहा शुक्रकल्प और सातारकल्प को नहीं माना है ॥ (१) - इन शब्दों को पृथिवी कल्प अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी मनुष्यत्व कर सकते हैं कि स्वर्गोच्छरि, रूप के बेलने से, कल्पके सुननेसे, मत्तके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

एतान्नामी अगुरुस्वराय क्लीस हृत षष्ठेद् और निमस्त्वर्थ सञ्चित स्तोत्रोत्सिद्धिका शब्दश्च विधी अत्रुवाद् अभ्यास ४ सूत्र ८

उक्तावशिष्टप्रहारणार्थं शेषप्रहरणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टा ? कल्पवासिन ॥ स्पार्शश्च रूप च शब्दश्च
मनश्च स्पार्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषां ते स्पार्शरूपशब्दमनःप्रविचारा* ॥

(पेशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नादेवा.) स्पार्शरूपशब्दमन प्रविचारा (यथासंख्यम् भवन्ति)

येथानात् ॥ उर्ध्वम् * शेषा । कल्पोपपन्नाः ॥ दशा ॥ = ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव है

(अर्थात् वीतरं स्वर्गसे तोल्लवर्षा स्वर्ग तक के दव देवांगनाओं के)

= स्पार्श करणमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें

= काम सेवनेवाले अलुक्रमसे हैं ॥

= (वीतरं नृत्सं) बड़े हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के

= आशानकल्पिये (इस मन्त्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है [प्रश्न] बहुविक्रियत (देवों) मेंसे

= शेष कौन हैं [उच्यते, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव श्रेय] हैं ॥

स्पार्शः ॥ च * रूपं ॥ च शब्दः ॥ च मनः ॥ ॥

स्पार्श-रूप-शब्द-मनांसि ॥ १ ॥ तेषु ॥ १ ॥

* प्रविचाराः ॥ येषां ॥ वे ॥ स्पार्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचाराः ॥ १ ॥ किन्तु वे स्पार्श-रूप-शब्द-मन प्रविचारा हैं

इस सबके निकालने में दोनों समग्रवायों के अर्थ सेवका स्वर्गशा यद् निष्कम्भा है कि मन्त्रवासी देवोंसे छेकर मातेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है जगत्प्रिय कल्प शाप और स्वर्गल द्वारा काम सेवन होता है ॥ आकाश कल्प, आकाश कल्प, आकाश कल्प, आकाश कल्प इतने भी काम सेवन एकसा है परन्तु धार कल्प मानने में ' प्रयोक्तव्योः ' वाक्य कागू नहीं होता है ॥ एता शब्दाकारका प्रयोक्तव्यका उचितकल्पका, काण्डिकल्पका सो दोनों भाषायों में काम सेवन रूप वर्तमान से होता है परन्तु शब्दोंने प्रयोक्तव्य का काम सेवन होता है परन्तु शब्दोंने प्रयोक्तव्य और स्तारकल्प को नहीं माना है ॥ इसी प्रकार शुककल्प, महाशुक कल्प, गायकल्प, सवकारकल्प इतने अल्प शाप काम सेवन होता है परन्तु शब्दोंने प्रयोक्तव्य और स्तारकल्प को नहीं माना है ॥ (१)— इन शब्दों को एतविया कल्प अथवा कल्प कारणों मानकरि इस प्रकार भी अनुयाय्य कर सकते हैं कि स्वर्गोच्छ्रित, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वस्ति हैं ॥

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सुत्रम्-

शेषा स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ॥८॥

-(पेशानादृषी) शेषाः (कृत्योपशेषाः वेवाः) सर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (अपारस्यम भवन्ति)

(१) शेषापर आत्मायके समाख्य० में तथा श्री सिद्धसेन छुरि रचित 'आध्यानुसारिकी तत्त्वाप टीका'में हमारे यहाँके पाठो "द्वयोर्द्वयो" नाक्य अधिक है । शेषपाठ हमारे यहाँके सूत्र पाठसे मिलता है । समाख्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "पेशानापुर्व्व शेषाः कृत्योपपन्ना वेवा प्रयोद्भवो कृत्ययोः सर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा मचस्थि यथाम्प्राप्यम्" - पेशानात् ऊर्ध्व शेषाः कृत्योपपन्ना वेवाः द्वयोर्द्वयोः कृत्ययोः स्वनी-रूप शब्द मन्-प्रवीचारा मपस्थि यथाम्प्राप्यम् - "अपर कते द्वये श्याम स्वगणे ऊपर शेष ओ कृत्योपपन्न येव है । य वो वो कृत्योके क्रमसे शपश, रूप, शब्द तथा मनसे मैयुन सेवन करते हैं" "द्वयोर्द्वयो" - "द्वयोर्द्वयो" - कृत्ययोः अर्थात् वो वो कृत्योर्नि । वामो आत्मायके एन सुत्रोके अर्थमेव मामम्भेमें स्मरण रहे कि शेषापर आत्मायके समाख्य० में इस कृत्य माने है जैसा कि पृष्ठ ९३ के "शेष आठ कृत्योके द्वयोर्नि से वो वो कृत्योकि येव यथासंख्य करके कृत्यसे शरीर रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करते हैं" सूत्रानुयाय से प्रगत है । परन्तु श्री निरुसेन छुरि रचित "आध्यानुसारिकी तत्त्वापटीका" में पाठ कृत्य माने है । "कृत्य समुदाय सधियेरा विमानाम्भपृथिवीप्रस्तारमभिमिश्रमेता प्राक्वाषा" "सुत्र ९० 'सौचर्मावि' पृष्ठ ३१५ ।" आरबाध्यायविकीषेव प्रापश कृत्याः तद् उपरिप्रविशेयमभिमिश्रयुपपित पथ मथा विमानानि इति" पृष्ठ-३१३३ ॥ इस भाष्य में वारिस्त सारस स्तोत्र से अधिक है शेषामर्थों में सबसे महत्व का भाग है । हमने इसके अनुस्तर यारह कृत्य नीचे के छेकमें मानकर अन्तर वेनी सत्यवायों का प्रगट किया है ॥ हमारे यहाँ सोमह कृत्य माने है ॥ बरि ओर विगलपर आत्माय का छेक है और दाहिने हाथ की ओर श्वेतावर आत्मायका -

सौचर्म कृत्य	चिदान कृत्य	वहाँ काय द्वारा काम सेवन है	सौचर्म कृत्य	संशय कला	यहाँ काय द्वारा काम सेवन है
सम्बुमारकृत्य	मोक्षेन्द्रकृत्य	वहाँ स्पर्शन द्वारा काम सेवन है	सम्बुमारकृत्य	मोक्षेन्द्र कृत्य	यहाँ स्पर्शन द्वारा काम सेवन है
शक्रकृत्य	शक्रोत्तरकृत्य	वहाँ रूपवर्णनद्वारा कामसेवन है	शक्रकृत्य	प्रकलोक कृत्य	
श्रीतकृत्य	श्रुतिश्रुतकृत्य		श्रीतकृत्य	साम्प्रदाय कृत्य	
शुककृत्य	महाशुक कृत्य	"शुक्लशब्दकृत्यद्वारा कामसेवन है	शुककृत्य	महाशुक कृत्य	वहाँ शब्दशब्दकृत्य द्वारा काम सेवन है
सत्तरकृत्य	सत्तरकृत्य		सत्तरकृत्य	सत्तरकृत्य	
शान्तरकृत्य	शान्तरकृत्य		शान्तरकृत्य	शान्तरकृत्य	
शारदाकृत्य	शारदाकृत्य		शारदाकृत्य	शारदाकृत्य	
शारदाकृत्य	शारदाकृत्य		शारदाकृत्य	शारदाकृत्य	

एतानिवासी अकारुण्यदाय बलील ह्युत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित स्मार्थसिद्धिका अर्थः। विही अनुवाद अध्याय ४ सूत्र ८

तक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टा ? कल्पवासिन ॥ स्पृशश्च रूप च शब्दश्च
मनश्च स्पृशरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषां ते स्पृशरूपशब्दमनःप्रविचाराः ॥

(प्रेक्षानादूर्ध्वं) शोषा (कल्पोपपन्नान्देवा) स्पृशरूपशब्दमनः प्रविचारा (यथासत्यम् भवन्ति)

प्रेक्षानादः १, ऊर्ध्वम् २, शोषा ३, कल्पोपपन्ना ४, देवा ५, = ईशान स्वर्गसे उत्तर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं

(अर्थात् तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)

= स्पृशे कर्तव्य, रूप देखनेसे, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें

= काम सेबनेवासे अनुक्रमसे हैं ॥

= (तीसरे चतुर्थमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष बचका बचे हुये (देवों) के

= आदानकालिये (इस ग्रन्थमें) शेष शब्दका ग्रहण है [प्रश्न] बहुरिक्तवित (देवी) मेंसे

= शेष कौन हैं [उच्यते, ऐशान स्वर्गसे उत्तर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥

= और स्पृश बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द शब्दसमासमें]

= स्पृश-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं । किन्तु [स्पृश-रूप-शब्द-मन] किन्

* प्रविचारः १, येषां २, ये ३, स्पृश-रूप-शब्द-मनसु-प्रविचाराः ४, = काम सेकन हैं स्पृश-रूप-शब्द-मनः प्रविचारा हैं

इस सबके निकटने से दोनों नामवाच्यों के साथ शेषका साक्षात् यह निकलता है कि मन्वासासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र बन्ध तक दोनों में एक है अर्थात् काम द्वारा और स्थान द्वारा काम सेकन होता है ॥ अन्ततः कल्पः प्राणत कल्प, अकार कल्प, अच्युत कल्प इन्में मी काम सेकन पक्यता है परन्तु चार कल्प मानने में ' इषोर्द्वयोः ' वाक्य समूह नहीं होता है ॥ रहा प्रेक्षान्तरका प्रयोगकरकल्पका अतिवक्तव्यका कारिणकल्पका सो दोनों नामवाच्यों में काम सेकन रूप वर्तन से होता है परन्तु एतद्विनि प्रतीचर कल्प और कारिणकल्पको नहीं माना है । इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्र-कल्प, शम्भरकल्प सहस्रारकल्प इन्में अक्षय द्वारा काम सेकन होता है परन्तु बतके यहाँ शुक्रकल्प और सत्तारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तुलनीया कारक अथवा कारण कारकमें मानकरि इस प्रकार मी मनुवाच्य कर सकते हैं कि स्पृशकरि, रूप के देखने के, शब्दके सुननेके, मनके विचारनेके, काम सेकने बाधे हैं ॥

प्रदानिवत्सी आरूपसहाय बहोत कृत परन्देय और विमरुत्सर्ष साहित सर्वाभिसिद्धिका सुखस्य हिंदी अनुवाद अध्याय ४ अष्ट ८

क्यमभिसम्बन्ध ? आर्षाविरोधेन । कुत पुन प्रवीचारग्रहणं ? इष्टसम्प्रत्ययार्थमिति ॥ कः पुनरिष्टोऽभिसम्बन्ध आर्षाविरोधी ? । सानत्कुमारमोहेन्द्रयोर्देवा देवान्नास्पर्शमात्रादेव परा प्रीतिमुपलभन्ते तथा देवोऽपि । ऋक्षन्क्षोचरान्त्रन्तवक्त्रापिष्ठेषु देवा दिव्याङ्गनाना

अर्थात् स्वर्गस्त्रनेमें रूप देखनेमें, सुख सुखनेमें और मनके विषारनेमें कामसेकनोबाले हैं = (एन देव और मैपुनके देवोंमें) कैसे अभिसम्बन्ध है अर्थात् प्रश्न यह है कि इन श्रेय शौचर स्वर्गके देवोंका स्वर्गप्रविषाट रूपप्रविषाट, सुखप्रविषाट, सुख्यप्रविषाट, मनाप्रविचारोंमें से किस किस प्रकार या भाँतिके प्रविचारसे सम्बन्ध है ॥

= (उपर) आगम अथवा धर्मशास्त्रकी विलुद्धता (=विरोध) से रहित (अभिसम्बन्ध) है

= (प्रश्न) क्यों फिर (जब पूर्व श्रमों प्रविचार सुख्य विषयमान है) प्रविचारका (इस सुखसे) मरण ॥॥ इष्ट-सुखत्वय-अर्थम् ॥ इति ॥

कि जब सातवां श्रमों प्रविचार सुख्य विषयमान है तब फिर इस श्रमों क्यों लाये हो उतरमें कहते हैं कि नाँछित अभिसम्बन्धके (जो शौचर स्वर्गके देवोंको किस किस भाँतिके प्रविचार है) प्रगट करने के लिये लाये हैं ।

= (प्रश्न) शुरुि क्या नाँछित अभिसम्बन्ध (कश्चिद देवों और उक्त प्रविचारोंमें) है आर्ष-विरोधी ? । सानत्कुमार-नाहेन्द्रयोः १, देवाः ॥ २ = (उपर) आगमसे अविरोधरूप (सम्बन्ध) है । (अर्थात्) सन्तुष्टमाट मोहेन्द्र स्वर्गमें देव देव-आत्ना-स्पर्श-यासात् ३ ॥ एव १ ॥ ३ ॥ प्रीतिम् ३ ॥ = देवियोंके स्वर्ग करने मालसे ही परम प्रीतिको उपलभन्ते १ तथा ३ देव्य ३ ॥ अपि ३ ॥ = प्राप्त होते हैं । तेसे वेधात्तना भी (परमप्रीति को प्राप्त होती है) ॥

प्रश्न-स्रोचर-लान्धन-काष्ठिष्ठ ३ ॥ देवाः ॥ दिव्य-आत्मानाम् ३ ॥ = कश्चिद [आठवां स्वर्ग] में, देव स्वर्गकी [= दिव्य] श्रियोंके अर्थात् देवियोंके

पटानिवासी जगत्साहाय बलीष्ठ इव प्रच्छेद्र और विमलस्यं सहित सर्वाथैशिक्षिका शब्दशः विंदी अनुवाद अर्थाय ४ वृत्त ८

शुद्धाराकारविलासचतुरमनोज्ञैरुपावलोकनमात्रादेव परमसुखमानुवन्ति । शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारोपु
देवा देववनितानां मधुरसङ्गीतमृदुहासितललितकाथितमृण्णरवश्रवणमात्रादेव परा प्रीतिमास्कन्दन्ति । मानतप्रण-
तारणाच्युतवत्स्येषु देवाः स्वाङ्गनामन.सङ्क्षयमात्रादेव परं सुखमानुवन्ति ॥

अथोत्तरेया विप्रकार सुखमित्युक्ते तानिश्चयार्थमाह—

शुभ्रार आकार-विलास-चतुर-मनो-ज्ञ-वै-र-रूप-

अवतोरुन-मात्रात् ॥॥ एवञ्च पर्य-सुखम् ॥॥ आनुवन्ति ॥॥

शुक्र-महाशुक्र-सुवार
सहस्राण्यु, ॥॥ देवाः; देव-वनिवानाम् ॥॥ मधुर
संगीत-मृदु

इति-स-लिल-कथित-मृण-स-

भण-मात्रात् ॥॥ एवञ्च परां; प्रादि, ॥ आस्कन्दन्ति ॥॥

मानस-मणल-आण-अच्युत

कल्पेयुः देवा ; स्व-आना-

मन-सहस्र-मात्रात् ॥॥ एवञ्च परं; सुखम् ; ॥॥

आनुवन्ति मय-उपरोपाम् ॥॥

स्मिञ्च प्रकारं; सुखम् ; इति-उक्तेः सत्

नियम-अर्थम्; आह ॥

= शुभ्रार, आकार, इयं (विलास) चतुर, सुंदर (मनो-ज्ञ) वै-र और रूपके
अवतोरुन-मात्रात् ॥॥ एवञ्च पर्य-सुखम् ॥॥ आनुवन्ति ॥॥

=शुक्र (मनसां स्वर्ग) महाशुक्र (दशवां स्वर्ग) सुवार (गवारहवां स्वर्ग)
=सहस्रवार (चारहवां स्वर्ग) में देव और वैश्विके प्रिय (मधुर)

=नाषना-गाना-मना (संगीत) अथवा गान (संगीत) क्रोमल (=मृदु)
=हास्य, मनोहर (ललित) योलना (=कथित) और माधुर्य के सम्य (=स)

=केवल (न्याय) सुननेसे ही अतिशय प्रीतिके प्राप्त होते हैं ॥
=आन्त (चेरहवां) प्राण (चौबहवां) आण (पंद्रहवां) और अच्युत (सोलहवां)

=स्वर्गमें (=कल्पेयु) देव अपनी २ (=स्व) सुंदरियोंकी (व्यङ्गना) मर्याद देवियोंका
=मनमें विचार अथवा स्थितन मात्रसे ही उत्कर्ष सुखको

=पाते हैं । अप अग्रिम (अहमिन्द्र अथवा कल्याणित देव) निके
=सुख हीन प्रकार है यैसा पूंजने पर उस (सुख) के

=निर्वाणके लिये (आचार्य उत्तर प्रश्नों) कहते हैं कि

(1) परम् (अप्यं) = केवल जनसत्तर ॥ परम् (सिं०) = उच्छ्रय, प्रयाण, ब्रह्मा, पहिजा ॥ परम् (अप्यं) = हां, स्वोकार, अनुवा ॥

पर = हा मय सखे अच्छे का मी है । (देखो परव प्रीति आस्कन्ति पृ० २१९ पृष्ठि०)

(२) 'कल्प' यह शब्द 'समाशतकार्याणिमसुखम्' में निम वाक्यमें 'पुष्टिगर्नं भाया है । सौचर्मस्य कल्पस्योपदेयानः कल्प । सा (मसमा)
वसिष्ठस्येति सौचर्मः कल्प । सर्वकल्पाः (देखो पृष्ठ १०१ चौथा अध्याय सूत्र १० का)

। परेऽप्रवीचारा ॥९॥

परब्रह्मणमितराशेषसद्दार्थम् । अप्रवीचारब्रह्मणं परमसुखप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ प्रवीचारो हि वेदनाप्रतिकार । तद भावे तेषा परमसुखमनवरतं भवति ॥ उक्त्वा ये आदिनिकायदेवा-

सूत्रम्-
 सूत्रार्थ-कृत्य-उपपत्त्यर्थम् ; परे , देवा , = स्वर्ग में उत्पन्न होनेवाले देवोंसे परे वा अन्य अवशेष देव अर्थात् कृत्याधीत देव वाप्राप्तिसुत्र
 अप्रविचाराः! = काम सेवन सेरहित है ।

वृत्त्यर्थ-पर-ब्रह्मणम् ; ॥ इतर अशेष-
 ईश्वर-अर्थम् ; ॥ अप्रविचार-ब्रह्मणम् ; ॥ परम- =संग्रह के लिये है । अप्रविचारका ग्रन्थ उत्कर्म
 सुख-प्रतिपत्ति-अर्थम् ; ॥ प्रविचारः ; ॥ हि वेदना=सुख के वनाकने के लिये है काम सेवन ही (=हि) (मैयुन) वेदना वा पीडाका
 प्रतिकार । उद्-अभावो ; = उपाय वा चिकित्सा (प्रतिकार = प्रतीकार) है तिस (मैयुनरूपी वेदना) के न होने पर
 वेद्याम् । परम-सुखं ; ॥ अनन्तरत्वं ; ॥ भवति ऽ = तिन (कृत्याधीत देवों) के उत्कृष्ट (= परम) निरंतर वा लगातार (= अनन्तर) सुख होता है
 उक्त्वा । ये ऽ आदि-निकाया-देवाः ; = कहे थे प्रथम समुदाय के देव (अर्थात् मननवासी)

(१) इस सूत्र का पाठ बौद्धो सम्प्रदायों में एक है सामान्य रूप से अर्थ जो एक है क्योंकि श्लेषास्वर सम्प्रदाय में "भवमनुसितम्" नहीं माने है जब जो विमानों की संख्या जो सोलहवां स्वर्ग से ऊपर है बौद्धो भाषाकारोंमें ३२३ (तीन सौ तेईस) ऐसे हैं कि और प्रवेपकीके अपोभागमें एक सौ ब्याह (१११) विमान हैं । मध्य भाग में एकसौ सात (१०७) और ऊपर केवल दश (१००) विमान हैं । और अनुसारावेदिक केवल पक्ष है सनाध्यो युद्ध १०९ । तीन अर्धप्रवेपक विने एकसौ ग्याह विमान हैं । और तीन मध्यम प्रवेपक विने एकसौ ग्याह विमान हैं । और तीस ऊर्ध्व प्रवेपकवि विने दशग्याह विमान हैं बहुरि षड् अनुसिता विने ग्यह विमान हैं और अनुसतर विने पाँच विमान हैं अर्थ प्रकाशिका सूत्र १९ पृष्ठ ६१४ अंता, ३६३ इत्थे (२) यं उपपत्त्य पदवीकी वर्णनिकारमें इस वाक्यसे कि 'यहां पर शान्द का ग्रहण अवशेष रहे से अस्तिपुत्र तिन के ग्रहण के अर्थि है । ज्ञान पकटा है कि किस संस्कृत शक्ति से उक्तों ने वक्तविका की है उक्तमें येसा पाठ होगा कि 'परमप्रतिपत्तयवशेऽनुसतराद्यर्थे' अर्थात् अशेष शान्द के स्थान में अवशेष शान्द होगा । परन्तु म्बासुख ही की अर्थिकशिकाके इस वाक्यसे कि यहाँ 'पर' शब्दके कहेने करि कृत्याधीत समस्त देवविक्रम सेपथ गया ज्ञान पकटा है कि जिस प्रति से उक्तों ने माव किया है उक्तमें 'अशेष' शान्द था जैसन कि कसए पाठ है । बौद्धों पक्षमेंका पक्षकी आशय है । इत्यधिकृत एक प्रतिमें एकको 'अशेष' शान्द लिखा है ।

दशविकल्पा इति तेषा सामान्यविशेषसञ्ज्ञाविज्ञापनार्थमिदमुच्यते—

भवनवासिनोऽसुरनागविधुत्सुपर्णाग्निवातस्तानितोदधिद्वीपदिवकुमाराः।१०।

भवनेषु वसन्तीत्येवशीला भवनवासिनः । आदिनिकायस्येयम्

दश-विकल्पः । इति * वेदां १, सामान्य-विशेष-

सञ्ज्ञा-विज्ञापन-अर्थम् । अ, इत्यम् । अ, उच्यते ।

=वृक्ष मेरुरूप तिन (भवनवासी वेदों) के सामान्य और विशेष

=शब्दार्थोंके अन्वयार्थके लिये यह (अभिप्रेत्यर्थम्) कहा जाय है कि

सूत्रम्—

भवनवासिनोऽसुरनागविधुत्सुपर्णाग्निवातस्तानितोदधिद्वीपदिवकुमाराः ॥१०॥

= भवनवासिन असुरकुमारा नागकुमारा विपुत्कुमारा सुपर्णकुमारा अग्नि-
कुमारा वातकुमारा स्तानितकुमारा उदधिकुमारा द्वीपकुमाराः दिक्कु-
मारा च दशविकल्पा भवन्ति ॥

व्यर्थः— भवनवासिनः । असुरकुमारा । नागकुमारा । अश्वत्थवासी वेद, असुरकुमारा, नागकुमारा,

विपुत्कुमारा । सुपर्णकुमारा । अग्निकुमाराः ।

वातकुमाराः । स्तानितकुमाराः । उदधिकुमाराः ।

द्वीपकुमाराः । दिक्कुमाराः । च * वृक्ष-विकल्पाः । भवन्ति=द्वीपकुमारा, और (=च) दिक्कुमारा, दशवेदरूप है

इष्टानुवादः—भवन्ते । वसन्ति । इति * एवं श्रीलाः । =भवनार्थे भवते है ऐसे स्वभाव वाले (=श्रीलाः)

भवनवासिनः । आदिनिकायस्य । इत्यम् ।

(१) शैलो सम्प्रदायो में इस सूत्र का अर्थ और पाठ एक है । हमारे यहाँ यह पद्यना सूत्र इदमन्तरक आम्नाय में यह व्याख्या मिल है ।

(२) इस स्मासमें कितने पद्य जोड़े जायें अथवा एक के बाद एक आया जान अथवा प्रत्येक पद्य के साथ मिलने पर जोड़े जायें उनमें ही प्रकार समझ लिये जायें इसलिये उत्तरके पद्यवेदोंके अर्थोंन इस प्रकार दया चकार दिति कि असुरकुमाराः च, नागकुमाराः च, विधुत्कुमाराः च, सुपर्णकुमाराः च, अग्निकुमाराः च, वातकुमाराः च, स्तानितकुमाराः च, उदधिकुमाराः च, द्वीपकुमाराः च, दिक्कुमाराः च, इत्यम् । असुरनागविधुत्सुपर्णाग्निवातस्तानितोदधिद्वीपदिवकुमाराः इति पद्य आदिप पद्य आदिप पद्य आदिप एक चकार छेकर अन्तरका अनुवाद किया है ।

पदात्मिकासी वाग्वस्त्वस्यै कृत म्पच्छेद्यं कौर विमस्त्वर्मं संहित स्वार्थोसिद्धिका दम्बकाः हिल्वी अशुषाद बन्धाप ४ स्त्र १०

सामान्यसञ्ज्ञा । असुरादयो विशेषसञ्ज्ञा विशिष्टनामकर्मोदयापापादितवृत्तयः । सर्वेषां देवानामवस्थितवयः स्वभावत्वेऽपि वेपथूषायुधानवाहनक्रीडनादिकुमारवेदयामामान्त इति भवनवासिपु कुमारव्यपदेशो रुढः । स प्रत्येकं परिसमाप्यते असुरकुमारा इत्येवमादि ॥ कृतेषां भवनार्नाति चेद्व्यत्ये-रब्रप्रभाया पङ्कचद्रुलभागोऽसुर

सामान्य-सञ्ज्ञा १; असुर-आरयः १;

विशेष-सञ्ज्ञा १; विशिष्ट-नामकर्म-उदय-भापादित-

वृत्तयः १; सर्वेषाम् १; देवानाम् १;

अवस्थितवयः १;

समाप्ते १; अपि १; वेप-थूषा-आयुष-

दान-वाहन-

क्रीडन-आदि-कुमार-व्य-उदय-भापादिते १ इति चरिहास वा कौमुद आदिक कुमारके उदय इत (स्वन्वासी वेवो)के श्रोत्रे हे अर्थात् यद्यपि समस्त यजनवासी वेवोकि नन्य समस्ये मलय र्कन्त एकमी दद्या अथवा अस्त्वा रहती है । पाल, योक्त, अरा नादिक अवस्था फलट्टी नहीं है तो भी उनकी कुमार सञ्ज्ञा पूर्वोक्त निमित्तसे नहीं है बरन इस कारणसे है कि वे वेप, आयुष, वान, वाहन, क्रीडनकरि कुमारके समान प्रकृति हैं ।

अनन्यासिपु १; कुमार-व्यपदेशः १; स्वरः १;

असुर-कुमाराः १; इति १; एकम् १; आदि १; ॥

१ ॥ अत्येकं १ परिसमाप्यते १

१ ॥ वेपथू १; यानानि १; ॥ इति १; वेद १; ठञ्ज्ये १ ॥ इति १; अदिक (पूर्वोक्त वृत्त सञ्ज्ञा) है ।

सामान्याया १; पङ्कचद्रुल-भागो १; असुर-

(१) यद्य एवम् यूप पाठु विलस्य अर्थ सञ्ज्ञा है वा कारणसे अर्थात् सुप्त-वा - यूप (श्रीकिर्ति) देवता है किसका अर्थ यूप, वा मूल, सञ्ज्ञा, अथवा, अथवा, आसत्त्व है । ऐवो एवमथवा यूप वृत्त २५५

पटाभिवासी शगल्पसहाय ककील कृष्ण पदच्छेद और निमक्तस्य सहित सर्वावसिद्धिका छन्दःछाः हिरी अत्रुषाद अच्यवा ४ स्त १०
कुमारानां भवनानि । खरशुचिर्वाभारो उपर्यधश्च एकैक्योजनसहस्रं वर्जयित्वा शोपनवानां कुमारानामावासा ॥

द्वितीयनिकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञावधारणार्थमाह—

कुमारानाम् । भवनानि, ॥ खर-शुचिर्वाभारोः । कुमारोंके भवन हैं (रत्नप्रसाके तीन मागोंसे उत्पन्नके) खर शुचिर्वा मागमें
उपरिः अपरम् च एक-एक-योजनसहस्रं; वर्जयित्वा । उत्तर और नीचे एक एक सहस्र योजन छोड़कर
=अधोप (मागमें) नो (नाग, विपुल, सुपर्ण, अग्नि, पाठ, स्वानित, उदधि, शीप, विष्) ।
=कुमारोंके निवास स्थान हैं अर्थात् रत्नप्रसा नामकी शुचिर्वा एक लाख अस्सी
सहस्र योजनकी मोटी है । उसके तीन विभाग हैं, उन तीन मागोंमें से उत्तरका खरभाग १९०००
योजन मोटा है । उसमें धिया, स्ना, वैश्वर्य इत्यादि एक एक सहस्र योजनकी मोटी १९ शुचिर्वा है ॥
इनमेंसे उत्तर और नीचे की एक एक सहस्र योजनकी दो शुचिर्वा छोड़कर बीचकी चौबह सहस्र योजन
मोटी और एक लाख उन्नी चौथी शुचिर्वा नागकुमार, विपुलकुमार, सुपर्णकुमार अग्निकुमार बालकुमार,
स्वानितकुमार, उदधिकुमार, शीपकुमार, विष्कुमार, इन नव प्रकारके भवनवासी देवोंके निवास स्थान
है ॥ इस खर भागके नीचे दूसरा पञ्चकुल भाग है जो चौरासी सहस्र योजन मोटा है । उसमें
असुरकुमार रहते हैं और एक भागके नीचे अस्सी सहस्र या ८००००×२०००=१६००००००
सोवह करोड़ क्षेत्र मोटा अच्यकुल भाग है उसमें प्रथम नरक है ।

द्वितीय-निकायस्य । सामान्य-विशेष सञ्ज्ञा-

अवधारण-अर्थम् ॥ आह ।

=दूसरे समुदायके सामान्य और विशेष संज्ञाओंके

=निर्णय करने के लिये (आधार्य उपर धारमें) करते हैं कि

(१) बर्जयित्वा संतर्पयन्नस्यैक मूल इत्यत्र है ।

आवास ॥ राक्षसानां पङ्कदुलभागे ॥ तृतीयस्य निकायस्य सामान्यविशेषतश्चासकीतनार्थमाह-
॥ ज्योतिष्काःसूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

आवासा ॥ राक्षसानाम् । पङ्कदुलभागे २ ।
= निवासस्थानम् । राक्षसोक्ति (निवासस्थान) पङ्कदुलभागेर्मे ।
तृतीयस्य ॥ निकायस्य ॥ सामान्य-
= तीसरे निक्कायके (वैशेषिकी) सामान्य और
विशेष-सञ्ज्ञा-संकीर्ण-अर्थम् । आह ॥
= विशेष संज्ञाक कल्पनेके लिये (आचार्य उच्यते सूत्रमें) कबते हैं कि

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

= ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाः च (पंचविड्या मवन्ति

(१) एतु अथवा सूर्ये यह पाप्य नामोक्ति नुसूर है क्योंकि संस्कृतके व्याकरणके परिचित्वात्तमें यहिके स्वर आवे २ अथवा इ पीछेवे आवे और एकात् पूर्वोपसर्ग को उदाहर आने का यह हीक्षण एकानुसार स्थिर होताक है अपेक्ष्य चारो दो इत स्थानका वक्ष्य करार चाहा न करी अत आक वा अर्धकर्मके वा परमे, परमे वा परमै, कर्म वा कर्मै, मद्रमा वा मद्रुमा अग्रुतेवे वा अग्रुतेवे इती प्रकार पूर्व या सूर्ये वीणाती टीक है (२) इत्युच्यते वा यत इत्येते यहाँ की बहुधा प्रुक्तार्थि "सूर्याचन्द्रमसौ" हैं कहीं कहीं पर "सूर्याचन्द्रमसौ" सी है ऊपरकी लिखीये यह प्रागट है कि यहाँ प्रागट टीक है शेष पाठ इमार यहाँ सर्वत्र एकसा है । अब प्रश्न यह है कि पूर्व और चन्द्रमा बार्णाश्रयोका समास 'सूर्याचन्द्रमसौ' क्या नहीं हुआ 'सूर्याचन्द्रमसौ' के उच्यते, यहाँ पर सूर्याचन्द्रमसौ वा २२ शेषका प्रकृतमात्र है अर्थात् शेषका जोके नाजोके शब्दसमास बनाये में पाँछे अक्षरपरके अक्षरको 'आवृत्' (अक्ष २) आवे २ हा । जैसे इन्द्रावरुणौ, इन्द्रो नोमौ, मित्रावरुणौ, इन्द्रावरुणौ, अतः सूर्याचन्द्रमसौ हुआ, अष्टाश्विनौ अथवा ३ पात्र ३ सुत्र २५, २६ देखो ।

(३) इत्युच्यते सामान्यतः समासपरकारणियसमुच्चय इमारें यहाँक "सूर्याचन्द्रमसौ" वाक्यक स्थानमें 'सूर्याचन्द्रमसौ' वाक्य है अपेक्ष्य सूर्या (बहुवचने अधिक सूत्रे) चन्द्रमसः । (बहुवचन वा दो स अधिक चन्द्रमसुभार यहा अर्थ सुषाचन्द्रमसौ वाक्यनञ्च = एक सूत्र और एक चन्द्रमस क्रिया है परन्तु समासपरक सूर्याचन्द्रमसौ वाक्य का अर्थ = बहुवचन बहुन चन्द्रमसु क्रिया है समास २० में सूरे चन्द्रमाका समासम न कल्पना धेतु ऐसाई कि एत सुत्रमें समास न कल्पना और आरंभमात्रस सूत्रे तथा चन्द्रमा का समास कल्पनेका काल यह है कि जिससे यह सूचित होजाय कि इसकी तथा काम करने स्थिति है अर्थात् आरंभमसु सूत्रे पठित है । और सूरे पठाने यह यहाँ पर इस नहीं है । यहाँ पर सूत्रकी ही प्रथम कल्पना है क्योंकि यत के अर्थानुसार ऊपर एत सूत्रोके स्थिति नहीं है किन्तु इनकी एकक प्रकृत इन्द्राश्री ऊपर ऊपर दियति है । जैसे सूर्याके शेष प्रथम सूत्रे है । चन्द्रमसोके अक्षर मद्रु है, एकक ऊपर मद्रु है । और मद्रुबार्धक अक्षर वहीर्धक शोरक है । और शोरक मद्रु का अक्षरियय। यारी कर्षात्

॥ व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

विषयदेशान्तराणि येषां निवासस्ते व्यन्तरा इत्यन्वयो सामान्यसंज्ञमशानामपि विकल्पानाम् ॥ तेषां व्यन्तराणामष्टौ विकल्पाः किन्नरादयो वेदितव्या नामकर्मोदयविशेषोपादिता ॥ क पुनस्तेषामावासा इति चेदुच्यते—अस्माज्जम्बूद्वीपादसंख्येयान्द्वीपसमुद्रानतीत्य उपरिष्टे खरशुथिवीभागे सप्तानां व्यन्तराणाम्

सूत्रम्— व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

व्यन्तरा किन्नर किम्पुरुष महोरग गन्धर्व यक्ष राक्षस भूत पिशाचा (अष्ट विकल्पा) भवन्ति

सूत्रम्— व्यन्तरा, किन्नर-किम्पुरुष-महोरग

गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः ॥ अष्टः ॥ विकल्पाः ॥ भवन्ति—ान्वर्थे, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आठ प्रकारके हैं ।

समुद्रान्—विविध-वेद-अन्तराणि ॥ येषाम् ॥

निवासाः ॥ वेः ॥ व्यन्तराः ॥ इति ॥

भन्वापां ॥ सामान्य-संज्ञा ॥ इयम् ॥ अथवा यथा नाम तथा गुणरूप सामान्य संज्ञा यह आठों ही

विकल्पानाम् ॥ वेर्णां ॥ व्यन्तराणां ॥ अष्टौ ॥

विकल्पाः ॥ किन्नर-भादयः ॥

विशेष-संज्ञा ॥ येषु-विशेषाः ॥ नाम-कर्म-

उदय-विशेष-आपादितः ॥ कर्म-पुनः-वेर्णां ॥ आवासाः ॥

इति ॥ वेद-उच्यते ॥ अस्मात्, जम्बूद्वीपात् ॥

भूतसंख्येयान् ॥ द्वीप-समुद्रान् ॥ अतीत्य-

उपरिष्ठे खर-शुथिवीभागे, सप्तानाम् ॥ व्यन्तराणाम् ॥

(अर्थात् किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत, पिशाचोंके)

(१) एष सुब्रह्मा पाठ लोट् अर्थे अनेकार्थक तथा विगमर आगनायोनि एकसा है ॥ सप्तानाम् अर्थात् अष्टानाम् इति सूत्रको बाह्योपनिषत्तिका है ॥

किं कृतं पुन प्राधान्य ! प्रभावात्कृतम् ॥ क पुनस्तेषामात्रामाः ? इत्यत्रान्यते अस्मात्समानश्रुमि
भागादूर्ध्वं सभयोजनशतानि नवत्युत्तराणि ७९० उत्पत्य सर्वज्योतिषामत्रोभागाविन्यस्तास्तारकाश्चरन्ति । तेषां
दशभयोजनान्युत्पत्य सूर्याश्चरन्ति । ततोऽर्शातियोजनान्युत्पत्य चन्द्रमसो भ्रमन्ति । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य
नक्षत्राणि । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य बुधा । ततस्त्रीणि

उसी प्रकार इन पाँचों भेदोंके मिलाकर इसप्रकार छत्र कल्पते कि “ सूर्य-चन्द्रम-माह-नक्षत्र-प्रकीर्ण-कक्षारकाश्च” सो
पेसा छत्र न करके “सूर्यचन्द्रमसौ” इन दो क्षयोंकी प्रथमा विभक्ति दो वचन न्यायीकी और शेष छत्र “ प्रह-नक्षत्र
प्रकीर्णकक्षारकाश्च” इन तीन क्षयोंकी न्यायी विभक्तिकी सो ऐसा क्यों किया । उतरमें कहेते हैं कि सूर्य और चन्द्रकी
शेष तीन प्रकारके ज्योतिषी देवोंपर प्रधानता (व्याधा-प)अतानेके लिये सूर्य-चन्द्रमाकी विभक्ति अथवा कारण
यारा किया और शेष तीन श्रा नक्षत्र प्रकीर्णक तारका का न्यारा कारण किया ॥

कि, ॥ कृतम्, ॥ पुनः० प्राधान्यम्, ॥
ममाह-आदि-कृतम्, ॥ । कः० पुनः० तेषाम्, ॥
आधासा, । इति० । अत्र० उच्यते, ॥
अस्मात्, ॥ समान-श्रुमि-भागात्, ॥ ऊर्ध्वम्०
सप्त-योजन-दुर्वाणि, ॥ नवति-उत्तराणि, ॥ उत्पत्य
सर्व-ज्योतिषाम्, ॥ अपसु० भाग-विन्यस्ताः, ॥
तारका, । परन्ति तदा० दशभयोजनानि, ॥
उत्पत्य० सूर्याः, । परन्ति-तदा० अर्शाति योजनानि, ॥
उत्पत्य० चन्द्रमसः, । भ्रमन्ति० तदा० चत्वारि, ॥
योजनानि, ॥ उत्पत्य० नक्षत्राणि, ॥ तदा० चत्वारि, ॥
योजनानि, ॥ उत्पत्य० बुधाः, । तदा० त्रीणि, ॥

=(प्रश्न) बहुरि क्य प्रधानपना वा थ्युला (इन सूर्य चन्द्रकी अन्य ज्योतिषियोंपर) हे
=(उत्तर) प्रताप आदिक करि (प्रधानपना) किया है । (प्रश्न) बहुरि विनिके कहां
=निवास स्थान है (उत्तर) यहाँ कहा जाय है कि
=रत (मध्यलोकके) समान श्रुमिमागसे अर्थात् चित्राश्रुमिसे ऊपरकी ओर (=ऊर्ध्वम्)
=माह सौ योजन नम्बे अधिक ७९० ऊचा (=उत्पत्य)
=सप्त ज्योतिषियोंके नीचे भागमें फैले हुये (=विन्यस्त)
=वारे विचरते हैं वहाँसे अर्थात् तिन तारकाओंसे दशभोजन
=ऊपर सूर्य भ्रमण करते हैं । वहाँसे अस्तीयोजन
=ऊपर चन्द्रमा विचरे हैं । वहाँसे चार
=योजन ऊपर नक्षत्र (२८) हैं । वहाँसे चार
=योजन ऊचे बुध हैं । वहाँसे तीन

ज्योतिस्त्रभावत्वादेया पञ्चानामपि ज्योतिष्का इति सामान्यमञ्जा अन्वया ॥ सूर्यादयस्तद्विशेषसञ्ज्ञा नामकमोदयप्रत्यया ॥ सूर्याचन्द्रमसाविति पृथग्रहण प्राधान्यरूप्यापनार्यम् ॥

- सूर्य—ज्योतिष्का; सूर्य-चन्द्रमसौ; ग्रह-नक्षत्र एक
- प्रकीलच्छाका; पञ्च; कित्या; मरिठ
- गुणय—ज्योति-स्वभावत्वात्, ॥ एया; सम्भानयम् ॥
- मरिठ ज्योतिष्का; इति सामान्य-सञ्ज्ञा ॥ अन्वया, ॥
- सूर्य-आदयः;
- सर्व-विशय-संज्ञा; नाम-कर्म-उद्-भ-अत्यया; ।
- सूर्या-चन्द्रमसौ; इति पृथक् प्रारण; ॥
- प्राधान्य-स्थापन-पर्ययम्, ॥

अर्थात् प्रश्न यह है कि जैसे सूर्य चन्द्रकी सुस्पष्टता वा शृष्टता (ग्रह नक्षत्र शारकोपर) स्थापनेके लिये है विमर्कियुक्तन दे दी और ज्यन्तरोके आठ मेव मिलाकर अन्तमें प्रथमा विमर्कियुक्तन देदी ।

विमर्की गति निरुक्त नहीं देव होनेसे सूर्य तथा चन्द्रमाके ऊपर तथा नीचे मी प्रलय करते हैं और सूर्यसे वृष योजन आबलम्ब होते हैं अर्थात् सूर्यसे वृष योजन हुए रहते हैं ॥ () समाप्तत्वापर्यायिगमसुक्त में हमारे यहाँके प्रकीलक शब्दके स्थानमें 'प्रकील' शब्द है । होण्याठ एक है दोनों मन्त्रशोभितके लगनमा एक सा है ।

(प्रवेतान्तर आशयके 'मन्माप्यतत्पार्यायिगम सूर्य' का जठ इवेताम्बर ममाङ्के 'नपानुमारिणी ल गार्थीका'—सिद्धयेव्युरि रचितका पाठ ज्योतिष्का; सूर्याचन्द्रमसौ प्राहणसत्रप्रकीलच्छाका ॥१॥)

(१) इस पञ्चविशय्य शब्दका तीसरे सूत्रसे इस सूत्रमें किया है () (नक्षत्र) चन्द्रमसू शब्द सूत्रमें क्यों आये? जब पुरिहितमें ही चन्द्रमसू उसी अर्थमें आया शब्द है । अथवा एव, विजु मन्त्र, लोम, लोमो इन छाने शब्दोंसे कोशाय्य आते । अमरकोश ३ वर्ग ११ श्लोक (चण्डोचन्द्र मीरु शण्डोसि मसिन्धे इ पण्डु चन्द्रमा सप्त से प्रसिद्ध है चण्डे तत् चन्द्रमा कल्पते है इमसे सूत्रमें चन्द्रमसू शब्द आये है ॥

एतानिपत्तीं ब्राह्मणस्यैव प्रकीर्तितं इत्थं पश्येत् और विमलस्यैव सतिष्ठ सर्वोपसिद्धिका अन्वेष्यः तिस्रीं तदुत्तरं अभ्यास ४ एव १२
 दस सीदी चतुर्दशगतिपत्रकम् तारारविससिरिख्वा बुहभगवगुरुअगिरारसणी ॥१॥

ज्योतिष्काणां गतिविशेषप्रतिपथ्यार्थमाह—

दश, ॥ सीदी, ॥ चतुर्दश-विचचउक ॥ ॥ } =दशयोजन त्रस्त्रीयोजन-चारयोजन दो बार अर्थात् चारयोजन चारयोजन
 (दश; ॥ अष्टीति; ॥ चतुर्दश-अपचतुःश्रु; ॥ ॥) } तीनयोजन चारवार अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन,
 तारा-रवि-सि-रिख्वा, (तारा-रवि-दा-उ-रिस्ता; ॥) } =बार, मान, चन्द्रमा, नक्षत्र (अठार्षिस)
 दश-भगव-गुरु-अगिरार-सखी; } =बुद्ध-शुक्र-शुक्र-शुक्र-भाल (और) अनेश्वर (यथासस्य सम भूमिसे विषय) है
 बुद्ध-भार्गव-गुरु-अगारका-द्वयतप; ॥ } भावाथ सम भूमि वित्रा पश्चिमीसे साखी नव्ये योजन ऊंचे वारे हैं । तिन वारों से

दश योजन ऊपर वृष्ये हैं । तिन से ८० योजन ऊपर चन्द्रमा हैं । तिनसे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं ।
 तिनसे चारयोजन ऊपर बुद्ध हैं । तिनसे तीनयोजन उर्ध्वं शुक्र हैं । तिनसे तीनयोजन ऊपर शुक्रस्पति है ।
 तिनसे तीनयोजन ऊंचे भगल हैं और भगलसे तीनयोजन ऊपर अग्निश्वर हैं ।

[ज्योतिष्काणां; विशेष-प्रतिपथि-अर्थ; ॥ आह] = योतिषीं पूर्वार्क गमन विस्पृक ज्ञानक लिय (उचर उग्रमें) करते हैं कि

क पूज्यपात्र स्वामीक मन्त्र चन्द्रमास चारत्याजन ऊपर पश्यत ई और नक्षत्रोत्त चारवामन ऊपर बुद्ध (शुक्र) है परन्तु तस्यापराधनातिक्रम
 रक्षयिता भां सखीक स्वामी तथा स्यात्प्रातिक्रम रक्षयिता आम्बु विधानदि स्वामीक मन्त्र चन्द्रमास तीन या ज्ञान ऊपर नक्षत्र ई और नक्षत्रोत्त
 तीन भां योजनपर बुद्ध ई इन आचार्योंक मन्त्रानुसार बुद्धसात द्वादश चारत्याजनका उंचापर मयक ई और मगलस वार या ज्ञानकी उंचापर
 उनेष्टर नामक; भगवतपत्रक मन्त्रके मन्त्रानुसार उंचापर (१) उ-मतिक्रम समस्तयुक्तक मन्त्रानुसार उंचापर (२) तथा कम्बानुसार ५०० योजनके
 ऊपर ऊपर ज्ञानम सहस्रत है (३) इस शतमें भां सद्यत ई कि श्वातिक परक पक्षों त्रयोजन उंचापर गमनमें केंद्र रहा है । कथक मन्त्रोत्तर
 तथा है कि एकके मन्त्रमें नक्षत्र और बुद्ध चार वार वांजल ऊंचे ई और मयक अग्निश्वर तीन तीन या ज्ञान ऊंचे ई अथवा आचार्योंक मन्त्रम मगल
 अग्निश्वर ज्येक गण चार चार या ज्ञान ऊंचे ई और नक्षत्र, बुद्ध (२ व) तीन तीन या ज्ञान ऊपर ई ॥ स्वामीक आत्म्याक समाप्य ० में तथा भाष्य-
 नुसारिणी उचरार्थकी (की सिद्धकेमवृत्ति देखित) में एता आठव रिया है कि समान भूमिमागत अठारों (८००) या ज्ञानपर सूर्य है, सूर्यसे
 अस्ती (८०) या ज्ञानपर चन्द्रमा ई और कम्बानुसार बास (२०) या ज्ञानपर वायु ई इदंतापर आत्म्याक समाप्य उचरार्थकीमन सुषुप्तक गुरु १००
 तथा सम एक भूमि ज्ञानपर ऊपर साठारों (५००) या ज्ञान ऊपरक मन्त्रे (२५०) या ज्ञान, अग्रम श्वातिक विमलका प्रकार है

योजनान्युत्पत्त्य शुक्ता । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्त्य वृहस्पत्यः । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्त्यागारका । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्त्य शनैश्चराश्चरान्ति । स एष ज्योतिर्गणगोचरो नभोऽधकाशो दशोधिक्योजनशतवहल-स्तियगसहशतद्वीपसमुद्रप्रमाणो धनोदधिपर्यन्त ॥ उक्त चण्डउत्तरसप्तसया-

योजनानि १;॥ उत्पत्त्य • शुक्ताः १; उक्तः • त्रीणि १;॥ = योजन ऊंचे शुक्ल हैं । यहाँ से तीन योजनानि १;॥ उत्पत्त्य • वृहस्पत्यः १; उक्तः • त्रीणि १;॥ = योजन ऊंचे बृहस्पति हैं । यहाँ से तीन योजनानि १;॥ उत्पत्त्य • अक्षरकाः १; उक्तः • त्रीणि १;॥ = योजन ऊपर अक्षर मंगल हैं । यहाँ से तीन योजनानि १;॥ उत्पत्त्य • शनैश्चराः १; अरन्ति १ = योजन ऊपर शनैश्चर ग्रहण करते हैं । १; एषः १; ज्योतिर्गण-गोचरः १; नभस् अकाशः १; = तो यह जोषिष्क मंडल (= गण) को विषयरूप (= गोचर) आकाशका

स्थानवेना (अककाश)

रह-अपिष्क-योजन-उक्त-शरकः १;॥

= दस ऊपर तो योजन मोटा (= बरल) है अर्थात् इस समतल युमिसे अर्थात् चित्ता शुषिबीस सातसौनम् योजनके ऊपर नौसौ योजन पर्यन्त एकसौदस योजन मोटा ज्योतिषी देवोंका पटल है

तिर्यग् •

असंस्पात-द्वीप-समुद्र-समायः १; धनोदधिपर्यन्तः १;॥

= अर्थस्मात्-द्वीप समुद्र प्रमाण (सम्भा चौका) धनोदधि चारुस्वय पर्यन्त है अर्थात् धनोदधिसामुद्र (जो धनवातकल्पके आधार है और धनवातकल्प जो पृथुवातकल्पके आधार है पृथुवातकल्प आकाश के आधार है और आकाश अपने ही आधार है) गौली धनका है उसके भीतर इनका तिर्यग् विस्तार नहीं है करन जहाँ यह धनोदधिविवातकल्प आरम्भ हुआ है वहाँ इन ज्योतिष्क देवोंके विस्तारका अंत है (धनोदधि पर्यन्त वायव्य का आशय और आशय मेरी समझमें ऐसाही आया है यह स्पष्ट करदिगा, जेप पाठकलाय निर्णय करें)

उक्तम् १;॥ १ •

अजु-उत्तर-सप्तसया (नवति उत्तर-समुद्रानि १;॥) = कथा गया भी है कि नब्बे ऊपर सातसौ योजन अर्थात् सातसौ नब्बे योजन • यह गाथा जिस स्थानसु जीने है इसस पाठकको जायावे पाठक' उक्त का जो प्रकरणरुप इस गाथामें नहीं है अनुवर्तन यही कथा जायिये ।

निर्वर्ण अर्सेक्यात शीघ्र-स्सुवममणः धनोवधिपर्वत
 उके च-अपचुसुरससस्रस्रया (भवति उत्तर-सस्त्यात्मनि)

वस-सीहि-यवु किमें च युगचयुद्धं
 वरा अशीति-वद्यु-त्रिक-अ द्विक चतुष्कय

ताप-रवि-भस्ति-रिपञ्जा (ताप-रवि गति-रिपञ्जा)

बुध-भस्माव-गुरु-शं गिर-र-सथी
 बुध-भस्माव-गुरु-अपारक-शयय

— (और) तिच्छा विस्तार अर्सेक्याते शीघ्र स्सुवु ध्याय धनोवधि वत बलय तक है ।
 — उदा ज्ञाता भी है कि नव्ये ऊपर सातसौ (योजन) अर्थात् सातसौ नव्ये योजन
 }
 } — प्रयोयोजन, अस्सीयोजन, चारपार हीनयोजन, और (= च)
 दोवार चार योजन अर्थात् हीनयोजन, हीनयोजन, हीनयोजन, हीनयोजन और
 चारयोजन चारयोजन (चिना भूमिके समतलसे उचारंपर-क्रमसे)

— तापे, सुय, चक्रमें, नक्षत्र

— बुध शुक्र-बृहस्पति-भग्न शनिबद्ध (शिव) (विद्यमान) हैं

वह आर्यों छेपके सर्वाथसिद्धि बुझेंगे (और एक इत्सु निमित्त प्रसिद्धि भी) और राजगार्तिक की वो मंडित प्रदियोंमें, पलाजाल बुनीकी
 इरतमंडित प्रसिद्धि तथा पलाजाल म्यापविवाह इरतमंडित और अनुबद्धित एक प्रसिद्धि भी प्रथम, पुरीय और चतुर्थं वायु शायशा एक ही है
 येवल द्वितीय पावके अंत भागके पाठमें सर्वाथसिद्धिका पाठ "बहुगुण विपचबर्ध" (चार दोवार हीन चारवार) के स्थानमें तारगार्थयोजनार्तिक
 में "बहु तिग" च "युग ययुज" पाया जाता है इत्सुमें अर्थ है किस्को हम ऊपर द्विक युके हैं और दोनों पाठोंमें जो अन्तर है कम पुरीय
 पापका भी जय दोनों महावृत्तार ऊपर सिद्ध युके है विधानवि स्थामीने 'मेख्यविक्षणा निगणययो नृलोकि' ॥१३॥ इससुवनेकी नीचे अर्ककेक स्वामी
 से साहस्य होते हुये किस्म श्लोक विधे है ।—

योजनानां शतान्यथो (= शतानि अथो) दोबानि वरा योजने । उत्स्य तारकास्तावर्षस्य (तारकाः तावत् वर्षति अयम्) इति भुक्ति
 — आठसौ योजनमेंसे वरायोजन करि घटि सातसौ नव्ये योजन तो (चिना भूमिके समतलसे) ऊपर (= उत्स्य) तारे (सब स्थोतिपद्योति) नीचे
 पिचरते हैं येसा शाल्य है ॥ तारा, सुर्वां वराण्यय (= वरा-उत्स्य) योजनानि महाप्रमाः । ततश्चैवमसो शीति (तसु अयमसोऽशीति) शानि नो जे
 ततश्चयः (ततः चय) ॥१३॥ इत (ताराकाओं) से वरायोजन ऊपर महाप्रमाशाल्य सुय समते है । तस (सुर्वासे) शरसीयोजन (ऊपर) चक्रमें है ।
 इन तीनोंमें (ऊपर) तीन (नीचे) योजन मलय है तथा प्रीति प्रीति युगा शुक्रा गुरुचक्रोपरि (= गुरुका च ऊपरि) प्रमात् । अस्वार्थगारका
 शतयोजनार्तिक (= अस्वार्थ-अंगारक शत योजनार्तिक) च शनिस्वरतः ॥१४॥ तीन हीन (योजन) युज गुरु बृहस्पति क्रमसे (एक दूसरेके) ऊपर हैं ।
 वने ही (= नक्षत्र) चारयोजन ऊपर मलय है और (= च) चारयोजन ऊपर शनीस्वरत है ॥१५॥ भागके दोकाकार पं० प्रवायुज की और पं० अयकव
 राय भी मे अर्कअकदेव श्रामी और विधानवि स्थामीके प्रमानुसार अर्थ प्रच्छादिका और सर्वाथसिद्धि बर्धनिकामें बर्धक्य क्रिया है परन्तु क्विचर
 चानवराय अर्थे चरया वरतकमें (संवत् १७८०) पुरुषपाक स्थामीके प्रमानुसार येसा छप्ययंन भाम्या है कि "सात सठक गद नव्ये शान्यर तारे
 पावें । त ऊपर पटमाल मदीपर चक्र विपद्यें । चार नक्षत्र सुपचार वेनपर शुक्र भवत्यो । तीन गुठ कुम्भ तीन छेपि पर शनि (= शनिबद्ध) तारपयो

॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोकै ॥१३॥

मेरो- प्रदक्षिणा. मेरुप्रदक्षिणाः । मेरुप्रदक्षिणा इति वचन गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थं विपरीतगतिर्मा विद्वाथीति ॥ नित्य गतय इति विशेषणमुपरतक्रियाप्रातिपादनार्थम् । नृलोकप्रहण विषयार्थम् । अर्धतृतीयेषु द्वीपेषु द्वयोश्च सुदृयोर्न्योतिष्का नित्यगतयो नान्यत्रोति ॥

सुदृयम्- मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोकै ॥ = (ज्योतिष्काः) मेरु प्रदक्षिणाः नित्यगतय नृलोकै ॥१३३

व्याख्ये- न्योतिष्काः ।
मेरु-प्रदक्षिणाः । ॥
नृ-लोकै । नित्य-गतयः । ॥
इत्युत्पाद- मेराः । ॥ प्रदक्षिणा । ॥ मेरु-प्रदक्षिणा । ॥
मेरु-प्रदक्षिणा । ॥ इति । ॥ इत्थं । ॥ गति-विशेष-
प्रतिपत्ति-अर्थम् । ॥ विपरीतगतिः । ॥ मा । ॥ विद्वाथि-इति

नित्य-गतयः । ॥ इति । ॥ विशेष्ये । ॥ अन्-उपरत-
क्रिया-प्रतिपादन-अर्थम् । ॥ नृ-लोक-
प्रार्थं । ॥ विषय-अर्थम् । ॥

अर्ध-तृतीयेषु । ॥ द्वयोः । ॥ च सुदृयोः । ॥
न्योतिष्काः । ॥ नित्यगतयोः । ॥ न-अन्वयः । ॥ इति । ॥
अथवा सीमाके स्थिते है ।

= अर्धार्थे (= अर्धतृतीयेषु) द्वीपे और (= च) दो सुदृयोर्मि
= न्योतिष्काः नित्यगतय नित्यगतय (काले) काले है न इतरें स्थानमें ।

॥ ये पांच प्रकारके न्योतिष्कियेव
= सुमरुकी प्रदक्षिणा वेंते हुये अथवा संभलाकार फिरेते हुये
= मध्युप्य लोकेमें अर्थात् अर्धार्थ द्वीप और दो सुदृयोर्मि नित्यत्र गमन करनेवाले हैं
= सुमेरुके शंभु-आकार फिरेना सो मेरुप्रदक्षिणा है ।
= अरुप्रदक्षिणा। ऐसा वाक्य गमनक्रियेय
= जाननेके लिये है अन्य प्रकार गमन न बाला अर्थात् पूर्वोक्त न्योतिष्की वेवोका
गमन सुमरु पर्वतके संभलाकार ही बालो भिन्न प्रकारसे न जानना
= (अर्थमें) 'नित्यगतय' ऐसा गुणवाचक शब्द नित्यत्र अथवा लगातार
= (गमनरूप) क्रियाके जनानेके लिये है । मध्युप्य लोकका
= अणव देश (= विषय) के लिये है । अर्थात् न्योतिष्की वेवोके गमनकी मर्मांश
अथवा सीमाके स्थिते है ।
= अर्धार्थे (= अर्धतृतीयेषु) द्वीपे और (= च) दो सुदृयोर्मि
= न्योतिष्कियेव नित्यगतय (काले) काले है न इतरें स्थानमें ।

॥ येकाभर आत्मयके समाप्तत्वार्थोपगम सुशब्दा पाठ कते इससे यहाँ का पाठ और अर्थ एक है परन्तु उबके पाठके सम्पादु आरिन्तो
इत्यादि का इस्वादिशिवने (श्री सिद्धवदनधरि चक्रवर्त) में 'मेरु प्रदक्षिणा नित्यगतयो' ऐसा पाठ है । ॥

विप्राप्ती भगवत्सहाय बलीक कृत परच्छेद और विभक्त्यर्थ सवित सषायसिद्धिका शब्दः शिवीअनुवाद । अर्थात् ४ सूत्र १४ तदुग्रहणं गतिमज्ज्योति प्रतिनिर्देशार्थम् । न केवलया गत्या नापि केवलैर्योतिभिं काल परि-
च्छेद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च ॥

वृत्तनुवाद्-तद्-अदृश्यम् ॥ गतिमत्-ज्योतिस्
प्रतिनिर्देश-अर्थम् ॥ न केवलया ॥ गत्या ॥
न अपि केवलैर्योतिभिः ॥ कालैः परिक्षिप्यते ॥
अनुपलब्धेः ॥ ४ ॥ व ॥
अपरिवर्तनात् ॥

=(सूत्रमें) तत् शब्दका आदान गमन सहित ज्योतिषी देवों
=के (=अति) कथनके लिये है न अकेले गमनसे (और)
=न केवल ज्योतिषी देवों करि ही (=अपि) (यह व्यवहार) काल जाना जाता है
(गमन करतेहुये ज्योतिषी देवोंकरि ही उक्त व्यवहारकाल समय भावलीआदि प्राप्त हैं)
=क्योंकि (व्यवहार काल) मत्स्य नेत्रों द्वारा नहीं देखाजासका है और (=क)
=न (उस व्यवहार काल का) पलटना (भी दीखे है)

(१) अनुपलब्धेः और अप्रकृततात् ये दो शब्द व्यवहार काल से सम्बन्ध रखते हैं अथवा ज्योतिष्क देवों से अर्थात् व्यवहार काल मत्स्य नेत्रों
द्वारा और उस व्यवहारकालका परिवर्तन और पलटना नहीं बीकते हैं अथवा ज्योतिषी देवोंकी गति, गमन नहीं देखा जासका है और वे परिवर्तन
द्विताई वर्णान् प्रकथित हैं ॥ इस 'तत्' शब्दके सम्बन्धमें हमको ज्योतिषीकर्म अर्थप्रकारिकारमें पं०सवामुखजीकी सप्तुटीकामें स्वेताम्बरसम्बन्धके
समाप्ततात्पर्यादिप्रामास्यमें तथा उनकी मायानुसागिजी तत्पार्थवीकामें तथा दो बार अन्य मायाबोकी टीका में कुछ भी नहीं मिलता है ॥ तत्कार्य
अवधारितिकमें ठीक उसी सम्बन्ध का लेख है जो तत्पार्थसिद्धि में है अत्रे

संज्ञक तत्पार्थसिद्धियुक्तिका पाठ
इ प्रदुर्लभं गतिमज्ज्योति प्रतिनिर्देशार्थम्
अथवा मायाभाषिभेयस्यैर्योतिभिः कालपरिक्षिप्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च ॥
इं तदुग्रहणं काल गतिसहित ज्योतिष्क देवतिके कहनेके अर्थ है ।
यह व्यवहार काल केवल गतिही करि तथा केवल ज्योतिषीहीनिकरि माहो
त्या जायई आते गमतो इतिका कहूँ कू भिये गादी । बहुति गमन न होयतो
रिपत्वी रई । तामें दोनो सम्बन्ध सैना"प० अथवत्की इत्या एवमिच्छा मुद्रित
उ १७ इत्यसिद्धिप गुण्ड १७७ वा १४८

तत्पार्थं राजवार्तिकालकार का पाठ
तदुग्रहणं गतिमज्ज्योति प्रतिनिर्देशार्थम् ॥ १ ॥
गतिमत्तो ज्योतिषां प्रतिनिर्देशार्थं तदियुक्तते
नहि केवलगतया नापि केवलैर्योतिभिः काल परिविक्षिप्यते अनुपलब्धेर
परिवर्तनाच्च ज्योति परिवर्तनकस्यो हि कालपरिक्षेपः ।
"सूत्रमें जो तत् शब्दका उल्लेख किया गया है वह यतिमान ज्योतिषि
योंके प्रदुर्लभं है ॥ १ ॥ केवल गति कियाके अर्थात् कालका निर्णय नहीं
हो सक्ता क्योंकि गतिही अनुपलब्धि है नेत्र से नहीं बीकयइती ॥
केवल ज्योतिषियों सेभी काल का निश्चय नहीं होसका क्योंकि

गति क्रिया रहित केवल ज्योतिषियोंको परिवर्तन रहित स्थिर माना जायगा ।

स्थितियोंल ज्योतिषियोंसे कालका निर्णय नहीं हो सकता । इसलिये कालक निश्चयमें गतिमान ज्योतिषी ही असाधारण कारण हैं । उन्होंने कालका निर्णय होता है राजवार्तिक अनुवादित प० गजान्तराल शाली पं० मकजलाल व्यायसकारद्वारा संसोधित पृष्ठ १०३५४ अर्थ—सूत्रके द्वितीय तत्त्वका प्रथम है सो गतिसहित ज्योतिषक देवमिके कहनेके अर्थ है” अथ टीकाका—गतिकय परिवर्तने ज्योतिषी ऐसे गति विशिष्ट ज्योतिषीनिके

कहनेके अर्थ सूत्रके द्वितीय तत्त्व कहा है ॥

तही यह व्यवहारकाल है सा केवल गतिही करि तथा ज्योतिषीनिकरि नहीं आस्था जाय है ॥ अर्थात् गमनको हमका काहू कू होले नहीं और गमन न होय तो ज्योतिषीनिका परिवर्तनका अभाव जाय ही य गिरही र्थ है ॥ अैसे गमनकी अनुपस्थितिमें तथा ज्योतिषीनिके अपस्थितनमें व्यवहार काल नहीं जाना जाय है ॥

तार्ते निश्चयकरि (—दि) ज्योतिषीनिके परिवर्तनमें व्यवहारकाल जाना जाय है पं० पद्या साल श्याय विशाकर अनुवादित तन्त्रार्थ राजवार्तिक अर्थान्तु तन्त्रार्थ रत्नमाला पृष्ठ ३३३

‘गतिमान ज्योतिषीनिका क्रिया काल विभागमें अनावनेके अर्थ तत्त्व औसोशब्द कहिये है । अतः निश्चयकरि कथल गति करि भी काल नहीं जानिये है अतः कथल ज्योतिषीनिकरि भी काल नहीं जानिये है क्योंकि अनुपस्थितिमें कि प्रत्यक्ष नहीं दीकतें । अतः अपस्थितनमें कालको सत्ता नहीं बात होय है अर्थात् काल प्रत्यक्ष ही नहीं दीले है अतः कालका पलटना भी नहीं दीले है । यार्ते ज्योतिषीनिका परिवर्तन करिहो कालका जानय है” ॥ पञ्चमालाल

औ दीनीवाले अनुवादित राजवार्तिक पृष्ठ २१ ॥

मंत्र पं० पञ्चमालको दीनीवाले के साथ सहमत होकर अतः अनुवाद किया है ॥ उनको लगभग दशवर्ष प्रथम भी सदेह हुआ था कि अतः पञ्चमालके ‘परिवर्तनाय’ शब्दका अनुवाद हीक नहीं है उस समय मैंने उसे छोड़ दिया था अब इन्द्रप्रस्थमें जाना प्रकार के साधन प्राप्त होने पर लिखा है ॥ कारण यह है कि ज्योतिषियों का गमन अनुपस्थित नहीं है क्योंकि हम सर्व उनका गमन प्रत्यक्ष आँकों से देखत हैं जिससे वह काल प्रत्यक्ष नहीं दीकता है और कालका पलटना भी नहीं दीकता है ॥ अतएव र्थ है कि क्लम ही ज्योतिषीदेव पिर है उनका गमन नहीं होता अतः नहीं देखा जा सकता है ॥

कालो द्वित्रिथो व्यावहारिको मुख्यश्च ॥ व्यावहारिक कालविभागस्तत्कृत समयवलिकादिः क्रियाशेषपरिच्छिन्नोऽन्यस्यापरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतु ॥ मुख्योऽयो वक्ष्यमाणलक्षण ॥ इतरत्र ज्योतिषामवस्थानप्रतिपादनाथमाह—

॥ बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥
 बहिरस्त्युच्यते, कुतो बहि ? नूलोकात् ॥ कथमवगम्यते ?

कालोऽपि त्रिधाः व्यावहारिकः १ मुख्यः २ चक्र
 व्यावहारिकः ३ काल-विभागः ४ भव-कुतः ५
 समय भावलिङ्ग आदिः ६ क्रिया विशेष-परिच्छिन्नः ७
 अन्यस्य ८ अपरिच्छिन्नस्य ९ परिच्छेद-हेतुः १०
 मुख्यः ११ अन्यः १२ वक्ष्यमाण-लक्षणः १३ ॥
 इतरत्र १४ ज्योतिषासु १५ अवस्थान प्रतिपादन अर्थस्य १६ ॥ आह १७ ॥
 'सूत्रम्-बहिरवस्थिता ॥ १५ ॥
 सूत्रार्थ-न्यातिष्का १८ नूलोकात् १९ ॥

=काल दो प्रकार है व्यवहार और निरक्षय (=परमार्थकाल) अर्थात् कालके अणु ॥
 =व्यवहार कालका विभाग तिन(गमन करते हुयेज्योतिषीदेवों)स सूचिवकियाप्रभा
 =समय, भावली आदिक क्रिया विशेषकर जाना गया है ।
 =(सो) दूसरे बिना जाने हुयक जनाबनेका कारण है । अर्थात् उसन्यवहारकालके

विभाग समय भावली शटिका, दिन, मास, वर्ष, इत्यादि दूसरे निरक्षयकाल जो जाननेमें नहीं आसक्त है । उसके सूचित करने वा जनावने का कारण है ।
 =दूसरा परमायकालका करैजानेवाला स्वरूप (अ०पंच २२,३६,४०सूत्रोंमें) है
 =यहां (मनुज्यलोक)स भिमज्योतिषी देवोंके अवस्थितहोनेके कथनको कहते हैं कि
 =(ज्योतिष्का नूलोकात्) बहिर अवस्थिता (भवन्ति) १५ ॥
 =ज्योतिषी देव मनुज्य लोक से अर्थात् अन्वृद्धीप

धावकी संद, पुष्करार्थ और खजानावधि और कालोवधि दो समुद्रोंसे
 =बाहिर गमन रहित हैं (जहां के तहां स्थिर रहते हैं)
 =बाहिर ऐसा (सूत्रमें) कहा गया है । (परन) कहां से बाहिर
 =(उत्तर) मनुज्यलोकसे (बाहिर) (परन) (मनुज्यलोकसे बाहिर यह) कैसे जानागया

(१) मनाच्यत्र ११०पद्यमनुत्र यं तथा 'म' गानुसारिको हरकार्यबोधिनी टोकामे कोर इमार यहां सबत्र इल सूत्रको पाठ तथा अथ एक है ॥
 (२) 'न्यातिष्का' बाहरी कोर नूलोकात् ठेरहना सूत्रसकसले जियेगयई । सबकीवधिपरकरनेसे ज्योतिष्का नूलोकात्बहिरस्थिता "देवास्तुप्रयोगा ॥

अर्थप्रशाद्धिभक्तिपरिणामो भवति ॥ ननु च नृलोके नित्यगतिवचनादन्यत्रावस्थान ज्योतिष्का-
 या सिद्ध । अतो वहिरवस्थिता इति वचनमनर्थकमिति । तन्न । किं कारणम् ? नृलोकादन्यत्र
 वहिज्योतिषामस्तित्यमनस्थान चासिद्धम् । अतस्तदुभयसिद्ध्यर्थं वहिरवस्थिता इत्युच्यते ॥ विप-
 रीतगतिनिवृत्त्यर्थं कादाचित्कगतिनिवृत्त्यर्थं च सूत्रमारब्धम् ॥

तुरीयस्य निरायस्य सामान्यसञ्ज्ञासङ्कीर्तनाथमाह—

अथशाब्दविभक्तिपरिणामो भवति ।
 = (उपर) अभिप्रायकेवलस्य वा सामर्थ्यसे विभक्तिका पलंगत, वा परिणामनरोजातारे
 अर्थात् १३ वा सूत्रे क्हा है कि "नित्यगतयो नृलोके"
 (=नरलोके नित्यगमनकरनवात् इ) इस वाक्यसे स्वाभाविक प्रश्न आता है कि नरलोके में तो नित्यगमनकरने
 वाले हैं । फिर नरलोके में शरिर क्या है यहाँ पर सप्तमी विभक्ति "नरलोके" अभिप्रायवश १३वीं विभक्ति
 'नरलोके' में परिणामन होमाती है अथवा परिवर्तन करली जाती है
 = शरिरपर न मनुष्यलोके नित्यगमन (एसे) प्राक्यसे यहाँ (मनुष्यलोके) से अन्यस्थानमें
 = ज्यातिपी देवोंका अवस्थान सिद्ध वा नित्यप्र है ।
 = इस लिये "शरिर अवस्थिताः" ऐसा वचन आयात् यह पदपूर्वा सपस्त सूत्री
 = निष्प्रयोजन है (उपर) सो (=तद्) नहीं है
 = यथा कारण कि मनुष्य लोकेसे अन्यत्र
 = 'शरिरवस्थिता' एसा (सूत्र) कहा गया है । जलदागमन अर्थात् अमदिस्रणारूपगतिके
 = निरोपके लिये और (=च) कभी कभी होने वाले गमन के निराकरणके लिये
 = (यह पदपूर्वा) सूत्र नारम्भ किया गया है ॥ (देवोंकी) वीये समुदायकी
 = सामान्य मंजा कहनेके लिये (आचार्य अभिप्रायपूर्वमें) कहते हैं कि

ननु च नृलोके नित्यगतिवचनात् ॥ अन्यत्र च
 अवस्थानम् ॥ अयोचित्कगाम् ॥ सिद्धम् ॥
 अत एव शरिर अवस्थिताः इति वचनम् ॥
 अत आरम्भम् ॥ इति ॥ मद्री ॥ ननु
 किम् ॥ कारणम् ॥ नृ लोकात् ॥ अन्यत्र च
 शरिर उपायिताम् ॥ अस्तित्वम् ॥ अवस्थानम् ॥ च अभिदिदम् ॥
 अत एव शरिर उपायिताम् ॥ अस्तित्वम् ॥
 "शरिरवस्थिताः" इति उच्यते ॥ विपरीत गति
 निवृत्ति अर्थम् ॥ कादाचित्क गतिनिवृत्ति अर्थम् ॥ ननु
 सूत्रम् ॥ आरम्भम् ॥ शरिरावस्थिताः निरायस्य
 सामान्यसञ्ज्ञासङ्कीर्तन अर्थम् ॥ आह ।

॥ वैमानिका ॥ १६ ॥

वैमानिकग्रहणमधिकारार्थम् । इत उत्तरं ये वक्ष्यन्ते तेषां वैमानिकसम्प्रत्ययो यथा स्यादिति अधिकार क्रियते ॥ विशेषणालमस्थान सुकृतिनो मानयन्तीति विमानानि । विमानेषु भवा वैमानिका ॥ तानि विमानानि त्रिविधानि । इन्द्रकश्रेणिपुष्पप्रकीर्णकभेदेन ॥ तत्र इन्द्रकविमानानि इन्द्रवन्मध्ये व्यवस्थितानि ।

'सूत्रम्—वैमानिका ॥ १६ ॥

=(^१चतुर्थं 'देवनिकाय)वैमानिका (सामान्यसञ्ज्ञा भवति)

सूत्रार्थः—चतुर्थं देवनिकायं वैमानिकाः ॥ शशा यत्सारा ॥ अथैति—श्रीवा यद्वैमानिक ऐसी (जन् देवों की) सामान्य सज्ञा है
 पुण्यनुवादः—वैमानिक-आणवः ॥ अधिकार-अर्थम् ॥
 इतम्—उत्तरम् ॥ वक्ष्यन्ते ॥ तेषाम् ॥
 वैमानिक-सम्प्रत्ययः ॥ यथा—स्यत् ॥
 इति—अधिकारः ॥ कियते ॥ ॥ विशयः—आत्मस्थानम् ॥
 सुकृतिनः—मानयन्ति—प्रति—विमानानि ॥
 विमानेषु ॥ भवा—वैमानिकाः ॥ तानि ॥ विमानानि ॥
 त्रिविधानि ॥ इन्द्रक-श्रेणि-पुष्पप्रकीर्णक भेदेन ॥
 तत्र इन्द्रक विमानानि ॥ इन्द्रवन्मध्ये ॥ व्यवस्थितानि ॥

वैमानिक शब्दका ग्रहण अधिकार वा प्रकरण के लिये है
 = यहाँसे आगे जो करे जायगे तिनकी
 = यथायोग्य वैमानिक सज्ञा जानना चाहिये वा समझना चाहिये (=सम्प्रत्यय स्यात्)
 = (यहाँ) ऐसा प्रकरण किया गया है ॥ जिनमें रहनेवाले जीवोंको विशेषकर
 = गुरुवंत (अन्यजीव) मानते हैं ॥ ऐसे विमान हैं ॥
 = विमानोंमें (उत्पन्न) होनेवाले वैमानिक हैं ॥ ते विमान
 = वही प्रकार इन्द्रक, श्रेणीवद्ध, और पुष्पप्रकीर्णक भेदेसे हैं ।
 = यहाँ इन्द्रक विमान इन्द्रक समान वीचा वीचमें (=मध्य) विद्यते हैं

(१) दोनों सम्प्रत्ययोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ है ॥ (२) इस वाक्यको अनुवृत्ति इस अत्यन्तक पहिले सूत्रसे ही गई है ।
 (३) क्योंकि इस अन्वयके प्रथम सूत्रमें देवोंके पाठ निकाय वा समुदाय अर्थ हैं और १०वां ११वां अन्वयकासे मूलमवासी अन्तर और ज्योतिषो वेदोंकी सामान्य और विशेषसंज्ञायें वर्णनसक्य करी हैं । तब केवल योधासमुदाय कावर्णय रहता है इसलिये अनुवृत्तशब्दका अन्वयार्थः (=यह वाक्य जो स्पष्ट जगत्में न आसके उसे किसी दूसरे अर्थको व्यवस्था करि स्पष्ट करवेना) इस सोलहो सूत्र में किया है ॥
 (४) यहाँ 'यस्य' शब्द ब्रह्मण्यत्के अर्थ में आया गया अत्र एवता है अर्थात् जिस जिस प्रकारके वैश्वामिक शब्द है जैसे कश्चोपपद्य तन्ममें भी तौ अर्थिक अर्थिके शब्द और अन्वयगत वैमानिका इत्यादि ही जैसे जैसे वर्णनार्थ आगे ॥ अथायोग्य वर्णनचित यथाविधि विधिपूर्वक से आते समान अर्थ वाक्य हैं ॥ अस्तुन पुनः इत्यन्तिकित दो प्रतियोगित मिलान्य किया तो यथा शब्द ही पाठ प्राप्त हुआ अस्तु राजकानि ६ सुकृति तथा वा इत्यन्तिकित प्रतियोगित में 'वैमानिक सम्प्रत्ययः कथं स्वाधिकारविकारः कियते' अर्थात् यथा शब्दक स्थान में कथम् शब्द है ॥ 'एवाकाश कुलीकीके 'वैमानिकपण्यो की संज्ञे प्रकार जतीति किये शेष यत्ते अधिकारकय शब्द करिये है एषा अनुवाद किया है ॥

तेषा चतसृषु दिव्जु आकाशप्रदेशश्रेणिवदवस्थानात् श्रेणिविमानानि । विदिव्जु प्रकीर्णपुष्पवद-
वस्थानात्पुष्पप्रकीर्णकानि ॥ तेषा वैमानिकाना भेदावबोधनार्थमाह—

॥ कल्पपोपपन्नाः कल्पतीताश्च ॥ १७ ॥

कल्पपोपपन्ना कल्पानतीता कल्पतीताश्चेति द्विविधा वैमानिका ॥
तेषामवस्थानविशेषनिर्ज्ञापनार्थमाह—

उपामुः॥ चतसृषुः॥ दिव्जुः॥

आकाश प्रदेश-भेदिवत् अथवस्थानादुः॥

श्रेणि-विमानानिः॥ विदिव्जुः॥ प्रकीर्ण-पुष्पवत्॥

अवस्थानादुः॥ दुष्पप्रकीर्णकानिः॥

तेषामुः॥ वैमानिकानामुः॥ पद्म-अवबोधन-अर्थमुः॥ आह ॥

(१) सूत्रम्—कल्पपोपपन्ना कल्पतीताश्च ॥ १७ ॥ = (वैमानिका) कल्पोपपन्ना कल्पतीता च (द्विविधामवन्ति)

सूत्रार्थ—वैमानिकाः॥ कल्प उपपन्ना ॥

कल्प अतीता ॥ प०

द्वि-विधा अथवन्ति ॥

पूरणमुत्पादः—कल्पोपुः॥ उपपन्नाः॥

कल्पोपपन्ना ॥ कल्पान्तुः॥ अतीताः॥ प०

कल्प अतीता ॥ प्रतिष्ठ-विधा अथवैमानिकाः॥

तेषामुः॥ अवस्थान-विशेष-निर्ज्ञापन-अर्थमुः॥ आह ॥

= तिन (इन्द्र विमानों) की चारों दिशाओंमें

= आकाशके प्रदेशकी श्रेणीके सदृश विष्टनेसे

= श्रेणीयद् विमान हैं ॥ विदिद्याओंमें विहारे फूलोंके समान

= स्थिति होनेसे वा विष्टनेसे पुष्प प्रकीर्णक हैं ।

= तिन वैमानिकद्वयोंक येद खाननक लिये (आधार्य अग्निप सूत्रमें) कहते हैं कि

= (वैमानिका) कल्पोपपन्ना कल्पतीता च (द्विविधामवन्ति)

व्यैमानिक द्वेष इत्य (अर्थात् स्वर्गों) में उत्पन्नमानेवाले

= तथा (=च) कल्पतीत अर्थात् स्वर्गोंसे ऊपर उत्पन्नमानेवाले आधार्य स्वर्गों को

उत्पन्नकरि (ऊपर ऊपर) नववैश्वेयक, नवअनुदिश, पंचअनुचरोंमें उत्पन्नमानेवालेयत्

व्यो प्रकार होते हैं

= स्वर्गोंमें (=कल्पपु) उत्पन्न माने वाले हैं

= (चे) कल्पोपपन्न हैं और (=च) स्वर्गोंका लापने वाले (अर्थात् स्वर्गोंमें न उत्पन्न-

करि इनके ऊपर नववैश्वेयक नव अनुदिश, पंच अनुचर इन तीस स्थानोंमें उत्पन्न होने वाले)

= कल्पतीत हैं । ऐस दो प्रकार वैमानिक देव हैं ।

= तिनके निवासस्थानका विशेष माननेक (=निर्ज्ञापन) लिये कहत हैं कि

(१) इनमें स्थानांतर तथा विगडर आत्माओंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक ही है ॥

भाषार्थ प्रथम युगल पहले सौवर्ग दूसरे स्थान स्वर्गके जो मध्य लोकोत्तरे

० देवा इतिषेधप्रतिष्ठात् ॥२॥ यदि देवा उपर्युपरीस्वनेनादिसम्बन्धयन्ते । तत्र, किं कारण प्रसिद्ध्याद् देवानां हि उपर्युपरि अवस्थानमभिप्रेत्यम् ॥
= जो 'देवा उपरि उपरि' के साथ सम्बन्ध क्रियेबाय सा हो नहीं सकते, किस कारण कि भागमके विरुद्ध हान से अभिप्रेत हैं अतः देवोंका ऊपर ऊपर अवस्थान नहीं माना जासका है ॥ तत्राथ राजवार्तिक पृष्ठ १५६

० विमानानि इति शेषे श्रेष्ठि प्रकीर्णकानां तिर्यग्बस्थानात् ॥२॥ संस्कृतशब्द । अथ विमानान्युप्युपरीति कस्यत्वे तद्विनोपपद्यते । श्रेष्ठिप्रकीर्णकानां तिर्यग्बस्थानात् । श्रेष्ठिविमानानि पुन्य प्रकीर्णक विमानानि च प्रतीक्षकं तिर्यग्बस्थानाति इति इहव्यते ॥ राजवार्तिक पृष्ठ १५६= विमान ऊपर ऊपर हैं यदि (= अथ) देवों कस्यगको ज्ञाय सां बाध सो उपलब्ध नहीं होय है क्यों कि श्रेष्ठोच्च विमानोंका अर प्रकीर्णक विमानोंका तिर्यग् तिरस्क अवस्थान है । (अर्थात्) श्रेष्ठोच्च विभाग, पुन्यप्रकीर्ण विमान और प्रतीक्षक विमान (ये) तिर्यग् अवस्थित हैं येसा भागममें इष्ट करते हैं ० कस्या इति चेदथायः ॥४॥ संस्कृत अथ । यदि कस्या न होयो शयति तथा न होय तथास्तु कस्याहि उपर्युपरि स्थिता इति ॥ राजवार्तिक १५६
= जो (ऊपर ऊपर) कस्य (स्वर्ग) अवस्थित (है) तब (कृष्ण) बाय नहीं है । जैसे बाय न बाय ठेस हो ठोक है । तिइस्यकरि (=दि) कस्य ऊपर ऊपर अवस्थित हैं मायाय यदि कदा ज्ञायगा कि कस्य ऊपर ऊपर अवस्थित हैं तब कृष्ण बाय नहीं । तथा जिस वातके मानने में किसी प्रकारका बाय नहीं वही बात मानना ठीक है । स्वर्गों का ऊपर ऊपर अवस्थान मानने में कोई बाय नहीं इसरीति से देव और विमानोंका ऊपर ऊपर अवस्थान बाधित होनेसे स्वर्गोंका ही ऊपर ऊपर अवस्थान सुनिश्चित है ।

० कस्यातीतेषु किमसिद्धसम्बन्धतः विमानानि । तत्रार्थराजवार्तिक पृष्ठ १५६

(प्रल) कस्यातीतितने पर्या सम्बन्ध किया जाय अर्थात् प्रल का सर्वांत यह है उपर्युपरि में यदि हम कवच कस्या शब्दकी अनुपृति लोतेहैं तो यह अथ हाता है कि स्वर्ग का कस्य ऊपर ऊपर हैं स्वर्ग से परें नवमश्रेयिक विमान, नव अनुश्रित विमान, पाँच अनुत्तर विमानों के अवस्थानके सम्बन्धमें कुछ न जाना ठा इनके अवस्थान जानने के लिये 'उपर्युपरि वास्य के साथ हीन शब्द अनुवर्तता है सो कश्चिद्विधिये ।

(उत्तर) "उपर्युपरि के साथ विमानानि (का सम्बन्ध करना चाहिये) इस सबका सर्वांत यह है कि जहाँ हमें कस्योपपन्न देवोंका अवस्थान जानना है वहाँ 'उपर्युपरि' के साथ कस्या शब्द लगाया चाहिये कि स्वर्ग और उनके परल ऊपर ऊपर हैं और जहाँ अहमित्तों को अवस्थान विवक्षित हैं वहाँ 'उपर्युपरि' के साथ विमानों" इस शब्द को जोड़ने और कस्यातीत विमान ऊपर ऊपर हैं यह अर्थ सम्मन्वीना चाहिये ॥

किमर्थमिदमुच्यते? तिर्यग्भवस्थितिप्रतिषेधार्थमुच्यते ॥ न ज्योतिष्कत्रतिर्यग्भवस्थिता । न व्यन्तरवदसमा-
वस्थितय । उपर्युपरीयुच्यन्ते ॥ के ते? कल्पा ॥ यद्येवं, क्रियन्तु कल्पविमानेषु ते देवा भवन्तीत्यत आह—
॥ सौधर्मेशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहा
शुक्रमशतारसहस्रारैर्वानतप्राणतयोरारणाच्यतयोर्नवसु त्रैवेयकेषु
विजयैर्वैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

तिकड़ी कर्षं तिकड़ी के नी पटल जो मध्यलोकसे सातवां राजसे आरम्भ होकर चौड़ाई राजके भीतर है । एक पटल
नव भनुदिशका जो मध्यलोकसे साढ़े षठवां राजसे आरम्भ होता है और उसही के भीतर है और एक पटल पाँचभनुचरका
जो मध्यलोकसे पौने सातवां राजसे आरम्भ होता है और उसके भीतर ही है य सप्त तेरह (=आठ युगलोक, तीन तिकड़ी
प्रैवेयलोक, एक भनुदिशका, एक पाँच भनुचरका) स्थानों में प्रैसठ (६३) पटल एक दूसरेके ऊपर ऊपर अवस्थित है ॥

वृत्तनुवाद्यः— क्रियते ॥ अर्थयते ॥ इत्येतौ

तिर्यग् अवस्थिति-म विषेय अर्थयते ॥ उच्यते ॥

न अयोरित्युक्तवत् अतिर्यग्-अवस्थिताः ॥

न अभ्यन्तरवत् असम-अवस्थितयः ॥

वपरि अयोरि अति अच्यन्ते ॥ के वः इति ॥ इत्याः ॥

वदि अपवत् क्रियन्तु ॥ कल्पविमानेषु ॥

तर्धेवाः ॥ पवन्ति ॥ इति अतः आशयः

= क्रिसन्धिये यह (सप्त) कदागया है ।

= (उपर) (वैमानिकदशकोंकी) तिर्यग् अवस्थानक निषेयके स्थिय (यसूत्र) कदागया है

= न (ये वैमानिक दश) ज्योतिषी देवोंके सदस्य तिर्यग् अवस्थित हैं ।

= न अन्तरों के समान विषय (अर्थात् जहाँ जहाँ) अवस्थित हैं ॥

= (इसन्धिये) ऊपर ऊपर ऐसे वर्णित हैं । ते कल्प कौन हैं? अवर्षित वे स्वर्ग क्या हैं?

= ओ इस प्रकार है अर्थात् ऊपर ऊपर हैं वो कितने कल्प विमानोंमें

= वे देव हैं? इसन्धिये (आचार्य अप्रियसूत्रों) करते हैं कि

सूत्रम्— सौधर्मेशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रमशतारसहस्रारैर्वानत
प्राणतयोरारणाच्यतयोर्नवसु त्रैवेयकेषु विजयैर्वैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

दो रामू तक है इकतीस पटल, दूसरे युगल (हीसरे चौथे स्वर्ग सातत पाँचन्द्र जो मध्यलोकसे तीसरे रामूर्ग में है) के सातपटल हीसरे युगल (शक्र-शक्रोपर पाँचवाँ छठवाँ स्वर्ग जो मध्यलोकसे साढ़े तीसरे रामूर्ग में है) के चार पटल, चौथा युगल (शोतव सातवाँ स्वर्ग द्वापिष्ट आठवाँ स्वर्ग जो तीसरे युगलसे आधे रामू ऊपर में है) के दो पटल, पाँचवे युगल (शुक्र नववाँ स्वर्ग महाशुक्र दशवाँ स्वर्ग जो मध्यलोक से साढ़े चौथे रामूर्ग में है) का एक पटल, छठवाँ युगल (शुवार ग्यारहवाँ स्वर्ग सहस्रार बारहवाँ स्वर्ग जो पाँचवाँ युगलसे ऊपर आधे रामूर्ग में है) का एक पटल, सातवाँ युगल (मानस तेरहवाँ स्वर्ग माणव चौदहवाँ स्वर्ग जो मध्यलोकसे साढ़े पाँचवाँ रामूर्ग में है) के तीनपटल, आठवाँ युगल (आरण्य पंद्रहवाँ स्वर्ग अप्सृत सोलहवाँ स्वर्ग जो सातवाँ युगलसे ऊपर आधे रामूर्ग में है) के तीन पटल इसप्रकार बाधन पटललो सोलह स्वर्गों के और तीन तिक्ड़ी प्रैषियक (अभोसिद्धी, पर्यकी

०) कदरा शयेके ७ कदराः इति एके (सुश्रित शक्राक्यार्थिक पृष्ठ ३८१) = (उपर्युंघरि के साथ अनुयुक्ति) 'कस्याः शक्यकी दोगा देसा कितलोका मत है श्लोकवार्तिकका शक्यता संस्कृत पाठ विस्तारमयसे न लिखकर ५० गज्यापरलाह शालीकी टिप्पणी ओ पृष्ठ १०४५ (राजवार्तिकके आमुबाब) में ही है ऐसे है कि 'उपर्युंघरि यहाँपर कश्य ऊपरका संस्कृत मानना सयसम्मत नहीं है क्योंकि वैमानिका। इस सूत्रको अधिकारसूत्र कवचाये हैं। इसलिये इस सूत्रमें उसीका सत्यत्व मानना ठीक होगा इस रीतिसे जिस प्रकार वैमानिकदेश कश्योपपन्न और कदरातीनहैं (इस प्रकार कश्योपपन्ना 'कदरातीनास्य' इस सूत्रमें वैमानिकोंका सत्यत्व है उसी प्रकार वैमानिकदेश ऊपरऊपर हैं इस रूपसे 'उपर्युंघरि' इस सूत्रमें भी वैमानिक देवोंका ही संबंध है। यदि यहाँपर यह कवाचाय कि पहिले देवोंका ऊपरऊपर अवस्थान द्यमित्य कह आधे हैं। यदि 'उपर्युंघरि' यहाँपर वैमानिक देवोंका सत्यत्व कर उनका ऊपर अवस्थान माना जायगा तो कल्पित होगा। सो ठीक नहीं। विशेषतः रचित केवल देवोंका यदि ऊपर ऊपर अवस्थान मानाजाय तब द्यमित्य कहा जा सकता है किन्तु वहाँतो मध्य में स्थित इन्द्रक विमान तिर्यग् अवस्थित शेषीबन्ध और प्रकीर्णक विमानकय कदरोपपन्नय विशेषतः निश्चित देवों का तथा कदरातीनास्य (नवमैशेषकस्य) आदि विशिष्ट देवोंका प्रकण्ड है। इस प्रकारके विशेषतः विशिष्ट देवोंका ऊपर ऊपर रहना शक्य सम्मत है। अतएव इत्य है। इसलिये कश्योपपन्न और कदरातीन दोनों की अपेक्षा 'उपर्युंघरि' यहाँ पर 'वैमानिक' शब्द का ही सत्यत्व ठीक है।

(१) श्लोकवार्तिकका यह कथन यद्यपि स्थल दृष्टि से विच्यत्सा मान्य होता है कि राजवार्तिक कालमें विमानों को ऊपर ऊपर कहा है और श्लोकवार्तिक कालमें देवों को ऊपर ऊपर कहा है तथापि सद्य दृष्टिसे दोनों एक एक ही में पड़ते हैं श्लोकवार्तिक कालमें केवल देवों को ऊपर ऊपर ऊपर कहा है किन्तु विमानोंसे विशिष्ट देवोंको कहा है विमान संहित केवल कहा जाय वा विमान कवाचाय दोनों का एक ही अर्थ है।

५० उपपद्यमकृता प्रकल्पिका मुद्रित पृष्ठ ३७३।

इस स्वामी विद्यानिर्णयके सहमत हैं कि उक्त सूत्रमें 'वैमानिका' की अनुयुक्ति माली है क्योंकि यह अधिकार सूत्र है। इसीलिये अधिकार सूत्र होगा कि इसकी अनुयुक्ति बराबर अगल अगल सूत्रोंमें चलीजायै। रहा सूत्रोंका आशय सो प्रकारके प्रसंगपर द्वारा लिखन जाता है।

शुक्र-महाशुक्र

=शुक्र नवमे और महाशुक्र दशम स्वर्गों में

एक विभक्ति 'नवमेवैयकेयु' देसी करत । साराथ हमारे यहां नवअनुविय संज्ञक विभागोंको माना है । इतोम्बर समाजमें नहीं माना है । अर्थात् उनके यहां नव अनुवियके नामसे कोई विभाग नहीं स्वीकार किये हैं वर्यथि दोनों आम्नायोंमें प्रथम स्वर्ग सीधर्मसे लेकर सर्वाथिसिद्धि तक विभागोंकी संख्या चौतसीसाक सतान्त्रे सहस्र तीरई (२४६७०२१) एकली मानी है जैसाकि निम्न लिखित लेखसे बात ज्ञाना है

रिग्वेद तत्पार्थवजातिंक पुष्ट १०७ अर्थ प्रकाशिका पुष्ट २१४
 प्रथम सौधर्म स्वर्गमें बचीस साक (१२०००००) विमान हैं
 द्वितीय ईशान स्वर्गमें अट्टाईस साक (२ ०००००) विमान हैं
 तीसरे सानकुमार स्वर्गमें बारह साक (१२०००००) विमान हैं
 चौथे माहेन्द्र स्वर्गमें आठसाक (२०००००) विमान हैं
 पांचवां ऋष्यकोटर युगलमें बारसाक (४०००००) विमान हैं
 छठवां लांतवकापिष्ठ युगलमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं
 सातवां शुक्र महाशुक्र युगलमें आसीससहस्र (४००००) विमान हैं
 आठवां शतार सहस्रार युगलमें षडसहस्र (६ ०) विमान हैं
 आन्त प्राकृत आरख अच्युत स्वर्गोंमें सातसी (७००) विमान हैं
 नवम तीनअथो प्रैवेयकनि विर्यै एकसीपारह (१११) विमान हैं
 दशम तीन मन्वकी प्रैवेयकनिमें एकसीसात (१००) विमान हैं
 ग्यारहवें तीन ऊपरकी प्रैवेयकनिमें इक्यानवै (६१) विमान हैं
 बारहवें नव अनुवियके वा नवनकोटर के नी (६) विमान हैं
 तेरहवें अनुत्तरक पांच (५) विमान हैं सर्वयाम(२४६७०२३) हुआ

इतोम्बर आम्नायमें देवी समाप्यतवापार्णविगमसूत्र पुष्ट १०६
 प्रथम सौधर्म स्वर्गमें बचीससाक (१२०००००) विमान हैं
 द्वितीय पेट्याम स्वर्गमें अट्टाईस साक (२००००००) विमान हैं
 तीसरे सानकुमार स्वर्गमें बारहसाक (१२०००००) विमान हैं
 चौथे माहेन्द्र स्वर्गमें आठसाक (२०००००) विमान हैं
 पांचवां ऋष्यकोटर स्वर्गमें बारसाक (४०००००) विमान हैं
 छठवां सातक स्वर्गमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं
 सातवां महाशुक्र स्वर्गमें आसीससहस्र (४०० ०) विमान हैं
 आठवें सहस्रार स्वर्गमें षडसहस्र (६०००) विमान हैं
 आन्त प्राकृत आरख अच्युत स्वर्गोंमें सातसी (७००) विमान हैं
 नवम तीन अथो प्रैवेयकनिमें एकसी पारह (१११) विमान हैं
 दशम तीन मन्वकी प्रैवेयकनि में एकसीसात (१००) विमान हैं
 ग्यारहवें तीन ऊपरकी प्रैवेयकनि में एक शत (१००) विमान हैं
 (नवअनुविय नाम न देतेहुये सर्वोमे इसनीकी सख्याको ऊपर सोमें गमितकियाहै)
 अनुत्तर (बारहवी संख्या पर) पांच विमान हैं । सर्वयाम (२४६७०२३) हुआ ।

पदच्छेद (वैमानिका) सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-
महाशुक्र, शतार-सहसुरेयु, आनत-आणतयो, आरण-अच्युतयो, श्रैवेयकेषु, नवसु, विजय-वैजयन्त-
जयन्त अपराजितेषु-सर्वार्थसिद्धौ च भवन्ति ॥ १६ ॥

सुधर्मः--वैमानिकाः। सौधर्म-ऐशान,

वैमानिकद्वेष सौधर्म और ऐशानमें (मयमस्वर्ग और द्वितीयस्वर्गमें)

सानत्कुमार-भारेन्द्र, ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें, खान्तव-कापिष्ठ,

=सानत्कुमार और भारेन्द्रमें, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें, खान्तव और कापिष्ठमें,

(१) हमारे यहांके सूत्रके अन्तमें श्वेताम्बर ब्रह्मन्नायके समाप्ततत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें ब्रह्मलोक' शब्द है और 'श्रैवेयकेषु' शब्दके
ऐशानमें उक्त समाप्त्य में 'श्रैवेयकेषु' शब्द है परन्तु उनके यहांकी भीषिखेलेभस्त्रि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें "श्रैवेयकेषु" ही ही और
'सर्वार्थसिद्धौ' शब्दके अन्तमें उक्त समाप्त्यके नामों भाष्योमें सर्वार्थसिद्धे' शब्द है । इन चारों शब्दोंमें अर्थभेद नहीं है । इनके दोनों ही भाष्योंमें
ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ शुक-शतार शब्द नहीं है अर्थात् उनके यहांके ब्रह्म शब्द ही स्वर्ग माने हैं खान्तवके अन्तमें खान्तव है श्रेय पाठ दोनों समाप्त्यार्थोंमें
पढ़ है । इस सूत्रकी सख्याती उनके यहांकी टीकासे बारह अक्षरही माने हैं । ऐशा तत्त्वार्थराजवार्तिकवार्तिकपठ ॥

द्विगन्तर ब्रह्मन्नायके उन्नीसवां सूत्रका पाठ

श्वेताम्बर सम्प्रदायके सत्याभ्युत्पायाधिगमसूत्रके बीसवां सूत्रका पाठ

सौधर्मोभानसाम्भारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरब्रह्मलोकापिष्ठ

सौधर्मोशानसाम्भारमाहेन्द्रब्रह्मलोकापिष्ठ

शुकमहाशुकशतारसहसुरेयुअणतब्रह्मोत्तरारक्युतयो

—महाशुक—सहसुरेयुअणतब्रह्मोत्तरारक्युतयो

श्रैवसु श्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तब्रह्मोत्तराश्रितवसर्वार्थसिद्धौ च

नवसु श्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तब्रह्मोत्तराश्रितेषु सर्वार्थसिद्धे' च

(यदि श्रैवेयकेषुके अन्तमें 'श्रैवेयकेषु' लिखें तो भाष्यानुसारिणी का पाठ है)

अणमेरु—समाप्त्य० और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके अनुसूच बारह स्वर्ग हैं हमारे यहां तो ब्रह्म स्वर्ग हैं । ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ शुक-शतारको
वर्ग नहीं माने हैं । उक्त ब्रह्मोत्तरके दोनों भाष्योंमें 'नवसुश्रैवेयकेषु' वा 'नवसुश्रैवेयकेषु' वा श्रेय केवल नामोंके पाठक ही नहीं ब्रह्मोत्तरविमानोंका
भी । हमारे यहां पूर्वभाष्योंमें तथा द्वितीयशुक्रान्तर और टीकाओंमें उक्त वाक्यसे श्रैवेयकेषु और नी ही अणमेरु ब्रह्मोत्तर ही अणमेरु श्रैवेयकेषु
केवल एक ही पढ़ते हैं । क्योंकि यदि उमास्वामी जो श्रैवेयकेषु ही पढ़एकते तो 'नव शुक' और श्रैवेयकेषु शब्दको भिन्नभिन्नसमामिभिन्निक्योंमें नहीं बताते ।

0 बहुतसे बिज्ञानोंका मत है कि उमास्वामीने बारदस्वामीकी एक विमक्ति और आगत प्राक्त की दूसरी विमक्ति और आरण्य अच्युत की तीसरी विमक्ति इत्येतुसे भी की है कि लोचर्म येशान युगलमें दो सागरसे कुछ अधिक उठण प्राप्त है। सामान्यतया माहेन्द्र युगलमें सात सागरसे कुछ अधिक उठण स्थिति है। यह प्रसिद्ध कथामें वृषसागरसे कुछ अधिक उठण प्राप्त है। सातार सहस्रात् युगलमें अठारह सागरसे कुछ अधिक उठण स्थिति है। शुक महाशयक वनधर्ममें सोलह सागरसे कुछ अधिक उठण प्राप्त है। सातार सहस्रात् युगलमें अठारह सागरसे कुछ अधिक उठण स्थिति है। परन्तु आगत प्राक्त युगलमें अठारह विमक्ति की वही विमक्ति जुरी की और एकही द्रष्टव्यसामयमें सेभाये और जहां पूरी पूरी स्थिति प्राप्त है। यह युगलमें जहां परेसागरसे कुछ अधिक स्थिति थी वहां विमक्ति जुरी की और एकही द्रष्टव्यसामयमें सेभाये और जहां पूरी पूरी स्थिति थी वहां वहां प्रथम बार युगलसे पुण्य विमक्ति की है। (एसी आख्याय के रेको सूत्र २६ ३० ३१.)

तत्पार्श्वराजकार्तिक मुद्रित पुच्छ १११ में ब्रह्म युगलकी एक विमक्ति करना और आगतप्राक्तकी मित्र विमक्ति करना और आरण्यअच्युत को एक पुण्य विमक्तिमें लानेका यह हेतु दिया है कि बारदस्वामीमें प्रत्येक में एक एक इन्द्र और आगतप्राक्त को स्वर्गों में एक इन्द्र और आरण्य अच्युत में एक इन्द्र ऐसे लोक अनुयोगके उपदेशसे इन्द्र और भी कहते हैं। इससे तीन विमक्ति जुरी जुरीही सगन्ध है कि उमास्वामी के मत्वा मत्सर वीरव इन्द्रही। वार्तिक सात पुच्छ १११ में और पुच्छ १११ में इन्द्र बारदसी कहे हैं। राजवार्तिकका सत्य ऐसेही कि तयाबोचरयो पुण्यअच्युतनर्णयत्” है। वार्तिक ३ संस्कृतार्थ है। एष ह्येवा उचरयो पुण्यअच्युतनर्णयत् अतः आगत प्राक्त वीरव इन्द्र ही। एतथा हि लक्ष्यं एक एव इन्द्र कियते।

तथा ते एत आकाशुयोगपरशो न वसुदेवशुभ्रा उक्ताः। एव द्वावत्र स्थिते।
 तया १० च १० चरयोः, पुण्यअच्युतम्, १। अर्धवत् ०
 एकम् ० ह्यया +

एक प्रज्ञान इन्द्र ज्ञानय कल्पित दोमें एक ज्ञानवनामक इन्द्र, शुकसहायक दोमें शुक नामक एक इन्द्र शतारसहस्रार दोमें एक इन्द्र आगत प्राक्त दोमें एक एक ऐसे दो इन्द्र आरण्य अच्युत में एक एक ऐसे दो इन्द्र, कटक (तत्पार्श्वराजकार्तिक मुद्रित पुच्छ १११) उचरयो। आगत प्राक्त दोमें एक एक ऐसे दो इन्द्र (अठारहो) आगत प्राक्तमें आरण्य अच्युतमें दोसे
 अठारयो। आगत प्राक्त दो, आरण्य अच्युतयोः। इति ०
 पुण्य ० चकम्, १। अर्धवत् ० अचरिता
 इतरथा ० वि ०
 अर्धवत् ० वि ०। एका ०। एव ० द्रष्टा ०, कियते ०।

अठारयो। आगत प्राक्त दो, आरण्य अच्युतयोः। इति ०
 पुण्य ० चकम्, १। अर्धवत् ० अचरिता
 इतरथा ० वि ०
 अर्धवत् ० वि ०। एका ०। एव ० द्रष्टा ०, कियते ०।

पं० पद्यालालजी म्यायविकाकर ने "एवंकृत्वा इत्यादि वाक्यका निम्न लिखित अर्थ पुच्छ ६४२में किया है जोसे किये अगिनि होव युगल आगत प्रायत आरु अच्युत इनके विर्ये मित्र मित्र विभक्तिकरि निर्देश है सो सार्थिक होय है । आगत प्रायतयो आरु अच्युतयो। ऐसे मित्रविभक्तिकय निर्देश करा है। सो एकएक कथमें एकएक इन्द्र है । ऐसे आरिहै" । यिकला वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अथुय है क्योंकि यहाँ कथन चौदह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होना) यदि हम इन आगत प्रायत आरु अच्युत स्वर्गोंमें भी आर इन्द्र मानलें और बारह इन्द्र सौधर्मसे सहज्जार स्वर्गगत मानलें तो इन्द्र सोलह हुये आते हैं । परन्तुय पुच्छ ६३३ में और पुच्छ ६३४में स्वयम् म्यायविकाकरजी लिखते हैं कि आगतप्रायत आरु अच्युत स्वर्गों में "आरुनामादेवराज है—आभ्युनामा देवराज है" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरु नामक और अच्युत नामक (चौदह इन्द्रोंकी अपेक्षासे) दोहो इन्द्र हैं पं० पद्यालाल दूनीवालोंने अपनी तत्त्वसौमवीमें और पं० गजानन शाल्कीने पुच्छ १०७८ और १०७९ (सत्याप्यारा अनुवादित और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है ।

तथा०

—जैसे सौधर्म इन्द्र येशाम इन्द्र सालकुमारइन्द्र माहेन्द्र इन्द्र षडनामक इन्द्र षडोत्तरनामकइन्द्र लोतव नामक इन्द्र कपिल नामक इन्द्र शुक्र नामक इन्द्र शतार नामक इन्द्र षडनामक इन्द्र सद्यार नामक इन्द्र, आरु नामक इन्द्र अच्युत नामक इन्द्र (आगत प्रायत नामक कोई इन्द्र नहीं हैं) ते इतने लोक नियोगके उपदेशकरि चौदह इन्द्र कहेगये हैं (राजवार्तिक पुच्छ १३१ से १३३ तक)

र०आरु०।एच्छेत्

—यहाँ(=इह) (नू सिद्धांतकी अपेक्षासे) वारु(इन्द्र कहना)एच्छ है । इसका रेको पुच्छ ५१ ।

इस समस्त दिव्यकीका आरुमसे अंततक सापेक्ष यह है कि(क)प्रथम षडयुगलौ वारु स्वर्गोंकी विभक्तियाँ इससे नहीं की कि सून बहुत बड़बाना (ब) 'आगत प्रायतयोः 'आरुअच्युतयोः की दो विभक्तियोंसे प्रवृत्त है कि एकएक युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरुअच्युतयो विभक्तिये यह भी मूलकता है कि युगल युगल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तकही है (घ) इतत तीन विभक्तियोंसे यह भी मूलकता है कि अधिक देवोंकी उत्पत्ति स्थिति है सो बबल प्रथम षड युगल वारु स्वर्ग तक ही है और आगत प्रायतकी उत्पत्तिस्थित और ही सागर की है अधिक नहीं है और आरु अच्युतकी भी चारैस सागर पूरे की उत्पत्तिस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (च) ये तीन विभक्तियाँ इस बातकीभी योग्य हैं कि प्रथम बारह स्वर्गों एक एक इन्द्र है ऐसे वारु ये हुये और आगत प्रायत चर्वा दूसरी विभक्ति की है एक इन्द्र है और आरु अच्युत चर्वा दूसरी विभक्ति की है चर्वाभी एक इन्द्र है ऐसे तत्त्वार्थराजवा विदके अनुसार लोक अनुयोगतपरेशसे चौदह इन्द्रमी माने हैं परन्तु प्रसिद्ध आरुचर्वा इन्द्र हैं । अन्ताम्बरकारनाममें २५ही माने हैं।

‘त्रैवैयक्तुः’ नवसुः विजय वैजयन्त-जयन्त-

अपरराजितपुरुः ७ सर्वार्थसिद्धिर्गः॥

= (नौ) प्रैवैयक्तोः, नव अनुविद्योः, विजय वैजयन्त जयन्त

= अपरराजित विमानोंमें और (=च) सर्वार्थसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) लोपमें स्वर्गस आदि सेकर अक्षुण्ण पयस बारह स्वप्न हैं अर्थात् इन्द्रोकी अवेष्वास श्वेताम्बर सामान्याके सदृश यहाँ बारह ही कक्ष्य माने हैं (यस्योकि इन्द्रआदिको ब्रह्मणा इतल बारहही स्वर्गोंमें है प्रब्रह्मोत्तर कापिष्ठ महाशक्त सबआर स्वर्गोंके तो इन्द्र म्हा स्रोतव शुक शतार यन्त्रिय इन्द्रोके साथीन मन्त्रसे हैं) अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनक ऊपर अक्षरासीव है इसबातके स्पष्ट करलैके लिये लोपमें आदिसे प्रैवैयक्तोका भिन्न विभक्तिद्वारा पुरण प्रकृत किया है ।

(२) इस समस्त सबका विचार पूर्वक गढ़नेस ज्ञान पड़ता है कि आ ओ विमान पहिले पहिले कहगये हैं ये उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे अनुविद्यो बर्णय गय है (=निर्दिष्टिन है) मुद्रितनसर्वार्थसिद्धि पुष्ट २४५ श्रुतीयानुक्ति पुष्ट १५३ देखो । नवसु शब्द यदि प्रैवैयक्तोय के पहिले मानाजाये ता ‘नवअनुविद्यो’ प्रैवैयक्तोस नांचे दूरे जात है । यदि क्वाभावोकि नवसु शब्द नवप्रैवैयक्तोकी संख्या अतस्मानके लिये है सो फिर ‘नवअनुविद्यो’ गृहेजान है इसलिये मीने नवसु शब्दको ‘प्रैवैयक्तोय’ के परकात् एककर नवअनुविद्योमें ऐसा अनुवाय किया है । यदि यह क्वाभावो कि ‘नवसु’ का पठान् लामिस प्रैवैयक्तोकी संख्या प्रगट नहीं होतो है सो हा नहीं सक्ता क्योंकि ‘नवसु’ शब्द को अथ पूर्वको आकर्षण करते हैं तब प्रैवैयक्तोकी संख्या प्रगट होजाती है अब ऊपर को गृह्य करते हैं तब अनुविद्योका पाठक ‘नवसु’ शब्द होज ता है । यदि ‘नवसु’ शब्द से नव अनुविद्योका अभिप्राय हो तमास्थामोका न होता ता ‘नवसु’ शब्दकी ऊर्ध्वो विभक्ति नहो करते नवसु शब्दको ‘प्रैवैयक्तो के साथ समास एलै करदेते कि ‘नवप्रैवैयक्तोय’ और एक अक्षरका नाम होजाता । हमारे कथनका समर्थन स्तोत्रबालिकके श्लोक बार से (वेको मुद्रित पुष्ट १८२) एसे होवा है कि “प्रैवैयक्तोय नवत नवसुअनुविद्योऽथिय” = प्रैवैयक्तोय नवसु नवसु अनविद्योयु इत्यम् = प्रैवैयक्तोय, सो अनुविद्योमें यह (वृत्ति = विभक्ति मिथसिद्ध) है प्रैव प्रीत्य प्रैवय तथा प्रैवयक सब एकार्थवाचक हैं । अनुविद्योका अर्थ यहाँ प्रतिविद्य है अर्थात् ओ अत्येक विद्यामें हा नव अनुविद्यो क्वाभावता है व विद्या’ शब्द श्लोक अंतमें ‘मा है उसका समास अनु आप्यक साथ करत पर अनुविद्यो’ शब्दकी सिद्धि होती है ।

(३) (पठक) विजय वैजयन्त अपल और अपरराजितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान ऊंचा नहीं है फिर निष्प्रविभक्तिद्वारा सूत्रमें क्यों लिखेय किया (उत्तर)(क) उत्कृष्टार विमानोंमें अपत्य स्थिति कुछ अधिक बलीस सागर है । उत्कृष्ट स्थिति ठेठीस सागर प्रमास है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी उत्कृष्ट और अणय दोनों प्रकारकी स्थिति वेतोस सागर प्रमाण है ।

(ब) सर्वार्थसिद्धि वाला देव एक अथ घारव्य कर मास को जाता है उत्कृष्ट और विमानोंके देव मांका दो मय घारव्य कर मोक्षको जात है ।

(ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रमाय और प्रताप है जतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है ।

(घ) सर्वार्थसिद्धिवाली देव तिरंतत भुतमायनामें शोन (रहते) और उपशोतभेयोकेलिये अथ्यक्त मनुक्यायकप विद्युत्परिणामीकी उत्कृष्टसीधीको प्राप्त होयुके है इत्यादि विद्यगता प्रतिपादनके लिये या अतस्मानके लिये ‘सर्वार्थसिद्धी’ ऐसी मिश्र विभक्ति विजय वैजयन्त अथवापण्डितोयुसे की ।

प० पञ्चालाजी म्याथदियाकर ने "पदरक्षेद्व" इत्यादि वाक्यका मन्त्र लिखित अर्थ पुच्छ ६४२में किया है उसे कैसे जानिसे होय गुणल आगत प्राणत आरु अच्युत इनके विषे मिय मिय विम कि करि निर्वेद्य है सो सार्थिक होय है ॥ आगत प्राणतयो आरु अच्युतयोः वेसे मिद्यविमकिरण निर्वेद्य करार है सो एकरुक् अशुभे एकरुक् इत्यु है ॥ वेसे कारि है ॥ मियका वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अणुद है क्योंकि यहाँ कयन चोपद इत्युके सम्प्रत्यये है (नकि बार इत्युकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होता) यदि इस इन आगत प्राणत आरु अच्युत स्वर्गोंमें भी चार इत्यु मानलें और बार इत्यु लीप्यमसे सहज्जार स्वर्गतक मानलें तो इत्यु सोलह हुये जाते हैं ॥ पदवाच्य पुष्ट ६१३ में और पुच्छ ६१४में स्वयम् ग्याथदियाकरजी लिखते हैं कि आगतप्राणत आरु अच्युत स्वर्गों में "आरुण्यनामा देवराज है" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरु नामक और अच्युत नामक (चोपद इत्युकी अपेक्षासे) दोहो इत्यु हैं प० पञ्चालाजी म्याथदियाकरने अपनी तरफ चोपदीमें और प० गजाधर शास्त्रीने पुच्छ १०७३ और १०७६ (सख्याद्वारा अन्वयार्थित और प्रकाशित तत्पार्थ राजवार्तिक) में किया है ॥

तपसा०

॥

ॐ जैस चोपदी इत्यु पेशान इत्यु साम्प्रदायिक, माहेन्द्र इत्यु ख्यातामक इत्यु प्रद्योत्तरनामक इत्यु लीप्य नामक इत्यु कापिष्ठ नामक इत्यु शुक्र नामक इत्यु शगार नामक इत्यु शगार नामक इत्यु ख्यातामक इत्यु प्रद्योत्तरनामक इत्यु आरु नामक इत्यु अच्युत नामक इत्यु (आगत प्राणत नामक कोरें इत्यु नहीं है) से इतने लोक नियोगके उपदेशकर चोपद इत्यु अशुभये हैं (राजवार्तिक पुच्छ १३१ से १३६ तक)

१४० शब्दः।। अर्थाय १

ॐ

इस समाप्त दिव्यकीका आरुमसे अंततक सारोश यह है कि (क) प्रथम प्रद्युक्तो बार इत्युकी विभक्तिर्ण इतसे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाता (ख) आगत प्राणतयोः "आरुण्यच्युतयोः" की या विभक्तियोंसे प्रगट है कि एकरुक् गुणल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरुण्यच्युतयो विभक्तिसे यह भी मलकता है कि गुणल गुणल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तक ही है (घ) उक्त तीन विभक्तियोंसे पहली मलकता है कि सागरीसे कुछ अधिक देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम चार गुणल बार स्वर्ग तक ही है और आगत प्राणतकी उत्कृष्ट स्थिति की सागर की है अधिक नहीं है और आरु अच्युतकी भी बाईस सागर पूरे की उत्कृष्ट स्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (व) ये तीन विभक्तियों इस बातकीभी घोतक हैं कि प्रथम बार स्वर्गमें एक एक इत्यु है वेसे बार ये हुये और आगत प्राणत अर्था दूसरी विभक्ति की है एक इत्यु है और आरु अच्युत अर्था दूसरी विभक्ति की है वहाँकी एक इत्यु है वेसे तत्पार्थराजका विभक्ति अनुसार लोक अनुयोग उपदेशसे चोपद इत्युकी माने हैं परन्तु प्रसिद्ध बारही इत्यु हैं ॥ अन्ताम्बरकारनाथसे १८ ही माने हैं ॥

‘प्रेयेयकेपुः’ नवसुः विजय वैजय स-मयत्

अपराभितेपुः च ० सर्वाथिसिद्धिः ॥

= (नी) प्रेयेयकामें, नव अनुविशामें, विजय वैजयपत्त ऊपत्त

= अपराजित विमानोंमें और (=च) सर्वाथिसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) सोचमें स्वर्गत आदि लेकर अत्युत्त पर्यंत बाद क्या हैं अपांत रत्नोंकी अपेक्षा श्रेयताकर आत्मायके लक्ष्य यहाँ बाद ही कक्ष्य माने हैं (क्योंकि इन्द्र आदिकी बहसना केवल बादही स्वर्गमें है यद्योत्तर कागिष्ठ महायुद्ध लक्ष्मण स्वर्गीक लो इन्द्र प्रथम ज्ञानव शुक शतार वशिष्ठ रत्नोंके भाषीन क्रमसे हैं) अपथा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर कथावीत हैं इसबातके स्पष्ट करनेके शिव सोचमें आदिस प्रेयेयकोका शिव विमकिष्ठाया पुण्या प्रहण किया है ।

(२) इस समस्त सूत्रको विचार पूर्वक पढ़नेसे ज्ञान यद्वाता है कि आ ओ विभाग पहिले पहिले कहेगये हैं ये उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शुभसे अनुविश बशिये गये हैं (= निर्दिष्टिन हैं) मुनिमसर्वाथिसिद्धि पृष्ठ २४४, द्वितीयापच्छि पृष्ठ १५३ देखा । नवसु शुभ यदि प्रेयेयकेपु के पहिले मानाजाये ता ‘नवसुअनुविश’ प्रेयेयकोस नीचे दूरे जाते हैं । यदि कथाबाविके नवसु शुभ नवप्रेयेयकोकी संख्या अतजानके शिवे है लो फिर ‘नवसुअनुविश बूटेजात हैं इसलिये मैंने ‘नवसु’ शुभको प्रेयेयकेपु के परवात् रखकर ‘नवसुअनुविशोंमें ऐसा अनुवाद किया है । यदि यह कथाबाविके ‘नवसु’ का पश्चात् मानेसे प्रेयेयकोकी संख्या प्रगट नहीं जाती है सो हो नहीं सक्ता क्योंकि ‘नवसु’ शुभ को अब पुन्यको आकर्षण करते हैं तब प्रेयेयकोकी संख्या प्रगट होजाती है अब ऊपर को गृहण करते हैं तब अनुविशोंका शीतक नवसु शुभ हास्य ता है । यदि ‘नवसु’ शुभ से नव अनुविशका अभिप्राय भी उमास्वामीका न होता तो ‘नवसु’ शुभकी अनुरी विमक्ति नहीं करते नयसु शुभकी प्रेयेयके साथ समास ऐसे करते कि ‘नवप्रेयेयकेपु और एक कश्करका ज्ञान होजाता । हमारे कल्पनाका समर्थन इसीकथाविकक इसीक शार से (नको सुद्विष्ट पृष्ठ ३२२) देसे होता है कि ‘प्रेयेयकेपु नवसु नवसुअनुविश’ शिव = प्रेयेयकेपु नवसु नयसु अन्विशेषु इत्यम् ० प्रेयेयके नीचे, लो अनुविशोंमें यह (पृष्ठ = विमक्ति विमक्ति) है प्रेय प्रीय प्रेयेय तथा प्रेयेयके सब एकार्थवाचक हैं । अनुविशका अर्थ यहाँ प्रतिविश है अर्थात् ओ मत्सेक दिशामें हो नव अनुविश कथाजाता है । शिवा’ शुभ किसके अन्तमें ‘वा’ है उसका समास अनु’ शरप्यके साथ करते पर ‘अनुविश’ शुभकी सिद्धि होती है ।

(३) (प्रश्न) विजय वैजयत् अयत्त और अपराजितविमानोंसे सर्वाथिसिद्धिका विभाग ऊंचा नहीं है फिर मित्रविमकिष्ठाया सूत्रमें क्यों निर्देश किया? (उत्तर) (क) उक्तचार विमानोंमें अथय स्थिति कुछ अधिक बत्तीस सागर है । अलक्ष्य स्थिति ऐसीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वाथिसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी अलक्ष्य और अथय दोनों प्रकारकी स्थिति ऐसीस सागर प्रमाण है ।

(ख) सर्वाथिसिद्धि वाजा देव एक नव पारश्व कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्राण हो मय पारश्व कर मोक्षको जाते हैं । (ग) सर्वाथिसिद्धि वासे देवका भित्ता प्रमाण और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानक रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है ।

(घ) सर्वाथिसिद्धिवासी देव निर्दर भ्रममाणामें लोग रहते हैं और उपशान्तमोक्षोक्षेचित्प्रै अणयत्त मक्षकणयत्त विद्युत्तपरिजामोंकी अलक्ष्यवासीको मात होचुके हैं इत्यादि विद्ययता प्रतिपादनके शिवे वा अतजानके शिवे ‘सर्वाथिसिद्धी’ ऐसी मित्र विमक्ति “विजय वैजयत्त अपराजितविमक्तिगुप्ते की ।

पं० पद्मानासजी स्वायद्विपाकर ने "पदच्छेदा इत्यादि वाक्यका मन्त्र लिखित ग्रंथ पृष्ठ ६४२में किया है वहीसे मिले कि दोष युगल आगत प्राणत आरु अश्रुत एकके विर्ये मित्र मित्र विगतिकरि निर्देश है सो साधिका होय है । आगत प्राणतयो आरु अश्रुतयोः येसे मित्रविमिकरूप निर्देश करा है। सो एकएक अक्षरमें एकएक इन्द्र है । येसे चारिहैं । विष्णुवा वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अशुद्ध है क्योंकि यहाँ कथन बौरह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक जाता) यदि हम इन आगत प्राणत आरु अश्रुत स्वर्गोंमें भी चार इन्द्र मानलें और बारह इन्द्र औपम्यसे सतकार स्वर्गतक मानलें तो इन्द्र सोलह हुये जाते हैं ४ गद्व्याप्त पृष्ठ ६१३ में और पृष्ठ ६४२में स्वयम् स्वायद्विपाकरजी लिखते हैं कि आगतप्राणत आरु अश्रुत स्वर्गों में "आरुअमादेवराज है—अश्रुतनामा देवराज है" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरु नामक और अश्रुत नामक (बौरह इन्द्रोंकी अपेक्षासे) दोहो इन्द्र हैं पं० पद्मानास दूनोवालोंमें अपनी तत्त्वकीमर्दीमें और पं० गजाधर शास्त्रीम पृष्ठ १०७० और १०७६ (सव्याधारा समवायित्त और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है ।

तत्त्व० ..

० जैसे औपम्य इन्द्र, पेशान इन्द्र, सालकुमारइन्द्र, माहेन्द्र इन्द्र अथवानामक इन्द्र यज्ञाचरनामकइन्द्र, सौतव नामक इन्द्र काचित्त नामक इन्द्र शुक्र नामक इन्द्र गुणार नामक इन्द्र नक्षत्रार नामक इन्द्र, आरु नामक इन्द्र अश्रुत नामक इन्द्र (आगत प्राणत नामक कोई इन्द्र नहीं है) से इतने लोक नियोगके उपदेशकरि बौरह इन्द्र कहैगये हैं (राजवार्तिक पृष्ठ १११ से ११३ तक)

११०३(अप०)।रक्तनेट

० यहाँ(० इह) (सूत्र सिद्धान्तकी अपेक्षासे) बारह(एक कहना)इन्द्र है । इसका दोहो पृष्ठ ५१ ।

इस समस्त दिव्यकीका आरुमसे अंततक सारीय यह है कि(क)प्रथम अश्रुतयो बौरह स्वर्गोंकी विमिकर्यो इससे बहरी की कि सत्र बहुत बड़जाठा (क) आगत प्राणतयोः आरुअश्रुतयोः की ये विमिकर्योसे प्रगट है कि एकएक युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरुअश्रुतयो विमिकर्ये यह भी असकता है कि युगल युगल की विमिकरि केवल सोलह स्वर्गों तकही है (घ) अस्त तीम विमिकर्योसे पहली अक्षरताई कि सागरसे कुछ अधिकदेवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम यह युगल बारह स्वर्ग तक ही है और आगत प्राणतकी उत्कृष्टस्थित कीस ही सागर की है अधिक नहीं है और आरु अश्रुतकी भी बारह सागर पूरे की उत्कृष्टस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (ब) ये तीम विमिकर्यो इस बातकीभी घोतक हैं कि प्रथम बारह स्वर्गमें एक एक इन्द्र है येसे बारह ये हुये और आगत प्राणत बहरी दूसरी विमिकरि की है एक इन्द्र है और आरु अश्रुत बहरी दूसरी विमिकरि की है वहाँभी एक इन्द्र है येसे तत्त्वार्थराजवा विद्वक्के अनुसार लोक अनुयोगवपदेशत बौरह इन्द्रमी मानेई परन्तु प्रसिद्ध बारहही इन्द्र हैं । अथवाअरुअमादेवमी १०७६ मानेहैं।

‘प्रीयेयकेयुः’-नवसु-विजय वैजयन्त-अपन्त-
 अपरामितेपु-च-सर्वार्थसिद्धिर्।

= (नी) प्रीयेयकामे, नव अनुविशामे, विजय वैजयन्त अपन्त-
 =अपरामित विमानामे और (न्च) सर्वार्थसिद्धिर्मे (रहते) है

(१) सोपमै स्वर्गस आदि लेकर अयुग पर्यंत बारह कल्प हैं अर्थात् इन्द्रोकी अगोलासे ह्येताम्बर आम्नायके सङ्घ यहाँ बारह ही कल्प माने हैं (क्योंकि इन्द्रआदिको ब्रह्मा केवल बारहही स्वर्गोंमें है प्रकोष्ठर कापिष्ठ महाशङ्ख सहकार स्वर्गोंके तो इन्द्र प्रकृ लातय शुक शतार वृष्टिक इन्द्रोके आपीन जलसे है) अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर ब्रह्मणीत हैं इसकात्मेके स्पष्ट करनेके शिव सोपमै आदिस प्रीयेयकोका भिन्न विभक्तिकाप पयण प्रहस्य किया है।

(२) इस समस्त सबको विचार पूर्वक गढ़नेसे ज्ञान पड़ता है कि आ जो विमान पहिले पहिले उभरेगये हैं ये उभर उभर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे अर्थात् यहाँगे गये हैं (= निर्दिष्टित हैं) मुक्तिनसर्वार्थसिद्धि पुष्ट २५, कृतीयायुष्टि पुष्ट १५३ रेखा। नवसु शब्द यदि ‘प्रीयेयकेयु’ के पहिले मानाजाये तो नवअनुविशय प्रीयेयकोल नीचे हुए जात हैं। यदि कहाजायकि नवसु शब्द नवप्रीयेयकोको संख्या अतलानके लिये है तो फिर ‘नवअनुविशय’ पुत्रेजान है इसलिये मैंने ‘नवसु’ शब्दको प्रीयेयकेय के पर्यायत् एकर नवअनुविशयोंमें ऐसा अनुवाद किया है। यदि यह कहाजाये कि ‘नवसु’ का पद्यात् जामेसे प्रीयेयकोकी संख्या प्रगट नहीं जाती है तो ही नहीं संख्या कर्णीकि नवसु’ शब्द को अथ पूर्वको आकर्षण करते हैं तब प्रीयेयकोकी संख्या प्रगट होजाती है अब ऊपर को पूर्व करते हैं तब अनुविशयोका वातक नवसु शब्द हाज्र ता है। यदि ‘नवसु’ शब्द से नव अनुविशयका अभिप्राय श्री शमास्वामीका न होता तो ‘नवसु’ शब्दकी ऊची विभक्ति नहीं करते नवसु शब्दको ‘प्रीयेयकेय’ के साथ समास ऐसे करते कि ‘नवप्रीयेयकेयु’ और एक अङ्कका लाभ होजाता। इससे कथनका समर्थन स्तोत्रवाकिकके श्लोक चार से (नको मुद्रित पुष्ट ३२२) ऐसे होता है कि ‘प्रीयेयकेयु नवसु नवस्वर्गुशिरोधिय = प्रीयेयकेयु नवसु नवसु अनुविशये १५२ = प्रीयेयकेय नोमै, नो अनुविशोमै’ यह (युक्ति = विभक्ति मिश्रमित) है प्रीयेयकेय प्रीयेय तथा प्रीयेयकेय सब एकार्थवाचक हैं। अनुविशयका अर्थ यहाँ प्रतिविशय है अर्थात् जो प्रत्येक विशयमें हो वह अनुविशय कहाजाता है। प्रीयेयकेय प्रीयेयकेय अर्थमें का’ है उसका समास अनु’ अथयके साथ करते पर अनुविशय शब्दकी सिद्धि होती है।

(३) (नल) विजय वैजयन्त अथत् और अपरामितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान ऊँचा नहीं है फिर मिलविभक्तिकाप सूत्रमें क्यों निर्देश किया (उपर/ऊ) उक्तचार विमानोंमें अल्प स्थिति कुछ अधिक कर्णीस सागर है। उक्त स्थिति देवीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहतेवाले देवीकी उक्त स्थिति और अथय देवीों प्रकाशकी स्थिति देवीस सागर प्रमाण है।

- (ब) सर्वार्थसिद्धि यात्रा देव एक भव पारथ्य कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्राण कर मोक्ष को जात हैं।
- (ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रमाय और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है।
- (घ) सर्वार्थसिद्धिवासी देव निर्तर भूतभावमामें लीन रहते हैं और उपरान्तमेकीकेविषे अत्यन्त मरुभयानकप विभुजपरिलामोंकी शक्तिप्रचीटीको प्राप्त होवुके हैं इस्यादि विशयता प्रविगायनके लिये या अतलानके लिये “सर्वार्थसिद्धी” ऐसी मिल विभक्ति “विजय वैजयन्त अथयानुविशयेगुसे की।

पूजाविवाही अगुरुप्रसाय नहीत ह्य पदच्छेद और विपत्पर्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिश्च शब्दयः हिन्दी अनुवाद अध्याय ४ सूत्र १६
 कथमेवा सौधर्मादिशब्दाना कल्पामिधान ? चातुरर्थिकेनाणा, स्वभावतो वा कल्पस्याभिधानं
 भवति ॥ अथ रुथमिन्द्रामिधान ? स्वभावत साहचर्याद्वा ॥ तत्

रूपनुवाद-कथमेवाप्याप्तः सौधर्मं आदि शब्दानाम् ।
 कल्प अभिधानम् । चातुरर्थिकेनैः अणारैः

=कैसे इन सौधर्म आदिक (सोखर) शब्दोंका (अर्थात् सोखर स्वर्गोंका)
 =कल्प नाम हुआ ? (उपर) चातुरार्थिक अणु(=अ प्रत्यय)करि अर्थात् न्याकरणके
 तद्विधप्रकरणमें (=संज्ञामें प्रत्यय शिक्षाकर अर्थ बदलने रूप प्रकरणमें)

चातुरर्थिक प्रकरणके (=वह अधिकार जिसमें अण् अच्-उक्-बुञ्-क्षण् इत्यादि बहुवचसे प्रत्ययोंसे प्रत्येकप्रत्यय चारचार
 (क) 'वह जिसमें हो (त्) ' वनायागया (ग) ' उसका निवास (घ) ' अद्दूर अर्थोंमें विधान कियाजाता है उन प्रत्ययोंसे इस)
 अण् (प्रत्यय) द्वारा (वह जिसमें हो-उसका निवास-इन अर्थोंमें लेकर वा प्रकरणकरि)

वा स्वभाव अकल्पस्वरूप अभिधानम् ॥ भवति च

=अथवा (=वा) स्वभावसे, कल्पकी संज्ञा वा नाम (अभिधान) होता है यावार्थ
 सौधर्म आदिकी कल्पसंज्ञा चारै अण् प्रत्यय 'वह जिसमें हो' 'उसका निवास'
 अर्थोंमें लेकर सुधर्मा, ईशान, सनत्कुमार, मरेन्द्र आदि शब्दोंमें ययायोग्य
 लगाकर करलेनी चाहिये अथवा सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, मारेन्द्र आदि
 स्वभाविक नाम हैं यों समझलेना चाहिये

अण् अकल्प अद्दूर अभिधानम् ॥ स्वभावत
 साहचर्यादेरैः वा ०

=परन (=अथ) इन्द्रका नाम कैसे है ? (उपर) स्वभावसे, प्रकृतितसे,
 =अथवा ससर्गतासे, साहचरितासे, उसमें रहनसहनसे (अर्थात् जैसा अयुक्त कल्प

वा स्वर्ग का नाम है वैसा उस स्वर्ग वा कल्प के इन्द्रका नाम है)
 =सौ (अर्थात् कल्पका अभिधान, नाम अण् प्रत्यय करि अथवा स्वभावसे और
 इन्द्रकी संज्ञा वा नाम स्वभावसे अथवा साहचर्यसे)

तद् ॥

[१] इन अण् इत्यादि ४-५५० । [२] तदस्मिन्प्रत्ययस्थिति रेणु तद्यस्मिन् ४-२-१७७ । [३] तेन मित्त्वं कम् ४-२-१६० । [४] तल्प निवास ४-२-१६६ ।
 [५] अद्दूरमथ ४-२-५० । उक्त पाठ सूत्रोंको आद्यायायी पाणिनिमुद्रितमें देखा । इन्हो सूत्रोंके समानार्थक मित्र-निश्चित सूत्र जैसेन्द्रक्याहणमे
 देखा चाहिये । ये सूत्र इस प्रकार हैं कि
 [६] पुनश्चण्ड इत्यादि । ३-२-११ । [७] तदस्मिन्प्रतीति रेणु ओ ३-२-५५० । [८] तेन मित्त्वं च । ३-२-५५६ । [९] तदस्मिन्प्रतीतिरेणु ३-२-११०

एताभिवासी भगवन्महापद्म इति कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सारित सर्वायसिद्धिका शब्दश्च हिन्दीभ्रानुपाद । अध्याय ४ सूत्र १६

कथमिति चेदुच्यते—सधर्मा नाम सभा, साऽस्मिन्नस्तीति सौधर्म कल्प । तदस्मिन्नस्तीत्यण्
तत्कल्पमाहचर्यादिन्द्रोऽपि सौधर्म ॥ ईशानो नाम इन्द्र रवभावत । ईशानस्य निवास कल्प
ऐशानस्तस्य निवास इत्यण् । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि ऐशान ॥

कल्प इति च वेद उच्यते सुधर्माः नामः ॥

सधर्माः साः ॥ अस्ति इति च सौधर्मः । कल्पः ।

“तदस्मिन्नस्तीत्यण्” (= अत्र) ॥ अस्मिन् इति च अण् ॥ (= तदस्मिन्नस्ति) ऐसे (अध्यायार्थीके चौथ अध्याय पाद दो सूत्र ६७ से और

अन्यत्र व्याकरण के तीसरा अध्याय पाद दो सूत्र ५८ से)

अण् (प्रत्ययको ‘वा भिसर्गे हा’ इस अर्थमें प्रयोग करके सौधर्म शब्द सिद्धि किया) है । मावार्थ सुधर्मा शब्दमें

अण् प्रत्ययका यह प्रभाव है कि सुधर्मा शब्दके ‘व’की वृद्धि सद्वा होजाती है और अण्प्रत्ययका अ जोड़नाला है

तब सौधर्मा + अ एसा रूप हुआ क्योंकि ‘अण्’ के ‘ण्’ का इव सन्नक होनेसे खोप होजाता है शेष ‘अ’ रहता है

अण् प्रत्ययका यहभी प्रभाव है कि शब्दके सरोमेंसे अतिप्रकारवालेभाग वा लंदको मय वस भागके व्यंजनको

यदि कोई व्यंजन उस भागमें होता गिरादेता है और अण् प्रत्ययका अ उस शब्दके शेषभागमें जुड़जाता है इसलिये

सौधर्मा शब्दका ‘आ’ गिरकर और अण्का अ विद्यनेस सौधर्म शब्द ऐसे सिद्ध हुआ कि सौधर्म + अ = सौधर्म

उस (सौधर्म) कल्पमें रहन सहन से अथवा सौधर्म कल्पकी सहचरितासे

तत्-कल्प-साहचर्यादि ॥

इन्द्रोऽपि च सौधर्मः ।

ईशानः नामः ॥ इन्द्रोऽपि स्वभावतः ॥ ईशानस्य निवासः ॥ ईशान नामा इन्द्र है सो स्वभावसे है । ईशान इन्द्रका निवास

कल्पः ऐशानः । तस्य निवासः ॥

इसी सूत्रसे

= एते अण् (= अ) प्रत्यय (निवास अर्थमें) है कि ईशान + अण् = ऐशान + अ = ऐशान बना

इति च अण् ।

तत् साहचर्यादि ॥ इन्द्रोऽपि च ऐशानः ।

= उस (ऐशान कल्प, स्वर्ग) में रहनसहनसे अथवा सहचरितासे इन्द्र भी ऐशान है ।

पुन्यनिवासी अकारुपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और निपतत्यर्थसरित सर्वाथसिद्धिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद अध्याय ४ सूत्र १६

सनत्कुमारो नाम इन्द्र स्वभावत । तस्य निवास इत्यण् । सानत्कुमार कल्प । तत्साहचर्या-
दिन्द्रोऽपि सानत्कुमार ॥ महेन्द्रो नामेन्द्र स्वभावतस्तस्य निवास कल्पो माहेन्द्र । तत्साहचर्या-
दिन्द्रोऽपि माहेन्द्र । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ आगमापेक्षया व्यवस्था भवतीति, उपर्युपरीत्यनेन
द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्य ॥ प्रथमौ सौधमैशानकल्पौ, तयोरुपरि सानत्कुमारमाहेन्द्रौ तयोरु-
परि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरो, तयोरुपरि लान्तवकापिष्ठौ, तयोरुपरि

सन कुमारो नामेन्द्रः । इन्द्रोऽस्वभावत ० । तस्यनिवास'

= सानत्कुमार नाम इन्द्र (हे सो) स्वभावसे है । 'तस्य निवास'

इति ० अण्

= ऐत अण् (=अ) प्रत्यय (निवास अर्थमें) होकर (सनत्कुमार से, सानत्कुमारकनकर)

सानत्कुमारोऽपि कल्पः । तत्साहचर्यादि ॥

= सानत्कुमार स्वर्ग हुआ । उस (सानत्कुमार कल्प) में रहनेसे वा रहनसहनसे

इन्द्रोऽपि सानत्कुमारः । महेन्द्रो नाम इन्द्रः ।

= इन्द्र भी सानत्कुमार है । महेन्द्र नाम इन्द्र है

स्वभावतः ० नस्य निवासः कल्पः माहेन्द्रोऽपि

= सो स्वभावसे है उसका निवासस्थान स्वर्ग माहेन्द्र है ('तस्य निवास') इस सूत्र

द्वारा ऐसे अण् प्रत्यय निवास अर्थमें होकर महेन्द्र से माहेन्द्र शब्द बनाया)

तत्साहचर्यादि ॥ इन्द्रोऽपि माहेन्द्रः ।

= उस (माहेन्द्र कल्प)के साहचर्यासे इन्द्र भी माहेन्द्र है ।

एतत् ० उपरत ० अण् ०

= इस प्रकार यहाँ (माहेन्द्र कल्प) से आगे (उपरत) भी

= (अस-असो)पर इत्यादि सोछार स्वर्ग पर्यंत इन्द्र तथा कल्पकानाम/ओइनाचारिये

आगम-अण् अण् ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥

= आसक्ति अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥

अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥

= आसक्ति अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥

अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥

= ऊपर ऊपर इस (वाक्य) करि दो दो (स्वर्गों) का

अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥

= सम्यग् जानना योग्य है । परिले दो सौधर्म और पेशान कल्प है ।

अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥

= उनके ऊपर सानत्कुमार और माहेन्द्र है ।

अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥

= तिनके ऊपर ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर है ।

अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥ अण् प्रत्यय ॥

= उनके ऊपर वा तव और कापिष्ठ है । तिनके ऊपर

शुक्रमहाशुक्रो, तयोस्परि शतारसहस्रौ, तयोस्परि आनतप्राणौ, तयोस्परि आरथाच्युतौ ॥
 अथ उपरि च प्रत्येकमिन्द्रसम्बन्धो वेदितव्य । मध्ये तु प्रतिद्वयमेक ॥ सौधमशानसानलुमार-
 माहेन्द्राणा चतुर्णां चत्वार इन्द्रा । ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोरेको ब्रह्मेन्द्रो नाम । लान्तवकापिष्ठयोरेको
 लान्तप्राण- । शुक्रमहाशुक्रयोरेक शुक्रसञ्ज्ञ । शतारसहस्रयोरेक शतारनामा । आनतप्राण-
 तारगान्धुतानां चतुर्णां चत्वार । एतं कल्पवासिनां द्वादश इन्द्रा भवन्ति ॥ जम्बूद्वीपे महामन्दरो

=शुक्र और महाशुक्र हैं ॥ तिनके ऊपर शतार
 =और सहस्रार हैं । उनके ऊपर आनत और माणत (कल्प) हैं
 =तिनके ऊपर आरण और अच्युत हैं । नीचे (चार स्वर्गों में)
 =और ऊपर(चार स्वर्गोंमें) एकएक (=मत्येकश्) इन्द्रका सम्बन्ध जानना चाहिये
 अर्थात् सौधम, पशान, सानतुमार, माहेन्द्र, इन मत्येक मत्येकमें एकएक इन्द्र
 पसचार और आनत, माणत, आरण, अच्युत मत्येकमत्येकमें एकएक ऐसे आठइन्द्र हैं
 =और (=इ) मय (आठ स्वर्गों) में प्रति युगल एक (एक) इन्द्र है सौधमपेशान
 =सानतुमार और माहेन्द्र चार (स्वर्गों) के चार
 =इन्द्र हैं, प्रकलोक और प्रकलोपर का एक प्रम
 =नाम इन्द्र है, लान्तव कापिष्ठ (कल्प) का एक
 =लान्तव नाम (इन्द्र) है, शुक्र और महाशुक्र (स्वर्गों) का एक
 =शुक्र नामा (इन्द्र) है, शतार सहस्रार का एक
 =शतार नामा (इन्द्र) है, आनत, माणत, आरण और अच्युत
 =चार (स्वर्गों) के चार (इन्द्र) हैं, इस प्रकार स्वर्गों में निवास करनेवाले(श्व/निके
 =चारर इन्द्र होते हैं ॥ जम्बूद्वीपमें सुमेरुपर्वत

शुक्र-महाशुक्रोऽपि ॥ उपरिऽशुक्रा
 तारगान्धुऽपि ॥ उपरिऽआनत माणतौ ॥
 मयाऽउपरिऽआरण अच्युतौ ॥ ॥ अथाऽ
 उपरिऽमयऽप्रकलम् ॥ इन्द्रसम्बन्ध-वेदितव्य ॥
 मयम् ॥ मति-द्वय ॥ एक ॥ ॥ तारगम-पशान
 सानतुमार-माहेन्द्राणाम् ॥ चतुर्णाम् ॥ चत्वार ॥
 इन्द्रा ॥ ॥ ब्रह्मलोकयोरेकरया ॥ एक ॥ प्रम
 इन्द्र ॥ नाम ॥ लान्तवकापिष्ठयोऽएक ॥
 लान्तव आरण ॥ शुक्र-महाशुक्रयोऽएक ॥
 शुक्र-मय ॥ शतार सहस्रारयोऽएक ॥
 शतारनामाऽआनत माणत आरण अच्युतानाम् ॥
 चतुर्णाम् ॥ चत्वार ॥ ॥ १११० ॥ अण-नामिनाम् ॥
 द्वादश ॥ चतुर्णां चत्वारि ॥ नन्दरीपेऽमहामन्दर ॥

(१) (एन पाठ) माणतयोऽपि एक, पुत्रक सप्तमी दो बचन माणतक का के इतानमें में" ऐना अनुवाद भी हासका है जैसे प्रक और मयापर से एक प्रम नाम इन्द्र है (एय दि ४ (२) 'मय पर अणय है जैसे विमास्यो नाम भगाधिपतिः कुम्भारणमणवे (पैपकाय पुच्छ ३०५ देवा)

योजनसहस्रावगाहो भवति नवनवतियोजनसहस्राच्छ्रय । तस्याधस्तादधोलोक । बाहुल्येन तत्रप्रमाण—(मेरुप्रमाण) स्तिर्यधप्रसृतस्तिर्यग्लोक । तस्योपरिष्टादूर्ध्वलोक । मेरुचलिका चत्वारिंश-धोजनोच्छ्रया । तस्या उपरि केशान्तरमात्रे व्यवस्थितमृजुविमानमिन्द्रकं सौधर्मस्य ॥ सर्वमन्य-स्रोत्रानुयोगाद्द्वेदितव्यम् ॥ नवसु त्रैवेयकेष्विति नवशब्दस्य पृथग्वचनं किमर्थम् ? । अन्यान्यपि नवविमानानि श्रुनुदिशसञ्ज्ञकानि सन्तीति ज्ञापनार्थम् ।

याजनस्यसु अथगाः॥१॥अथविश्वरुचि-

याजनस्यसु उच्छ्रयः॥२॥तस्यैअपस्ताव०

अपोलोकः॥३॥बाहुल्येनः॥

रुच्यमाणः॥४॥मेरुप्रमाणः॥५॥तिर्यक् प्रसृतः॥६॥तिर्यग्लोकः॥७॥

तस्यः॥८॥उपरिष्ठतः॥९॥उर्ध्व लोकाः॥१०॥मेरु चूलिकाः॥११॥

कन्तारिण्यु याजन उच्छ्रयाः॥१२॥तस्याः॥१३॥उपरिः॥

पशान्तरमात्रेः॥१४॥व्यवस्थितः॥१५॥श्रुभुविमानमिन्द्रकः॥१६॥सौधर्मस्यः॥१७॥

सर्वम्॥१८॥अन्यतुल्लोक अनुयोगात्॥१९॥चक्रितव्यम्॥२०॥

नवसुः॥२१॥त्रैवयक्युः॥२२॥गतिः । नव शुब्दस्यः॥

पृष्णः॥२३॥नवनम्॥२४॥किम्॥२५॥अर्थम्॥२६॥ ?

नवसु को सप्तमी बहुवचन में जिस प्रकार किया और 'त्रैवयकेयु' को सप्तमी बहुवचन द्वारा कारक किया यदि एकरी में दोनों को मिलाकर एकरी विभक्ति करते तो "सु" अक्षर न्यून होगा ।
अर्थानि॥१॥अपि०नव-विमानानि॥२॥
अनुदिशसञ्ज्ञकानि॥३॥सन्ति॥इति०ज्ञापन अर्थम्॥४॥

(१) उपरिष्ठात् और उपरि दोनों अर्थ्य है इनके साथ (अथे पश्चात्) कृतिवा और यष्टी विभक्तियां मिलती हैं । (२) सुनेक के ऊपर आनीत योजन की चूलिका है सो तिर्यग्लोक का भाग है ।

- =सहस्र योजन पृथिवीमें प्रतिष्ठ होता है (और) निन्यानवे
- =सहस्र योजन की ऊर्चाई है । जिस (सुमेरु पर्वत की ऋ) के नीचे
- =अपोलोक है यदुत्थायवसे अथवा प्रसुरवासे वा बहुलतासे
- =उसके परिमाण (सुमेरुके शरावर मौदाई) तिर्यक् कूलवां तिर्यग्लोक है
- =उस (सुमेरु)के ऊपर उर्ध्व लोक है । मेरु पर्वतकी चूलिका
- =पश्चीस योजन ऊर्चाई वाली है जिस (चूलिका) के ऊपर
- =शालक अन्तरमात्र विष्ठा हुआ श्रुजुनामा इन्द्रक विमान सौधर्म(स्वर्ग)का है
- =अन्य(=अन्यतु)सप्तसु वर्णन लोकनियोग(=लोकमें प्रचलित)अथसे जानानाचारिये
- =(मरन) "नवसु त्रैवेयकेयु" इस प्रकार नव शुब्दके (त्रैवेयक शुब्दसे)
- =न्यारी विभक्ति किस लिये है अर्थात् मरन यह है कि जब नवत्रैवेयक है तो

"नवत्रैवेयकेयु" ऐसा मिलाकर एकरी बहुवचन कारक वा विभक्ति क्यों न की जाय ?
यदि एकरी में दोनों को मिलाकर एकरी विभक्ति करते तो "सु" अक्षर न्यून होगा ।
अर्थानि॥१॥अपि०नव-विमानानि॥२॥
अनुदिशसञ्ज्ञकानि॥३॥सन्ति॥इति०ज्ञापन अर्थम्॥४॥

देशादेशान्तरप्रसिद्धे तु गति । शरीरं वैक्रियिकमुक्तम् । लोभकपायोदयाद्विषयेषु सङ्ग परिग्रहः ।
मानरुपायादुत्पन्नोऽहङ्कारोऽभिमान । एतैर्गत्यादिभिर्पुरुषं परिहीना ॥ देशान्तरविषयक्रीडारतिप्र-
कर्षभानादुपर्युपरि गतिहीना ॥ शरीरं सौधमैशानयोर्देवाना सत्तारत्निप्रमाणम् ॥ सानलुमारमा-
हेन्द्रयो पडरत्निप्रमाणम् ॥ ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तःकापिष्ठेषु पञ्चारत्निप्रमाणम् ॥ शुक्रमहाशु-
क्रशतारसहस्रैरेषु चतुरत्निप्रमाणम् ॥ आनत प्राणतयोरहंचतुर्थारत्निप्रमाणम् ॥ आरणाच्युत-
योस्त्वरत्निप्रमाणम् ॥ अयोधैवेयकेषु

दुःखनुशादा-दद्यात् १-दुःख मन्तर-माति हेतु १

गति १-गुणोपर्युपर्यु १-वैक्रियिकमुक्तम् १-१

उक्तम् १-लोभ कपाय-उदयात् १

विषयेषु १-साग १-परिग्रह १-मान रुपायात् १

उत्तर १-महाद्वार १-कामिमान १-एतै १-गति-

कादिभि १-उपरि १-उपरि १

रीना १-देशान्तर-विषय-क्रीडा रति

नरुप भ्रमात् १-उपरि १-उपरि १-गति हीना १

शरीरम् १-सौधमैशानयो १-देवानाम् १-सत्त-भरत्नि

प्रमाणम् १-सानलुमार-आन्द्रयो १-एतै १-भरत्नि प्रमाणम् १-१

प्रमलोक-नकोषर ज्ञा-त-कापिष्ठेषु

पञ्च भरति-नमाणम् १-शुक्र-महाशुक्र शतार

सत्तारम् १-पडरत्नि-प्रमाणम् १-आनत-माणतयो १-१

मर्द-वतु-भरत्नि प्रमाणम् १-आरण अच्युतयो १

प्रत्नि प्रमाणम् १-अप अत्रैवेयकेषु १

=एक क्षयसे अ-प चैक मत्तिका कारण

=सो गति भयबा गमन है ॥ (देवों का) शरीर वैक्रियिक है

=सो (दूसर अथाय के ४६ वाँ सूत्रमें) कथित है । लोभ तथा कपायके उदयसे

=विषयोंमें सम्बन्ध सो परिग्रह है । मान और रुपायक उदयसे

=उत्पन्न दुःखा गष सो अभिमान है । इन गति

=शरीर, परिग्रह, अभिमानकरि, ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग मति पदछार मति

=गते करते हैं । अन्य लोभ-विषय-क्रीडन मीति की

=शुद्धताके न होनेस ऊपर ऊपर गमन हीन है ।

=शरीर सौधमैशान स्वर्गमें देवोंका सात षाय

=नमाण है । सानलुमार माहेन्द्र स्वर्गमें श्वर षाय प्रमाण (शरीर) है ।

=प्रमलोक तथा प्रमोचर, खान्त्व तथा कापिष्ठ (स्वर्गों) में

=सहस्र इस्त परिमाण (शरीर) है । शुक्र तथा महाशुक्र शतार तथा

=सहस्र स्वर्गमें चार इस्त प्रमाण (शरीर) है । आनत प्राणत स्वर्गमें

=साहे हीन षाय परिमाण (शरीर) है । आरण अच्युत स्वर्गमें

=वीन षाय पाप (शरीर) है । नीचली प्रैवेयक (तिकड़ी) में

शरीरवसनाभरणादिदीप्ति द्युति । लेश्याउक्ता । लेश्याया विशुद्धिलेश्याविशुद्धि । इन्द्रियाणामवधेश्च विषय इन्द्रियावधिविषय । तेभ्यस्त्वैर्वाऽधिका इति ॥ तस्मिन्नूपर्युपरि प्रतिबल्य प्रतिप्रस्तारं च वैमानिका स्थित्यादिभिरधिका इत्यर्थ ॥ यथा स्थित्यादिभिरुपर्युपर्यधिका एवं गत्यादिभिरपीत्यतिप्रसङ्गे तन्नित्वुर्यर्थमाह-

॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

शरीर-वसन आभरण-आदि-नीप्तिः ॥ पुतिः ॥

शरीरपरिः ॥

उक्ताः ॥ लेश्यायाः ॥ विशुद्धिः ॥

लेश्यायाः ॥ इन्द्रियाणाम् ॥ ॥ अवधेः ॥ च ॥ विषयः ॥ इन्द्रिय-सो लेश्या विशुद्धिः ॥ इन्द्रियोंका और अवधिज्ञानका विषय हैं सो इन्द्रिय अवधिविषय है ॥ तिन(स्थिति, प्रमाण, सुख, दुःख, इन्द्रियविषय, अवधिविषय) और याना तिन(स्थिति, प्रमाण, सुख, दुःख, इन्द्रियविषय, अवधिविषय) करि

वा ॥ वे ॥

अधिकान् ॥ इति ॥ अस्मिन् ॥ उपरि ॥ उपरि ॥

प्रति ॥ अल्पम् ॥ प्रति ॥ अल्पम् ॥ च ॥ वैमानिकाः ॥ स्थिति-

आदिभिः ॥ अधिकाः ॥ प्रति ॥ अर्थः ॥ यथा ॥ स्थिति

आदिभिः ॥ उपरि ॥ उपरि ॥ अधिकाः ॥ एवम् ॥ गति-

आदिभिः ॥ अपि ॥ प्रति ॥ अतिप्रसङ्गे ॥

तत्-निवृत्ति-अर्थम् ॥ आराध

सूत्रम्-

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीना ॥ २१ ॥

(वैमानिका उपर्युपरि) गति-शरीर-परिग्रह-अभिमानत हीना भवन्ति ॥

सुधार्यः-वैमानिकान् ॥ उपरि ॥ उपरि ॥

गति-शरीर-परिग्रह अभिमानत ॥ हीनाः ॥

=शरीर वस्त्र तथा मूपण अवस्था गरना आदिक का प्रकाश सा द्युति है

=लेश्या अर्थात् रूपयके उदयकरि रंभित योगों की प्रवृत्ति

=(इससे अध्यायके छठवां सूत्रमें) वर्णित है । लेश्याकी उज्ज्वलता वा विशुद्धता

=सो लेश्या विशुद्धि है । इन्द्रियोंका और अवधिज्ञानका विषय हैं सो इन्द्रिय

=अवधिविषय है ॥ तिन(स्थिति, प्रमाण, सुख, दुःख, इन्द्रियविषय, अवधिविषय) और

=अयना तिन(स्थिति, प्रमाण, सुख, दुःख, इन्द्रियविषय, अवधिविषय) करि

=आधिक अधिक है जैसे तिस (ऊर्ध्वलोक) में ऊपर ऊपर

=स्वर्गस्वर्ग प्रति और पटल मति वैमानिक देव स्थिति

=आदि करि अधिक अधिक है ऐसा आशय है जैसे स्थिति

=आदि करि ऊपर ऊपर अधिक अधिक है ऐसे गमन

=आदिकरि भी इस प्रकार मति प्रसक्ति अर्थात् विपरीत समन्वय माने पर

उठस (विपरीत प्रसक्ति) के निषेध के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

पीता च पद्मा च शुक्ला च ता पीतपद्मशुक्ला । पीतपद्मशुक्ला लेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः ॥

कथं ह्रस्वत्वम् ? ।

सौम्यं येषाम् पीतलेश्याबाले देव और सानसुमार मारेन्द्रमें पीत पद्म दोनों लेश्याबाले देव और शक्रलोक शक्रोत्तर और धान्त्वष कापिष्ठमें पद्मलेश्याबाल देव, शुक्र महाशुक्र और शतार सरस्वतमें पद्म शुक्र दोनोंलेश्याबाल देव ज्ञानत माणत और आरण्ण अच्युत और नभ प्रैपद्मोंमें शुक्रलेश्याबाले देव और नभ भनुविशमें और पाँच भनुवर्तोंमें देव परम शुक्र लेश्या बाले हैं ॥

वृष्यनुबादः-पीताः१॥पद्मपद्माः१॥पद्मशुक्लाः१॥पद्म
ताः१॥पीत-पद्म-शुक्लाः१॥पीत-पद्म शुक्लाः१॥लेश्याः१॥येषाम्१॥
तः१॥पीत-पद्म शुक्र-लेश्याः१॥
=और पीता और पद्मा तथा शुक्रम है
=वे पीत-पद्म शुक्रलेश्याबाले(देव)हैं (यह वाक्य इन्द्रगर्भित बहुव्रीहि समासमें है)
अर्थात् 'पीतपद्मशुक्लाः१' यह वाक्य स्त्रीलिंग द्वन्द्व समासमें है और 'पीतपद्मशुक्र-
लेश्याः१' यह वाक्य पुरुषलिंग द्वन्द्व समास गर्भित बहुव्रीहिसमासमें है । सारांश
पीत, पद्म, शुक्रलेश्या भिन्नक हैं वे पीत-पद्म-शुक्रलेश्या स्रिति देव हैं ॥
=(प्रश्न) ह्रस्वपना वा लघुपना (पीता, पद्मा और शुक्ला शब्दों के) कैसे हुआ ?

कथं ह्रस्वत्वम् ? ॥ १

इस प्रश्न का दोहरा तात्पर्य है प्रथम यह कि पीता-पद्मा-शुक्ला तीनों शब्दोंका द्वन्द्वसमास किया है तो 'पीतापद्माशुक्लाः१' ऐसा रूप होना चाहिये क्योंकि द्वन्द्वसमासमें जो शब्द सधुबय क्रिये जाते हैं वे ह्रस्व ही होते हैं और दीर्घ ही तो दीर्घ बने रहते हैं द्वन्द्वसमासमें पूर्व पदका कभी ह्रस्व नहीं होता है । जैसे एरिच इररच=रिचरौ(विष्णु और मादेव)अश्वरच कृष्याश्च शुकुष्णौ(शिव औरकृष्ण) माता व पितरा व=माता पितरौ (मा और बाप) इसलिये 'पीतापद्माशुक्लाः१' रूप होना चाहिये । दूसरा तात्पर्य है कि यदि हम 'पीतापद्माशुक्लाः१' द्वन्द्व समासमें 'लेश्या' शब्द भिखाकर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास कर दें तो 'पीतापद्मशुक्ललेश्याः१' ऐसा रूप होना चाहिये 'शुक्ला' शब्दका 'शुक्र' ह्रस्व कैसे हुआ ॥ (उत्तर)

(उपर्युपरि वैमानिका) पीत-पद्म-शुक्लेश्या द्वि-त्रिशोपेपु (यथासंख्यम्) (भवन्ति)

उपरिउपरि वैमानिकाः पीत-पद्म-शुक्लेश्याः।

यथासंख्यम् ०६६

त्रि

शोपेपुः

=ऊपर ऊपर रहनेवाले वैमानिक देव पीत पद्म और शुक्लेश्याओं के पारक
 =क्रमसे (साधान्यपनेसे) दो (युगल सौचर्मशान और सानखुमार गारिन्द्र) में
 =नया वीन (युगल शस्त्रोक्त-शमोषर और जांतप ऋषिष्ठ और शुक्र महाशुक्र) में
 =बचेहुये (शवार-सहस्रार और आनक-आणक और भारण अस्पृत तथा नवत्रैवेपक
 और नव अनुविशों और पंच अनुचर)निमें हैं परन्तु त्रिशोपेपु रीति से

केवल उपर्यु. यह अनुपात होसकता है कि पीत पद्म और शुक्ल शेष्यायें ही प्रकार प्रकार (भिन्न भिन्न-स्वर्णों) में होती हैं यह सुविप्रद नहीं है न किती
 वरपर्यं को स्पष्ट रूपसे प्रगट करता है। पवित्र आकुर प्रसादजी ने 'सौचर्मसि' कृत्यों में प्रयुक्त दो कृत्यों में तो पीत शेष्या है, और उसके आगे तीन
 कृत्यों के देवों में पद्मशेष्या है, और आगे दो देवों में शुक्लेश्या है" अर्थ किया है जो 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वादीया'के अनुकूल है इस सूत्रके पाठानुसार
 नहीं है। आ समयमें आया है वही सिद्धा है त्रिशोपेपु रूपसे पाठकण्ठ अन्वेषण करते हैं।

रोगों नमाओंमें सूत्रका अर्थ और उपयुक्त दिप्यकीसे और हमारे यहां के सूत्र अर्थ से (जो त्रिशोपक्य से किया है) इस प्रकार प्रगट होता है कि
 ० श्योताम्बर आम्ब्यायमें सौचर्म-येथान स्वर्णोंमें पीत शेष्या है वही पीतशेष्या रिपम्बर आम्ब्यायके अनुकूल सौचर्म-येथान कृत्योंमें है
 ० श्योताम्बरीय माप्योमें सातकुमार-मादेश्च कृत्योंमें पद्मशेष्या है। पीतशेष्या और पद्मशेष्या श्योताम्बर समाजके अतसार सातकुमार मादेश्चमें है
 ० श्योताम्बर सप्तश्यायमें प्रतलाक स्वर्णोंमें पद्मशेष्या है वही पद्मशेष्या श्योताम्बर आचार्यों के अनुकूल अष्टशोके स्वर्ण वा कथयमें है
 ० श्योताम्बर आचार्योंमें आणक कृत्योंमें शुक्लेश्या है परन्तु पद्मशेष्या श्योताम्बर आम्ब्यायके अनुकूल आणक (=आणक) स्वर्णोंमें है
 ० श्योताम्बर समाजमें महाशुक्र सहस्रार कृत्योंमें शुक्लेश्या है परन्तु पद्म शुक्लेश्यायें श्योताम्बर (विद्यापठक अनुसार महाशुक्र-सहस्रारस्वर्णों में है
 ० श्योताम्बर माप्योमें आनक माणक अस्पृत-नवत्रैवेपक-पंच अनुचरोंमें शुक्लेश्या है वही शुक्लेश्या श्योताम्बर आचार्योंमें नवभानुविशु छदितमें है
 प्रशोचर कापिष्ठ शुक्र-शतार स्वर्णोंको श्योताम्बरोंमें नहीं माना है इससे निश्चान नहीं होसकता है हमारे यहां प्रशोचर कापिष्ठमें पद्म, शुक्र-शतारमें
 परन्तु श्योतयें मानी है

- (१) वैमानिकः' सोलहवांसूत्रके बीर(३)उपर्युपरि अठारहवां सूत्र से अनुवर्ततेहैं(१) पद्मसम्बन्ध शुक्ल अर्थात् अर्थात् अष्टशोके श्योताम्बर
 - (४) श्योताम्बर आचार्योंमें आणक
 - (५) पीत-पद्म-शुक्लेश्याः।
 - (६) पीत-पद्म-शुक्लेश्याः।
- = तिन पीत पद्म शुक्ल रंगवासे पद्मों के सहचर हैं शेष्यायें अिन (देवी) के
 = व पीत पद्म और शुक्ल शेष्यावाले (देव) हैं।

यया० भाद्रपदपरकरणे॥

= नैसा कि ये करते हैं कि 'वर्ण' करनेपर अर्थात् तकार जिससे परे करना हो, जिसके परचात् तकार नोड़ना हो या खगाना हो अथवा तकार से जिसको परे करना हो, तकार से जिसको परचात् खाना हो वो (पैसे मयोग में)

द्रुता वृत्तिमें अर्थात् शीघ्र चकारण की चाल, द्रव, क्रिया अथवा रीतिमें; शब्द क जल्दी बोलनेमें

या सामानाधिकरण्यमें है और यह मार्गों शब्द कृत्तिक सख्या वाका नहीं है और न प्रियादिगणके शब्दीमेस बारे शब्द है अतः 'बर्हीभा' शब्द अपने अनुकूपक पुलिगणक्य 'बर्हीनीम'में पकट जाता है ॥ येसेही दीर्घअन्वयः = दीर्घा अन्वया यस्य दीर्घअन्वय जिसकी अपेक्षा है और कथवती आर्था यस्य = कथवर्णार्थः ॥

(३) वेनेम् प्याकरणके अर्थात् ४ पात्र ३ सूत्र १४६ का अनुवाद। स्त्रीलिङ्ग शब्द पुलिग सङ्घ हो जब (समासमें) एक अर्थमें लिख्यम्, ॥ यमउट्(नियमोः) ॥ = ऐसा स्त्रीलिङ्ग (शब्द) उठार पत्र हो जो संख्या न हो (= अङ्क अथवापात्री २-१-२३) न प्रियादि पत्र में (से) हो उक्त-पुंस्त्वत्, ॥

= (और इस उठार पत्रवाले स्त्रीलिङ्ग शब्द का) पूर्व पत्र मायिन पुरुषक स्त्रीलिङ्ग ऐसा वा कि जिसके अन्त में ऊ प्रत्यय न (= अन्) हो ॥ उक्त-प्रत्ययके अ् का रूप सङ्क होनेसे शीघ्र होजाता है ऊ शीघ्र रहजाता है प्रियादि शब्द वे ही (१) प्रिया (२) मनोका (३) कन्याकी (४) सुमगा (५) दुर्मगा (६) भक्ति [७] सविवा(८)स्था (स्वसा) (९) श्रामता (१०) श्रावता (११) समा (१२) शयना (१३) दुहिता (१४) वामना (वामा) (१५) वनया [१६] अरथा ॥ इय शब्दोंमें दृक्भक्तिः समास नियम विरुद्ध है ॥

(१) आहु वह शब्द इस्त विक्रित सर्पार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ६६ पर नहीं है न राजवार्तिकमें है जिसका लेख अगमग यही है जो सर्पार्थसिद्धिमें है इस्तलिखित प्रति में 'यया उताया तपरकरणे मर्यादवर्तिवैतकोरुपसख्यावधिनि द्रुतमपमविलिखिता इति' ॥ ऐसा पाठ है अर्थात् 'आहु शब्द नहीं है और 'द्रुतमपमविलिखिता इति यह वाक्य अधिक है। इयमे यह पाठ नहीं दिया है क्योंकि धीपतरञ्जलि की वार्तिक केवल 'द्रुतसंख्यात्म', तक है ॥

(२) द्र - यह शब्द सकार्मक परस्त्रीपर आदि प्रथम गणका पाठु है यद् () बहुवा शीघ्रता उठाना शीघ्रपङ्कता आकम्प्यकरण () गलजामा यतना दीर्घता इत्यादि अर्थमें जाता है। अब द्रु (पुं० न०) में सया जाता है लो क्कट, काट का पनाडुवा लाकार, इस लो अर्थों में जाता है अब केवल वलिनमें जाता है ना पुंउ उरसकी उरसी इन लो अर्थों में जाना है 'द्र' में ल जोड़ने लो 'द्रुत' विलिगी होजाता है और ना जोड़ने पर द्रुता स्त्रीलिङ्ग होजाता है अद्वी विणला द्रुमा अगा द्रुमा अर्थोंमें प्रयोग कियाजाता है। द्रुत पुलिगमें पुरुष किसी शीघ्रके अर्थोंमें जाता है द्रुतम, अन्वय है ॥ अद्वी शीघ्र अर्थोंमें जाता है ॥ द्रुता पहारपर स्त्रीलिङ्ग एक वक्षन सप्तमी विसक्तिमें 'द्रुतापाम्' ऐसे रूपमें शीघ्रता के अर्थमें आया है ॥ इसी कवार्तिक इस्त लिखित में 'द्रुतापाम् सप्तमी एक वक्षन स्त्रीलिङ्गमें है परन्तु मुद्रित श्लोक वार्तिक पृष्ठ ३२४ पर द्रुतापात् पञ्चमी विगक्ति एक वक्षन मनु सक्त इति तपरकरणत् शब्द से प्रथम आया है ॥ द्रुतापात् = यदा पर 'शीघ्रता' इस अर्थमें आया है ॥

के प्राची हीवेई जैसे 'सनायसमिध उ। ३। २। १६८ उन धातुओंके (जिनके अन्तमें सम् प्रत्ययहो) और आद्यस्व
 (=बाह्यता) और मित् (=माँगना) धातुओंके पश्चात् उगस्वभाववाले कर्ताओंके अर्थमें उ' प्रत्यहो जैसे मित्
 माँगनासे मित्, मीक माँगनेवाला यत्ना। यहाँपर केवलइत्य उक्त प्रहृष्ट हीर्षं ऊ और मुत् 'उ' का प्रहृष्टनहीं हुआ।
 =त-यत्। ताकास्यः। (स्वप्) रूपम्। = तकार जिससे परे हो वा तकारसे जो परे हो वह उतनेको सकर्षणीय
 सकर्ष्यं को अपने अर्थ और का प्राहक हो।

0 उपरस्तरकास्यः ७० ॥

= (अर्थात्) तकार (=त्) जिस अक्षर से पीछे आये अथवा तकार (=थ) से कोई अक्षर परमें होतो वह अक्षर
 = अपने अर्थ रूप और अपने उन सर्वर्षीय अक्षरोंका रूप अक्षरोंका प्राहक है जिनके उच्चारणमें वही काष्ठ अने उतनाही समयबन्ने
 जितना कि पूर्वोक्त अक्षर के उच्चारणमें लगता है सूत्र १६ में यह ऊपय क्रियागया है कि उपकिगत स्वर्गमें उसके सर्व सर्वर्षीय
 अक्षर समवेष्ट होजायेंगे इस प्रकारकि 'अ' में आ भी अन्तर्गत हीगा और इ में ई इत्यादि। यहसूत्र निर्देश करता है कि अक्षर
 का पही रूप पश्च क्रिया बायेगा न कि उसके आदि के सर्व अक्षर प्रहृष्ट किये जायेंगे यह कार्य अक्षर क पश्चात् अथवा प्रथम
 त् आने से होता है जैसे अत् का आद्यय केवल अ अक्षर प्रहृष्ट करना है न कि उसके सर्व सर्वर्षीय अक्षर। इसी प्रकार वत्
 का अभिप्राय केवल इस्व'उ' प्रहृष्ट करने का है न कि हीर्षं और मुत् उ। इस सूत्रमें तपर और तत्काष्ठस्य होयव है। तपरका
 अर्थ जो तकार के परे हो अथवा तकार जिसके पीछे हो 'ताकाष्ठ' का अर्थ है उतनाही काष्ठ। समय की अपेक्षासे स्वर्गकेइत्य
 हीर्षं और मुत् तीन अर्थ हैं 'द्वय' स्वर में एक मात्रा होती है हीर्षं स्वर दो मात्रिक होते हैं और मुत् स्वर तीन मात्रा वालेहोते
 हैं। स्वर्ग के उच्चारण में द्वय स्वर से आधा समय लगता है इसलिये एक अक्षर त् जिसके पश्चात् दो मीरजो त् केपश्चात् हो
 अपने अर्थ बहपञ्च प्राहक है और केवल उन सर्वर्षीय अक्षरोंके अर्थवक्तृकोका प्राहक है जिनके उच्चारणमें उतनाहीवासमान काष्ठ
 लगताहोईसे अक्षर'अत्' में उच्चार अनुदात्त, स्वरित अनुदात्तिकाओरअनुनासिक'अ'अर्णोत्सुह इत्युत्प'अ' केगमितदोनों हीर्षंओर
 मुत् रूप अक्षरका एकमां समवेष्ट न होया। यहसूत्र आधा आयक है। इस सूत्रमें 'अप्य' शब्दकी अनुसृष्टिपूर्व सूचन नहीं जाती
 है। अप्य' प्रत्याहार के बौद्ध अक्षरों के अतिरिक्त किसी भी अक्षर के पश्चात् तकार आये तब उसपर भी यह सूत्र लागू होगा।
 यह सूत्र पूर्व सूत्रके परिमित और समर्थोदा करता है अतः इससे पूर्व सूत्रका अर्थ होगाकि अनुप्रास्यारके अक्षर यत् उतनेसे
 किसी भी अक्षर के प्रथम या पश्चात् में 'त्' न हो तो वे अपने अर्थों में रूपके और अपने सर्वर्षीय अक्षरों के अर्थ न रूपों के
 प्रथमे प्राहक होंगे। इसप्रकार कि सूत्र ७-१६। अतोमिस् येस् शब्द जिनके अन्तमें अत् (अर्थात् इत्य अकार) हो ता मित्के
 स्थानमें एस् हो जैसे वृष् + मित् के स्थानमें वृष् + एस् होकर वृषी बना परशु कृष्। जिसके अर्थमें हीर्षं 'आ है और जिसका
 उच्चारण काष्ठ अक्षरके उच्चारण कोकसे मियेई उक्तसूत्र लागू न होगा और कृष्मिः रूप बनेगा अर्थात् मित् का येस् महोगा।
 = (परस्पर) मुख्यबन्ने विरोधमें (= विमतिरूपे) अर्थात् मुख्य वा समान बहवात् अर्थसमें विरोधी

0 विमतिरूपे,
 परस्)। कार्यम्।

कार्यं हो मांयार्थ अद्याप्याचीमें दिया हुआ सिद्धता सूत्र लागू हो इससे पूर्व का सूत्र न लगेगा। भी परं अदिगाप्य येस है कि

तारस्तकाङ्गत्वेनेतद्भवति विप्रतिषेधेन । यद्यर्षं द्रु.शायां तपरकारणं मध्यमविकल्पितयोत्पत्तयसंभवात् । प्र.तायां तपर-कारणे मध्यम-विकल्पितयोत्पत्तयसंभवात् इत्येवम् । तथा मध्यमायां द्रु.नविकल्पितयोः द्रु.नमध्यमयोः । किं पुनः कारणं न सिद्धयति काङ्गत्वेनेत्यादि । ये हि द्रु.शायां पूर्वो बर्षास्त्रिमासाधिकान्ते मरुतमात्रां ये च मध्यमायां वर्षास्त्रिमासाधिकान्ते तु विकल्पितयाम् ॥ सिद्धं त्ववस्थितायां च । बहुशिवरात्रिर्वाहितं बर्षमात्रं पठया विधिष्यते । सिद्धमेतत् । इत्यम् । अक्षरितया वर्षां प्र.तमयमविकल्पितयामु किं कुतस्तर्हि वृत्ति विशेषः । तदुक्तिव्यापारि यथासाधु वृत्तया विधिष्यते । अन्तः कश्चिद्व्याख्यामिष्यामी भवति । आद्य वर्षान्मिष्यते । कश्चिद्विषयत्वेण कश्चिद्विषयत्वेण ॥ कश्चिद्विषयत्वेन ॥ पतञ्जलि महाभाष्ये मध्यमायां 'तपरस्तकाङ्गत्वं' द्रु.न की व्याख्यासे उद्धृतम् है ॥

विप्रतिषेधेन । मध्यमायां 'तपरस्तकाङ्गत्वं' इत्येवम् । तदि० =
 पतञ्जलिभक्तिः
 = विप्रतिषेधेन वरं कार्यम् सूत्रं द्वारा तपरस्तकाङ्गत्वं देते (सूत्रकी)

इस समय (० पतञ्जलिभक्तिः) पृष्ठ १५२ में अथय माना है । प्राप्ति होती है अर्थात् 'अणुविरस वर्षस्वभावात्पयः' सूत्रकी सिद्धि और 'तपरस्तकाङ्गत्वं' सूत्रकी प्रवृत्ति विप्रतिषेधेन वरं कार्यम् सूत्रसे होती है ॥

(मूल) ओ देते हैं अर्थात् त्रिकाङ्ग (० उतनाकाङ्ग) की प्रवृत्ति करता है और त्रिकाङ्गकी सिद्धि
 = तो शीघ्र कालिक उच्चारणकी वृत्ति में 'तपर' कल्पने में मध्यमकालीन उच्चारणका
 ० और विकल्पित वा दरी कालीन उच्चारणका समावेश है (उसमें) काङ्ग से द्रु.शुजाती है
 (क्योंकि उतनेही काङ्गमें शीघ्रतापूर्वक मध्यमापूर्वक और विकल्पिता वृत्ति नहीं होसकी)
 = (अर्थात् शिष्यके प्रश्न वा शकाका आशय यह है कि) शीघ्र कालिक उच्चारणमें तपरस्तकाङ्गमें

और मध्यमा कालीन उच्चारणका समावेश करना चाहिये
 = और मध्यमा कालीन उच्चारणमें (तपर कल्पने में) प्र.ताकालीन उच्चारणका
 = और विकल्पिता कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
 = और विकल्पित कालीन उच्चारणमें (तपर कल्पने में) द्रु.ता कालीन उच्चारण का
 = और मध्यमा कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
 = शिष्य ब्रह्म देकर कहता है कि गुडकी समझें फिर क्या कारण है कि
 = (उपर के हीनो उच्चारणकी) सिद्धि नहीं होती है । क्योंकि (उतनाहीकाङ्ग नहीं समता है) काङ्ग से द्रु.शुजाता है ॥

चरि० एतम् ०

प्र.तायाम् ॥ तपरकारणे ॥ मध्यम

विकल्पितयोः ॥ उपसंभवात् ॥ काङ्गत्वेनेत्यादि ।

द्रु.तायाम् ॥ तपरकारणे ॥

मध्यम-विकल्पितयोः ॥ उपसंभवात् ॥ इत्येवम् ॥

तथा ० मध्यमायाम् ॥ (तपर कारणे ॥) द्रु.शु

विकल्पितयोः ॥ (उपसंभवात् ॥) ॥

तथा ० विकल्पितायाम् ॥ (तपरकारणे) प्र.त

मध्यमयोः ॥ (उपसंभवात् ॥) ॥

किम् ॥ पुनः ० आरखम् ॥

न ० सिद्धयति ॥ काङ्गत्वेनेत्यादि ॥

के प्राप्ति होती है) जैसे 'समाप्त' समिच्छः ३।३।२। १३ उक्त पाठुओंके (जिनके अन्तमें सप्त प्रत्ययवहो) और आणव्
 (= धातु) और मिच्छु (= मोगना) धातुओंके प्रथमात् उक्तव्ययवाले कर्ताओंके अर्थमें 'उ' प्रत्ययों जैसे मिच्छु
 मोगनासे मिच्छु, मीक मोगनोवासा बना। यथापर केवलद्वय उक्त प्रहृष्टी दीर्घ उ और मुत् उ३ का प्रहृष्टवर्ती हुआ म
 = उ-प२३। ताकासम्प्लः। (स्वम्) रूपम्) = तकार जिससे परे हो वा तकारसे जो परे हो वह उतनेकी सवर्णीय

0 उपरस्ताकासम्प्लः ७० ॥

सवर्ण को अपने अर्थ और का माहक हो।
 = (अर्थात्) तकार (= व्) जिस अक्षर से पीछे आवै अथवा तकार (= त) से कोई अक्षर परमें होतो वह अक्षर
 = अपने अर्थ रूप और अपने इन सवर्णीय अक्षरोंका रूप अर्थका माहक है जिसके उच्चारणमें वही काज जगो उतनाही समयभरने
 जितना कि पूर्वोक्त अक्षर के उच्चारणमें जगता है सूत्र १६ में यह कथन किया गया है कि स्वच्छिन्न स्वर्तमें उसके सर्व सवर्णीय
 अक्षर समावेश होजायेगे इस प्रकारकि 'अ' में आ भी अन्तर्गत होगा और 'र' में ई इत्यादि। यह सूत्र निर्देश करता है कि अक्षर
 का वही रूप महज किया जायेगा न कि उसके आदि अक्षर प्रहृष्ट किये आँगे यह कार्य अक्षर के पश्चात् अथवा प्रथम
 त् जाने से होता है जैसे अत् का आशय केवल अ अक्षर प्रहृष्ट करना है न कि उसके सर्व सवर्णीय अक्षर। इसी प्रकार उत्
 का अन्तिमय केवल 'उ' प्रहृष्ट करने का है न कि दीर्घ और मुत् उ। इस सूत्रमें तपरा और ताकासम्प्ल सोच्य हैं। तपरा का
 अर्थ जो तकार के परे हो अथवा तकार जिसके पीछे हो 'त'काल का अर्थ है उतनाही काल है समय की अपेक्षासे स्वर्तोंकेद्वय
 दीर्घ, और मुत् तीन अर्थ हैं 'द्वय' स्वर में एक मात्रा होती है दीर्घ स्वर दो मात्रिक होते हैं और मुत् स्वर तीन मात्रा वालाहोते
 है। व्यञ्जन के उच्चारण में द्वय स्वर से आधा समय लगता है इसलिये एक अक्षर त् जिसका पश्चात् हो और उ३ के पश्चात् हो
 अपने अर्थ बरकका माहक है और केवल उन सवर्णीय अक्षरोंके अर्थबक्योका माहक है जिसका उच्चारणमें उतनाही वासमान काज
 लगताहो जैसे अक्षर 'अ' में अर्थात् अनुवाच स्थिति अनुनासिक और अनुनासिक 'अ' अर्थात् उच्च इत्येक 'अ' के गमितहोने कीर्ण और
 मुत् रूप अक्षरका एकमात्र सामायेय न होगा। यह सूत्र आका प्राण है। इस सूत्रमें अण् शब्दकी अनुपस्थिति पूर्व सूत्रस नही जाती
 है। अण् प्रत्याहार के बीच अक्षरों के अतिरिक्त किसी भी अक्षर के पश्चात् तकार आये तब उसपर भी यह सूत्र लागू होगा।
 यह सूत्र पूर्व सूत्रको परिमित और समावेश करता है अतः इसमें पूर्व सूत्रका अण् प्रत्याहार अक्षर अक्षर यदि अन्तमेंसे
 किसी भी अक्षर के प्रथम या पश्चात् में न हो तो ये अपने अर्थों में रूपक और अपने सवर्णीय अक्षरों के अर्थ न रूपों के
 नामसे माहक होंगे। इस प्रकार कि सूत्र ७-१-६ अतोमिस ऐस् शब्द जिसका अन्तमें अत् (अर्थात् द्वय अक्षर) हो तो मिसके
 स्थानमें ऐस् हो जैसे पुच + मिस के स्थानमें पच + ऐस् होकर बचै; वना पररमु अत्। जिसके अन्तमें वीच या है और जिसका
 उच्चारण काज अकारके उच्चारण कालसे मिये है उक्तसूत्र लागू न होगा और अट्टाभिः रूप बरैगा अर्थात् मिसु का ऐस् महाराण म
 = (परस्पर) तुल्यवत् विराचते (= विभक्तिरेच) अर्थात् तुल्य वा समान बलवासे आचरते विरोधी

0 विभक्तिरेचै।
 परम्)। कार्यम्॥

कार्य हो मांयाय अर्थात् वीमें दिया हुआ विद्युत् सूत्र साण् हा इससे पूर्व को सूत्र न लगेगा। यी पर्वत अत्रिगाथ्य ऐस है कि
 = नियम वा सूत्र किसी स्थानमें (किसी कृतिमें) एक साथ लगते हो तो (अष्टाध्यायीके) पिछले नियम वा सूत्रके अनुसार

<p>पं० अणुवादीयश्रीकी वचन बिनासे अनुपुत्र "इहाँ प्रण जो, इहाँ समास विधे पीत पद युक्त इनके इस अकार जैसे मया । शब्द ती पीता पदा युक्त देसा चाहिये । तब कहिये है, जो व्याकरण विधे उचर पक्षे इतर बोना भी कहा है । जैसे प्रता (मती ?) देसा शब्दकातरकरविधे है । तब मयाविलंबिता का उपसंख्यान है ऐसे इहाँ भी आना अणुवाचनिकमुद्रित पुष्ट ३२२ (वह पाठ होइत लिखित पाठोसमीक्षितकर लिखा है किनमें मयाविलंब बिना उपसंख्यान है । मुद्रित में मयाविलंबिता का उप संख्यान है ऐसा पाठ है ।</p>	<p>पं० पद्याल्लास न्यायविकाकरके अनुवाद से अनुपुत्र (प्रण) 'पीतपशयुक्त इत्य अकार है याने पुन्यलिंग है । ताँ लेखा का किलेपव करि पीतादि व्युत्पत्ति किन्हे उ करना पुन्यार्थ होय है । किन्तु पीता पशयुक्ता देसाच्छया चाहिये । याने लेखा शब्द स्त्रीलिंग है ताके बिगणव भी ताबी लिंग का बोना चाहिये । देसा शब्द शब्द का न्याय है समाधान। व्याकरणविधे उचर पक्षे इतर बोना भी क्या है । सो यथा कार्यके विपरबन्तमें सिद्ध है जैसे प्रु, तार्थ या लक्षमें तपर करण है ताके विधे मयाविलंबित का उपसंख्यान है । यह व्याकरण सत्र है । यहाँ उचर पक्षका इत्य बोने तें मयाविलंबित देसा सिद्ध शेष है । तैसे यहाँ भी पीतादि शब्दभिके इत्यपना करि निर्देश आननी</p>	<p>पं० पद्याल्लास न्यायविकाकर अनुवादित मन्तार्यपञ्चमिक इत्सालिखित पुष्ट २७७ "युतायम् उचरतक इतने = १० व्याकरण जो मशोरप एलपक्षे अणुवाचिके विचार्यियो क आभायं बलत है कि यद्वि प्रु, तायाम्, कोरे सूत्र है दो छपका मुक्ते सूत्रशब्द कि कामशब्दमें मुद्रित लिखा जावे।</p>	<p>पं० गबापरलोक शालीके अनुवादसे अनुपुत्र 'पीता व पशो व युक्ता व पीतपशयुक्ता। पीतपश युक्तालेखा येना ते पीतपशयुक्तालेखा । यह यहाँ पर इत्य गमित बहुधीहि समास है । यदि यहाँ पर उहाभाव कि-'पीतपशयुक्तालेखा' यहाँपर इत्य समास किया जायगा तो इत्यमें पुन्यभाव तो होना नहीं इसलिये 'पीतपशयुक्तालेखा यह जो पुन्यभावविशिष्ट निर्देश किया गया है अर्थात् आकार का अकार करविया गया है वह अणुवाचिके किन्तु यहाँ पर 'पीतपशयुक्तालेखा' देसानिर्देश करला चाहिये । सो ठीक नहीं । यहाँ पुन्यभाव नहीं हुआ है किन्तु उचर पक्ष रहने सं पर्यपक्ष का इत्य हुआ है जिस प्रु, तार्थ तपरकरले मयमविलंबितयोग्य संख्यानम्" इस व्याकरण शब्दको पार्थिकसंख्यान व विलंबिता व 'मयमविलंबितातयो' इसउचर समासपुत्र पक्षमें विलंबिता' उचर पक्ष रहने से 'मयम' शब्दको इत्य करि निर्देश किया गया है उली मकार पीतपशयुक्ता लेखा' यहाँपर भी 'युक्त उचरपक्ष के रहते पीता और पशो इन दोनों पक्षों में इत्य निर्देश न्याय्य है" ॥</p>	<p>पं० पद्याल्लास न्यायविकाकरके अनुवाद से अनुपुत्र (प्रण) 'पीतपशयुक्त इत्य अकार है याने पुन्यलिंग है । ताँ लेखा का किलेपव करि पीतादि व्युत्पत्ति किन्हे उ करना पुन्यार्थ होय है । किन्तु पीता पशयुक्ता देसाच्छया चाहिये । याने लेखा शब्द स्त्रीलिंग है ताके बिगणव भी ताबी लिंग का बोना चाहिये । देसा शब्द शब्द का न्याय है समाधान। व्याकरणविधे उचर पक्षे इतर बोना भी क्या है । सो यथा कार्यके विपरबन्तमें सिद्ध है जैसे प्रु, तार्थ या लक्षमें तपर करण है ताके विधे मयाविलंबित का उपसंख्यान है । यह व्याकरण सत्र है । यहाँ उचर पक्षका इत्य बोने तें मयाविलंबित देसा सिद्ध शेष है । तैसे यहाँ भी पीतादि शब्दभिके इत्यपना करि निर्देश आननी</p>
---	--	--	--	--

व०॥दि०३॥नायाम्०॥पु०॥
 व०॥३॥त्रिमाग अथि०॥म०॥म०॥म०॥

दे०॥

दे०॥च०॥म०॥म०॥म०॥
 अथि०॥३॥३॥३॥३॥

वि०॥३॥३॥३॥३॥

प०॥३॥३॥३॥३॥३॥३॥३॥३॥३॥

वि०॥३॥३॥३॥३॥

म०॥३॥३॥३॥३॥

वि०॥३॥३॥३॥३॥

प०॥३॥३॥३॥३॥३॥३॥३॥३॥३॥

वि०॥३॥३॥३॥३॥

म०॥३॥३॥३॥३॥

वि०॥३॥३॥३॥३॥

= (शिव्य कणन करता है कि कितना काल मेव पड़ता है) ओ ही प्रतीति
 = बोलनेके क्रम (= वर्षा)---वेको पद्यमन्त्रकोष पुष्ट ३३७) है (समयका) तीव्र भाग

- अधिक मध्यमा वृत्तिमें
- = ये (बोझके क्रम = वर्षा) हैं अर्थात् ओ ही कालद्रव्यावृत्तिमें वर्षोंके उच्चारणमें
 - लगताहै उससे तीसराभाग अधिक(काल)मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है
 - = और (= च) ओ मध्यमा (वृत्ति) में बोलनेके क्रम (= वर्षा) हैं । तीव्र भाग
 - = अधिक(मध्यमा वृत्तिसे)वे(बोझकेक्रम)विसरिविता वृत्तिमेंभी(= तु पद्य०कोश१,७३)हैं
 - अर्थात् ओ (काल) मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है उससे तीसरा भाग
 - अधिक विलम्बिता वृत्तिके उच्चारणमें लगता है जैसे यदि नौ पल काल द्रुता
 - उच्चारणमें लगे तो मध्यमासे नारह पल और विलम्बितामें सोलह पल लगींगे ।
 - = (उत्तर) वर्ष वा अक्षर तोअस्थितहै इससे(गुरुजी कहते हैं हमारा कणन)पनजाताहै
 - अर्थात् काल मेव होने पर भी तीनों वृत्तियोंमेंवर्षों ज्योकेल्यो रहतेहैंइससेबनजातीहै
 - = क्योंकि बच्चेके हर और शीघ्र उच्चारण सेही द्रुताकारि वृत्तियोंमें मेवपड़ता है
 - = (गुरुजी कहते हैं कि) यह सिद्ध होजाता है । [प्रश्न] कैसे सिद्ध होजाता है
 - = (उत्तर) क्योंकि वर्ष (मध्यक वृत्तिमें जैसे के तैल) अवस्थित वा स्थिर
 - = द्रुता-मध्यमा विलम्बिता कालक उच्चा षी में (रहते) हैं
 - = (प्रश्न (यदि वर्षा अवस्थित है)तो वृत्ति मेव कहासे क्यु(तीनों वृत्तियों कहासे दूर)
 - = (उत्तर) बच्चेके हर और शीघ्र बोलने के कारण से वृत्तियोंमें मेव होगये ।
 - = और बच्चा मन्त्र (= मन्त्र) बोलता है (अर्थात्)
 - = शीघ्रता से वर्षोंका उच्चारण करता है । और बच्चा विलम्बने बोलताहै
 - = और बच्चा और देरसे बोलता है और और भी देरसे बोलता है (जैसे अधिक से
 - जोड़ा पीरे बजता है । जोड़ा से मनुष्य पीरे बजता है और मनुष्यसे बच्चापीरे

बजता है । सारांश यह है कि हमनीने शीघ्र उच्चारण रूप वृत्तिमें मध्यम कालीन उच्चारणमें और विलम्बित कालके उच्चारण में काल मेव रहने पर भी वर्षों के अवस्थित (ज्यों के ल्यों) रहने से काल मेव नहीं माना जाता है क्योंकि काल मध्यम बच्चाका अक्षरी और देरसे बहना मध्यमा ही कारण है क्योंकि शब्द का रूप मध्येक अवस्थामें देरकसा रहता है । कि कुत के स्थानमें किसी किसी मुद्रित माध्यमके छत्राः पाठहै अर्थात् दोनो पाठोंका एकसा है । पृष्ठ ७५ में भिन्नभिन्न अक्षरावृत्तियोंके अनुवाचक शब्द-दिये हैं जिनसे पाठक कुछ लाभ उठासकें हमारी समझमें उनके अनुवाचक नहीं आये हैं अगल एक पृष्ठ ७५ में भिन्न भिन्न पाठ इस पाठिकके जो हमारे पक्षों के मध्योंमें पाये जाते हैं ये नियमय हैं । इव समस्तको पाठक बहुत ध्यानसे पढ़ें ।

तत्र कस्य का लेश्येत्यत्रोच्यते—सौधर्मेशानयो पीतलेस्या । सानलुमारमहिन्द्रयो पीतपद्मलेश्येब्रह्म-
लोकत्रहोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पद्मलेस्या । शूक्रमहाशुक्रशतारसहसूरेषु पद्मशुक्लेश्ये । आनतादिषु
शुक्लेश्या । तत्राप्यनुदिरानुत्तरेषु परमशुक्लेश्या । सूत्रेऽनभिहितं कथं मिश्रग्रहणं साहचर्याल्लोकवत् ॥

तत्र कस्य का लेश्येत्यत्रोच्यते
सौधर्मेशानयो पीतलेस्या ॥ सानलुमार
मारत्रयोऽपि पीतपद्मलेश्ये ॥ शूक्रमहाशुक्र-
लान्तवकापिष्ठेषु पद्मशुक्र-महाशुक्र-
शतारसहसूरेषु परमशुक्लेश्या ॥ आनता
दिषु

=वर्ता किस (द्वच) के कौन लेस्या है (पैसे) यहाँ (=अत्र) कथा जाता है कि
=सौधर्म पेशान में (देविके) पीत लेस्या है । सानलुमार
= तद् द्र में (देवों के) धातपल्लेस्या है । ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर
=खान्त्व और कापिष्ठ में (देवों के) पद्मलेस्या है । शूक्र और महाशुक्र
=शतार और सहसूरे में (देवों के) पद्म शूक्र दो लेस्या है । आनत
=और माणव, मारण और अन्युत्तर इन दो युगलोंमें और नववैश्विकोंमें और
नव अनुदियों में और पांच अनुचरोंमें (देवोंके)

शुक्र-लेस्या ॥ तत्राप्यनुदिरानुत्तरेषु ॥
परम-शुक्र-लेस्या ॥ सूत्रे ॥ अत्र अभिहितम् ॥
कथं मिश्रग्रहणं ॥ १

=शुक्लेश्या है । वहाँ भी (नप) अनुदियोंमें और (पांच)अन्तरोंमें (देवोंके)
=ब्रह्मलोक शूक्र लेस्या है (मरन) सूत्रमें अकथित
=मिथ (लेस्या) का प्ररण(यहाँ)कैसे है ? अर्थात् इस वार्तिसर्वा सूत्रमें तो किसी
युगलके देवोंके दो लेस्या वर्णन नहीं की है इस सूत्रकी वृत्तिमें आपने कैसे

युगलमें पौष-पद्म दो लेस्या है सूत्रमें तो इस युगलमें केवल पीतलेस्या कही है और
शुक्र महाशुक्र के युगलमें सूत्रमें तो पद्मलेस्या कही वृत्तिमें आपने पद्मशुक्र दोनों लेस्यामें कैसे कही और शतार
सहसूरे युगलमें सूत्रानुसार केवल शूक्र लेस्या है आपने वृत्तिमें पद्म शूक्र दो लेस्यामें कैसे कही ।

साहचर्यात् ॥
लोकवत् ॥

=(उत्तर) एक ही आश्रय होनेस अथवा साथ साथ रहनेसे
=लोक (व्यवस्था वा रीति, सदृश (मिथ लेस्याओंका प्ररण है अर्थात् मुख्यता
करि शो जो लेस्या जिन युगलोंमें है वरतो सूत्र विषे कही उसके साथ
लोक रीतिके समान गौण लेस्याका भी प्ररण करना योग्य है ॥

अविवक्षात् ॥ ब्रह्मलोकादिषु त्रिषु कल्पयुगलोषु पद्मलेश्या । शुक्रमहाशुक्रयो शुक्कलेश्याया
 अविवक्षान् ॥ शेषेषु शतारादिषु शुक्कलेश्या । पद्मलेश्याया अविवक्षातइति नास्ति दोष ॥
 आह कल्पोपपन्ना इत्युक्तं तत्रेदं न ज्ञायते के कल्प्या इत्यत्रोच्यते—

॥प्राग्भैवेयकेभ्यः कल्पाः॥ २३॥

अविवक्षात् ०
 =अपेक्षा रहित है अर्थात् पषलेश्या इस सूत्रमें गौण है इसलिये सूत्रमें कल्पनेकी
 इच्छा नहीं है भावार्थ सूत्रमें गौण लेश्याका कथन करनेका अभिप्राय, बाँध, वा
 मयोमन नहीं है । इससे पषलेश्याका निर्देश इस सूत्रमें नहीं किया गया है ॥

ब्रह्मलोक आदिषुः त्रिषुः कल्पयुगलोषुः
 पषलेश्या २॥; शुक्र-महाशुक्रयोः शुक्कलेश्याया १॥
 अविवक्षात् ०

शेषेषुः शतार-आदिषुः शुक्कलेश्याया १॥
 पषलेश्याया १॥ अविवक्षात् ०

इति ०
 न ० अस्ति ॥ दोष १ ।
 आर १ 'कल्प-उपपन्नाः' इति उक्तम् ॥
 तत्र उद्देश्यम् ॥ न ज्ञायते ॥
 के ॥ कल्प्याः इति अत्र उच्यते ॥

(१) सूत्रम्-प्राग्भैवेयकेभ्यः कल्पा ॥ २३ ॥ = (सौधर्म आदय) प्राग्भैवेयकेभ्यः कल्पा भवन्ति ॥ २३ ॥
 =अपेक्षा रहित है अर्थात् पषलेश्या इस सूत्रमें गौण है इससे कल्पनेकी सूत्रमें इच्छा नहीं है
 =शेषेषु शतार सहस्रार विषु) पषलेश्या का (अस्तित्व) विषया से रहित है
 =इस प्रकार (कथनस कि मुख्यताकरि दो युगलोंमें पीलेश्या, तीन युगलोंमें
 पषलेश्या शेष तीन युगलों में शुक्कलेश्या है)
 =इच्छा नहीं है (क्योंकि मुख्य लेश्या तो सूत्रद्वारा नहीं गौण लोक रीतिसे जानना चाहिये) ।
 =शिव्य मरन करता है कि "कल्पोपपन्ना" ऐसा वाक्य सत्रार्थासूत्रमें कहा गया है ।
 =वहाँ पर ज्ञान नहीं कराया गया है अथवा वहाँ पर नहीं जतलाया गया है कि
 =कल्प कौन है यहाँ (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(१) इस सूत्रका गठ कीट अर्थ ज्ञानों सम्प्रदायोंमें एकता है । समस्त यह कि श्वेतम्बर आश्रमके समाप्त्यत्वात्प्राचिगमसूत्रमें तथा माप्या
 मुत्तारिणी तावायु शोका (भी विचरत्वेन चरि रचित) में केवल बारह स्वर्ग माने हैं हमारे यहाँ सोलह स्वर्ग माने हैं । हमारे यहाँ किसी २ पुस्तक में

इदं न ज्ञायते इत आरम्भ कल्पा भवन्तीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते । तेनायमर्थो लभ्यते-
 सौधर्मादय प्राग्भवेयकेभ्य कल्पा इति परिशेष्यादितरे कल्पातीता इति ॥
 लौकान्तिका देवा वैमानिका सन्त क्व गृह्यन्ते ? कल्पोपपन्नेषु । कथमिति चेदुच्यते—

॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

सूत्राय—सौधर्म आदयः^१। माण्डूप्रवेयकस्य^२। कल्पाम्^३।
 सुयनुवाट—इदम्^४॥ न० प्रायते^५।
 इत ० आरम्भ-कल्पाम्^६। भवन्ति^७ इति० सौधर्म आदि
 प्रारणम्^८॥ अनुवर्तते^९।
 तन्^{१०}॥ अयम्^{११}। अर्थः^{१२}। लभ्यते^{१३}।
 गौरस-आदयः^{१४}। माण्डूप्रवेयकस्य^{१५}। कल्पाम्^{१६}।
 इति० पारिशेष्यात्^{१७}। इतम्^{१८}। कल्प-अतीताः^{१९}। इति०
 लौकान्तिकाः^{२०}। देवाः^{२१}। वैमानिकाः^{२२}। सन्त^{२३}। क० गृह्यन्ते^{२४}।
 कल्प-उपपन्नानु^{२५}। कल्पम्^{२६} इति० चेत० उच्यते^{२७}।
 (१)सूत्रम्—ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका
 = ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका (भवन्ति) ॥२४॥

=सौधर्मसे लगाय प्रवेयकोंसे पूर्व (पूर्व) कल्प है अर्थात् सौधर्म पहिले स्वर्गसे
 लेकर अत्युक्त सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त 'कल्प' करेजाते है
 (=सूधर्म) यह नहीं योग करायगया है अथवा जतायगया है कि
 =यथास (इत) कल्प आरम्भ होतेहैं (उभीसवां सूधर्म) 'सौधर्म आदिका'
 = (इससूधर्म)प्राण मवर्तवा है अर्थात् उभीसवां सूधर्मसे सौधर्म आदि शब्दलिपियेये हैं ।
 =तिस (सौधर्म आदिके प्राण)से यह अर्थ प्राप्त क्रियागया है कि
 =सौधर्मसे लगाय प्रवेयकोंसे पूर्व २ वा पहिले २ कल्प हैं, स्वर्ग हैं ।
 =ऐसे इन (कल्पों)से अवशेष (=पारिशेष्यात्) अन्य (=इतरे) कल्पातीत हैं, अर्थात्
 प्रथम सौधर्म स्वर्गसे अत्युक्त सोलह स्वर्ग तक कल्प कहलातेहैं। सोलह स्वर्गों से
 भिन्न जे नव प्रवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर पर्यन्त कल्पातीत करेजाते हैं॥
 =लौकान्तिकदेव वैमानिक हैं । कर्मां मानेगये हैं वा प्राण किय गये हैं ?
 = (उत्तर) कल्प वासियोंमें (प्रश्न) कैसे ऐसा सबेरे होनेपर कराजाता है कि

१) सौधर्म आदयः (साधर्म) मुद्रित सधर्मसूत्र में तथा पं० लक्ष्मी कृष्ण लघुटीकामें कल्प्याः। शब्दक स्थानमें कल्प्य शब्द है वह अत्युक्त है
 क्योंकि कल्प मोचक है और कल्प-शब्द प्रथमा विभक्ति एक ब्रह्मण पुत्रिण है केवल एक स्वर्गका शोक्तक है। अतः कल्प्याः बहुवचन होना चाहिये ॥
 (२) अर्थात् पूर्व कर्मां कर्मां पर 'लौकान्तिका पाठ भी है। समाप्तकथापर्यायिण सूत्रमें मायानुसारिणी लक्ष्मीटीका (श्वेताम्बरीयमाप्य) में
 'लौकान्तिका' पाठ है शोनी पाठ सुक्त है (ऐको दिव्यो धराया १ पृष्ठ ५ १ दिव्यो पृष्ठ ५४० ५४१) ॥ शोनी सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है ॥

पदानिवासी षण्णरूपसहाय वकीलकव पवञ्चद और विपत्त्यर्थसहित सर्वाधिदिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद अभ्याय ४ सूत्र २४
 एत्य तस्मिन् लीयन्त इति आलय आवास । ब्रह्मलोक आलयो येषा ते ब्रह्मलोकालया लौका-
 न्तिका देया वेदितव्या । यथेवं सर्वेषां ब्रह्मलोकालयानां देवानां लौकान्तिकत्वं प्रसक्तं ? । अन्वर्थ
 सङ्गाग्रहणाद्दोष ॥ ब्रह्मलोको लोक तस्यान्तो लोकान्त तस्मिन्मवा लौकान्तिका इति न
 सर्वेषां ग्रहणम् ।

सूर्याः-ब्रह्मलोक-आलयम् । लौकान्तिकाः भवन्ति = ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग है निवासस्थान भिनका ते लौकान्तिक देव हैं अर्थात् ब्रह्म
 लोकात्प इमं शब्दके साथ लौकान्तिक शब्दका सम्बन्ध है । ब्रह्मलोकके अंतका नाम लोकांत है और
 वहां पर रहनेवाले लौकान्तिक करेआते हैं ॥ इस रीति से ब्रह्मलोकके अन्तमें रहनेवाले ही देव
 लौकान्तिक होसकते हैं सप ब्रह्मलोक निवासी नहीं भयना जन्म जरा और मरण से ब्याप्त स्थानका
 नाम लोक है ; उसका अन्त लोकान्त है जिन्हें उस लोकांतका प्रयोजन होवे, वे लौकान्तिक करेआते
 हैं । य लौकान्तिक देव परीतसंसार हैं । ब्रह्मलोकसे प्युत होकर एक गर्भवास अर्थात् नर भव
 पाकर नियमसे मोच प्राप्त करलेते हैं ऐसे दोनों प्रकारसे सार्यक नाम वाले लौकान्तिक देव हैं ॥

वृष्यनुवादः-पस्य तस्मिन् लीयन्त इति आलयम् ।

आवासम् । ब्रह्मलोकम् । आलयम् । येषाम् । तेषु ।

ब्रह्मलोक आलयम् । लौकान्तिकाः । देवाः । वेदितव्याः ।

यदि एवम् सर्वेषाम् ।

ब्रह्मलोक आलयानाम् । देवानाम् । लौकान्तिकत्वं । प्रसक्तम् ॥ १ ॥

अन्वर्थसङ्गा

ग्रहणात् ॥ अदोपम् । ब्रह्मलोकः । लोकः ।

तस्यम् । अन्तः । लोक-अन्तः । तस्मिन् । यवाः । लौकान्तिकाः । यवाः ।

इति न सर्वेषाम् । ग्रहणम् ॥ १ ॥

=मानकरि भिसमें भिखते हैं, बिपते हैं, वा रहते हैं ऐसा आलय
 =निवास स्थान है । ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) है निवासस्थान भिनका ते
 =ब्रह्मलोक आलयवाले(पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले) लौकान्तिक देव जानने चाहिये
 =(मरण)जो ऐसे हैं अर्थात् पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले लौकान्तिक देव हैं तो समस्त
 =(ब्रह्म)लोक आलयानाम् । देवानाम् ॥ १ ॥ =ब्रह्मलोकमें रहनेवाले देवोंके लौकान्तिक होना पाया जाता है
 =वचर) (इन देवोंका) सार्यक नाम (अर्थात् जैसा नाम है वैसाही अर्थ
 =ग्रहण करनेसे दृष्टण नहीं है । ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) सो लोक है
 =तिसका अन्तः । तस्मिन् । यवाः । लौकान्तिकाः । यवाः । लौकान्तिक
 =य लौकान्तिक है
 =ऐसे समस्त (पांचवां स्वर्गके देवोंका) ग्रहण नहीं होता है ॥

इदं न ज्ञायते इत आरम्भ कल्पा भवन्तीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते । तेनायमर्थो लभ्यते-
सौधर्मादय प्राग्भवेयकेभ्य कल्पा इति पारिशेष्यादितरे कल्पातीता इति ॥

लौकान्तिका देवा वैमानिका सन्त क्व गृह्यन्ते? कल्पोपपन्नेषु । कथमिति चेदुच्यते—

॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

सूत्रम्—सौधर्मं आदयः१। मागुं० प्रवेयकस्य२। कल्प्याः३।

गृह्यनुवाचः—इदम्१॥ न० ज्ञायते॥

इत ० आरम्भ-कल्प्याः३। भवन्ति॥ इति० सौधर्मं आदि

प्रश्लेषः१॥ अनुवर्तते॥

तदम्१॥ अयम्१। अर्थः३। लभ्यते॥

सायम्-आदयः३। मागुं० प्रवेयकस्य२। कल्प्याः३।

इति० पारिशेष्यात्१। इतः३। कल्प्य मतीताः३। इति०

=सौधर्मसे लगाय प्रवेयकसे पूर्व (पूर्व) कल्प है अर्थात् सौधर्म पहिले स्वर्गसे

खेरु अच्युत सोलहवाँ स्वर्ग पर्यन्त 'कल्प्य' करेजाते हैं

=(सूत्रमें) यह नहीं बोध कराया गया है अथवा जताया गया है कि:

=यहसे (=इतः) परन्प आरम्भ इतरे हैं (उत्थसत्वां सूत्रसे) 'सौधर्म आदिका'

=(इससूत्रमें) प्रण मर्तता है अर्थात् उन्नीसवां सूत्रसे सौधर्म आदि शुभ्यलिये गये हैं।

=तिस (सौधर्म आदिके प्रश्लेष)से यह अर्थ प्राप्त किया गया है कि

=सौधर्मसे लगाय प्रवेयकसे पूर्व २ वा पहिले २ कल्प हैं, स्वर्ग है ।

=येसे इन (कल्पों)से अवशेष (=पारिशेष्यात्) अन्य (=इतरे) कल्पातीत हैं, अर्थात्

प्रथम सौधर्म स्वर्गस अच्युत सोलह स्वर्ग तक कल्प करलाते हैं। सोलह स्वर्गों से

भिन्न जे न प्रवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर पर्यन्त कल्पातीत करेजाते हैं ॥

=लौकान्तिकदेव वैमानिक हैं । कर्षा माने गये हैं वा प्रण किये गये हैं ?

=(वचर) कल्प वासियोंमें (मरन) कैसे ऐसा सदेह होनेपर कराजाता है कि

= ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका (भवन्ति) ॥२४॥

श्रीमद्ब्रह्मसंहिता (श्रीश्री) मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र में तथा पं० सदा सुकसो ह्यन लघुटीकामे कल्प्याः शुभ्यक स्थानसे कल्प्य शुभ्य है वह कल्प्य है कर्षा किये मोक्ष है और कल्प्य शुभ्य प्रथमा विभक्ति एक कल्प शुभ्य है केवल एक स्वर्गका चोतक है। अत कल्प्याः पशुवचन होना चाहिये ॥

(१) हमारे यहां कही कही पर 'लौकान्तिका पाठ भी है। समाप्त्यन्तरशार्थधिम सूत्रमें माष्यानुसारिणी तस्यार्षटीका (श्वताम्बरीयमाश्या) में

'लौकान्तिका' पाठ है शोने पाठ शुभ्य है (देखो टिप्पणी अन्वय १ पृष्ठ ५ ३ टिप्पणी पृष्ठ ५३० ५३१)। दोनो सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है ॥

क इमे सारस्वतादय । अष्टास्वपि पूर्वोत्तरादिषु द्विजु यथाक्रममेते सारस्वतादयो देवगणा

वेदितव्याः । तद्यथा-

हैं और सारस्वत भी आठ प्रकारके लौकान्तिक देव हैं भाषार्थे अन्याय, सूर्याय, चन्द्राय, सत्याय, भेषस्य, षट्, श्रेषंकर, सृष्टमेष्ट, क्रामचर, निर्माणरज, दिगन्तरश्चित, आत्परश्चित, सर्वरश्चित, मस्यु, वसु, अरय, विरव, ये सोलह प्रकारके लौकान्तिक देव हैं और सारस्वत, आदित्य, ऋषि, अरुण, गर्वतोय, तुषित, अय्यायाय, अरिष्ट भी आठ प्रकारके लौकान्तिक देव ऐसे सब लौकान्तिक घोषीय प्रकारके हैं ।

(=मरुत) कहाँ है ये सारस्वतादिक (लौकान्तिक देव), आठौ

न्दी पूर्व भ्रान्त-वृत्त, वायव्य-परिचय-नैश्चल्य (नैश्चलत)-दक्षिण-आग्नेय (=भाविष्यु)

द्विसु॥ यथाक्रमच्छेदोत्सारस्वत-आदयः॥

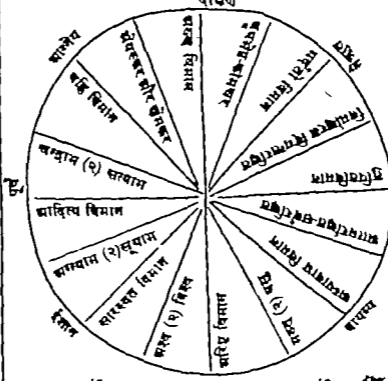
देवगणाः॥ वेदितव्याः॥ तद्यथा॥

=विश्याओंमें अनुक्रमसे ये सारस्वत आविक (निम्न स्थितित चौवीस प्रकारके)

=देवोंके समूह जानने चाहिये-जैसे

और मरुतः (अरिष्टरश्च) का अनुवाद यह कि बाहू कि उतरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव रहते हैं । समाप्य०में केवल आठ प्रकारके लौकान्तिक देवोंका कथन ही इससे प्रगट है कि 'मरुत्' और 'अरिष्ट' एक ही प्रकार है । आठ विश्याओंमें एकको अयेकाले हमारे यहांके अजसे श्वेताचारसमाजका श्रेष्ठ मित्रता है केवल इतना मेव है कि उतर विश्या में हमारे यहां अरिष्ट' देवोंका निवास है उनके यहां मरुत् देवों का, यदि मरुत् और अरिष्ट देवोंको अनेक रूपसे मानलें तो कुछभी अंतर दोनोंमें नहीं रहता है किंस्तकि निम्न लेखसे जो समाप्य० के पृष्ठ ११३ और ११५ से लिया है विवित है 'असे पूर्वोत्तर विश्यामें सारस्वत देव रहते हैं अर्थात् पूर्व और उतर विश्या के बीच (पेंडमकोण) में सारस्वत रहते हैं । पूर्व विश्यामें आदित्य संकट देव रहते हैं । इसी प्रकार अन्य देवोंके विषयमें भी जानसैना चाहिये अर्थात् पूर्व दक्षिण (आग्नेय कोण) में ऋषि, दक्षिणमें अरुण दक्षिणपश्चिम (मिश्र उपकोण) में गर्वतोय परिचय में तुषित, पश्चिमोत्तर (वायव्यकोण)में अय्यायाय और उतरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव' रहते हैं । समाप्य०में 'अ' अथ का फार्ड अर्थ नहीं किया है हमारे यहां 'अकार से सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देव लिखे हैं । आठ प्रकारके देवोंमें 'अरिष्ट देव' उतर विश्यामें रहने लाले हैं और सोलहप्रकार के देवोंमेंसे मरुत् देव हैं जो वायव्य और उतर विश्याओं के मध्यमें रहते हैं (वकी कृष्णाकार पृष्ठ २५ में) । श्वेताचार समाजके माण्डूक्यसारिकी तत्तावर्दीका के निम्नलेखसे प्रगट है कि कोई आठप्रकारके लौकान्तिक देव मानते हैं कोई कोई नव प्रकारके "म त्वेषमनेव नवनेरा मर्दति । माण्डूक्यावाप्यद्विषा इति मुद्रिता उच्यते । लीलांत वर्तित पठेऽप्यनेना । सूरिभ्योपचा । अरिष्ट विनाय प्रस्ताव चरिणि नपया मन्तमैकरोपेय" पृष्ठ ३४२ ॥

तथथा सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यस्य च वहे श्रान्तरे चन्द्रामसत्यामा ।
 वहेयारुणान्तराले श्रेयस्करत्वेमकरा । अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचरा । गर्दतोयतुषितमध्ये
 निर्माणरजोदिगन्तरचिता । तुषिताव्यावाधमध्ये आत्मरचितसर्वरचिता । अव्यावाधारिष्टान्तराले
 मरुद्वसव । अरिष्टसारवतान्तराले अश्वविधा ॥ सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात् ॥



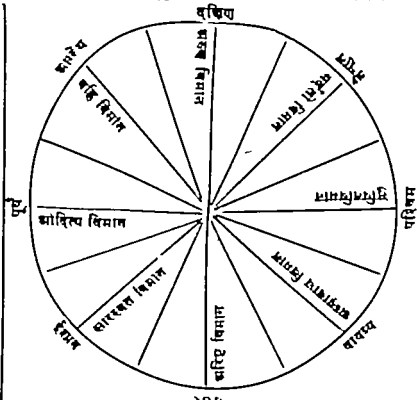
तपयाऽसारस्वत-आदित्य-
 अन्तरेऽग्न्याभ-सूर्याभाः ।
 आदित्यस्य च वहे श्रान्तरे चन्द्रामसत्यामा ।
 वहेयारुणान्तराले श्रेयस्करत्वेमकरा ।
 अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचरा ।
 गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरचिता ।
 तुषिताव्यावाधमध्ये आत्मरचितसर्वरचिता ।
 अव्यावाधारिष्टान्तराले मरुद्वसव ।
 अरिष्टसारवतान्तराले अश्वविधा ॥
 सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात् ॥

तपयाऽसारस्वत-आदित्य-
 अन्तरेऽग्न्याभ-सूर्याभाः ।
 आदित्यस्य च वहे श्रान्तरे चन्द्रामसत्यामा ।
 वहेयारुणान्तराले श्रेयस्करत्वेमकरा ।
 अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचरा ।
 गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरचिता ।
 तुषिताव्यावाधमध्ये आत्मरचितसर्वरचिता ।
 अव्यावाधारिष्टान्तराले मरुद्वसव ।
 अरिष्टसारवतान्तराले अश्वविधा ॥
 सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात् ॥

(१) इत्युक्तौ च त्रयोविंशतिः के पुष्ट १०१ मेषा तस्यार्चप्राप्त्यातिः के मुद्रित पुष्ट १०७ मेषा अरिष्टसारस्वतांतरे अश्वविधाः एसा पाठ है बोमो पाठ हीकई है

पूर्वोत्तरमौले सारस्वतविमान, पूवस्या दिशि आदित्यविमानं, पूर्वदक्षिणस्या दिशि वह्नि विमान, दक्षिण-
स्या दिशि अस्थविमान, दक्षिणापरकोणे गर्दतोयविमान, अपरस्या दिशि तुषितविमान, उत्तरापरस्या
दिशि अथ्यानाथविमान, उत्तरस्या दिशि अरिष्टविमानम्॥ चशब्दसमुच्चिता तेयामन्तरे द्वौ द्वौ देवगणौ ॥

- पूर्व उत्तर-याण्डः = पूर्व-उपरके कोनमें अर्थात् ईशान दिशामें
 सारस्वत विमानम्॥ = सारस्वत (देवोंका) विमान है
 पूर्वोत्तरादौ॥ दिशि॥ = पूर्व दिशामें
 आदित्य-विमानम्॥ = आदित्य (देवोंका) विमान है
 पूर्व-दक्षिणस्याम्॥ दिशि॥ = पूर्व-दक्षिणदिशामें अर्थात् आग्नेय दिशामें
 वह्नि-विमानम्॥ = वह्नि (देवोंका) विमान है
 दक्षिणस्याम्॥ दिशि॥ = दक्षिण दिशामें
 अस्थ विमानम्॥ = अस्थ (देवोंका) विमान है
 दक्षिण अपर-काण्डे॥ = दक्षिण परिचय कोनमें अर्थात् नैऋत्य दिशामें
 गर्दतोय-विमानम्॥ = गर्दतोय (देवोंका) विमान है
 अपरस्याम्॥ दिशि॥ = परिचय दिशामें
 तुषित-विमानम्॥ = तुषित (देवों का) विमान है
 उत्तर अपरस्याम्॥ दिशि॥ = उत्तर परिचय दिशा में अर्थात् वायव्यदिशा में
 अथ्यानाथ-विमानम्॥ = अथ्यानाथ (देवोंका) विमान है
 उत्तरस्याम्॥ दिशि॥ = उत्तरदिशामें
 अरिष्ट-विमानम्॥ = अरिष्ट (देवोंका) विमान है (सूत्रमें) च शब्दसे
 समुचितः॥ = अत्यलौकिकताक मिलायेगावे है
 नागम्॥ धनदः॥ = दो यो (मकार ऋ) देवों के समुदाय है अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूह और है ।
 ईशः॥ ईशः॥ = दो यो (मकार ऋ) देवों के समुदाय है अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूह और है ।



पूर्व उत्तर-याण्डः = पूर्व-उपरके कोनमें अर्थात् ईशान दिशामें
 सारस्वत विमानम्॥ = सारस्वत (देवोंका) विमान है
 पूर्वोत्तरादौ॥ दिशि॥ = पूर्व दिशामें
 आदित्य-विमानम्॥ = आदित्य (देवोंका) विमान है
 पूर्व-दक्षिणस्याम्॥ दिशि॥ = पूर्व-दक्षिणदिशामें अर्थात् आग्नेय दिशामें
 वह्नि-विमानम्॥ = वह्नि (देवोंका) विमान है
 दक्षिणस्याम्॥ दिशि॥ = दक्षिण दिशामें
 अस्थ विमानम्॥ = अस्थ (देवोंका) विमान है
 दक्षिण अपर-काण्डे॥ = दक्षिण परिचय कोनमें अर्थात् नैऋत्य दिशामें
 गर्दतोय-विमानम्॥ = गर्दतोय (देवोंका) विमान है
 अपरस्याम्॥ दिशि॥ = परिचय दिशामें
 तुषित-विमानम्॥ = तुषित (देवों का) विमान है
 उत्तर अपरस्याम्॥ दिशि॥ = उत्तर परिचय दिशा में अर्थात् वायव्यदिशा में
 अथ्यानाथ-विमानम्॥ = अथ्यानाथ (देवोंका) विमान है
 उत्तरस्याम्॥ दिशि॥ = उत्तरदिशामें
 अरिष्ट-विमानम्॥ = अरिष्ट (देवोंका) विमान है (सूत्रमें) च शब्दसे
 समुचितः॥ = अत्यलौकिकताक मिलायेगावे है
 नागम्॥ धनदः॥ = दो यो (मकार ऋ) देवों के समुदाय है अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूह और है ।
 ईशः॥ ईशः॥ = दो यो (मकार ऋ) देवों के समुदाय है अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूह और है ।

विपरतिविरहाद्देवर्षय इतरेषा देवानामर्चनीया, चतुर्दशपूर्वधरा, तीर्थकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपर
 वेदितन्या ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एक गर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता । किमे-
 यमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभगो विद्यते ? इत्यत आह—

विपरतिविरहाद्देवः^१ देव श्रुतयः^२ = विपर्ययोंमें रागस रश्चि शोने (के कारण)से देवश्रुति अर्थात् देवोंमें श्रुति है
 इतरेणाम्^३ देवानाम्^४ अर्चनीयाः^५ षट्दशपूर्वधराः^६ = अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं ये समस्त देव चौदह पूर्वके पारक हैं अर्थात्
 अंग और दृष्टिवाद्य चारहवों अंगमें 'परिकर्म, सप्त, प्रथमानुयोग और पूर्वगत
 (चौदह पूर्व) के ज्ञानी हैं देवों प्रथम अर्थात् पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी
 तीर्थकरानिःकर्मण मतिप्रोपनपराः^७ वेदितव्याः^८ = तीर्थकरके उप कन्याण विषे सम्भ्रान्तमें तत्पर (लक्ष्मीन वा निपुण) आनने चाहिये
 आह उक्ताः^९ लौकान्तिकाः^{१०} ततस्त^{११} च्युताः^{१२} = (शिव्य) पृष्ठता है कि लौकान्तिकदेव कहेगय । यहाँ (शक्रलोक पूर्ववत् स्वर्ग) से षण्ण्डर
 पृष्ठमूर्धपरवासः^{१३} भवाप्य + निर्वास्यन्ति^{१४} इति उक्ताः^{१५} = एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य मयको पारण करक मोक्ष सात हैं ऐसे कहेगये हैं
 किम्^{१६} परम्^{१७} मन्युर्^{१८} अपि^{१९} निर्वाणप्राप्तिकालविभगः^{२०} = क्या इसकार अन्य देवोंमें भी मोक्षके पावनके कालका विभाग अथवा पृथक्ता
 निर्वाणप्राप्त इति मतः^{२१} आह । = सर्वमान है (= बियत) इसलिय (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

- (१) पहिल चारै स्वर प दे वा झो जो योत्रक कावे इसके यथात् इत्थ श्रुकार होतो ऐसा श्रु स्वरके साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है
 अर्थात् चारै उरको स्वरके साथ मिलतो चारै न मिलतो जैसे देव श्रुति = देवश्रुति अथवा देव श्रुति = देवर्षि । देवर्षयः बहुवचन देवर्षि का है ।
- (२) तीर्थकर-तीर्थ (दिग्गतास - दितको करमेदारा भागमें-शुक्रपदेशक)कराति तीर्थकर, तीर्थपुर तीर्थ कर इसी अर्थमें होता है (पञ्चमश्रुत्येव पृष्ठ १७३)
- (३) श्रुतयः -- सर्वाथसिद्धिके शोनों संस्कारजोमें श्रुतया पाठ है परणु उनके सप्त २४ २६ में तीन स्यानोंमें और इत्यल्लिखित तीन प्रति
 में सप्त सूत्रमें तथा तीन स्यानोंमें सप्त २४, २६ में और राजवार्तिकके सप्त २४ में एक स्थानमें सप्त २६ के गण स्थानोंमें (श्रुतया) श्रुत्य है इनमें
 इत्यल्लिखित तथा तत्सार्थशोचवार्तिक पाठके अनुकूल श्रुतया श्रुत्य लिखा है । 'श्रुत्यु'प्रथम श्रुति पतन होमा अर्थमें है व्युत्पत्ता श्रुत्य सो टीक है (देखो
 प्रथम काशाय पृष्ठ १६ की टिप्पणी दो) । तत्सार्थशोचवार्तिकमें २४ सूत्रकी व्याख्यामें 'श्रुतया श्रुत्यका प्रयोग है । (३) शिव्य यहाँपर लिखा कि अनुपगण्यका
 पाठ है इस पाठमें श्रुतया प्रथम जोत्रमेके पहिले य विकल्प आजाया है । अर्थ विदु पाठका भाग पसा है जैसे (ननु प से = विद्यते = बर्तमान है)

॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

आदिशब्द प्रकारार्थं वर्तते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टानां ग्रहणं सिद्धं भवति ॥ क पुनरत्र प्रकार १ अहमिन्द्रत्वे सति सम्प्यष्टष्टयु पपाद ।

(१) सूत्रम्-विजयादिषु द्विचरमा ॥ २६ ॥ = (वैमानिका^(१)) विजयादिषु^(२) द्विचरमा भवन्ति ॥
 विषय आदिषु^(३) वैमानिका^(४) द्विचरमा^(५) भवन्ति ॥

=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपरामित, नव अनुदिश विमानोंमें वैमानिक देश
 =दो आन्तिय दश परनेबाहे होते हैं वा इनके दो अन्य अन्तके रचनाए हैं ॥
 अर्थात् यदेष मनुष्यके दोमन धारणकर मोक्षवातहैं वा इनके दो मनुष्यमय सिद्धावस्था
 प्राप्त होनेमें श्रेय रचनातेहैं यापार्थ ऐसाहै कि जोअनुदिश और विजय-वैजयन्त-जयन्त
 अपरामित इन सरह विमानोंसे ब्यकर मनुष्य होय बहुरि संयम आराप कर फिर
 विजयादिक विमानों उपलै बर्षास ब्यकर मनुष्य अन्य पाकर मोक्ष पाते हैं ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अर्थवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद
 आदिशब्दः १। मकार अर्थः २। वर्तते ३।
 विजय-वैजयन्त-जयन्त अपरामित-अनुदिश-विमानानाम् ४।
 इष्टानाम् ५। प्रहस्यते ६। सिद्धस्य ७। भवति ८।
 कः ९। पुन मकारकारः १०। अहमिन्द्रत्वे ११। सति १२। सम्प्यष्टष्टयु १३।

इस सूत्रका पाठ श्लोकान्तर तथा विगन्तर आम्नायोंमें एकसा है ॥ परन्तु उनके यहां नवअनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं है इसलिये हमारे यहां
 दोसह विमानोंके बासीरीय लिखरमा हैं उनके यहां केवल विजय-वैजयन्त-जयन्त अपरामितबासी लिखरमा हैं बेशी समाप्तत्कार्याधिपयमसूत्र पुठ ११४ ।
 (१) श्लोकबां सूत्रसे वैमानिका शब्दकी आगवृत्ति इससूत्रमें लीपई है (२) अर विजयादिकमिते आयजोय एक जयमी लेवे आरको जयमी मनुष्यके
 लेतेहैं ताते येसो अर्थ है ओ विजयादिकमिते ब्यकर मनुष्य होय बहुरि संयम आरापि फेर विजयादिकमिते उपलै तहाते ब्य मनुष्य होय मोक्ष आपहै
 येसे लिखरम रहपना है । येसे अनुदिश अर बार अनुचरके वेव तां ब्य मवली अर एक मी अर । स्वर्गके बाठ युगल है किनमें बाएह इत्य है क्व इद
 दक्षिकके और सुह इद उचरके एवमें उचरके षः इर्षीको ओकरक शक्तिके जो सुह इन्द्र (१ शीर्षा १ सारककुमार २ मय अयुक्त ५ आसत ६ आरख) और

॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

आदिशब्द प्रकारार्थे वर्तते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टाना ग्रहणं सिद्धं भवति ॥ क पुनरत्र प्रकार ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्ट्युपपादः ।

(१) सूत्रम्-विजयादिषु द्विचरमा ॥ २६ ॥ = (वैमानिका^(२)) विजयादिषु^(१) द्विचरमा भवन्ति ॥
विषय आदिषु^(३) वैमानिकाः^(४)

द्विचरमाः^(५) मयन्ति ॥

= विषय-वैषयन्त-मयन्त-अपराभित, नव अनुदिश विमानों में वैमानिक क्षेत्र

= दो बन्तिम दृष्ट परतषाछे होते हैं वा इनके दो अन्य अन्तके रहभाते हैं ॥
अर्थात् यदेव मनुष्यके दोभष वारणकर मोक्षमातेहैं वा इनके दो मनुष्यमय सिद्धावस्था प्राप्त होनेमें श्रेय रहभातेहैं भावार्थ ऐसाहै कि नोअनुदिश और विषय-वैषयन्त-अपन्त अपराभित इन तरह विमानोंसे बयकर मनुष्य होय बहुति संयम आराध कर फिर विजयादिक विमानों सयणें बहाँस बयकर मनुष्य अन्य पाकर मोक्ष पाते हैं ।

पदच्छेद और विमत्स्यर्थ सहित छब्बीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद
आदिशब्दः^(६) प्रकार भयेश। वर्तते ॥ तेनः^(७)

विषय-वैषयन्त-अपन्त अपराभित अनुदिश-विमानानाम्^(८) ॥

इष्टानाम्^(९) ॥ ग्रहणम्^(१०) ॥ सिद्धम्^(११) ॥ मयन्ति ॥

कः^(१२) पुनः मयन्तप्रकारभः^(१३) अहमिन्द्रत्वे^(१४) ॥ सति^(१५) ॥ सम्यग्दृष्टि उत्पादः^(१६) पुनि यहाँ क्या सहशता हुई (अपर) अहमिन्द्र होनेमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद है

(१) इस सूत्रका पाठ अतोम्बर तथा विगम्बर आन्त्यायोमें एकसा है ॥ परन्तु इनके यहाँ मयन्तुदिशके नामसे ब्यौं विमान नहीं है इसलिये हमारे यहाँ तेरह विमानोंके वास्तवीय द्विचरमा हैं उनके यहाँ केवल विषय-वैषयन्त-अपन्त-अपराभितवासी द्विचरमा हैं वेको समाप्त्यत्पादाधिगमसूत्र पुष्ट ११४ ।
(२) सोलहवां सूत्रसे वैमानिका। अन्तको अन्तवृत्ति इससूत्रमें श्रीगर्ह है (१) "अत्र विजयादिकमित्तं आबजौष एक अण्मसी लेवें अरदो अण्मसी मनुष्यके लेवें ताते वेतो अर्थ है जो विजयादिकमित्तं बयकर मनुष्य होय, बहुति संयम आराधि फेर विजयादिकमित्तं सयणें तहाते बय मनुष्य होय मोक्ष जायहै वेसे द्विचरम वेहपना है । वेसे अनुदिश भर पार अमुचरके क्षेत्र तो शाय मयसी चारें एक भी चारें । स्वर्गके आठ युगल हैं तिनमें चारच इय है छह इय दक्षिणके और छह इय उत्तरके इयमें उत्तरके छह इयोंको श्रीकृष्णके जो छह इय (१) हीयमें २ सामाकुमार ३ अय अयुक्त ५ सामत ६ आरव) और

विपयरतिविरहाद्देवर्षयः इतरेषा देवानामर्चनीया, चतुर्दशपूर्वधरा, तीर्थकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा
वेदितव्या ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एकगर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता । किमे-
वमन्येव्यपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह—

विपयरतिविरहाद्देः^(१) देव-श्रुतपदः^(२)

=विपयोंमें विरहाद्देः (के कारण)से देवश्रुति अर्थात् देवोंमें श्रुति है
इतरपामुः देवानामुः अर्चनीया ॥ चतुर्दशपूर्वधराः^(३) =अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं ये समस्त देव चौदह पूर्वके धारक हैं अर्थात्

अग और दृष्टिाद् चारहवां अंगमें 'परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और पूर्वगत
(चौदह पूर्व) के ज्ञानी हैं देखो मयम अध्याय पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी

^(४) तीर्थकरनिष्क्रमण-मविबोधनपराः^(५) वेदितव्याः^(६)

=तीर्थकरके तप इत्याण विपै समझानमें हत्पर (खल्लीन वा निपुण) जानने वारिये
आहाराः^(७) लौकान्तिका^(८) ततस्^(९) च्युता ॥
एकद्वैगर्भवासमुः अवाप्य + निर्वास्यन्ति^(१०) इतिरक्ताः^(११) =एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य मयको पारण करक मोक्ष भात हैं ऐसे करेगये हैं
किमुपरम्^(१२) मन्युः^(१३) मपि^(१४) निर्वाणमाप्तिकालविभाग ॥ =यथा इसप्रकार अन्य देवोंमें भी मोक्षक पावनक कालका विभाग अथवा पूषकता

^(१५) विपयतेऽ इति^(१६) अत ० आह ॥

=वर्तमान है (=विद्यत) इसलिय (आधार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) पहिल कोरे स्वर ए ये को को दोइकर आवे उसके पश्चात् हुस्व श्रुत्कार होतो ऐसा श्रुत्कारक साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है अर्थात् धाई उसको स्वरके साथ मिलानो जैसे देव श्रुति = देवश्रुति अथवा देव श्रुति = देवर्षि । देवर्षयः बहुवचन 'देवर्षि'का है ।
(२) तीर्थकर-तीर्थ (शिवराजसग - शिवको करनेद्वारा आगमें श्राद्धाभ्यर्चना)कराति तीर्थकर, तीर्थदुर तीर्थं कर इतो अर्थमें होताहै (पराशरब्रह्मसंहिता पृष्ठ १७३)
(३) 'चतुर्धा -- स्वार्थसिद्धिके दोनो संस्कारोंमें च्युत्वा पाठ है परन्तु उनके सूत्र २४ २४ में तीन स्थानोंमें और इत्यन्तिलिखित तीन प्रति में (एत सूत्रमें) तथा तीन स्थानोंमें सूत्र २४, २४ में और राजवार्तिकके सूत्र २४ में एक स्थानमें सूत्र २४ के तीर्थ स्थानोंमें (चतुर्धा) शब्द है इतने इत्यन्तिलिखित तथा तथाप्यैरोक्तवार्तिक पाठके अनुकूल 'च्युता शब्द लिखा है ॥ 'च्यु'प्रथम स्यादि पतन होना अर्थमें है च्युत्वा शब्द भी ठीक है (रेको प्रथम अण्णाय पृष्ठ १९) को टिप्पणी थी ॥ तत्सार्थश्लोकवार्तिकमें २४ सूत्रकी व्याख्यामें 'च्युत्वा शब्दका प्रयोग है (१३) बिभृ पांशोर मिलदि चतुर्धंगलका पाठु है इस गलमें श्रियाका प्रत्यय आइनेके पहिले ए विकरक आइताता है । अर्थ बिभृ पाठुका 'होना एसा है जैसे (विक्र प ते = विद्यते = वर्तमान है)

पदानिवासी आगरूपसहाय कर्कालङ्कत पदच्यन्द और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शक्यता: हिन्दीअनुशासक अध्याय ४ सूत्र २६

चरमत्वं देहस्य । मनुष्यभवापेक्षया द्वौ चरमौ देहौ येषा ते द्विचरमा । विजयादिभ्यश्च्युता
अप्रतिपतितसम्यक्त्वो मनुष्येऽप्येत्स्य संयममाराध्य पुनर्विजयादिपूरण्य ततश्च्युता पुनर्मनुष्यभवमवाप्य
सिद्ध्यन्तीति द्विचरमदेहत्वम् ॥ आह जीवस्योदधिकेऽपुभावेऽपु तिर्यग्योनिगतिरौदयिकीत्युक्त, पुनश्चस्थितौ

चरमत्वम् ॥ (१) देहत्वम् ॥

मनुष्यमप्यपेक्षया ॥ शौः ॥ चरमौ देहौ ॥ येषाम् ॥
वेः ॥ द्विचराम् ॥

विमानोमं उत्पन्न होता है । वहाँसे स्युत होकर पुनः मनुष्य होता है और वहाँसे फिर मात्र बला
आता है किन्तु भव सामान्यकी अपेक्षा यहाँपर द्विचरमपना नहीं है अन्यथा वो मनुष्यमव और
एक देवभन इस प्रकार तीन चरम देहपना सिद्ध होगा दो चरम देहपना सिद्ध न होसकता ।
=विजयादिव्यम् ॥ श्युताम् ॥ (१)अप्रतिपतितसम्यक्त्वाम् ॥

मनुष्येभ्यः उत्पन्न + संयमम् ॥ आरास्यम् ॥ पुनः ॥ विनय
आदिपुः ॥ उत्पन्न ॥ ततः ॥ स्युताम् ॥ पुनः ॥ मनुष्यमप्यम् ॥
(१)अवाप्य + सिद्धपन्ति ॥ इति ॥ द्विचरमदेहत्वम् ॥
आह ॥ जीवस्य ॥ औदयिकेऽपु ॥ भावेऽपु ॥ तिर्यग्योनिगतिः ॥
औदयिकी ॥ इति ॥ उक्तम् ॥ पुनः ॥ च ॥ स्थितौ ॥

=(यहाँ एक चरमत्वसिद्धे: इस वाक्यमें) चरमत्व शक्य है सो देहका चरमत्व है
अर्थात् देहका अयसानपना वा अन्तपना ऐसा चरमत्व शब्दसे अभिप्राय है
=मनुष्य जन्यकी विपक्षासे दो अन्तिम शरीर जिनके हैं
=द्वै द्विचरमा हैं अर्थात् मनुष्यमवसे संयमको आराधनकर पुनः विजयादि

विमानोमं उत्पन्न होता है । वहाँसे स्युत होकर पुनः मनुष्य होता है और वहाँसे फिर मात्र बला
आता है किन्तु भव सामान्यकी अपेक्षा यहाँपर द्विचरमपना नहीं है अन्यथा वो मनुष्यमव और
एक देवभन इस प्रकार तीन चरम देहपना सिद्ध होगा दो चरम देहपना सिद्ध न होसकता ।
=विजयादिव्यम् ॥ श्युताम् ॥ (१)अप्रतिपतितसम्यक्
दर्शनवाले अर्थात् छायादिकसम्यग् दर्शन सहित
=मनुष्योमं उत्पन्न होकर संयमको धारणकर फिर विनय
=आदिक (विमानोमं) उत्पन्न होकर वहाँसे स्युत होते हैं । फिर मनुष्यजन्यको
=आप्त होकर मोक्ष जाते हैं । इस प्रकार दो चरम अर्थात् दो अन्तिम देहपना है
=(शिव्य) पूजता है कि जीवके औदयिक भावोंमें तिर्यग्गति
=औदयिकीपेसे दूसराअध्याय सूत्र ६में) उचित था मणित है वहुरि स्थितिर्मौ (च)

(१) देहस्य यही विभक्ति का एक यथम पुंलिङ्ग वा मपुसकलिङ्ग दोनों होसकते हैं । (२) सर्वार्थसिद्धि इत्यस्मिन्नित्य तथा द्वितीयात्पत्तिम्, तत्वार्य
राजवादिभ्यो 'अप्रतिपतित' शक्य है, प्रथमात्पत्तिर्मं 'अप्रतिपतित' शक्य है, प्रात होता है कि मूलसे कृपणया है (३) उत्पन्न (= उत्पन्न होकर) आराप्य
(= आराधनकर) और अवाप्य (= प्राप्त होकर) ये सम्बन्धकसूत्रक भूत उपपन्न है । [५] 'यासि' शक्य ज्यौक्लिङ्ग पुंलिङ्ग दोनोंसे अमरकोश वर्ग १३३में आया है ।

सर्वार्थसिद्धिप्रसंग इति चेन्न तेषा परमोक्तृत्वात् । अन्वर्थसञ्ज्ञात एकचरमत्वसिद्धे ॥

सर्वार्थसिद्धि-प्रसंगः इति ० शेषः ०

=सर्वार्थसिद्धि (विमानकामी) ग्रहण हुआ ऐसा सत्यैह (शिष्यकी ओरसे) है अर्थात् आचार्यके उचर देने पर कि विजय आदिक वेरह विमानोंमें सम्पग् इष्टिके अतिरिक्त कोई जीव जन्म धारण नहीं करता है शिष्यने यह संदेह किया कि ऐसा करनेमें सर्वार्थसिद्धि का विमान भी ग्रहण होजाता है क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमानमें बसनेवाले देव भी तो ब्रह्मिन्द्र ही है और सम्पग् इष्टि ही है (उचर)

नञ्चेपाद्परम उक्तृत्वात् ॥

=नहीं तिन)सर्वार्थसिद्धिवासी देवों का(ग्रहण)परम उक्तृष्ट होने(के कारण)से (यहाँपर) हुआ (क्योंकि सर्वार्थसिद्धि अर्थात् जहाँ सम्पूर्ण अम्युद्रयके अर्थ सिद्धि होगये है ऐसी)

=सार्थक संज्ञा ना जैसा नाम है वैसा अर्थ वाणी संज्ञा होनेसे

अन्वर्थसञ्ज्ञातः एकचरमत्वसिद्धेः ॥

=एक (मनुष्य)देवके अन्वपनेसे (चरमत्व) सिद्ध होने है अर्थात् सर्वार्थसिद्धिसे च्युत होकर मनुष्यका एक शरीर धारणकर मोक्ष पावें हैं । इस समस्त मम और उचरका भावार्थ यह है कि शुक। करनेपर कि ब्रह्मिन्द्र और सम्पगभी तो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी भी देव हैं । यदि यहाँ पर प्रकारका अर्थ यह कियाजायगा कि जो वैमानिकदेव ब्रह्मिन्द्र और सम्पगष्टि हो वे द्विचरम (=दो मव धारणकर मोक्ष जाते) हैं तबतो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंको भी दो मनुष्य मव धारण करके पीछे मोक्ष माननी पड़ेगी क्योंकि ब्रह्मिन्द्र और सम्पगष्टि वे भी हैं । परन्तु च वे शास्त्रमें एक चरमी (=एक मव धारणकर मोक्ष जानेवाला माना) है इसलिये प्रकार शुद्धका जो ब्रह्मिन्द्र और सम्पगष्टि अर्थ माना है वह अयुक्त है । उचरमें करते हैं कि सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव परमोक्तृष्ट हैं । जहाँ पर सर्व प्रयोगनोंकी सिद्धि हो वह सर्वार्थसिद्धि है । यह सर्वार्थसिद्धि शुद्धका अन्वर्थकपसे अभिप्राय है । सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंके किसी प्रयोजनीय कार्य सम्पादन करनेवाला कर्म श्रेय नहीं रहला जिससे वे दो मनुष्य मव धारणकर मोक्ष जाय अतः मात्तार्थ वे एकही मनुष्य मव धारण करते हैं और वहाँसे मोक्ष चले जाते हैं अत उनको एक चरमपनारी है द्विचरमपना नहीं है ॥

शेषमें इन्द्रकी इन्द्राधी (जो तीर्थकरको ब्रह्म समय प्रसून गृहमेंस जाय इन्द्रको नौदे लो सच) शीघ्रमें स्वर्गके धारो जोडवाला(१ सोम २ यम ३ वरुण ४ कुबेर) और सब लोकाधिक देव अर सर्वार्थसिद्धि विमानके सब ब्रह्मिन्द्रदेव एक मव अयवारी है ॥

तेषां तिरश्चा देवादीनामिव क्षेत्रविभाग पुनर्निर्दिष्टव्य । सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागो नोक्तः ॥ आह स्थितिरुक्ता नारकाणां, मनुष्याणां तिरश्चा च । देवानां नोक्ता । तस्या वक्तव्याया-
मादाबुद्धिदाना भवनवासिनां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

स्थितिरसुरनागसुपर्णेद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमाद्द्विहीनमिता ॥

पुनः० वेपाम् । तिरश्चाः । देव-आदीनाम् । पृथक्
क्षेत्रविभागः । निर्दिष्टव्यः ।
सर्वलोक-व्यापित्वात् । वेपाम् । क्षेत्रविभागः । न ० उक्तः ।
आह । स्थितिः । उक्ता । नारकाणाम् । मनुष्याणाम् ।
तिरश्चाम् । पृथक् देवानाम् । न ० उक्ता । तस्याम् ।
वक्तव्यायाम् । आर्षः । बुद्धिदानाम् । भवनवासिनाम् ।
स्थिति प्रतिपादन अर्थम् । आह ।

= और उन तिर्यञ्चोका देवादिकों क समान (=इव)
= क्षेत्रविभाग अर्थात् जिस क्षेत्रमें तिर्यञ्च पाये जावें सो कहना चारिये
= (परन्तु) सर्वलोकमें पायेजानेसे उन (तिर्यञ्चों) का क्षेत्रविभागनहीं कहागया
= (शिष्य) पूकता है कि आयु नारकोंकी कही गई, मनुष्योंकी
= तिर्यञ्चोंकी मी (=च, करीगई) देवोंकी नहीं करीगई उसके
= करनेकेआर्षिमें (सम्प्रदायकासूत्र २, ३, १० में) उपदेशाक्रियेगये भवनवासिदेवोंकी
= आयुके करनेके लिये (आचार्य) सचरू सूत्रमें करते हैं कि

सूत्रम् (१) - स्थितिरसुरनागसुपर्णेद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमाद्द्विहीनमिता ॥ २८ ॥

= (परा) स्थिति - असुर-नाग-सुपर्णे-द्वीप-शेषाणाम्-सागरोपम-त्रिपल्योपम-अर्द्धहीन-इता भवति ।

पराः । स्थितिः । असुर-नाग-सुपर्णे-द्वीप-
शेषाणाम् ।
= उक्तव्यायु असुर कुमार, नाग कुमार, सुपर्णे कुमार, इीपकुमार, और
= वचे हुए (छह) नियुत कुमार अग्नि कुमार-वातकुमार-स्वनितकुमार-ववधि
कुमार दिक्कुमारों की (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

(१) हमारे यहां इस सूत्रके स्थानमें इतात्पर आत्मात्सकसमाख्य में २४ ३० ३२ सत्र विद्ये है । अन्तमें स्थितिः पद्य २४ वां सूत्र अक्षिकारसूत्रही
(२) ठेकीसर्वा सूत्रके 'अपरा' शब्दको देवनेसे जिस सूत्रसे आठतीसवां सूत्रक अपत्य स्थितिका कथनही और विद्येयत ३०वां सूत्रपर इतिङ्करनेसे
ब्रह्ममें मग्नवासी देवोंकी अपत्य स्थिति कथनस्य अर्थकी वक्षित है यह आठप भक्तकता है कि इस २४ वां सूत्रमें मग्नवासी देवोंकी उक्तव्य
स्थितिका वर्णन है अतः मीते इस सूत्रमें 'परा' (= उक्तव्य) शब्दको जोड़कर अर्थ किया है 'अपरा का प्रतिफल परा है ०
(३) हीनमिता स्वार्थ है कि इता शब्द का अर्थ मात परेता है और 'मिता' शब्द का अर्थ परिमित' माया हुआ (परपञ्चकोश पृ २६१) है ० यहां
पटहीनमिता = हीनम् इता परेता परपञ्चेइ है अकि हीनमिता क्योंकि इताजा प्रथमा विमक्ति-पञ्चकन कीकिंगई उसका अन्वय 'स्थिति' शब्दके साथ है ।

प्राग्निवाही नगरसहाय धकीक कुल पदच्छेद और विपक्षय सहित सभार्थिसिद्धिका शब्दशः हिन्दीमनुवाद । अध्याय ४ सूत्र २१ ।
तिर्यग्योनिजाना चेति । तत्र न ह्यायते के (१) तिर्यग्योनय ? इत्यत्रोच्यते—

श्रीपपादिकमनुष्येभ्यः शोपास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

श्रीपपादिका उक्ता देवनारका । मनुष्याश्च निर्दिष्टा । प्राह्मानुपोत्तरान्मनुष्या इति । एभ्योऽन्ये
सप्सरिणो जीवा शोपास्तिर्यग्योनयो वेदितव्या ॥

तिर्यग्योनिजानाम् ॥ व० इति ० तत्रकन ० ह्यायते ॥ = तिर्यग्योनिजाना च' ऐसे (अध्याय ३ सूत्र ३६ शरीरवाही नरी वत्वायागया है कि
कः ॥ तिर्यग्योनयः ॥ इति ० अयः ० सच्यते ॥ = तिर्यग्योनिवाले कौन हैं इसलिये यहाँ (अग्रिम सूत्रमें) फ़राजावा है कि

सूत्रम्— (१) श्रीपपादिकमनुष्येभ्य शोपास्तिर्यग्योनय ॥ २७ ॥

= श्रीपपादिकमनुष्येभ्य शोपास्तिर्यग्योनय (भवन्ति) ॥ २७ ॥

सूत्रार्थ — श्रीपपादिकमनुष्येभ्यः ॥ शोपाः ॥

तिर्यग्योनयः ॥ भवन्ति ॥
= उपाद रूप अन्तसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् अध्याय २ सूत्र ३४ वां में उक्त देव
तथा नारकी जीव और तीसरा अध्यायके ३५ वां सूत्रमें वर्णितमनुष्योंसे भिन्न अवशेष
= तिर्यग्योनिज होते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इससत्ताईसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

शोपाः ॥ त्रयोः ॥ देवनारकाः ॥

मनुष्याः ॥ च० निर्दिष्टाः ॥ प्राह्मानुपोत्तरात् ॥ मनुष्याः ॥ अयि ॥ = और मनुष्य भी कहेगये हैं कि मानुषोपर पर्वतसे परिले परिले मनुष्य हैं
(अध्याय बीसरेका सूत्र ३५ वां देखो)

पुष्यः ॥ अन्येः ॥ सप्सरिणः ॥ जीवाः ॥ शोपाः ॥

तिर्यग्योनयः ॥ वेदितव्याः ॥

[१] 'वेति' शब्द लोपिये और पुष्पिण शोनामें 'अमरकाठ' वा १५ श्लोक ७५ में है परन्तु ६ बहुवचन पुष्पिण में है अतः 'योमया' मा
बहुवचन पुष्पिणमें है । [२] 'परावत्' च साम्बायक समाप्य० में 'शोपादिक' शब्दके इयामने शोपादिक ही । शोपादिक शोपा आत्मानामने एकही अर्थमें ही एकसाही ।

शोषाणां पपणामर्धपल्पोपमम् ॥

आद्यदेवनिकायस्थित्यभिधानादनन्तर व्यन्तरज्योतिष्कस्थितिवचने क्रमप्राप्ते सति तदुल्लंघ्य वेमानिकांना स्थितिरुच्यते । कुत शतयोरन्तरं लघुनोपायेन स्थितिवचनात् ॥ तेषु चादावुद्दिष्टयो

कल्पयो स्थितिविधानार्थमाह—

शोषाणां पपणाम् ।

अप्यर्धपल्पोपमम् ॥

आद्य-देस-निकाय-स्थिति अभिधानात् ॥ अनन्तरम् ॥

व्यन्तर-ज्योतिष्क स्थिति-वचनम् ॥ क्रमप्राप्ते ॥ स्थिति ॥

तत् ० उल्लंघ्य + वेमानिकानाम् ॥ स्थितिः ॥ उत्पत्तेः ॥

कुतः । अन्तरम् । उत्पत्तेः ॥

लघुनाम् । उपपत्तेः ॥

स्थिति-वचनात् ॥

तेषु ॥ अर्धमादाः । उत्पत्तयोः ॥ कल्पयोः ॥

स्थितिविधान अर्थम् ॥ आह ॥

मन्वेष्टुं तद्विद्यापिद्योतानं पस्यापममप्यर्थम् ॥ ३० सूत्र ४ (समाप्यतश्चार्थाधिगमसूत्रक पृष्ठ ११५ से उद्धृत)

मन्वेष्टुः । पदिल्लोचार्थाधिगमनाम् ।

पस्यापमम् ॥ । अप्यर्थम् ॥ ॥

= वचे हुए छह (विद्युत कुमार अग्नि कुमार-चात कुमार-स्तनितकुमार-उदरिकुमार दिवकुमारों) की (स्थिति)

= आधी अधिक सरित एक पल्प प्रमाण अर्थात् देड़ पल्प प्रमाण है

= अप्यम अर्थात् भवन वाली देवोंके सहायकी स्थितिके कहनेसे अत्यन्त समीप

= व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंकी आयुके कथन (वचन) विषे क्रम प्राप्त होने पर

= वस (क्रम)को छोड़कर वा त्यागकर वैमानिक देवोंकी आयु कही जाती है

= (परन्तु ज्योत्स्नजन-व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवों)की (स्थिति) प्राप्तिसे आगे (करीमायगी)

= (उत्तर) लघुफलद्वारा वा लघुसाधनद्वारा (उन व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंकी)

= स्थितिका कथन होगा अर्थात् अग्निमसूत्रोंमें बर्णन करेगे जो सूत्र उनसे पहिले

सूत्रोंसे अनुवृत्ति देनेके निमित्तसे लघुहोवेत्तो २० ३६ ४० ४१ सूत्र जो कितने

लघु हैं और जिनसे स्पष्ट है कि यदि व्यन्तर ज्योतिषियोंकी स्थिति २-वर्षासूत्र

के अनन्तर करते तो इन सूत्रोंकी इतनी लघु रचना कदापि नहीं होसकती थी

= और तिन (वैमानिक देवों) विषे आदिमें कहे हुए (सौषर्ष और पेशान) स्वर्गोंमें

= आयुके नियम के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहत हैं कि

मन्वेष्टुं तद्विद्यापिद्योतानं पस्यापममप्यर्थम् ॥ ३० सूत्र ४ (समाप्यतश्चार्थाधिगमसूत्रक पृष्ठ ११५ से उद्धृत)
 = भवनवासी (देवों) में इ(ल्लोचार्थाधिपति (देव) निवा अर्थात् विद्युत अग्नि स्तनित और शीघ्र कुमारों की
 = अर्ध अधिक (सब्ध) एक पल्प प्रमाण अर्थात् देड़पल्प प्रमाण परा विद्युत-अच्छे स्थिति है ॥ ३० सूत्र ४

पुनिवासी आकरपसराय यहीलकृत पदच्छेद और विपणत्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद आशय ४ सू २८

असुरादीना सागरोपमादिभिर्यथाक्रममत्रामिसम्बन्धो वेदितव्य ॥ इय स्थितिरुत्कृष्टा । जघन्या-
ऽप्युत्तरत्र वक्ष्यते ॥ तद्यथा-असुराणा सागरोपमा स्थिति । नागाना त्रिपल्योपमा स्थिति सुपर्णा-
नामर्द्धतृतीयानि । द्वीपाना द्वे ।

सागरोपम-भिरूपोपम अर्थरीनम्॥

इति॥

=एक सागर प्रमाण-तीन पन्यप्रमाण उससे आधी आधी पन्य प्रमाण याटि तीनस्थानमें
=सात है (रीनम्-इत्ता॥पवति) अर्थात् उत्कृष्ट आयु असुर कुमारों की एक सागर है,
नाग कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पन्यहै, सुपर्ण कुमारोंकी उत्कृष्ट आयुहार्थ पन्य है,
और द्वीप कुमारोंकीउत्कृष्ट आयु दो पन्यहै,शेष छह विष्णुकुमारोंकी-अग्निकुमारोंकी-चात
कुमारोंकी-स्वनित कुमारोंकी, उदधिकुमारोंकी विष्णुकुमारोंकी उत्कृष्टस्थिति देव उदयपन्य है॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्टाईसवा^(१) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

असुरादीनाम्॥सागरोपमादिभिः॥यथाक्रमम्॥अत्र॥

यमितसम्बन्धे॥वदितव्येऽप्ययम्॥स्थितिः॥उत्कृष्टा॥

उपन्याः॥अपिउत्तरत्रवक्ष्यते तपयाःअसुराणाम्॥

सागरोपमा॥स्थितिः॥नागानाम्॥त्रिपल्योपमा॥स्थितिः॥

सुपर्णानाम्॥उदयतृतीयानि॥द्वीपानाम्॥द्वे॥

=असुरादिकोंका सागर प्रमाणानुसार क्रमसे यहाँ

=सम्बन्ध जानना चाहिये । यह आयु उत्कर्ष है

=जघन्य (स्थिति) भी यहाँसे आगे (सेतिसर्वासूत्रमें) करेंगे । जैसे असुर कुमारोंकी

=सागर प्रमाण आयु है । नाग कुमारोंकी तीन पन्य प्रमाण आयु है

=सुपर्ण कुमारोंकी हार्थ (पन्यप्रमाण आयु)है द्वीप कुमारों की दो(पन्योपम) आयु है

(१)असुरे यहाँके इस अट्टाईसशब्दों सूत्रमें स्थिति शब्द आ आदिमें आयाहै उसको स्पष्टताग्वर आम्नायके समाप्यतत्पार्थविगमसूत्रमें उक्तोसमाप्यत्र
माला है और उसका तात्पर्य यह है कि इस सूत्रसे अप्याय के अन्त तक वेदोंकी स्थिति का उपाय करेंगे अर्थात् उनके यहाँ यह अर्थिहार सूत्र है और
प्रमाण यह है कि इतिमिक सर्वे सूत्रोंमें अप्यायके अन्ततक 'स्थिति' शब्दको प्रायेक सूत्रमें लगाया । मेरी समझमें यह विधान ठीक है क्योंकि येसा
मानमें और अन्तर और शब्द अपिउत्कृष्ट नहीं होता और दो बातें प्रगट होजाती हैं प्रथम यह कि यहाँसे इस अप्यायके अन्ततक सब आयुका ही
प्रकार है और दूसरी बातें यह कि इस स्थिति शब्दकी अनुपुष्टि सर्वे सूत्रोंमें इस सूत्रसे अप्याय पर्यंत होतीजाती है । विगमवर आम्नायके इस
अट्टाईसवा सूत्रमें इष्ट मननवासी वेदोंकी आयु नर्तित है वेही स्थितिमें कुछ औरके साथ प्रस्ताम्बर आम्नायके समाप्यतत्पार्थविगमसूत्रके तिलन
निश्चित तीन सूत्रोंमें उही इष्ट मनन वासी वेदोंको आयुका उपाय किया गया है ॥

सौधर्मेशानयोः सागरोपमे (१) अधिके ॥ २९ ॥

सूत्रम्—सौधर्मेशानयो सागरोपमे अधिके ॥ २६ ॥

= (परा-स्थिति सूत्र २८वा से) सौधर्म-ऐशानयो सागरोपमे अधिके (भवति)

इदमाह्वर आत्मायक समाध्यतन्वाथविगमवत्सूत्रके २८-३०-३१ ३२ और हमारे यहाँक २८ वां सूत्रका मिलाकर विचार पूर्वक पढ़नेसे भावतवासी देवोंकी उरुय स्थिति का ये दू नामों समझायोमें सिद्ध सूचीसे उसे प्रकार विवित होता है ॥ जैसे

अवत वासी देवका नाम ॥	इदमाह्वर आत्मायके	अरुहस्थिति	विगमवरआत्मायके	अनुकूलउरुह आयु	सपत्ना
(१) असुर कुमार	एक सागर प्रमाथ	समाध्य०	एक सागर प्रमाथ	(सूत्र २८ देखो)	दीनों समझायोमें असुर
(२) नाग कुमार	एकसागरप्रमाथसे कुछ अधिक	सूत्र ३० देखो	तीन पद्व्य प्रमाथ	(सूत्र २८ देखो)	कुमारकी आयु एक सागर
(३) निपुणकुमार	अड़ पद्व्य प्रमाथ	समाध्य० सूत्र ३० देखो	अड़ परप प्रमाथ	(सूत्र २८ देखो)	प्रमाथ है और विपुणकुमार
(४) सुपर्ण कुमार	गोन वापद्व्य प्रमाथ	समाध्य० सूत्र ३१ देखो	हाँ पद्व्य प्रमाथ	(सूत्र २८ देखो)	अग्नि कुमार स्तमितकुमार
(५) अग्नि कुमार	अड़ पद्व्य प्रमाथ	समाध्य० सूत्र ३० देखो	अड़ पद्व्य प्रमाथ	(सूत्र २८ देखो)	की आयु अड़ अड़ पद्व्यकी
(६) यान कुमार	गोन वापद्व्य प्रमाथ	समाध्य० सूत्र ३१ देखो	अड़ पद्व्य प्रमाथ	(सूत्र २८ देखो)	है अथर्वेय छह कुमारोंकी
(७) स्तमित कुमार	अड़ पद्व्य प्रमाथ	समाध्य० सूत्र ३० देखो	अड़ पद्व्य प्रमाथ	(सूत्र २८ देखो)	उरुह स्थितिमें दीनोंसम्म
(८) उदधि कुमार	पाने वापद्व्य प्रमाथ	समाध्य० सूत्र ३१ देखो	अड़ पद्व्य प्रमाथ	(सूत्र २८ देखो)	वायोमेंदेव है असाकि सूची
(९) श्रीय कुमार	अड़ पद्व्य प्रमाथ	समाध्य० सूत्र ३० देखो	या पद्व्य प्रमाथ	(सूत्र २८ देखो)	से प्रगट है ॥
(१०) विपुणुमार	पान दोपद्व्य प्रमाथ	समाध्य० सूत्र ३१ देखो	अड़ पद्व्य प्रमाथ	(सूत्र २८ देखो)	

(१) विगमवर आत्मायमें सर्वार्थसिद्धि पुरस्तिके दोनो सरकरकोमें 'अधिके' पाठ है इत्थ लिखित प्रतिमें उचिते पाठ है अन्य अथ्य पदसकोमें कही नहीं पर अधिके पाठ है और कही कही पर 'उचिते' पाठ भी है दोनो पाठ ठीक हैं देवी इस अनुपाद को अर्थाय १ पृष्ठ १० की टिप्पणी (२) देवीसर्वा सत्रमें सौधर्म ऐशान स्वर्गोंको अर्थाय स्थिति कही है और इस देवीसर्वात्मिकी आदिमें 'अपरा शब्द लाये हैं इससे स्पष्ट है कि इस सत्र में उपर्युक्त देवी स्वर्गोंकी ही उरुह स्थिति कही है और परा शब्द का अर्थपदको से अर्थावार करना योग्य है ॥ अतः हमन परा शब्द जोड़ा है ॥

समाप्यतस्वार्थाधिगमसूत्रके १२ वां सूत्रमें (= हमारे पहले हुए १० वां सूत्रके) कथित दो दो मन्वन्वासी इन्द्रोर्मसे पर्यं पूर्वका इत्य इच्छिणार्थाधिगति कहाबाना है और दूसरा उत्तरार्थाधिगति है [समाप्य० पृष्ठ १५ से उद्धृत]। समाप्य देसा है कि द्य मन्वन्वातियोर्मसे समाप्यतस्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित ३२ वां सूत्रमें बर्णित असुर कुमारों और नाग कुमारोंको निकालकर जिनकी उत्कृष्टस्विति अनुक्रमसे सागरोपम और कुछ अधिक सागरोपम है। समाप्यतस्वार्थाधिगम सूत्रके तीसरा सूत्रके अनुक्रम हीन वार विद्युत् कुमार वृषिबार्थाधिगति की डेढ़ पर्योपम परास्विति है। चतुर्दशमां वृषिबार्थाधिगति की डेढ़ पर्योपम परास्विति है स्थानिकुमार वृषिबार्थाधिगति की डेढ़ पर्योपम परास्विति है। श्रीपुत्रुमार वृषिबार्थाधिगति की डेढ़ पर्योपम परास्विति है।

शोषाणा पादेने ॥ ३१ वा सूत्र ॥ (समाप्यतस्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५ से उद्धृत)

येणार्थाधिगमसूत्रके ३१ वा सूत्रके ३२ वा सूत्र ॥ (समाप्यतस्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५ से उद्धृत) = (मन्वन्वासियोर्मसे) बचे हुए उत्तरार्थाधिगति की एक पाद हीन दो अर्थात् योम दो (पर्योपम परास्विति है) आचार्य देसा है कि वार सुपुत्र कुमार उत्तरार्थाधिगति की योम दो पर्योपम उत्कृष्ट स्विति है। वार कुमार उत्तरार्थाधिगति की योम दो पर्योपम उत्कृष्ट आयु है अर्थात् कुमार उत्तरार्थाधिगति की योम दो सागरोपम उत्कृष्ट अवस्था है, वृषिकुमार उत्तरार्थाधिगति की योगयोगस्थापम अधिकसे अधिक स्विति है।

असुरेन्द्रयो सागरोपममधिकं च ॥ ३२ वा सूत्र समाप्यतस्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५ से उद्धृत
= असुरेन्द्रयोस्तु द्विणार्थाधिपत्युत्तरार्थाधिपत्यो सागरोपममधिकं च यथासख्यं परास्थितिभवति

दु० वृषिबार्थाधिगति उत्तरार्थाधिगति ॥ असुरेन्द्रयोः ३।

सागरोपमम् २। स्वधिकं ३। अथ यथासख्यं ४। परा ३। स्विति ३।

ये सब यो "कुमारोंके समान उनकीय इतनी सुकुमार, मूढ़ मयुर तथा लज्जित गतिकाले अगार सहित समुद्र रूप विक्रिया युक्त होत हैं। और कुमारोंके ही समान इनका व्यक्त कुमारोंके तुल्य अनुपुनक्य वर माया कामरूप, अस्वस्वस्विकि प्रहृष्ट वल तथा पाग बाहवार्थि युक्त होत हैं। और कुमारोंके ही समान इनका व्यक्त अर्थात् स्वच्छराग कीदामें ताय रहता है अथवा इतने कुमार कहत हैं। इनमें असुर कुमार असुर कुमारके आवासमें रहत हैं और शय मन्वन्वातियोर्मसे विवास करने हैं। महात्मवत्क वृषिब और उत्तर विक्रियागोर्मसे अनेक जांब योजन छोटी कोटीयोर्में असुर कुमारोंके आवास हैं और मन्वन्वा इच्छिणार्थाधिगति की उत्तरार्थाधिगति को पचास है। वही एकमात्रमें यह मागके अर्थ मध्यमें प्रवेष्ट करने मध्यमें मन्वन्वा है। मन्वन्वाओं को रहते हैं उनमें मन्वन्वासी कहत हैं। समाप्यतस्वार्थाधिगम सूत्र के पृष्ठ ६६ से उद्धृत ०

ये सब यो "कुमारोंके समान उनकीय इतनी सुकुमार, मूढ़ मयुर तथा लज्जित गतिकाले अगार सहित समुद्र रूप विक्रिया युक्त होत हैं। और कुमारोंके ही समान इनका व्यक्त कुमारोंके तुल्य अनुपुनक्य वर माया कामरूप, अस्वस्वस्विकि प्रहृष्ट वल तथा पाग बाहवार्थि युक्त होत हैं। और कुमारोंके ही समान इनका व्यक्त अर्थात् स्वच्छराग कीदामें ताय रहता है अथवा इतने कुमार कहत हैं। इनमें असुर कुमार असुर कुमारके आवासमें रहत हैं और शय मन्वन्वातियोर्मसे विवास करने हैं। महात्मवत्क वृषिब और उत्तर विक्रियागोर्मसे अनेक जांब योजन छोटी कोटीयोर्में असुर कुमारोंके आवास हैं और मन्वन्वा इच्छिणार्थाधिगति की उत्तरार्थाधिगति को पचास है। वही एकमात्रमें यह मागके अर्थ मध्यमें प्रवेष्ट करने मध्यमें मन्वन्वा है। मन्वन्वाओं को रहते हैं उनमें मन्वन्वासी कहत हैं। समाप्यतस्वार्थाधिगम सूत्र के पृष्ठ ६६ से उद्धृत ०

। इदं तु कुतो ज्ञायते ? उत्तरत्र तु शब्दग्रहणात् । तेन सौधर्मशानयोर्देवाना द्वे सागरोपमे सातिरेके प्रत्येतव्ये ॥ उत्तरव्यो स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

‘आश्वसू॥ तु०

= (प्रस) तौ (=०) यद् ‘आ’ अथात् ‘आ’ सासारात् भाषार्थं सहस्रात् तत्क ‘अधिके’ का अधिकार है ॥

कृतः श्रूयते । उत्तरत्र तु शब्दग्रहणात् ॥

तेन सौधर्म-पेशानयोर्देवानाम् ॥ इदं ॥ सागरोपमे ॥

सातिरेके ॥ प्रत्येतव्ये ॥

उत्तरयोः स्थिति-विशेष प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आश्वः

सर्मदे ॥ आश्वे ॥ इदं ॥ (= सत्यस्ते ०) ॥ आश्वे ॥ इदं ॥ इदं ॥

साश्व-रक्षसम् ॥ अधिकम् ॥ (= सागर-रक्षसम् ॥) अधिकम् ॥

आश्व-रक्षसम् ॥ आश्व-रक्षसम् ॥ इति शब्दव्युत्पत्तिः ॥

इस सबका आशय यह है कि पूर्व मन्त्रमें किसी ओरने विद्युत् परिधामोंसे आयु का वष अधिक किया या पश्चात् सङ्केत परिधामोंके वशसे आयु प्रदाय गोत्री रूपकी तिस जीवकी घातायुक्त कहिये । जैसे कोई मनुष्य प्राण प्रदोषकर स्वर्गका आयु वृत्त सागर प्रमाप्य ग्रंथ किया । फिर वही मनुष्यमन्त्र संज्ञेय परिधामोंके रक्षनेसे आयुकी स्थितिका घात करके वीथर्म पेशानमें आयु लयजां से घातायुक्त है । सो अन्य देवीकी अपवा वी सागर प्रमाप्य आयुत अंतम इतं व्युत् सागर सागर अधिक आयु पावे है । आयु का घात हो प्रकार है एक अपवर्तन घात हुआ कहली घात नहीं पचमान आयु का बदलना सो अपवर्तन घात है अर अनुमान आयुका घटावना कहली घात है । देवीमें कवली घात संभव नहीं है ।

[२] सर्वार्थसिद्धि वृत्ति की द्वितीयावृत्तिमें और इत्सुलिखित पुस्तकमें ‘आ’ नती है प्रथमावृत्तिमें ‘आ’ है दोनों ही घात डीक है क्योंकि इत्यम् को और इत्यम् का बोधी अर्थ है । जैसे सव्यामो (जैसे विशति मिश्रत् चत्वारिंशत् इत्यादि) के अतिरिक्त विशिष्य और विशेषणक कारक, वचन (जिग एकही होते है इसलिये ‘इदम्’ के साथ ‘आ’ को विनाकि मिग और वचन मी वही बना जाहिये । ‘आ’ अन्वय है और अन्वय वह शब्द है जो तीनों (जिग सातो विभक्ति और साथ वचनोंमें) विचार वा रूप को पलटन को प्राप्त न हो । जैसा कि कदागया है कि सदर्थं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वानु च विभक्तियु । वचनेषु च सर्वे यदवेति तदव्ययम् ० को (शब्द) समान तीन (जिगोंमें) और (= च) सब (तीनों) विभक्तियोंमें विचारको प्राप्त नहीं होता है वह अव्यय है ।

सागरोपमे इति द्विवचनानिर्देशाद् द्वित्वगति । अधिके इत्ययमधिकार । आ कुत ? आ सहसूत्रात्

सूत्रार्थ - पराङ्गि स्थिति १॥ (सूत्र २८ वां से उद्धृतम्) = उल्लङ्घ्य स्थिति अथवा आयु
 सौपर्यं पशानयोः सागरोपमे ॥ अधिकं ॥ ॥ २६ ॥ = सौपर्यं पेशान (स्वर्ग) में दो सागर प्रमाण और कुछ अधिक है ॥ २६ ॥
 पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उन्तीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद
 सागरापमे ॥ इति द्विवचननिर्देशाद् द्वित्वगति ॥ १ ॥ = (इस २६ वां सूत्र में 'सागरोपमे' ऐसे दो वचनके कथनसे दोफ़ी गति (= गति) है
 अधिक ॥ इति अधिक अयम् ॥ अधिकार ॥ आ कुत ? = (सूत्रमें) 'अधिके' ऐसे यह प्रकरण है ॥ कहाँ तक (= आ) ('अधिके' शब्दकानिपय है)
 आ सहसूत्रात् ॥ = (उपर) सहसूत्र (साहसवां स्वर्ग) तक (= आ) ('अधिके' शब्द का अधिकार है)

(1) स्वतात्पर आन्त्याक समाप्तात्सार्थाधिगमस्य न इत्य सूत्रका अगमग तात्पर्य नीचे के तीन सूत्रमें ऐसे दिया है कि सौपर्यमिदियु पया-
 इत्यम् ॥ १११ ॥ अर्थात् सौपर्यादिक (अर्थोंमें) अन्त्यात् परा (अच्छ) स्थिति काँग ॥ सागरोपमे ॥ १५ ॥ अर्थात् सौपर्यं अयमे देवोकी इत्युच्य स्थिति
 यो सागर प्रमाण है ॥ अधिके च ॥ १५० ॥ अर्थात् और (= च) कुछ अधिक का सागर प्रमाण पेशान अयमे देवोकी स्थिति है ॥ हमारे पढ़ाके इस सूत्रके
 अर्थमें और स्वतात्पर आन्त्याक उक्त तीन सन्तोक तात्पर्यमें यह और इत्यादि हमारे यहाँ सौपर्यं स्वर्गके देवोकी आयु कुछ अधिक को सागर प्रमाण
 मानी है परन्तु इतनाम्बर आन्त्यायमें केवल यो सागर है पेशान स्वर्गके देवोकी स्थिति दोनो आन्त्यायो में एकही है अर्थात् यो सागरसे कुछ अधिकही
 (२) आङ्गु (= आ) अयमे अहं प्रमाण (= अन्त्यात्कर्म स्वस्वस्यिच न इति पाठय यह जैसे आ एवं मन्थसे ओह तुम ऐसा मानते हो) मदी न च आर अर्थोंमें
 आता है (i) योङ्ग-अहं-आ + अन्त्यात्कर्म = योङ्ग तत्त्व (ii) अब क्रिया के प्रथम आता है तब लिखतेके अर्थमें और आता लेना देना इत्यादि
 क्रियापदोंके सामने उक्त क्रियाओंके प्रतिशुद्ध अर्थों का योग होता है जैसे गरुडिनि वह आता है आगच्छति वह = आता है दूले = वह देता है आङ्गु
 वह होता है ॥ (iii) मर्त्या (जो नीमा कहीजाय उसके बाद बाहर (iv) अग्निधिक अर्थमें (आ सामा कही जाय उल्लाकार देनो प्रथम आन्त्याय
 पूष्ट ७१ की दिव्यवी चार) अहाँ तक मेरा जान है उमास्वामीने इस बोधे अर्थमें सर्वत्र प्रयाय किया है देवा अन्त्याय १ सूत्र ३० अन्त्याय २ सूत्र ४१,
 अन्त्याय ४ सूत्र ७, अन्त्याय ५ सूत्र १, अन्त्याय ६ सूत्र २-३, अन्त्याय १० सूत्र ५ इती अर्थमें यहाँ आ सहसूत्रात्, वाक्यमें पूज्यपाद
 स्वामात्रे प्रयाग किया है अर्थात् सागरो से 'कुछ अधिक' आयुका सम्बन्ध 'सहसूत्रात् स्वर्गको समाह्वय, वा अन्तर्गत करते हुये है ॥

यान्तपुष्पस्यपदपेक्षया विशिष्टतात् सागरोपमधिकं भवति सौपर्यं अन्त्यात् सहसूत्रात् आरपर्यन्तम् ॥ सम्प्रदायेकसंज्ञापर्यन्तम् इत्यमाह स्वसूत्रा
 त्ति वचनात् ॥
 पाठ-आपुष्प-समकालीय-अपेक्षया ॥ = समकालीय अपेक्षया ॥
 विशिष्टतात्काल-अन्त्यात्सागरोपमे ॥ अधिकम् ॥ ॥ = कुसुम्यन् (मर्त्यात् अन्त्यात् इति) आये सागर प्रमाण अधिक
 सौपर्यं अन्त्यात्, सहसूत्रात्पर्यन्तम् ॥ ॥ भवति ॥ = सौपर्यं स्वर्गसे सहसूत्र तक (की पुण्यत्, पुण्यत्, निपमित स्थितिसे) होय है - (स्वर्गिक)

वि-सप्त-नव-एकादशभिः^१॥अधिकानि॥ (३१ सूत्रसे^(१))=तीन-सात नौ-ग्यारह अधिक सरित (=अधिकानि इस ३१ वां सूत्र से)

सप्तसागरोपमाणि^२(३०वां सूत्रसे)अधिकानि(२६वां सूत्रसे) =सात सागर प्रमाणा और कुछ अधिक

परः^३॥स्थितिः^४ (२८ वां सूत्रसे) ^(५)प्रसन्नभोजन

खान्दवक्राणि-शुक्रमहाशुक्र शतारसहस्राणुः^५

=वक्रकृष्ट स्थिति (पयासंख्य वा अनुक्रमसे) प्रसन्नभोजन

=खान्दव-क्राणि, शुक्र महाशुक्र, शतार सहस्र (स्वर्गों) में है अर्थात्

प्रसन्नभोजन पाँचवें आर ढठवां स्वर्गोंमें वक्रकृष्टआयु कुछ अधिक (सात + तीन) दश

सागर प्रमाणा (प्रत्यक्षमें) है । खान्दव सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां कल्पमें वत्कर्प आयु कुछ अधिक (सात + सात)

शोडश सागर (प्रत्यक्षमें) है । शुक्र नववां स्वर्ग, महाशुक्र दशवां स्वर्गमें वक्रकृष्ट स्थिति कुछ अधिक (नव + सात)

सोळा सागर (प्रत्यक्षमें) है । शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार शतारवां स्वर्गमें वत्कर्प स्थिति कुछ अधिक (ग्यारह + सात)

अठारह सागर प्रमाणा प्रत्यक्ष में है । स्मरण रहे कि स्वताम्बर आम्नायमें प्रसन्नभोजन-कापिष्ठ-शुक्र और शतार ये चार

स्वर्ग नही हैं वनके यहाँ कश्च १२ स्वर्ग मान हैं हमारे यहाँ सोळा कल्प माने हैं ॥

(^१)दुःप्रयोदश-पञ्चदशभिः^६अधिकानिः^७॥(३१वां सूत्रसे)

सप्त-सागरोपमाणि(३०वां सूत्रसे)परः^८॥स्थितिः^९॥(२८वां सूत्रसे)=सात सागर प्रमाणा वक्रकृष्ट स्थिति (पयासंख्य वा अनुक्रमसे)

सूत्रसे विहित है । माहेन्द्र चरुमें सोनों आम्नायके अनुकूल एकसी स्थिति वक्रकृष्ट है अर्थात् सात सागरसे उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक है ॥

(१) शतताम्बर आम्नायक 'समाप्यन्त्यावधिगमस्य मे इससूत्रके स्थानमें ऐसा सूत्र है 'विश्वस्वितसप्तरोकाशउपोयुष्टयप्रवृत्तयामिदिकात्मिभः'^{१०} हमारे यहाँके एकसीसवां सूत्रसे इस सौतीसवां सूत्रमें विठोव शब्द कायिक है नव क स्थान में दश है 'तु' क स्थानमें 'क' है । शेष पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है । दोनों आम्नायोंके पूर्व सूत्रसे इस सूत्रमें सप्त शब्द को अनुपठि पाठी है । इसलिये 'विशोव' = विशोव + अघिकाभि इसमें सप्त अन्वयों मानाको जोड़कर विठोव + अघिक + सप्त इतनी आयु अर्थात् सात सागरसे कुछ अधिक माहेन्द्र स्वर्गके इषोकी है सो हमारेयहाँकी आयुसमितियों है ॥

(२) प्रसन्नभोजन-खान्दव-क्राणि-शुक्रमहाशुक्र-शतार सहस्रारपु ये शब्द (यह देखकर कि २६ वां सूत्रमें सीधमेंशानयोः तथा ३० वां सूत्रमें खान्दव-क्राणु-शुक्र महाशुक्र-सागरोपमाणि ने नाम किये हैं) अन्वाहार किये गए हैं अथवा यों समसञ्जाकि इस अन्वायके १६ वां सूत्र से प्रसन्नभोजन आन्तव अघिकाणि महाशुक्र शतार सहस्रारपु अन्वयवर्त है ॥

(३) 'तु' शब्द अन्वय है यहाँपर परन्तु कियुं के अर्थात् मेव के अर्थमें प्रवर्तता है कृती वाक्यके पहिले नहीं आता है जिस अथवा जिन शब्दोंसे सम्बन्ध आता है उसके अथवा उनके परन्तु आता है और यहाँ पर इस सूत्रके रूपताके निव र्ति 'तु' का अन् शब्दोले (क) प्रथम रञ्जिया है जिससे उसका सम्बन्ध है अर्थात् ऐसा अर्थ होता है कि सौचमें स्वर्गसे सहस्रार तक वक्रकृष्ट आयुसे कुछ अधिक आयु है आगे मेव (अनु) यह है कि पूरे पूरे सागरो की वक्रकृष्ट स्थिति है 'स + अघिक नहीं है ॥

॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अनयो कल्पयोर्देवाना सप्तसागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा स्थिति ॥
ब्रह्मलोकादिष्वच्युतावसानेषु स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

सूत्रम्—सानत्कुमार माहेन्द्रयो सप्त ॥ ३० ॥ = सानत्कुमार-माहेन्द्रयो सप्त सागरोपमाणि (४
अध्याय-सत्र २६ से) अधिकानि (४ अध्याय सूत्र-२६ से) परास्थिति (४ अध्याय सूत्र-२८ से) भवति

(^१) सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः ॥ सप्त ॥ ३० ॥ ॥ सागरोपमाणि ॥ ॥ ॥ अधिकानि ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
परा ॥ स्थिति ॥ ॥

ब्रह्मणुवाद्—अनयोः ॥ कल्पयोः ॥ देवानाम् ॥

सप्त-सागरोपमाणि ॥ साधिकानि ॥ उत्कृष्टा ॥ स्थिति ॥

ब्रह्म-लोकादिषु ॥ अच्युत-अवसानेषु ॥ स्थिति-विशेष

प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आह

=और कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है ॥

=इन दो (सानत्कुमार और माहेन्द्र) स्वर्गा में देवों की

=सात सागर प्रमाण अधिक सहित उत्कृष्ट आयु है (=सातसागरसे अधिक है)

=ब्रह्मलोकादिषु (और) अच्युत (सोलाहवां स्वर्ग) पर्यन्त विषे आयुका विषे

=ज्ञानने के लिये आचार्य उषर सूत्रमें कहते हैं कि

(^२) सूत्रम्—त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

(यह सूत्र इतना सार गभित है कि बहुत सी अनुसूचियों अथवा अध्याहार द्वारा इसका अर्थ पूरा करनेके लिये पहिले इस सूत्र
क दो भाग करके अनुवाद शुद्ध्य करना पड़ा है, दूसरे यह कि मूले प्रकार समझाने के लिये इस सूत्रकी (में) पूर्ण रूप से अनुसूचियों
को लाकर और सुधैरिका अध्याहार करके हर सूत्रमें इस सूत्रको बाल दिया है)

(१) इत्यादि ब्रह्मण्यक समाप्यतायाध्यायम सूत्र में सप्तनाभःकुमार' ॥ ३१ ॥ यह सूत्र है = सानत्कुमार कल्पक है दोकी सात सागरोपमाणि
उत्कृष्ट स्थिति है इसारे यहाँ इस तोलवां सूत्रम सानत्कुमार स्वर्गमें उत्कृष्ट आयु सात सागरसे कुछ अधिक है ० माहेन्द्र कल्पमें की इसारे यहाँ
उत्कृष्ट आयु सात सागर प्रमाणसे कुछ अधिक है ॥ इतनी ही स्थिति माहेन्द्र स्वर्गमें ब्रह्मण्यक समाप्यतायाध्यायमसूत्रके ३० वां

पृथग्विधो जगत्प्रसाध यकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शुभशुभः विन्दीभनुवाद आश्रय ४ सूत्र ३१

वि-नाम-न-य-का-व-श-भि-॥ अर्थिकानि ॥ (३१ सूत्रसं^(१)) = बीन-साठ-नौ-व्यारइ अर्थिक सारित (=अर्थिकानि इस ३१ वां सूत्र से)
 सतःसागरोपमाणि(३० वां सूत्रसे) अर्थिकानि(२६ वां सूत्रसे) = सात सागर प्रमाण और कुछ अर्थिक
 पराः ॥ स्थितिः ॥ (२८ वां सूत्रसं^(२)) प्रथमप्रकार
 बान्त्ववकापिष्ठ शुभमहाशुभक-युतारसहस्राणुः ॥

सागर प्रमाण (प्रत्येकमें) है । बान्त्व सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां इन्द्राणं वल्लुहआयु कुछ अर्थिक (सात + तीन) वरा
 चोदर सागर (प्रत्येकमें) है । शुक्र नववां स्वर्ग, महाशुभक यज्ञवां स्वर्गमें वल्लुह आयु कुछ अर्थिक (सात + सात)
 सोमर सागर (प्रत्येकमें) है । युतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार बारहवां स्वर्गमें वल्लुह आयु कुछ अर्थिक (नव + सात)
 प्रठार सागर प्रमाण प्रत्येक में है । स्मरण रहे कि स्वैताम्बर आम्नायमें प्रथोचर-कापिष्ठ-शुभ और युतार ये चार
 स्वर्ग नहीं हैं उनके यहां कुछ १२ स्वर्ग माने हैं इसीसे यहाँ सोमर कल्प माने हैं ॥

(१) शुभप्रयादश-पञ्चदशभिः अर्थिकानि ॥ (३१ वां सूत्रसं) = पर-शु (=दुः) प्रयात् कुछ अर्थिक स्थितिको छोड़कर तेरह पंद्रहकरि अधिक सारित
 सप्त-सागरोपमाणि(३० वां सूत्रसं) प्रयाः ॥ स्थितिः ॥ (२८ वां सूत्रसे) = सात सागर प्रमाण वल्लुह आयु (पयासंख्य वा अनुक्रमसे)

सूत्रसे विहित है । माहद्रु चरानें दोनों आम्नायके अनुसूक्त वल्लुह आयु स्थिति वल्लुह आयु स्थिति कुछ अर्थिक है ।
 (१) इतरावत् आम्नायक समाप्यतथापिपामसत्र मे इससूत्रके स्थानमें वरा सूत्रके विद्येगजसहस्रेकापिष्ठप्रयोगशुभकप्रयोगस्थितिकारिणः ॥ ३०
 इतरे वल्लुह इन्द्रोसवां सूत्रसे इस सौतीसवां सूत्रमें विद्येग शब्द अर्थिक है नव के स्थान में वरा है 'तु' के स्थानमें 'व' है । श्रेय गाठ दोनों सम्प्रदायो
 में एक है । दोनों आम्नायोंके पूर्व सूत्रसे एक सूत्रमें सात शब्द की अनुसूक्ति आती है । इसलिये विद्येग' = विद्येग + अर्थिकानि इसमें सात अर्थिक
 मानाच्छे बाहुकर विद्येग + अर्थिक + सात इतनी आयु अर्थात् सात सागरसे कुछ अर्थिक साहस्र स्वर्गके इतना है सो इतनेयज्ञाकी आयुसेमिलती है ।
 (२) प्रथमप्रकार-बान्त्व-कापिष्ठ-शुभमहाशुभक-युतार सहस्राणु यो शब्द (यह एककर कि २४ वां सूत्रमें सौचर्मशानयोः तथा ३० वां सूत्रमें सागरो-
 चर माहोचरो इम स्वर्गके आश्रयों में नाम किये हैं) अर्थात् चर किये गए हैं अथवा यो समग्रआदि इस अर्थात्के १६ वां सूत्र से प्रथम प्रमाण
 आगतव कापिष्ठ-शुभ महाशुभक-युतार वल्लुह आयु अनुपपन्न है ।
 (३) 'तु' शब्द अर्थिक है यद्यपि वरतु कियुके अर्थमें प्रवर्तता है कमी पाक्यके पहिले नहीं आया है जिस अर्थवा जिन शब्दोंसे
 सम्बन्ध रचता है उससे अर्थवा उनके परस्योत् आता है जैसे वहाँ पर एक सूत्रके स्पष्टताक किये हैं कि 'तु' का एक शब्दकोष (के) प्रथम रचकिया है
 जिनसे उसका सम्बन्ध है अर्थात् ऐसा अर्थ होता है कि सौचर्म स्वर्गसे लखकार तक अल्लुह आयुसे कुछ अर्थिक आयु है आगे सेव (=तु) यह है
 कि पूरे पूरे सागरो की बल्लुह स्थिति है 'व' + अर्थिक नहीं है ।

मानत प्राणत आरुण अच्युतेषु॥

=अनत, प्राणत, आरुण, अच्युत (स्वर्गी) में है अर्थात् मानत तेरहवाँस्वर्ग, प्राणत चौदहवाँ स्वर्ग (मत्येक)

में उत्कर्ष आयु(तेरह + सात)ग्रे वीस सागरकी है और आरुण पंद्रहवाँ स्वर्ग अच्युत सोलहवाँ स्वर्ग (मत्येक) में उत्कृष्ट स्थिति (पंद्रह + सात)पूरे बाँस सागरकी है ॥ उपर्युक्तचारों स्वर्गोंमें पूरे पूरे सागरोंकी ही आयु है कुछ कुछ अधिक नहीं है इससे इस सूत्रमें 'तु' शब्द छाये है ॥

(अ) (५) इस सूत्रको अर सूत्रोंमें विभाग करके अनुवृत्तियों और अप्याहारों द्वारा निम्न लेखसे अर्थको स्पष्ट करदिया है ॥

१ विभिः॥ अधिकानिः॥ (इसी सूत्रसे) ० सप्तसागरोपमाणिः॥ (२६ और ३० सूत्रोंसे) = तीनकरिअधिक सातसागर प्रमाण अर्थात् दशसागरप्रमाण स अधिकानिः॥ (=सातिरेकानि सूत्र २६ और वृषि सूत्र २६ से) परा॥ स्थितिः॥ = और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु प्रथमदशोत्तरयोः कल्पयोः प्रवर्तिः

सारांश दशलोक और दशकोचर स्वर्गोंमें कुछ अधिक दश सागर उत्कृष्ट स्थिति है ३०, २० सूत्रोंसे) = सातकरि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात् १४ सागर स अधिकानिः॥ (=सातिरेकानि सूत्र २६ और वृषि सूत्र २६ से) परा॥ स्थितिः॥ = और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु सान्त्व-श्रुतिपठयोः कल्पयोः प्रवर्तिः

(२) नवभिः अधिकानिः॥ (इसी सूत्रसे) सप्तसागरोपमाणिः॥ (२६ और ३० सूत्रोंसे) स अधिकानिः॥ (=सातिरेकानि सूत्र २६ और वृषि सूत्र २६ से) परा॥ स्थितिः॥ = नौ करि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात् मोलहसागर कुछ अधिक (=स अधिकानि) उत्कर्ष स्थिति = शुक नौवाँ में और महाशुक दशवाँ स्वर्गमें है यावार्थ शुक-महाशुकयोः कल्पयोः प्रवर्तिः

नयमा स्वर्गमें और दशवाँ स्वर्ग मत्येक में सोलह सागर से कुछ अधिक स्थिति है ॥

(१) विभिः॥ = वि-सागरोपमेः शब्द नपुंसक लिंगी है और सख्याद्योमें चारनक गणनाकोका लिंगी वही जाता है जो उभयक मत्स्यपक्षाकी सहा का जाता है अतः विभिः को नपुंसक लिंगमें रक्खा है (२) नवभिः इत्यादि को विभिःो इस शत्रुस रक्खा है कि पक्षसे उभय मत्स्य संख्यायें विशेष्य मानी जासकती हैं इन सख्याकोका लक्षण और कारक वही जाता है जो संज्ञाका परतु ये लक्ष्यार्थ केवल बहुवचनमें छाती है और वीनी लिंगों में वही अर्थात् एकही रूप होता है ॥

(२) सर्वायसिद्धि पक्षिके पुरु अपश्ये 'अधिके' शब्दको सूत्रमें आया है उलकी पृथि पुरुपयाइरवामीने स अतिरेके की है अतिरेकका अर्थ अधिक है (सखिये सूत्र में अधिके = स अधिके ॥

- (श्रु) एकादशभिः अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) सप्तसागरोपमाणि॥ (२६, ३० सूत्रसे) स्यारहकारिभ्यः सातसागर प्रमाणमर्थात्प्रकाररसागर स अभिकानि॥ (सातिरेकानि २६ सूत्र और नृसिम्ब २६ से) परा॥ स्थितिः॥ (और) स्वर्गमे और सप्तसा (प्रत्येक) रासमे रे शतार-सागरयोः कल्पयोः॥
- (बु) तु जयोरदशभिः अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) सप्तसागरोपमाणि॥ (२६ और ३० सूत्रसे) परा॥ स्थितिः॥ (२८ सूत्रसे) आनत-सागरयोः कल्पयोः॥
- (र) तु षडशभिः अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) सप्तसागरोपमाणि॥ (३० और २६ सूत्रसे) परा॥ स्थितिः॥ (द्विषण्णिसूत्रसे) आरण-अच्युतयोः कल्पयोः॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

- सौपर्ये स्वर्गसे अच्युत स्वर्ग तत् अन्तःकार और विगतः पर आन्तःयोगीक देवोको समानता और अन्तःरती सची विस्त प्रकार है ॥ तेषो समाज्य विगमपर आन्तःयके स्वर्गोके नाम और वक्की उत्कृष्ट स्थिति सहित है स्वर्गोत्तर आन्तःयके स्वर्गोके नाम इन वर्गों की उत्कृष्ट आन्तःयदिन ० दो सागर प्रमाणसे ऊपर अधिक उत्कृष्ट आयु सौपर्ये स्वर्गके देवोकी है (सूत्र २६) ० कुछ अधिकारी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति योगत स्वर्गके देवोकी है (सूत्र २७) ० कुछ अधिक सातसागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु सातसागर उत्कृष्ट देवोकी है (सूत्र ३०) ० कुछ अधिक आठसागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु गणेश उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ३१) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ३२) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ३३) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ३४) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ३५) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ३६) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ३७) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ३८) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ३९) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ४०) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ४१) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ४२) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ४३) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ४४) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ४५) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ४६) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ४७) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ४८) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ४९) ० कुछ अधिक अठारसागरोपमाणात्कृष्ट स्थिति अन्तःकार उत्कृष्ट आयु सातसागर देवोकी है (सूत्र ५०)

अनन्त-माणत-आरण अण्वुत्पेभुः।

=अनन्त, माणत, आरण, अण्वुत (स्वर्ग) में है अर्थात् अनन्त तेरहवर्षास्वर्ग, माणत चौदहवां स्वर्ग (मत्स्यक)

में उत्कर्ष आयु(तेरह + सात)पर बीस सागरकी है और आरण पञ्चदशवां स्वर्ग अण्वुत सोलहवां स्वर्ग (मत्स्यक) में उत्कृष्ट स्थिति (पंद्रह + सात)पूरे ब्राह्मिस सागरकी है ॥ उपर्युक्तचारों स्वर्गोंमें पूरे पूरे सागरोंकी ही आयु है कुछ कुछ अधिक नहीं है इससे इस सूत्रमें 'दु' शब्द छाये है ॥

(अ) (1) इस सूत्रको छह सूत्रोंमें विभाग करके अनुसृष्टियों और अप्याहारों द्वारा निम्न लेखसे अर्थको स्पष्ट करदिया है ॥

१) त्रिभिः॥ अत्रिकानिः॥ (इसी सूत्रसे) ० सात सागरोपमाणिः॥ (२८ और ३० सूत्रोंसे) = तीनफरिकाधिक सातसागर प्रमाणअर्थात्दशसागरप्रमाण सः अत्रिकानिः॥ (= सातिरेकानि सूत्र २६ और वृषि सूत्र २६ से) परा॥ स्थितिः॥ = और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु प्रक-प्रसोत्तरयोः कल्पयोः भवति॥

सारांश प्रकलाक और प्रकलोचर स्वर्गोंमें कुछ अधिक दश सागर उत्कृष्ट स्थिति है = सातफरि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात् १४ सागर सः अत्रिकानिः॥ (३०, २६ सूत्रोंसे) सप्त सागरोपमाणिः॥ (३०, २६ सूत्रोंसे) सप्त सागरोपमाणिः॥ (इसी सूत्रसे) सप्त सागरोपमाणिः॥ (इसी सूत्रसे) सः अत्रिकानिः॥ (= सातिरेकानि सूत्र २६ और वृषि सूत्र २६ से) परा॥ स्थितिः॥ = और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु सान्त्व-श्रापिष्ठयोः कल्पयोः भवति॥

(२) नवभिः अत्रिकानिः॥ (इसी सूत्रसे) सप्त सागरोपमाणिः॥ (२६ और ३० सूत्रोंसे) सप्त सागरोपमाणिः॥ (= सातिरेकानि सूत्र २६ और वृषि सूत्र २६ से) परा॥ स्थितिः॥ = और कुछ अधिक (= स अधिकानि) उत्कर्ष स्थिति नृक-भराणुकयोः कल्पयोः भवति॥

नवमा स्वर्गमें और दशवां स्वर्ग मत्स्यक में सोलह सागर से कुछ अधिक स्थिति है ॥

(1) त्रिभिः = त्रि-सागरोपमे ; अत्रिको विभागोपमे शब्द नपुंसक लिंगी है और स-क्याप्तोमे कारणक गणभाषोका लिंगमी वही कारण है जो उनक पदरूपवहाकी संज्ञा का होता है अतः त्रिभिः का नपुंसक लिंगमे रफका है (२) सप्तभिः इत्यादि को त्रिभिगी इस शतुस रफका है कि पंचसे उचीस तक स-क्याप्तये विद्येय्य मानो आसकती है इन स-क्याप्तोका वचन और कारणक वही हाता है जो स-क्याप्तो परतु ये स-क्याप्तये केवल शतुसकथनमें आती है सोर तीनों लिंगों में परी अर्थात् एकही रूप होता है ॥

(२) सर्वायसिद्धि वृत्तिके पृष्ठ २५४ में 'अधिके' शब्दको सूत्रमें आया है उलकी वृषि पृष्ठपचाद्दशमातीने स अतिरेक की है अतिरेकका अर्थ अधिक है इसलिये सूत्र में अधिके = स अधिके ॥

तस्य सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति दूसरेमें चौबीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, तीसरेमें पचीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, चतुर्थि मध्य प्रवेकप्रिक्रम प्रथममें अर्धवीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु दूसरेमें सत्तारस सागर प्रमाण परा स्थिति, तीसरेमें अठारस सागर प्रमाण परा स्थिति है और ऊपरके प्रवेकप्रिक्रम प्रथममें वनवीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति, दूसरेमें तीससागर प्रमाण परास्थिति, तीसरेमें एकतीस सागरप्रमाण परास्थिति है

और विमान्वासी है जिनको बाहुचक्र आयु बलीस सागर होसकती है। इस उदको शरीर पर सल्लत माध्य द्विदो प्रभुनाश और अरब दिव्यस्त्री सद्धित धामापनाकार्यधियामसूत्र के पृष्ठ ११० स शब्दका उद्धृत करत है

॥ परत परतः पुनर्पुनर्बल्लतरा ॥ ४२ ॥

मन्वार्थः—“मादेन्द्र ब्रह्मरूप परे पूर्व अर्थात् पूर्व २ स्वर्गोंमें जो परास्थिति है वह पर २ में अथवा अर्थात् अपरा स्थिति होती है ॥”

भाष्यम्—“माहन्नास्तका पूर्वा परतस्ततरा अथवास्विठिर्भवति । तद्यथा माहन्ने परा स्थितिर्द्विदोवादिवाणि सत सागरापरमाणि सा प्रदलीके अब ग्या भवति । प्रदलीके वृत्त सागरोपरमाणि परास्थिति सा आगतके अथवा । दयमासवार्थधिव्यादिति । (विद्ययाविषु चतुर्दु परा स्थितिल्लयप्रिक्रम-सागरापरमाणि सा स्वअचर्यामरुच्य सवार्थसिद्ध इति) ॥”

विद्येव व्याख्या—माहेन्द्र ब्रह्मसे ज्ञाने पूर्व २ की जो परास्थिति है वह पर २ अर्थात् ज्ञाने २ के ब्रह्मोंमें अपरा स्थिति होजाती है । जैसे माहेन्द्र ब्रह्ममें परास्थिति विद्येव आधिक्य सत सागरापरम है अथ प्रदलीकमें अपरा अर्थात् अथवा है । ऐसेही प्रदलीकमें परा स्थिति वृत्त सागरापरम है वह ज्ञानकर्म अथवा वा अपरा स्थिति है । इसी प्रकार पूर्व २ की परा स्थिति पर २ की अथवा स्थिति सवार्थसिद्धि (१) पर्यन्त जाननी चाहिये । (२) (विद्ययादि चार विमानों में परा स्थिति तैतीस सागरोपरम है वह सवार्थसिद्धमें अक्षयकोष्ठपर है ।) ४” अरबदिव्यस्त्री (१) (२) समाप्त्यमें देखें कि (१) यहां पर यह जानना उचित है कि विद्यया आदि चार विमानोंमें परास्थिति बलीस सागरोपरम है और सवार्थसिद्धमें तैतीस सागरोपरम अथ-वागरोष्ठपर है अर्थात् वही एकही स्थिति है परा अपरा मेह नहीं है । और मायका सवार्थसिद्धिमें भी अथवा बलीस सागरोपरम है ऐसा जो कहने है साधवार्थसिद्धात् उत्तका अस्मिमाय नहीं जत होता है । कहायित् यहां आत् (आ) मर्यादाबोधक हो-अर्थात् सर्वाथसिद्ध का जोड़के “तम विवा मर्यादा तसद्विज्ञानिमिदधि ॥”

“४२४ विजयादिबली परास्थिति तो बलीस को (३२) कही है यहां ३३ किस अस्मिमाय से कहे गए नहीं जाना जाता । और कहीं २ कोष्ठका पाठ नहीं है क्योंकि अर्थ संगत नहीं है” आत् मर्यादापरिमिद्यो अष्टाध्यायी २ । १ । १३ अ आत् (—आ) जिसके प्रथम आदि तिसको जोड़ कर (तमविना) मयादा अर्थमें जाता है जैसे आपाटकिपुत्राय नहोः रेव = पटना को जोड़कर रेव परगा ३ तिस सद्धित (= वसवसिद्ध) अथिक्चि अर्थमें जाता है —आ आकारारेकद्वयाधि = आकारको दोते हुए या आकार को समावेश करते हुए एक एक मृत्ये है ॥ अर्थात् चतुर्द्वय अथवर्तुष्य औरआकाराये एकद्व है ।

सूत्रार्थ - आरण्य-अनुनासिक-उच्यते अर्थात् एककनः ॥
 (सागरामाणि ॥) अर्थिकाणि ॥ परा ॥ स्थितिः ॥
 प्रेषणादुत्पत्तयः ॥ अनुदिशोः ॥
 विनय-वैक्यन्त-नगन्त-अपराजितपुःसर्वाथसिद्धिः ॥ च ॥
 =आरण्य-अनुनासिक (पुण्ड्र) से ऊपर एक एक करि
 = सागर-ममाणा) बढ़ती हुई उत्कृष्ट आयु
 = (क्रमसे प्रत्येक) नौप्रवैयकदिये शौर नौ अनुदिशोंमें
 = विनय-वैक्यन्त-नगन्त-अपराजितमें है सर्वाथसिद्धि में स्थिति उत्कृष्ट ही (=च) है
 अथन्य नहीं होती है अर्थात् नीचेके प्रवैयपर्यन्तमें प्रथम प्रवैयपर्यन्त

सूत्रमें 'च' शब्द निश्चयके अर्थमें है अर्थात् च ॥ ही ॥ आण्य यह है कि जो नीचे में उत्कृष्ट स्थिति है वह ऊपर उत्कृष्ट अथन्य अथन्य है जैसे नौ अनुदिशोंमें बनील सागर की उत्कृष्ट स्थिति है वही विजयविक्रम अथन्य है परन्तु सर्वाथसिद्धिमें एक उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरसे अधिक आयु नहीं हात करती अथवस्थिति वामो धाम्नायमें सर्वाथसिद्धिमें नहीं है वियव अर्थ अपराजित विमानोंमें भी उत्कृष्ट आयु होती हैसागरही विजयपर धाम्नायके कदरालीतो क नाम स्थिति सहित

- 0 प्रत्येक नवप्रवैयकमें क्रमसे अष्टमिन्द्रोकी उत्कृष्ट आयु २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ सागर प्रमाणा है ॥ आगत तेरहवाँ स्थानसे नवप्रवैयक पवगत शो-नौ धाम्नायको स्थितिमें अष्टमिन्द्रो है स्थितिमें सागर नहीं है
- 0 नौ अनुदिशोंके प्रत्येक अष्टमिन्द्रोकी उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर है हमारे वहाँ अथप्रवैयकविक्रममें ६१ विमान माने हैं और नौ अनुदिश परसे १०० विमात्र माने हैं
- 0 विजय-वैक्यन्त-अपराजित-चार विमानोंके अष्टमिन्द्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु तैतिस सागर प्रमाणा है
- 0 नवप्रवैयकविक्रम अष्टमिन्द्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु अथन्य आयु तैतिस ही सागर प्रमाणा है ॥
- 0 स्थानात्पर धाम्नायके अष्टमिन्द्रोकी उत्कृष्ट आयु २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ सागर प्रमाणा है ॥ आगत तेरहवाँ स्थानसे नवप्रवैयक एक वलीं स्थानात्पर तथा विजयपर धाम्नायको उत्कृष्ट स्थिति पर अथन्य स्थितिमें सागर नहीं है
- 0 स्थानात्पर धाम्नायमें नवप्रवैयक नामसे विमान गही माने हैं पर हीन ऊपर की प्रवैयकविक्रममें १०० विमानोंके आगे वहाँके नौ अनुदिशोंको भी समावेश कर लिया है (देको अथन्य ४ पृष्ठ ४६)
- 0 विजय-वैक्यन्त-अपराजित-चार विमानोंके अष्टमिन्द्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु बनील सायतोगम है (समाप्यतस्वार्थविम सूत्र-८ पृष्ठ ११७)
- 0 सर्वाथसिद्धिके अष्टमिन्द्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट स्थिति तैतिस सागर प्रमाणा है (देको समाप्यतस्वार्थविम सूत्र ३८ ४२ पृष्ठ ११७ ११८)

इस टिप्पणी से मग्न है कि स्थानात्पर धाम्नायमें नव अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु 'समाप्यतस्वार्थविमसूत्र' में 'परतः परतः पूर्वापूर्वाङ्गानपरत' वा ४२ वा सूत्र है (हमारे वहाँ ३५वाँ है) यह ४६ बालका अणक है कि नवप्रवैयककोके और विजय-वैक्यन्त-अपराजित विमानोंके मध्यमें कोई

पदानासासी जगरुपसहाय परील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सरित सर्वाथसिद्धिका शब्दश्या विन्दीअनुवाद । अध्याय ४ सूत्र ३२२

रुभार्य-भार्य अन्वुनादेः ऊभ्यश्चकृत् ॥

(सागराणाम्निः) अग्निस्त्वानिः ॥ परादेः स्थितिः ॥

श्रेयसात् ॥ नरमुः ॥ अनुदिशामि ॥

विभय-वैजयन्त-जयन्त अपराश्रितपुः ॥ सर्वाथसिद्धिः ॥ च ॥

=भार्य अन्वुत (गुणल) से ऊपर एक एक करि

= सागर मयाण) वरुनी हुई उत्कृष्ट प्रायु

= (क्रमसे प्रत्यक) नोत्रैवैकदिपे और नो शनुदिशामि

= विभय-वैजयन्त जयन्त-अपराश्रितमें है सर्वाथसिद्धि में स्थिति उत्कृष्ट की (=च) है जयन्त नहीं होती है अर्थात् नीचेके श्रेयैवभिक्रमें मयम श्रेयैवकमें

म्वयमें 'च' शब्द विभयक छयमें है अर्थात् च=ही । आशय यह है कि जो नीचे नीचे में उत्कृष्ट स्थिति है वह ऊपर ऊपर में अमय प्रकल्प है उसे नो शनुदिशामि बलीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति है वही विजयार्थिकमें अमय है परन्तु सर्वाथसिद्धिमें एक उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरसे अधिक प्रायु नहीं हातकती जयपरिश्रिति धानो आत्मायमें सर्वाथसिद्धिमें नहीं है प्र विजय येअपत्त अर्थात् अपराश्रित विमानोभी उत्कृष्टप्रायु सर्वाथसिद्धिगारदे

दिगम्बर आत्मायके कइयागोभी के नाम स्थिति सवित

० प्रत्येक नवश्रेयैवकमें प्रमय अहमिद्वीकी उत्कृष्ट प्रायु २३ २४, २५ २६, २७ २८, २९ ३० ३१ सागर प्रमाण है प्र आगत तेरहवाँ

स्वर्गसे नवश्रेयैवक पपत्त होनी आत्मायको स्थितिमें अद्वयहृदि

० नो शनुदिशामिमें प्रत्येक अहमिद्वीकी उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर है

इसारे वरु उत्कृष्टश्रेयैवकभिक्रमें २१ विमान माने है और नो

अमदिश एसे १० विमय माने है

० विभय-वैजयन्त अयन्त-अपराश्रित चार विमानोंके अहमिद्वीमें से

प्रत्येकको उत्कृष्ट प्रायु नैतोत सागर प्रमाण है

० नवश्रेयैविक्रमें अहमिद्वीमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट तथा अमयप्रायु

नैतोत दो सागर प्रमाण है ॥

० इस दिक्की से मतल है कि स्येताम्बर आत्मायमें नव शनुदिश नहीं माने है परन्तु 'सर्गायत्तत्वाप्युपिधिमत्स्य' में परतः परतः पूर्वपूर्वदिशतए

ये ४२ वीं सूत्र है (इसारे वही ३२वाँ है) यह इस बातका प्रायक है कि नवश्रेयैविक्रके और विजय-वैजयन्त-अपराश्रित विमानोंके मयमें जो

प्रत्येक नवश्रेयैवकमें क्रमसे अहमिद्वीकी उत्कृष्ट प्रायु २३ २४ २५ २६ २७ २८, २९ ३० ३१ सागर प्रमाण है । आगत तेरहवाँ स्वर्गसे नवश्रेयैवक तक होनी स्येताम्बर तथा दिगम्बर आत्मायोंकी उत्कृष्ट स्थिति या अमय स्थितिमें अन्तर नहीं है

० स्येताम्बर आत्मायमें नवश्रमदिश नामसे विमान नहीं माने है पर तीन ऊपर की श्रेयैवकभिक्रमें १०० विमानोंमें इसारे वरुको नो अमदिशोंका भी समावेश करलिया है (देखो अध्याय ४ पृष्ठ ५६)

० विजय-वैजयन्त-अयन्त अपराश्रित चार विमानोंके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट प्रायु वरुनीस सामरोग्य है (सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = पृष्ठ ११७)

० सर्वाथसिद्धिके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी अयन्त-शिशुनि शैतोत सागर प्रायु है (देखो सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = ३८ पृष्ठ ११७, ११८)

० विजय-वैजयन्त-अयन्त अपराश्रित चार विमानोंके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट प्रायु वरुनीस सामरोग्य है (सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = पृष्ठ ११७)

० सर्वाथसिद्धिके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी अयन्त-शिशुनि शैतोत सागर प्रायु है (देखो सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = ३८ पृष्ठ ११७, ११८)

० विजय-वैजयन्त-अयन्त अपराश्रित चार विमानोंके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट प्रायु वरुनीस सामरोग्य है (सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = पृष्ठ ११७)

० सर्वाथसिद्धिके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी अयन्त-शिशुनि शैतोत सागर प्रायु है (देखो सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = ३८ पृष्ठ ११७, ११८)

० विजय-वैजयन्त-अयन्त अपराश्रित चार विमानोंके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट प्रायु वरुनीस सामरोग्य है (सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = पृष्ठ ११७)

० सर्वाथसिद्धिके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी अयन्त-शिशुनि शैतोत सागर प्रायु है (देखो सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = ३८ पृष्ठ ११७, ११८)

० विजय-वैजयन्त-अयन्त अपराश्रित चार विमानोंके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट प्रायु वरुनीस सामरोग्य है (सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = पृष्ठ ११७)

० सर्वाथसिद्धिके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी अयन्त-शिशुनि शैतोत सागर प्रायु है (देखो सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = ३८ पृष्ठ ११७, ११८)

० विजय-वैजयन्त-अयन्त अपराश्रित चार विमानोंके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट प्रायु वरुनीस सामरोग्य है (सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = पृष्ठ ११७)

० सर्वाथसिद्धिके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी अयन्त-शिशुनि शैतोत सागर प्रायु है (देखो सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = ३८ पृष्ठ ११७, ११८)

० विजय-वैजयन्त-अयन्त अपराश्रित चार विमानोंके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट प्रायु वरुनीस सामरोग्य है (सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = पृष्ठ ११७)

० सर्वाथसिद्धिके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी अयन्त-शिशुनि शैतोत सागर प्रायु है (देखो सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = ३८ पृष्ठ ११७, ११८)

० विजय-वैजयन्त-अयन्त अपराश्रित चार विमानोंके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट प्रायु वरुनीस सामरोग्य है (सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = पृष्ठ ११७)

० सर्वाथसिद्धिके अहमिद्वीमेंसे प्रत्येककी अयन्त-शिशुनि शैतोत सागर प्रायु है (देखो सर्गायत्तत्वाप्युपिधिम म्पू = ३८ पृष्ठ ११७, ११८)

॥ अपरा पल्योपमसाधिकम् ॥ ३३ ॥

पल्योपम व्याख्यातम् । अपरा जघन्यस्थिति ॥ पल्योपमं साधिकम् ॥ केषा ? सौधमेशानी-
यानाम् ॥ कथं गम्यते परत परत इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥

तत ऊर्ध्वं जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

(1) सूत्रम्—अपरापल्योपमसाधिकम् ॥ ३३ ॥ = (सौधमेशानयो २६वां सूत्रसे) अपरा (स्थिति २६वा

सूत्रसे) पल्योपमम् अधिकम् भवति ॥ ३३ ॥

सार्धम्—सौधमेशानयोश्चापरादौ स्थितिः ॥

पल्योपमसु ॥ अधिकम् ॥ भवति ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इति सतेतीसवा सूत्रपर सर्वांश्रिसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

पय उपमसु ॥ व्याख्यातम् ॥

अपरादौ कथं गम्यते ॥ परत परत इति छत्रपत्र ॥

कषासु ॥

सौधमेशानानामसु ॥

कथं गम्यते ॥ परत परत इति छत्रपत्र ॥

वक्ष्यमाणत्वात् ॥

तत ऊर्ध्वम् ॥ जघन्य स्थिति-प्रतिपादन अर्थम् ॥ आह ॥—वर्त [सौधमेशान युगल] से ऊपर निकुल-आयुके करनेके लिये करते हैं कि

=सौधमेशान प्रत्येक स्वर्गमें जघन्य आयु

=कुछ अधिक पण्य प्रमाण है

=पण्यका प्रमाण (सीसरे अस्याय के ३८ वां सूत्रमें) कुरा जा चुका है

=अपरा है सो निकुल स्थिति है (सौ) कुछ अधिक पण्य प्रमाण है

=(परत) किनकी (जघन्य आयु कुछ अधिक-पण्य प्रमाण) है

=(अपर) सौधमेशानके देवोंकी-निकुल स्थिति कुछ अधिक पण्य प्रमाण है

=(परत) से जाना जाय है ॥ [अपर] भगले अगलमें-येसा यहाँसे अग्रिम [सूत्रमें]

=करेमानेसे सौधमेशान स्वर्गमें जघन्य स्थितिकुछअधिक पण्य प्रमाणजान्दीआती है

(1) इति आन्तर आत्मानम् अपरा परगणमवधिकम् च पाठ है सर्वथा हमारे परसं च अधिक है श्रीर समापनशार्वाधिगत सूत्रके पृष्ठ ११७

पर पर आय है कि तत्र सौधमेशान स्थिति पल्योपमप्रमाणे पल्योपमसाधिकम् च—तदा सौधमेशान (स्वर्ग) में जघन्य आयु पल्यप्रमाण है (और) परात

(सर्वथ) में परत प्रमाण तथा इति अधिक है । हमारे वहाँ सौधमेशान प्रमाणे एक पल्यसे कुछअधिक निकुल आयु है परी अर्थनेष्ट दोबोआत्मानयोमें है

॥ अपरा प्रत्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

प्रत्योपम व्याख्यातम् । अपरा जघन्यस्थिति ॥ प्रत्योपमं साधिकम् ॥ केषा ? सौधमेशानी-
यानाम् ॥ कथं गम्यते परत परत इत्युत्तरत्र वच्यमाणत्वात् ॥

तत ऊर्ध्व जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

(१) सूत्रम्—अपराप्रत्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥ = (सौधमेशानयो २६वां सूत्रसे) अपरा (स्थिति २८वा

सूत्रसे) प्रत्योपमम् अधिकम् भवति ॥ ३३ ॥

गुणार्थे—सौधर्म-पेशानयोऽपराऽस्थितिः ॥

प्रत्योपमम् ॥ अधिकम् ॥ भवति ॥

=सौधर्म-पेशान प्रत्येक स्वर्गमें अपन्य आयु

=कुछ अधिक प्रत्य ममाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इसतेतीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धितिका शब्दश हिंदी अनुवाद

पन्य उपमम् ॥ प्रत्याख्यातम् ॥

अपरा ॥ जघन्य-स्थितिः ॥ प्रत्योपमम् ॥ स-अधिकम् ॥

केषाम् ॥

साधम-पेशानीयानाम् ॥

इत्युत्तरम् ॥ परतः परत इति उच्यते ॥

वच्यमाणत्वात् ॥

ता ३३ उपमम् ॥ जघन्य स्थिति-प्रतिपादन अर्थम् ॥ आह ॥ = वार्त् [सौधर्म-पेशान युगल्] से ऊपर निकुट-आयुके करनेके लिये करते हैं कि

(१) ऐतेन उच्यते आम्नायमे करार पर गोपममधिकम् च पाठ है अर्थात् हमारे यहां है अधिक है और समाप्तवत्प्राचीणिगम सूत्रके पृष्ठ ११७

पर यह आय है कि एक सौधर्मपेशाने प्रत्योपममधिकम् च = तथा सौधर्म (स्वर्ग) में आय आयु प्रत्यममाद्य है (और) पेशान (वच्य) में परत ममाण तथा कुछ अधिक है । हमारे यहां सौधर्म पेशान प्रत्येकमें एक परपसे कुछ अधिक विकृत आयु है यही अर्थमेव दोबो आम्नायीमे है

परस्मिन्देशे परत । वीप्साया द्वित्वम् । पूर्वशब्दस्याप्याधिकग्रहणमनुवर्तते ॥ तेनैवमभिसम्बन्ध
क्रियते-सौधमेशानयोर्ध्वं सागरोपमे साधिके उक्ते, ते साधिके सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्जघन्यस्थिति ॥
सानत्कुमारमाहेन्द्रयो

सुषार्ध -पूर्वाः॥ पूर्वाः॥ अनन्तराः॥ साधिकाः॥ परतः॥ स्थितिः॥ परिष्ठी अस्त्य निकट (अनन्तरा) इव अधिक सहित, उत्कृष्ट स्थिति
परतः॥ परतः॥ अपराः॥ स्थितिः॥ मयतिः॥

सर्वाविसिद्धि को ओङ्कार जहाँ जगन्य और उत्कृष्ट एक स्थिति होतीस सागरकी ही है । वैमानिकदोषोंमें
नीचे नीचे युगलोंमें जो उत्कृष्ट आयु है वही ऊपर ऊपर क्रमसे निकट स्थिति है जैसे सौचर्म पेशान
प्रत्येक स्वर्गमें कुछ अधिक दोसागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है वही सानत्कुमार माहेन्द्र युगलोंमें जगन्य है ॥

वृत्पुत्रात् -परस्मिन् । देशो 'परता' ।
वीप्सायाश्च । द्वित्वम् ॥

पूर्वार्धपूर्वा भी दोवार खानेसे बहुतवार अनेकवारके अर्थमें दोनोंही शब्दोंका प्रयोग सूत्रमें जानना चाहिये ।
= (इस सूत्रमें) 'पूर्व' शब्दके भी (अपि) (तेतीसवाँ सूत्रमें) 'अधिक' शब्दका
आदान आता है अर्थात् नीचले नीचले कल्प युगलोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति
सागर प्रमाणोंसे कुछ अधिक है वह ऊपर ऊपरक शतारसहस्रार युगलों तक
जगन्य स्थिति उतने सागर प्रमाण है और कुछ अधिक भी है परन्तु आगत
प्राणत सावर्चा युगलोंमें पूरे बीस सागरकी आयु है और आरण अर्धयुत
आठवाँ युगलमें चाँस सागरकी पूरी स्थिति है ।

पूर्वार्धपूर्वा भी दोवार खानेसे बहुतवार अनेकवारके अर्थमें दोनोंही शब्दोंका प्रयोग सूत्रमें जानना चाहिये ।

=उपर ऊपर ना बगले स्थानमें जो रहे (वाशे) सो 'परता' है
=अनेकता वा वार बारके (अर्थमें) दो बार (द्वित्व) (इस सूत्रमें) परतः और
पूर्वा मत्स्य शब्द चाये हैं अर्थात् इस सूत्रमें परतः परतः दोवार खानेसे और
= (इस सूत्रमें) 'पूर्व' शब्दके भी (अपि) (तेतीसवाँ सूत्रमें) 'अधिक' शब्दका
आदान आता है अर्थात् नीचले नीचले कल्प युगलोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति
सागर प्रमाणोंसे कुछ अधिक है वह ऊपर ऊपरक शतारसहस्रार युगलों तक
जगन्य स्थिति उतने सागर प्रमाण है और कुछ अधिक भी है परन्तु आगत
प्राणत सावर्चा युगलोंमें पूरे बीस सागरकी आयु है और आरण अर्धयुत
आठवाँ युगलमें चाँस सागरकी पूरी स्थिति है ।

वतः॥ परम् अभिसम्बन्धः॥ क्रियतेः॥

सौचर्म-पेशानयोर्ध्वं॥ सागरोपमे॥ स अधिकेः॥ जकं॥

तेः॥ स-अधिकेः॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोर्ध्वं

जगन्यस्थितिः॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोर्ध्वं

=तिस (अधिक प्ररण) करि इसप्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि
=सौचर्म पेशान स्वर्गोंमें दो सागर प्रमाण कुछ अधिक (स्थिति) करी
=जो दो सागर प्रमाण स्थिति किंचित अधिक (स्थिति) सानत्कुमारमाहेन्द्रमें
=निकट आयु है । सानत्कुमार माहेन्द्र (युगल) में

परानिवासी जगद्व्यसहाय बरीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशाः हिन्दीभवनवाट अध्याय ४ सूत्र ३४

- साशक्तुमार माद्रेन्द्र स्वर्गोके (प्रत्येकके) देवों की अपत्य ब्रापु दो सागर से कुछ ब्रह्मिण्ड है (देवों सूत्र १६, ३५)
- मन्त्र मन्त्राकार (प्रत्येक) स्वर्गोके देवोंकी अपरा स्थिति सात सागरसे कुछ ब्रह्मिण्ड है (देवा सूत्र ३०, ३५)
- मानव—अस्मिण्ड (प्रत्येक) स्वर्गोके देवों की निकट ब्रापु इत सागरसे कुछ ब्रह्मिण्ड है (देवों सूत्र ३१, ३५)
- शम्भु—मन्त्राकार (प्रत्येक) स्वर्गोके देवोंकी अपत्य स्थिति चौदह सागरसे कुछ ब्रह्मिण्ड है (देवा सूत्र ३१, ३५)
- शम्भु—मन्त्राकार (प्रत्येक) स्वर्गोके देवोंकी अपत्य सात सागर से कुछ ब्रह्मिण्ड है (देवों सूत्र ३१, ३५)
- शम्भु—मन्त्राकार (प्रत्येक) स्वर्गोके देवोंकी निकट स्थिति पूरे मन्त्राकार सागर है (देवों सूत्र ३१, ३५)
- शम्भु—मन्त्राकार (प्रत्येक) स्वर्गोके देवोंकी अपत्य ब्रापु पूरे बीच सागर प्रमाण है (देवों सूत्र ३१, ३५)
- प्रत्येक नप प्रीयेयकमे प्रत्यस पद एक पृथिकी प्राप्त बाईस सागर त ३० सागर तक अपत्य स्थिति है (देवों सूत्र ३२, ३५)
- नप अनुदिरण त्रिनका एक पदस है अपत्य स्थिति ३१ सागर है (देवा सूत्र ३२, ३५)
- विभ्रप—ये अपत्य—अपत्य-अपत्यमित्तमे (प्रत्येकमें) अपत्य ब्रापु ३२ सागर है (देवों सूत्र ३२, ३५)

○ सर्वार्थसिद्धिमें आण्योक्त्य पक्षकी स्थिति हेतोककारण प्रमाण है।

- सागण्डुमार में अपत्य स्थिति दो सागर है (समाप्य० सूत्र ५०) माद्रेन्द्रमें दो सागर से ब्रह्मिण्ड है (देवों समाप्यतस्वर्गाधिगमसूत्रमें सूत्र ५१)
 - मन्त्राकार (अस्मिण्ड स्वर्ग) समाप्य० सूत्रमें नहीं है। में सात सागर से कुछ ब्रह्मिण्ड है (देवों समाप्यतस्वर्गाधिगमसूत्रमें सूत्र ५२)
 - मानव—अस्मिण्ड (अस्मिण्ड समाप्य० सूत्रमें नहीं मानो है) में अपत्य स्थिति इस सागर है (देवों समाप्य तस्वर्गाधिगमसूत्रमें सूत्र ५२)
 - शम्भु—मन्त्राकार (शुद्ध) कष्टय समाप्य० सूत्र में नहीं है। में अपत्य स्थिति चौदह सागर है (देवों समाप्य तस्वर्गाधिगमसूत्रमें सूत्र ५२)
 - शम्भु—मन्त्राकार (शुद्ध) समाप्य० में नहीं मानो है। में अपत्य ब्रापु सोलहसागर है (देवों समाप्यतस्वर्गाधिगमसूत्रमें सूत्र ५२)
 - शम्भु—मन्त्राकार (शुद्ध) समाप्य० में नहीं मानो है। में अपत्य ब्रापु सोलहसागर है (देवों समाप्यतस्वर्गाधिगमसूत्रमें सूत्र ५२)
 - शम्भु—मन्त्राकार (शुद्ध) समाप्य० में नहीं मानो है। में अपत्य ब्रापु सोलहसागर है (देवों समाप्यतस्वर्गाधिगमसूत्रमें सूत्र ५२)
 - शम्भु—मन्त्राकार (शुद्ध) समाप्य० में नहीं मानो है। में अपत्य ब्रापु सोलहसागर है (देवों समाप्यतस्वर्गाधिगमसूत्रमें सूत्र ५२)
- [] समाप्य० के सूत्र ३६, ५२ से वही अपत्य स्थिति ह्येतात्पर का प्रमाण में है
- [] नव अनुदिरण नहीं माने है। इस लिये अपत्य ब्रापु पुराण कोरे स्थिति नहीं हो सकती है।
- [] विभ्रप—ये अपत्य—अपत्य-अपत्यमित्तमे समाप्य० के आण्योक्त्य ह्येतात्परि इन्वों सूत्र को पठत परता पूर्वाऽप्यत ५२ बाँ सप्तक साय पठने से नव शान निकलती है कि प्रत्येक एक बार विमाना में अपत्य ब्रापु ३१ सागर है क्योंकि अनुदिरण नहीं माने है परन्तु ५२ सूत्रके कोट्टकका पाठ कि विभ्रपदि चार विमानोंमें बरास्थिति तनीस सागर है इस बात का बापक है कि अपत्य ब्रापु ३२ सागर है क्योंकि विभ्रपदि क की पठण्य स्थिति ३२, ५२ सूत्रमें पनीस सागर है ५२ बाँ सूत्रके कोट्टकमें ३१ सागर है।
- [] सर्वार्थसिद्धिमें आण्योक्त्य पक्ष की ब्रापु हेतोक सागर है।

चशब्द किमर्थ ? । प्रकृतसमुच्चयार्थ ॥ किं च प्रकृतं ? । परत परत पूर्वा पूर्वान्तरा अपरा स्थितिरिति ॥ तेनायमर्थो लभ्यते—रत्नप्रमाया नारकाणा परास्थितिकं सागरोपमम् । सा शर्क- राप्रमाया जघन्या । शर्कराप्रमायासुकृष्टा स्थितिलीणि सागरोपमाणि । सा वालुकाप्रमाया जघ- न्येत्यादि ॥ एव द्वितीयादिषु जघन्या स्थितिरुक्ता ॥ प्रथमायां का जघन्येति तत्प्रदर्शनार्थमाह—

सूर्यार्थ —पूर्वार्थः॥अनन्तरार्थः॥परा॥स्थितिः॥
 नारकाणाम्—चपरतः॥परतः॥द्वितीयादिषु॥
 भूमिषु॥अपरा॥स्थितिः॥प्रवर्णिग

पदच्छेद और विमन्त्यर्थ सहित इस पैतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद ॥

- ५-शब्दः किमर्थः॥प्रकृत-समुच्चय-अर्थः॥
- किम्?॥च॥प्रकृतम्॥॥अनन्तरार्थः॥
- पूर्वा॥पूर्वार्थः॥ परा॥स्थितिः॥॥परतः॥स्थितिः॥
- इति॥ तेन॥अपरा॥अर्थः॥लभ्यते॥रत्न-प्रमायाम्॥
- नारकाणाम्॥परा॥स्थितिः॥एकम्॥सागरोपमम्॥
- सा॥शर्करा-प्रमायाम्॥जघन्या॥शर्कराप्रमायाम्॥
- उक्तव्या॥स्थितिः॥वर्णिगः॥सागरोपमाणि॥सा॥
- वालुकाप्रमायाम्॥जघन्या॥इति॥आदिः॥एवम्॥
- द्वितीय आदिषु॥जघन्या॥स्थितिः॥उक्ताः॥प्रथमायाम्॥
- कम्॥जघन्या॥इति॥तत्-प्रदर्शन-अर्थम्॥आह॥
- =बीबी पीबी प्यपान ररित ना शगवारी उरुह स्थिति
- =नारकियों कॅ मी [=च] उचर उचर में दूसरी आदि
- =भूमियोंमें जघन्य आयु है (जैसे मयम भूमिमें एक सागर उत्पन्न स्थिति है वही दूसरी भूमिमें जघन्य है दूसरीमें तीन सागर परा है वही तीसरीमें अपराहै) ॥
- =रत्न सूत्रमें च शब्द किसलिखे है ? (उचर) प्रकरणके समुच्चय वा जोड़नेको है
- =(प्रत्न) बहुरि (=च) क्या प्रकरण वा विषय है (उचर) अत्यन्तनिकट वर्ती है
- =पूर्व पूर्व की (उक्तुष्ट आयु) उचर उचरमें जघन्य आयु होती है ऐसा प्रकरण है
- =तिस (च शब्द) से यह अर्थ खियानाता है कि रत्नप्रमा भूमिमें
- =नारकी बीबीको उक्तुष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण है ॥
- =वही (स्थिति) शर्करा प्रमा (दूसरी भूमि) में निकुष्ट स्थिति है । शर्कराप्रमा में
- =निकुष्ट आयु तीन सागर प्रमाण है । वही (तीन सागर प्रमाण स्थिति)
- =वालुकाप्रमा में जघन्य (आयु) है । ऐसे और भी (सालवी भूमि पर्यन्त) है ॥ ऐसे
- =दूसरी आदिक (भूमि) में जघन्य आयु कही गई । परली भूमिमें
- =क्या निकुष्ट (आयु) है । उस(प्रथम भूमि)केवलानेको करतेरहेकि

परा स्थितिं सप्तसागरोपमाणि साधिकानि, तानि ब्रह्मब्रह्मांतरयोर्जघन्या स्थितिरित्यादि ॥

नारकाणामुत्कृष्टा स्थितिरुक्ता । जघन्या सूत्रेऽनुपात्तामप्रकृतामपि लघुनोपायेन प्रतिपादयितुमिच्छन्नाह
नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥

परा॥ स्थितिर्॥ स-अपिकानि॥

सप्त-सागरावपमाणि॥ तानि॥ ब्रह्म-ब्रह्मोपरोऽः
जघन्याः॥ स्थितिः॥ । इति० आदि॥

नारकाणाम्॥ उत्कृष्टाः॥ स्थितिः॥ उत्कृष्टाः॥ सूत्रे॥
अनुपात्ताम्॥ अनङ्गनाम्॥ अपि॥ जघन्याम्॥
लघुनाः॥ उपायन्यप्रतिपादयितुम्० इच्छन्ः॥ आह ॥

= उत्कृष्ट आयु कृष् अधिक

= सात सागर प्रमाण है ते (सात सागर और कृष् अधिक) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें

= निकट स्थिति है । ऐसेही भागे आगे है अर्थात् सागरोत्से कृष् अधिक है यह अधिकता
वाररना सहस्र स्वरगतक है । आतव प्राणत स्वर्गसे आगे पूरेपूरे सागरोकी आयु है
नीचही नीचही उत्कृष्ट स्थिति ऊपर ऊपर विनयादिक तक जघन्य जघन्य है ॥

= नारकियोंकी मरुट आयु (तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें) करी । (इस सूत्रमें

= अमास (= अनुपाचाय) और क्लृप्त (नारकियोंकी) जघन्य (स्थिति) भी

= लघु साधन द्वारा अर्थात् थोड़े अङ्गुली द्वारा करनेको इच्छक (भाग दो सूत्रमें) करते हैं
अर्थात् नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तो तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें कइती और
यहां वैमानिकोंकी स्थितिका उल्लेख किया है इस लिये नारकियोंकी जघन्यस्थितिकरने
का कार्य अक्सर मास नहीं है औरन नारकियोंका कथनका कार्य प्रकरण या निपयारी है
तो भी आचार्यकी इच्छा नारकियोंकी जघन्य स्थिति बखान करनेकी इस हेतुसे है
कि अन्य शब्दोंमेंही इस सूत्रकी अनुवृत्ति खेनेसे अभीष्ट स्थिति करी जासकती है ॥

= नारकाणाम् च द्वितीयादिषु (भूमिपु^१ अध्याय ३ सूत्र १ से)

पूर्वापूर्वानन्तरा परा स्थिति परत परत अपरा स्थिति भवति

(१) सूत्रम्-नारकाणा च द्वितीयादिषु

(१) भूमिपु इस शब्दकी क्लृप्ति तीसरे अध्यायके पहिले सूत्रसे ली गई है क्योंकि इस क्लृप्ति का यहाँ विषय न था बल्कि तीसरे अध्यायके
छठवां सूत्रके परमाणु था, यहाँ आयु अङ्गुली वह स्थिति नहीं कही जासकती थी इस हेतुसे यहाँ कइती है तीसरा अध्याय लघु एके यह अनुवृत्ति सुन्दर
अनुपगम है । अकारके सबका छत्र लघु ३५वां श्लोकमें ही अनुवृत्ति काठी है । (२) अनेकान्तर कीट शिपंकेट आत्मनायोके एक सूत्रका पाठ और और एकला है ।

॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

त्रपरा स्थितिरित्यनुवर्तते । रत्नप्रभाया दशवर्षसहस्राणि अपरा स्थितिर्वेदितव्या ॥
अथ भवनवासिना का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥

चशब्द किमर्थः ? प्रकृतसमुच्चयार्थ ॥ तेन भवनवासिनामपरास्थिति

“ सूत्रम्—दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

= दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् (भूमौ अध्याय ३ सूत्र १ से) अपरा (३३वा सूत्रसे)
स्थिति (२२ वा सूत्रसे) नारकाणाम् (३५ वा सूत्रसे) भवति ॥ ३४ ॥

गृह्याय - दशवर्षसहस्राणि ॥ १ ॥ पृथगायाम् ॥ भूमौ ॥
अपरा ॥ स्थितिः ॥ नारकाणाम् ॥

शुभनुवाद - भवनेषु ॥ स्थितिः ॥ अनवर्षे ॥ रत्नप्रभायायाम् ॥ १ ॥ भूमौ ॥

दशवर्षसहस्राणि ॥ १ ॥ अपरा ॥ स्थितिः ॥ नारकाणाम् ॥

अथ ॥ भवनवासिनाम् ॥ १ ॥ अपरा ॥ स्थितिः ॥ नारकाणाम् ॥

१) सूत्रम्—भवनेषु च ॥ ३७ ॥

= भवनेषु च दशवर्षसहस्राणि (सूत्र ३६ से) अपरा (सूत्र ३३ से) स्थिति (सूत्र २२वा से) भवति

भवनेषु ॥ दशवर्षसहस्राणि ॥ १ ॥ अपरा ॥ स्थितिः ॥ नारकाणाम् ॥

शुभनुवाद - दशवर्षसहस्राणि ॥ १ ॥ अपरा ॥ स्थितिः ॥ नारकाणाम् ॥

अथ ॥ भवनवासिनाम् ॥ १ ॥ अपरा ॥ स्थितिः ॥ नारकाणाम् ॥

१) सूत्रम्—भवनेषु च ॥ ३७ ॥

= भवनेषु च दशवर्षसहस्राणि (सूत्र ३६ से) अपरा (सूत्र ३३ से) स्थिति (सूत्र २२वा से) भवति

भवनेषु ॥ दशवर्षसहस्राणि ॥ १ ॥ अपरा ॥ स्थितिः ॥ नारकाणाम् ॥

शुभनुवाद - दशवर्षसहस्राणि ॥ १ ॥ अपरा ॥ स्थितिः ॥ नारकाणाम् ॥

अथ ॥ भवनवासिनाम् ॥ १ ॥ अपरा ॥ स्थितिः ॥ नारकाणाम् ॥

१) सूत्रम्—भवनेषु च ॥ ३७ ॥

= भवनेषु च दशवर्षसहस्राणि (सूत्र ३६ से) अपरा (सूत्र ३३ से) स्थिति (सूत्र २२वा से) भवति

भवनेषु ॥ दशवर्षसहस्राणि ॥ १ ॥ अपरा ॥ स्थितिः ॥ नारकाणाम् ॥

(१) रत्नप्रभाया दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ १ ॥ भूमौ ॥
(२) रत्नप्रभाया दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ १ ॥ भूमौ ॥

दशवर्षसहस्राणीत्यभिसम्बन्धयते ॥ व्यन्तराणां तर्हि का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥

चशब्द प्रकृतसमुच्चयार्थ ॥ तेन व्यन्तराणामपरा स्थितिर्दशवर्षसहस्राणीत्यवगम्यते ॥
अथैवा परा स्थिति का इत्यत्रोच्यते ॥

॥ परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

दशवर्षसहस्राणिः ॥ ३८ ॥ अतिसम्बन्धयते ॥ व्यन्तराणाम् ॥ तर्हि ॥ दश ॥ वार्ष ॥ इति ॥ जोषा ॥ जावा ॥ है । तो व्यन्तराणी
का ॥ जय ॥ या ॥ स्थिति ॥ पति ॥ अतः ॥ आह ॥
=या अपत्य आयु है । ऐसे प्रश्न पर इसलिये करते हैं कि

'सूत्रम्—व्यन्तराणाम् च ॥ ३८ ॥

= व्यन्तराणाम् च दशवर्षसहस्राणि (३६ वा सूत्रसे)

अपरा (३३ वा सूत्रसे) स्थिति (२८ वा सूत्रसे) भवति

व्यन्तराणाम् ॥ च ॥ दशवर्षसहस्राणि ॥ अपरा ॥ स्थिति ॥ भवति ॥ अपत्य ॥ अपत्य आयु है (परां गन्तुं पितृते
के लिये कि सूत्रोदाहो व्यन्तराणी वक्तृष्ट स्थितिकारकपरिवे अपत्य करी)

इत्यनुवादः—च शब्द ॥ अकृत-समुच्चय अर्थः ॥

तन् ॥ व्यन्तराणाम् ॥ अपरा ॥ स्थिति ॥ ॥

दशवर्षसहस्राणि ॥ ॥ पति ॥ अत्रागम्यतो अयं ० रेपायम् ॥

परा ॥ स्थिति ॥ का ॥ श्रुते ० अत्र ० उच्यते ॥

(१) सूत्रम्—परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

= व्यन्तराणाम् (३६ वा सूत्रसे) परा स्थिति (२८ वा

सूत्र से) पल्योपमम् अधिकम् भवति

(१) इत्यनुवादा पाठ और अर्थ दोनो आत्मानोमे परकसाहे इवेताडबट आत्माके समाप्यतावार्थाधिगमनायमे रसकी लक्ष्या ४४ वीं माली है ॥

(२) स्वताम्बर आत्मावते रस सूत्रका पाठ "परापल्योपमम् ॥ ३९ ॥" ऐसा है हमारे यहाँ स्थिति पल्यसे अधिक है उनके यहाँ एकही पल्य है ॥

तेनैवमभिसम्बन्धः। ज्योतिष्काणां परा स्थितिः पल्लयोपममधिकमिति॥ अथापरा कियतोऽयत्त आह—
 ॥ तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥
 तस्य पल्लयोपमस्याष्टभागो ज्योतिष्काणामपरा स्थितिरित्यर्थः ॥
 अथ लौकान्तिकानां विगेषोक्तानां स्थितिर्विशेषो नोक्तः । स कियानित्यत्रोच्यते—

ननु॥ अपसु० अतिव्यव्ययः॥ ज्योतिष्काणां अपराः॥
 स्थितिः॥ पल्लयोपमसु॥ अतिरुद्रः॥ इति०॥ अथ०
 अपराः॥ इति० अतः अथाह॥

= तिस (च शब्द) इति ऐस सम्बन्ध रोता है कि ज्योतिषियोंकी वस्तुए
 = आयु कुक्ष अथिक एक पत्न्य प्रमाण है । आयु
 = (ज्योतिषी वेदोंकी) जस्य (स्थिति) कितनी है ऐसे मरनपर इसलिये कहातेहैकि

(1) तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

= तदष्टभाग ज्योतिष्काणाम् (४० वा सूत्रसे) अपरा, स्थिति (२० वा सूत्रसे) भवति ॥
 मूलार्थः— तद् अष्टभागः॥ ज्योतिष्काणाम्॥ अपराः॥ स्थितिः॥ ॥ इति॥
 पदच्छेदं और विभक्त्यर्थं सहित इस इकतालीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

तस्य॥ अपसु० अपसु०॥ अष्टभागः॥
 ज्योतिष्काणाम्॥ अपसु०॥ स्थितिः॥ इति० अर्थः॥
 अथ० अष्टभागानाम्॥ विशेषउक्तानाम्॥ स्थिति-विशेषः॥
 न० उक्तः॥ सः॥ कियतोऽयत्त

= तिस पत्न्यक आठवां भाग
 = ज्योतिषी वेदोंकी अपत्य आयु है एसा अप्रिमयाय है ।
 = अथ विशेष पण्डित लौकान्तिक देवोंकी रियतिका प्रपेद
 = नहीं कहागयाहै सो (= स्थिति विशेष) कितना है। ऐसे (मरनपर) यहाँकराजाताहै कि

(1) इस सूत्रका हमारे यहाँ गठ और काट एक है । हमारे यहाँ सामान्यरूपसे वा अविशेष रूपसे (मत्स्यार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७० में) ज्योतिषियोंकी यह अपत्य स्थिति है और इस सूत्रमें ४० वां सूत्रस 'ज्योतिष्काणाम्' को अनुवृत्ति लीहै । ऐतानां पर सामान्यमे 'अष्टम्यां स्वपुत्राणां पत्न्या १२ वां वय सभापद० मे' है । उक्त सामान्य० के अनुकूल परा पल्लयोपम् ४७ वां सूत्र से ४३ वां सूत्रमे पश्य शब्द कर्तुं तथा है और 'तारकाणाम्' काटकी अनुवृत्ति ४१ वां सूत्र 'तारकाणोक्तुर्गोत्रं' से लीं गई है इसलिये ४२ वां सूत्र 'तारकाणां तु अपत्या (स्थिति) २६ वां सूत्रसे) पल्लयोपम् अथ भाग एवम् इत्या अर्थमे रोना सामान्यमे भेद यह हुआ कि ऐतानाम्पर सामान्यमे तारकाणोंकी अपत्यस्थिति पश्यक आठवां भाग हुई हमारे यहाँ सब ज्योतिषियोंकी सामान्यरूपसे परपत्न्या आठवां भाग अपत्य स्थिति हुई है । हमारे यहाँ तस्यार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७०, १७६ में अथ सूत्रं,

एगनिवासी आरुपसाराण पनीलकत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिश्च शब्दशः हिन्दीअनुवाद आख्याय ४ सूत्र ३६, ४० पराउत्कृष्टा स्थितिव्यन्तराणा पल्योपममधिकम् ॥ इदानीं ज्योतिष्काणा परा स्थितिर्वक्तव्येत्यत आह

॥ ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

चशब्द प्रकृतसमुच्चयार्थ ॥
 सूत्रार्थः व्यन्तराणाम् ॥ परा ॥ स्थितिः ॥ पल्योपमम् ॥ अधिकम् ॥ ॥ अतिरिक्तो उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक पल्य ममाण रे
 पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस उनतालीसवा सूत्र पर शब्दश हिन्दी अनुवाद

परा ॥ अन्तर्व्यो ॥ स्थितिः ॥
 पराणाम् ॥ पल्योपमम् ॥ ॥ अधिकम् ॥ ॥ इदानीम् ॥
 ज्योतिष्काणाम् ॥ परा ॥ स्थितिः ॥ पदव्या ॥ इति ॥ अत आह ॥ अयोपिपियोंकी उत्कृष्ट आयु करना चाहिये ॥ ऐसे प्रल पर इसलिये करते रे कि
 (१) सूत्रम्—ज्योतिष्काणा च ॥ ४० ॥ = ज्योतिष्काणाम् च स्थिति (२८वा सूत्रसे) परा पल्यो-
 पममधिकम् (३६ वां सूत्रसे) भवति ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः—ज्योतिष्काणाम् ॥ परा ॥ स्थितिः ॥
 पल्योपमम् ॥ अधिकम् ॥ ॥ अतिरिक्तो उत्कृष्ट आयु स्थिति
 = कुछ अधिक पल्य ममाण रे अर्थात् चंद्रमाकी आयु एक पल्यसे एक सालपरत
 अधिक रे ॥ सूर्य की आयु एक पल्यसे एक सप्तसूरत अधिक रे शुक्रकी एकपल्यसे ती बरत अधिक रे
 पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चालीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिका शब्दश हिन्दी अनुवाद
 पदच्छेद ॥ प्रकृतसमुच्चय-अर्थः ॥
 = (इस सूत्रमें) च शब्द प्रकरणके सप्रके लिये रे अर्थात् यरा स्थितिका विषय
 चक्षुरा रे सो प्रकार से ३६ वां सूत्रमें वर्णित आयुकी यरा जोडागया रे

(१) इतिगणपत्राभाष्ये पाठ "ज्योतिष्काणामधिकम्" ॥ ४० वां सूत्र रे ॥ इतारे यहाँ अधिकम् की अनुवृत्ति ३६ वां सूत्रके आगे रे अर्थ परकरे ॥

६ मद्र ३० (वसिष्ठिन संहिता) ३८ नक्षत्री शौर तारकाश्रीकी मुख्यक पुष्यक पुष्यक विद्योप रूपसे ज्ञापय दिशति वार्तिकोमें श्रीगई है उसकी तुलनामात्रक सूची सेनाभारसमाजके समान्यतारागार्थियम सूत्रके सूत्र४६ से ५३ तक नीचे श्रीमातीहै कि विषय स्पष्ट होजावे। स्पेताम्बर आम्नायमें वसुभोगाः शोभाचाम् ५३' मूत्रमें यह शीषा आगत्य पद्य होना है। इनके यहाँ 'श्रीवार्तिकानामद्यौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् सून वा वार्तिकं नही है।

शेताम्बर आम्नायके 'समाप्यतत्पार्याधिगमसूत्रसे उद्भूयुत
 0 महात्म्यिकम् (सूत्र४६) = महापार्यमेक पश्योपमं परा स्थितिःभवति
 = सूर्ये चन्द्र मंगल बुध, शक्ररविति शुक्र, अग्निशर, राहु शौर
 कण्डु इन नव ग्रहोंकी (उत्कृष्ट स्थिति) एक पश्य प्रमाद्य होती है

शेताम्बर आम्नायके शत्पार्यराजवार्तिकप्रसंगकारसे उद्भूयुत

(क) चंद्रार्णो वर्षे श्रमसहस्राधिकम् (वार्तिक १) = चंद्रार्णो वर्षे श्रमसहस्राधिकं पश्योपमं परा स्थिति = चंद्रमाश्रीकी उत्कृष्ट स्थिति एक पश्यसे एक ज्ञान भरस अधिक होती है (तत्पार्यराजवार्तिकं पृष्ठ १७८)
 0 सूर्याश्री वर्षे सहस्राधिकम् (वार्तिक २) = वर्षे सहस्राधिकं पश्योपमं सूर्याश्री परा स्थितिः = सूर्योकी उत्कृष्ट स्थिति एक पश्यसे एक हजार भरस अधिक है (तत्पार्यराजवार्तिकं पृष्ठ १७८=)

0 शुक्राश्री शताधिकम् (वार्तिक ३) = शुक्रार्णो वर्षे शताधिकं पश्योपमं परा स्थितिः = शुक्राश्री प्रकृष्ट आयु एक पश्यसे एकशौ भरस अधिक है (राज० पृष्ठ १७८)
 0 बुधरवतीर्णा पूर्वम् (वार्तिक ४) = बुधरवतीर्णाम् पूर्वपश्योपमम् परा स्थिति = बुधरवतियोंकी उत्कृष्ट आयु पूरी एक पश्य प्रमाद्य है (राज० पृष्ठ १७८)
 0 शोभाचार्यम् (वार्तिक ५) = शोभाचार्यम् आयु पूर्णपश्योपमं परा स्थितिः = बचे हुए अर्णव अम्नामा सूर्ये शुक्र बुधरवतियोंके प्रतिरिक्त म्रुप मंगल शनिशर राहु शौर केण्डु ग्रहोंकी उत्कृष्ट आयु आये पश्य प्रमाद्य होती है। तत्पार्यराजवार्तिकं सुद्धितं पृष्ठ १७८=)

0 नक्षत्राश्री च (वार्तिक ६) = नक्षत्राणाम् अर्धपश्योपमं परा स्थिति भवति (राज० पृष्ठ १७८) = (सर्वास वा अष्टाईस) नक्षत्रोंकी उत्कृष्ट आयु आयेपश्य होती है (तत्पार्यराजवार्तिकं पृष्ठ १७८)
 0 तारकाश्री वसुभोगाः (वार्तिक ७) = पश्योपमस्य वसुभोगं तारकाश्री वराधिकतिः = तारकाश्रीकी उत्कृष्ट स्थिति पश्यके शीषाईमाय प्रमाद्य है (राजवार्तिकं पृष्ठ १७८)

0 नक्षत्राणामर्षम् (समाप्य० सूत्र ५०) = नक्षत्राणां देवानां पश्योपमाय परा स्थितिर्भवति = (३७ वा ३८) नक्षत्रोंकी उत्कृष्ट आयु आये पश्यकी होनी है 0 तारकाश्री वसुभोगाः (सूत्र ५१) = तारकाश्री च पश्योपमं वसुभोगां परा स्थितिः = तारकाश्रीकी उत्कृष्ट आयु पश्यका शीषाई माय प्रमाद्य है।

अथ पंचमोऽध्यायः ॥

इदानीं, सैव्यदर्शनस्य विषयभावेनोपक्षिप्तेषु जीवादिषु जीवपदार्थो व्याख्यातार्थः ।
 अथजीवपदार्थो विचारभावात्तस्य सञ्ज्ञामेदसकीर्तनार्थमिदमुच्यते ।

॥ (१) अजीवकाया धर्माधर्माकार्षुद्गता ॥ १ ॥
 कायसन्द शरीरे व्युत्पादितः । इहोपचारव्युत्पाद्योऽप्येतः । कुत उपचारः ? यथा शरीरे पुद्गलद्रव्य

प्रयत्नव्यवहारः । अर्थात् स सम्पदर्शनस्य । = नाचवा अर्थात् आत्म (= भव) है । अथ सम्पदर्शनके
 विषय-भावेन । उपचारात् ? जीवादिषु जीव पदार्थे । = विषयभावकारि, गुर्भित् (= उपक्षिप्तेषु) जीवादिषु जीव पदार्थे, है
 = (स्त्री) क्त्वा इमा, विष्णु (= धर्म) है (अर्थात् जीविका वर्णन कर चुके हैं)
 । भावार्थे—सम्पत्तुके विषय निबन्धने जीवादिषु सात वस्तु (भ०, इत्युत्पत्तेः ४)
 यर्भित है उनमेंसे जीव द्रव्यका व्याख्यान कर चुके हैं ।
 अथ अजीव-पदार्थः । अविचार-भावात् । वस्य । सञ्ज्ञा = अथ = अथ अजीवपदार्थे विचारिते, आत इमा तिस (अजीवपदार्थ) के नाम
 मेव-संकीर्तन-पर्यन्त-भावात् । इदम् ॥ उच्यते ।
 = अथ अजीवकाया धर्माधर्माकार्षुद्गता ॥ १ ॥
 अथ अजीव-पदार्थः । अजीव-भावात् । अजीव-काया धर्माधर्माकार्षुद्गता ॥ १ ॥
 अथ अजीव-पदार्थः । अजीव-भावात् । अजीव-काया धर्माधर्माकार्षुद्गता ॥ १ ॥
 अथ अजीव-पदार्थः । अजीव-भावात् । अजीव-काया धर्माधर्माकार्षुद्गता ॥ १ ॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आस्यार्थोंमें एकता है । अर्थात् अर्थात् अजीवपदार्थे अर्थात् अजीवपदार्थे अर्थात् अजीवपदार्थे ।

अग्निशिष्टा सर्वे ते शुक्लेश्या पञ्चहस्तोत्सेधशरीरा

॥ चतुर्गिकायदेवानां । स्थानं भेदा सुखादिकम् ॥ परापरस्थितिलेश्या । तुर्याध्याये निरूपितम् ॥ १ ॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकाया चतुर्थोऽध्यायः ॥

दुःखार्थः सव्याप्तौ लोकात्मिनरानाम् । पराः । अपराः ।

स्थितिः । अन्तर्गः । आगरोपमाणिः ।

वृष्यन्नाद - अग्निव्यञ्जः ।

मर्ते । अन्तः । अन्तः । अन्तः । अन्तः । अन्तः ।

चतुर्गिकायदेवानाम् । एतानाम् ।

भगः ।

शुवादिभ्यः ।

एत आगरोऽग्निः ।

(पराः । अग्निः ।)

(अपराः । अग्निः ।) लक्ष्याः ।

शुवाद्यापः । अग्निः ।

इति तत्त्वार्थवृत्तौ ॥

सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायाम् ॥

चतुर्थः । अध्यायः ॥

= सप्त लौकान्तिक (देव) निकी (देखो सूत्र २४, २५) उत्कृष्ट और जयय

= आयु आठ सागर प्रमाण है

= अक्षयप या बचेपुये अर्थात् सर्व प्रकारके देवोंसे मिनकी स्थिति उत्कृष्ट और जयय करो जो शेषरहे पस लौकान्तिकदेव

न्ते सम्पत्त शुद्धलेश्याके धारक, पाँच शयकी ऊर्चाके शरीर सहित हैं अर्थात् सप्त लौकान्तिक देवोंके शुद्धलेश्या हैं और पाँच पाँच शय ऊँचा शरीर है ॥

= चार समुदायके देवोंके निवास स्थान (सूत्र १३, १४, १५, १६, १७, २३, २४)

= तथा येन (सूत्र १, ३, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १६, १७, १८, शोपाय २५, २६)

= और सुन्वाधिक (सूत्र ७, ८, ९, २०, २१, २७)

= उत्कृष्ट और जयय आयु (देखो सूत्र ३४, ३५, ४२)

= एतुरि परास्थिति (सूत्र २२ से ३२ तक ३६, ४०)

= और अपरा स्थिति (सूत्र ३३, ३६, ३७, ३८, ४१) तथा लेश्या (सूत्र २, २२)

= चौपे अभ्यासमें वर्णित हैं ।

= इसप्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें (= वृत्तौ)

= स्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थमें

= चौथा अध्याय (समाप्त) हुआ ॥

॥ चतुर्गिकायदेवानो । स्थानं भेदा सुखादिकम् ॥ परापरस्थितिलेश्या । तुर्याध्याये निरूपितम् ॥ १ ॥
 आविश्याष्ट सर्वे ते शुक्लेश्या पञ्चहस्तोत्सेधशरीरा

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥

सर्वार्थं सप्तमम् । लौकान्तिकानाम् । परा । अपरा ।
 स्थितिः । पल्लवः । सागर । पमाणि ।
 व । पञ्च । द । अग्नियुः ।

गर्भे । शुक्ल । शरणाः । पञ्च । द । त । उत्सव । शरीराः ।

पद्म । पञ्च । द । शरणाः । पञ्च । द । त । उत्सव । शरीराः ।

भयम् ।
 गुणान्तरम् ।
 पर । अपरम् । गतिः ।
 (परा । गतिः ।)

(अपरा । गतिः ।) लक्ष्यम् ।
 गुणानाम् । निरूपितम् ।

इति तत्त्वार्थवृत्तौ ।

सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायाम् ।

चतुर्थः । अध्यायः ।

= सप्त लौकान्तिक (देव) निकी (देवो सूत्र २४, २५) उत्कृष्ट और जयय
 = आयु आठ सागर प्रमाण है

= अक्षयप या स्योदय अर्थात् सर्प मक्षारके देवोस जिनकी स्थिति उत्कृष्ट और
 जयय करी नो शेषरे पस लौकान्तिकद्व

= वे समस्त शुक्लेश्याके धारक, पांच शयकी उचाइके शरीर सहित हैं अर्थात्
 सप्त लौकान्तिक देवोंके शुद्ध शरणा र और पांच पांच शय ऊंचा शरीर है ॥

= चार समुद्रायके देवोंके निवास स्थान (सूत्र १३, १४, १५, १८, १९, २३, २४)
 = तथा भेद (सूत्र १, ३, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १६, १७, २०, २१, २५, २६)

= और मुखादिक (सूत्र ७, ८, ९, २०, २१, २७)
 = उत्कृष्ट और जयय आयु (देवो सूत्र ३४, ३५, ४२,)

= बहुति परास्थिति (सूत्र २८ से ३२ तक ३६, ४०)
 = और अपरा स्थिति (सूत्र ३३, ३६, ३७, ३८, ४१) तथा शरणा (सूत्र २२, २३)

= चौथे अध्यायमें वर्णित है ।

= इस प्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें (= वृत्तौ)
 = स्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थमें
 = चौथा अध्याय (समाप्त) हुआ ॥

पद्यानिपाठी आरूपसहाय बहीष कृत पदच्छेद मो० विदस्सर्ष शरित सार्धसिद्धि का शब्दसु रिन्दीभद्रुशार अर्थात् ५ अथ ?

ननु च नीलोत्पलादिषु व्यभिचारे सति विशेषणविश्लेष्ययोग । इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति । अर्जाव शब्दोऽक्राये कालेऽपि वर्तते, कायोऽपि जीवे । किमप्यं कायशब्दः ? । प्रदेशबहुत्वज्ञापनार्थं । धर्मादीना प्रवेशा दृष्टव इति ॥ ननु च असस्येयाः प्रवेशा धर्माधर्मैकजीवानामित्यनेनैव प्रवेशबहुत्वं ज्ञापितम् । सरय-मिदम् । परं किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारण विज्ञायते असस्येयाः प्रवेशा न सस्येया नाप्यनन्ता इति ॥

ननु * च * नील-उत्पल-आदिषु ?
 व्यभिचारे ? सति ? । विशेषण-विश्लेष्य-योगः ? ।
 अर्थात् प्रत्यय यं को गुण होता है वह इसी वस्तुओं में भी पाया जाता है वह विशेषण विशेष्य मिलकर कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलापन और रक्तता यथासंख्य पाई जाती है इनके अतिरिक्त और भी अनेक वस्तुएँ हैं जिनमें नीलता और रक्तता पाई जाती है वी यहाँ धर्मीय काच किसे क्या व्यभिचार है ।

ए * अपि * व्यभिचार-योगः ? । अस्ति ?
 अर्थात्-शब्द ? । अक्राये ? । अक्राये ? । अस्ति-वर्तते ?
 कायः ? । अपि * जीवे ? । किम् * धर्माः ?
 कायशब्दः ? । प्रदेश-बहुत्व-ज्ञापन-धर्माः ?
 धर्मा-आदीना ? । प्रवेशाः ? । अर्थः ? । इति *
 ननु * च * धर्मस्येयाः ? । प्रवेशाः ? । धर्मा-धर्म-
 एक-जीवानाम् ? । इति-वर्तते ? । एक-प्रवेश-
 बहुत्वम् ? । अपि-व्युत्पत् ? । सत्यम् ? । इत्यम् ? ॥

परं किन्तु अस्मिन् ? । विधौ ? । सति ? । अथ-प्रवचनार्थम् ? ॥
 विधाने ? । धर्मस्येयाः ? । प्रवेशाः ? । न-असस्येयाः ? ।
 न-अपि-अधर्मताः ? । इति- ? ॥

= पुनि प्रत्य । नील-कमल आदिक (कर्मधारयसमास) निमें
 = बही गुण इसी वस्तुमें होनेपर (= सति) विशेषण और विशेष्यका मेल होता है
 = वही गुण होता है वह इसी वस्तुओं में भी पाया जाता है वह विशेषण विशेष्य मिलकर
 कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलापन और रक्तता यथासंख्य पाई जाती है इनके अतिरिक्त
 और भी अनेक वस्तुएँ हैं जिनमें नीलता और रक्तता पाई जाती है वी यहाँ धर्मीय काच किसे क्या व्यभिचार है ।
 = (उच्यते) यहाँ भी(इस 'धर्मीयकाय' कर्मधारय समास में) व्यभिचारका मेल वा बोझ है
 = (स्योक्ति) धर्मीयशब्द काय रहित वा अधर्मीयों का लक्षणम भी वर्तता है
 = (और) अथु प्रवेशों का होना भी (अधीकत्व रहित) अधीकृतमें वत है । कौन धर्म इ
 = काय शब्द (उच्यते) प्रवेशोंका प्रवचनना अनावनेके लिये है कि
 = धर्म-धर्म-आकार-पुटल के प्रवेश बहुत हैं
 = पुनि प्रत्य अर्थस्यैवप्रसत्यास प्रवेश धर्मशब्द अर्थबहुत्व और
 = एक अर्थ के हैं इस (अगले भाठवां अर्थ) करि ही प्रवेशोंकी
 = प्रचुरता जगई जाती है (उच्यते) यह सत्य है
 = किन्तु केवल (= परं) इस विधि (भाठवां अर्थ) के होनेपर उग (प्रवेश बहुत्व) का नियम
 = अतलाया गया है कि असस्यैव प्रवेश है, संख्यात नहीं इ
 = अनन्त भी नहीं है अर्थात् केवल असस्यैव ही है --- धावाय इस अर्थमें कायशब्दसे

प्रचयात्मकं तथा धर्मादिष्वपि श्रवणप्रचयापेक्षया काया इव काया इति । अर्जीवाश्च ते कायाश्च
अजीवकायाः ॥ विशेषण विशेष्येणेति वृत्तिः ॥

प्रचय-आत्मकं ॥॥ तथा-धर्मादिविषु ॥ अर्थिक
श्रवण-प्रचय-अपेक्षया ॥ काया ॥॥ इव-इदृशिक
कायाः ॥ यत् प्रजीवताः ॥
अजीवकायाः ॥ वे ॥ अर्जीवकायाः ॥

= समूहस्वरूप (= प्रचयात्मक) हैं जैसे धर्मादिकद्रव्योंमें भी
= प्रदेशोंके समूहस्वरूप विषयोंसे कायासरीखा (अवधार) है इसप्रकार
= (ये धर्म, धर्म, आकाश, पुद्गल) काया हैं । और (= य) अर्जीव
= और (= च)काय हैं ये अर्जीव काया हैं अर्थात् ये चार सर्वद्रव्य, अधर्मद्रव्य,
आकाशद्रव्य, पुद्गलद्रव्य घेतना रहित और बहुत प्रवेशी हैं इसलिये ये अर्जीवकाय
(अघेतन और बहुप्रवेशी) हैं । ये बहुत प्रवेशी हैं इससे ये द्रव्य काय कहालाते हैं और घेतना
रहित हैं इससे अर्जीव कहालाते हैं
= गुणवाचक(अर्जीव शब्द)विशेष्य(कायशब्द)से मिलकर एतौ (कर्मधारय) समास हुआ

विशेष्य ॥॥ विशेष्येण ॥ इदिक वृत्तिः ॥॥

• पर्याप्तियानं वृत्तिः—एकस्वल्पे अर्थ प्रकाश कलेखी इदिको वृत्ति कहते हैं । उस वृत्तिके पंथ में ही 'उचित' समास एकद्वेष
धीर मत्प्राप्त पातु हैं । यहाँ पर वृत्ति शब्दका अर्थ करण समास है । अनेक पर्वोंको एकमें मिला देनेको समास कहते हैं । यह पाँच प्रकार
का है (i) जिसका अर्थ विशेष्य नाम नहीं है वह केवल समास कहा जाता है (ii) बहुधा जिसमें पूर्व पदका अर्थ प्रचल होता है वह अर्थात् अर्थात्
समास है (iii) प्रायः जिसके अन्तर परस्पर अर्थ प्रथम हो वह अनुप्रास समास है । अनुप्रास समास का एक और कर्मधारय समास है । इसमें दोनों
दिनादि समास'दोनों ही हीट विशेष्य भाव होता है । जैसे यहाँ अर्जीवकाय से कायाएव अर्जीवकायाः इतमें अर्जीवकाय हीट कायाएवो
नमान वि रक्ति (प्रथमाविभक्ति बहु लवन दुर्लभ) है (परत) यहाँ पर से काया कैते गुण का विशेष्य सहित है । (उचर) घेतना रहित
अ कायाओंका गुण है ये ते 'अर्जीवकाः' विशेष्यका हुआ हीट काया विशेष्य हुआ इतन्विके विशेष्य हीट विशेष्य भाव हुआ ॥ कर्मधारय
का एक और हिण्टु है । एतत्क प्रकृत्य र्जका वाचक भाव होता है । - इतमें कर्मात्मके पर्वोंको हीटका हीट ही पदका अर्थ प्रथम हो ५४

एतद्विज्ञानी नगरूपवशात् वक्ष्यते इति सर्वविशिष्टिका शब्दशः हिन्दीभुवुवार भाष्याय ५ वन ?

ननु च नीलोत्पलावितु व्यभिचारे सति विशेषणविश्लेष्ययोग । इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति । अर्जाव शब्दोऽक्राये कालेऽपि वर्तते, कायोऽपि जीवे । किमर्थं कायशब्द ? । प्रवेशबहुत्वज्ञापनार्थं । धर्माधीना प्रवेशा बहुव इति ॥ ननु च असंस्थेयाः प्रवेशा धर्माधर्मैकजीवानामित्येनैव प्रवेशबहुत्वं ज्ञापितम् । सत्य-मिदम् । पर किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारणं विज्ञायते असंस्थेया प्रवेशा न संस्थेया नाथ्यनन्ता इति ॥

ननु च नील-उत्पल-भाषियुः ।

व्यभिचारे ? । सति । विशेषण-विश्लेष्य-योगः ।।

अर्थात् प्रत्यय यद् इति विशेष्य में जो गुण होता है वह इसी वस्तुओं में भी पाया जाता है वष विशेष्य विशेष्य मिलकर कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलान्न और रक्ता यथासंख्य पाई जाती है (नक प्रातिरिक्त और भी अन्यक वस्तुएँ हैं जिनमें नीलता और रक्ता पाई जाती है तो यहाँ अभीच काय विशेष क्या व्यवहार है ।

इ च अपि च व्यभिचार-योगः । अस्ति ।।

अधीन-शब्दः । अज्ञाने ।। अविश्वस्यते ।।

कायः । अपि च जीवे ।। किम् च अर्थोः ।।

कायशब्दः ।। प्रवेश-बहुत्व-ज्ञापन-धर्मः ।।

धर्म-भाषीना । प्रवेशाः ।। अवि च

ननु च अर्थसंस्थेयाः । प्रवेशाः ।। धर्म-अर्थ-सं-

स्थ-जीवानाम् ।। इति च धर्मनेत् ।। एव च प्रवेश-

बहुत्वः ।। भाषियुः ।। सत्यम् ।। इत्युः ।।

पर किन्तु अस्मिन् ।। विधौ ।। सति ।। अवि प्रवचनार्थः ।।

विज्ञायते ।। असंस्थेयाः ।। प्रवेशाः ।। नक संस्थेयाः ।।

नक अविश्वस्यते ।। इति च ।।

= पुनि प्रत्यय । नील-कमल भाषिक (कर्मधारयसमास) निम्न

= वरी गुण इसी वस्तुमें होनेपर (= सति) विशेष्य और विशेष्यका मेल होता है

अर्थात् प्रत्यय यद् जो गुण होता है वह इसी वस्तुओं में भी पाया जाता है वष विशेष्य विशेष्य मिलकर कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलान्न और रक्ता यथासंख्य पाई जाती है (नक प्रातिरिक्त और भी अन्यक वस्तुएँ हैं जिनमें नीलता और रक्ता पाई जाती है तो यहाँ अभीच काय विशेष क्या व्यवहार है ।

= (उपर) यहाँ मी(इस 'अधीनकाय' कर्मधारय समास में) अव्यभिचारका मेल वा जोड़

= (क्योंकि) अधीनशब्द काय रहित वा अप्रवेशी कालत्रयमें भी वर्तता है

= (और) बहुत प्रदत्तोंका होना भी (अधीनत्व रहित) जीवद्वयमें वत है ।कौन कथे है

= काय शब्द (उपर) प्रवेशोंका प्रकथपना नवानेके लिये है कि

= धर्म-अर्थ-संस्थ-भाषा-शब्द-प्रत्यय के प्रत्यय बहुव है

= पुनि प्रत्यय अर्थसंस्थाप्रसंख्यात् प्रवेश धर्मद्रव्य धर्मद्रव्य औः

= एक जीव के हैं इस (अगले भाठवां वचन) करि ही प्रवेशोंकी

= प्रयुक्ता अर्थाई जाती है (उपर) यह सत्य है

= किन्तु केवल (= पर) इस निधि (भाठवां वचन) के होनेपर उग (अंश बहुत्व) का नियम

= अज्ञानावा यथा है कि असंख्यात् प्रवेश है, संख्यात् नहीं है

= अनन्त मी' नहीं है अर्थात् केवल अर्थसंख्या ही है—भाषाय इस वचन में कायशब्दसे

कालस्य प्रवेक्ष्यप्रचयामावज्ञापनार्थं च इह वायग्रहणम् । कालीं वक्ष्यते । तस्य प्रदेशप्रतिषेधार्थमिह
 वायग्रहणम् ॥ १॥ यथाऽणो प्रदेशमात्रत्वाद्द्वितीयद्वयोऽस्य न संन्तौर्ध्वप्रदेशोऽणु । तथा कालपरमाणुरप्येक
 प्रदेशवात्प्रवेक्ष्यइति ॥ तौ पाधमार्हीनामजीव इति सामान्यसुब्हा जेवलक्षणभावमुखेन प्रवृत्ता ॥ धर्मा
 धर्माज्ञाशुद्रला इति विद्युत्सम्बन्धा सामयिक्य ॥

अत्राह सर्वद्वन्द्वैपयधियु केवलस्येयेवमादिषु द्वय्याण्युक्तस्मिन्काचि । तानीयुच्यते—

पदत्वे सामान्य ज्ञापनार्थं च इह वायग्रहणम् । कालीं वक्ष्यते । तस्य प्रदेशप्रतिषेधार्थमिह
 वायग्रहणम् ॥ १॥ यथाऽणो प्रदेशमात्रत्वाद्द्वितीयद्वयोऽस्य न संन्तौर्ध्वप्रदेशोऽणु । तथा कालपरमाणुरप्येक
 प्रदेशवात्प्रवेक्ष्यइति ॥ तौ पाधमार्हीनामजीव इति सामान्यसुब्हा जेवलक्षणभावमुखेन प्रवृत्ता ॥ धर्मा
 धर्माज्ञाशुद्रला इति विद्युत्सम्बन्धा सामयिक्य ॥

अत्राह सर्वद्वन्द्वैपयधियु केवलस्येयेवमादिषु द्वय्याण्युक्तस्मिन्काचि । तानीयुच्यते—

पदत्वे सामान्य ज्ञापनार्थं च इह वायग्रहणम् । कालीं वक्ष्यते । तस्य प्रदेशप्रतिषेधार्थमिह
 वायग्रहणम् ॥ १॥ यथाऽणो प्रदेशमात्रत्वाद्द्वितीयद्वयोऽस्य न संन्तौर्ध्वप्रदेशोऽणु । तथा कालपरमाणुरप्येक
 प्रदेशवात्प्रवेक्ष्यइति ॥ तौ पाधमार्हीनामजीव इति सामान्यसुब्हा जेवलक्षणभावमुखेन प्रवृत्ता ॥ धर्मा
 धर्माज्ञाशुद्रला इति विद्युत्सम्बन्धा सामयिक्य ॥

एतदनिवासी अमररूपसहाय कक्षील कृग पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सहित सर्वाधिकारिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद प्रथमाय ५ ख २
 आकाशकुसुमस्य प्रकृतिपुरुषस्य द्वितीयशिरसश्च योगः स्यादिति ॥ अथ पृथक्सिद्धिरस्युपगम्यते,
 द्रव्यस्वकल्पना निरर्थिका । गुणसमुदायो द्रव्यमिति चेत्त्रापि गुणानां समुदायस्य च भेदाभावे तद्द्रव्य-
 व्यपदेशो नोपपद्यते । भेदास्युपगमे च पूर्वोक्त एव बोधः ॥ ननु गुणान्द्रव्यन्ति गुणैर्वा द्रव्यन्त इति ।

आकाश-द्रव्यत्वम् ॥ (योगः स्यात्) प्रकृतिपुरुषत्वोपपत्तौ = (आकाशस्य) आकाश पुण्ये सम्बन्ध हो जाय और (=च) स्वाभाविक पुण्यके
 प्रभावं स्वभावसे एक मस्तकवाले पुण्यके

द्वितीय-शिरसः । योगः । स्यात् । इति ।
 फिर इससे द्रव्यत्वका योग ठहरे)

पृथक् सिद्धिः ॥ अय्युपगम्यत् ।
 द्रव्यत्व-कल्पना । निरर्थिका ॥
 - पदान्तरमें प्रथमा भव (द्रव्य और द्रव्यत्व) न्यारे सिद्ध मानेबाते हैं तो
 = द्रव्यपनामी कल्पना निरर्थकत्व है अर्थात् हमको द्रव्य सिद्ध करना है और

न द्रव्यका अस्तित्व हमने किस मान लिया पुनः यह कहना कि द्रव्यके द्रव्यत्वका
 योगसे विसहेतुसे द्रव्य है तो द्रव्य है ऐसा प्रश्न प्रथमा संका है (उत्तर) वहाँ भी

गुण-समुदायः । द्रव्यम् ॥ इति ।
 गुणानां । समुदायस्य । च भेद-भावात् । तद्द्रव्य
 व्यपदेशः । न च उपपद्यते ।
 = गुणोंका समूह है ऐसा प्रश्न प्रथमा संका है (उत्तर) वहाँ भी
 = गुणोंके और समुदायके (सर्वथा) भेद न माननेमें उस द्रव्यका (पृथक्)

भेद-अस्युपगमे । च न पृथ-उक्तः । एतत् बोधः ।
 = नाम प्राप्त नहीं होता है (क्योंकि गुणोंका समुदाय कहा उस द्रव्य कहा)
 = और (च) गुणनिके और समुदायके भेद माननेमें पहिले कहा हुआ ही रूपच भावता है

ननु गुणान्द्रव्यन्ति गुणैर्वा द्रव्यन्त इति ।
 प्रभावं उस द्रव्य नामकी अप्रतिभाती है (क्योंकि अब समुदाय गुणोंसे भिन्न ठहरा
 उस गुणोंका समुदाय क्यों करना चाहिए उसको तो गुणोंसे पृथक् ही मान लिया है

आकाश-द्रव्यत्वम् ॥ (योगः स्यात्) प्रकृतिपुरुषत्वोपपत्तौ = (आकाशस्य) आकाश पुण्ये सम्बन्ध हो जाय और (=च) स्वाभाविक पुण्यके
 प्रभावं स्वभावसे एक मस्तकवाले पुण्यके

विग्रहेऽपि स एव शीघ्र इति चेन्न । कथञ्चिद्भेदाभेदोपपत्तेस्तद्विषयवेद्यसिद्धिः व्यतिरेकेणानुपलब्धेभेदः
सञ्चालक्षणप्रयोजनाविभवाञ्चैव इति ॥ प्रकृता धर्माधयो बहवस्तासामानाधिकरण्याद्बहुत्वनिर्देशः ॥

विग्रहे । * अयिच्छाः १ एव * इत्यः ॥ इतिच्छेदः *
= द्रव्य शब्दके धर्म प्रकाश कालेवाले नात्ममें भी वही शेष जाता है। ऐसी संज्ञा है
धर्मात् द्रव्य व्यस्त्येसकी भ्रमाप्ति जाती है ऐसाप्रस्त है।

= (एव) (द्रव्य व्यस्त्येसकी भ्रमाप्ति का रूप) जैसी जाता है

कथञ्चिद् * भेद भवेद-व्यस्त्येः ॥
= (क्योंकि) गुणोंके और सगुणोंके वा द्रव्यके) कथंचित भेद और कथंचित् उनमें
भवेद जाननेसे है

वह-व्यस्त्येस-सिद्धिः ॥ व्यतिरेकेण ॥
= उस (द्रव्य) के नाम (= व्यस्त्येस) की सिद्धि शीघ्र है (गुण और द्रव्य में) जिसका सारित

अनुपलब्धोः ॥ भवेदः ॥ सञ्ज्ञा-सपञ्ज्ञ-प्रयोजनानि-
= न इसीसे (के हेतु) से भवेद है (और) संज्ञा (संज्ञा) सपञ्ज्ञ और प्रयोजनानिक
भेदात् ॥ भेदः ॥ इति प्रकृताः ॥ धर्माधयः ॥ शब्दः ॥
= भेद करि भेद है । प्रकृतारूप धर्माधिक (द्रव्य) बहुत है

एव-समान-अधिहरणसात् ॥ ॥ बहुत-निर्देशः ॥
= सो समान आधार के योग से (इस अर्थ में) बहुत कल्पना का निरूपण है धर्मात्
धर्म-अधर्म-भासास गुणत्व पूर्व अर्थमें ये चार द्रव्य हैं और बहुतका हैं इसलिये इस
अर्थमें ('द्रव्यशब्धि' ऐसी शब्द बहुवचन में लाये हैं ?)

(१) छद्, तद्विद, सम्यक् पश्येत्, समाम्प्रकाशानु इव परिच प्रकाशकी वृत्तियोंमेंसे किसी भेदके धर्मके दोहन करनेवाले वाक्यको
विग्रह कहते हैं । विग्रह लौकिक और अलौकिक दो प्रकारका है जैसे राजपुरुष का लौकिक विग्रह राजा पुरुष होगा और अलौकिक विग्रह
राजत्व अस्-पुरुष-उ शीमा ॥ इसलिये "गुणान्द्रव्यमित्येव गुणैर्ना द्रव्यते" यह लौकिक विग्रह द्रव्य शब्दका (जो वृत्तिके पहिले भेदमें गुणानु
से बना है ॥ इस हेतु से विग्रह शब्द का अनुवाद स्पष्ट रूप से ये हुआ कि "द्रव्य शब्दके धर्म प्रकाश करने वाले वाक्यमें भी" अर्थात् गुणान्द्रव्यमित्येव
गुणैर्ना द्रव्यते में मा इत्यादि ॥

प्रदानिवासी अगुरुसहाय बहोली कृत् पदच्छेद और विरक्त्यर्थ सहित सर्वात्मसिद्धिका शब्दशः द्वितीयाभुवाद् अध्याय ५ अत्र २
 स्यादेतत्सस्यानुवृत्तचिक्वस्युल्लिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति । नैप दोष । आविष्टलिङ्गा शब्दा न कदाचिल्लिङ्ग
 व्यभिचरन्ति । अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति ॥

अनन्तरत्वाच्चतुर्णामिव द्रव्यव्यपदेशप्रसंगेऽध्यायोपार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थ ।

सादात्-पठत् ॥ संख्या अनुवृत्ति-वृत्तः
 पुष्टि-अनुवृत्ति-ऽपि ० प्राप्नोति १

= यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) संख्याके अनुवृत्तिके सदृश
 = पुष्टिगर्भा अनुवृत्ति भी 'इस अर्थमें' प्राप्त होती है अर्थात् प्रश्न यह है कि धर्म-

अर्थमें-आकाश-पुटल-द्रव्योंको प्रथम अर्थमें अनुवृत्तनमें लाये है
 इसलिये "द्रव्याणि" शब्द था यहाँ अनुवृत्तनमें क्या तो धर्म-आकाश-पुटल-पूर्व अर्थमें जब पुष्टिगर्भे है फिर इस अर्थमें
 द्रव्य शब्दके पुष्टिगर्भे द्रव्या ऐसा क्यों नहीं रहता अनुसक्तलिङ्गमें 'द्रव्याणि' ऐसा क्यों लाये है
 न ० एतः १ दोषः १ प्राप्ति-लिङ्गाः १ शब्दाः १
 = (अत्र) यह दृष्टय नहीं है (क्योंकि) निवेशित लिङ्गी शब्द अर्थात् किन २ शब्दों
 को जो जो लिङ्ग प्राप्त है

न ० अर्थात्-लिङ्ग ॥ व्यभिचरन्ति १
 = कभी अपना लिङ्ग नहीं छोड़ते हैं (इसलिये क्योंकि द्रव्य शब्द अनुसक्त लिङ्गी है
 इस अर्थमें भी 'द्रव्याणि' ऐसादृष्ट्य शब्द अनुसक्तलिङ्गमें लाये हैं)

अत धर्म-आदयः १ द्रव्याणि १ ॥ भवन्ति १ इति ०
 प्रतुष्याम् १ एव ० भवन्तस्यात् १ ॥
 द्रव्य-व्यपदेश-वर्तते १ अथारोप्य-धर्मत् १ ॥
 इत्य ॥ उच्यते १
 = इसलिये धर्म-आकाश-पुटल-द्रव्य हैं ऐसा (अत्र) है
 = चारों (धर्म-आकाश-पुटल) के ही भवन्त समीकृतसे अथवा अगावसे
 = द्रव्योंके कथनके प्रकरणमें (अन्य द्रव्य के) संस्वापन वा निरूप करनेके लिये
 = यह (प्रथिम अर्थ में) क्या आगा है कि

सूत्रम् जीवाश्च ॥ ३ ॥
 एतार्थ-जीवाः १ न ० द्रव्याणि १ ॥ भवन्ति १
 इत्यनुवादः-शेष-शब्दः १ व्याख्यात-धर्मः १
 = जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवा-च द्रव्याणि भवन्ति १
 = जीव भी द्रव्य हैं
 = जीव शब्द है सो क्या हुआ विषय है

वहुत्वनिर्देशो व्योल्यातभेदप्रतिपत्त्यर्थ । चशब्दः सञ्ज्ञानुकषणाय जावाश्व द्रव्याथात् ॥
 एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह पृष्ठद्रव्याणि भवन्ति ॥ ननु द्रव्यस्य लक्षणं वक्ष्यते गुण-
 पर्ययप्रदद्रव्यमिति' तल्लक्षणयोगाहर्मादीना द्रव्यत्वव्यपदेशो भवति, नार्थ परिगणनेन ? ॥
 परिगणनमवधारणार्थ, तेनान्यवाद्भिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीना निवृत्ति कृता भवति ॥ कथं ?
 पृथिव्यस्यैवोवायुमनांसि पृष्ठद्रव्येऽन्तर्भवन्ति

पृष्ठ-निर्देशः ॥ व्यासपाठ-येत-मतिपचि-अर्थः ॥ (इस सूत्रमें 'बीबा' ऐसा) बहुपवनका निरूपण वा कवन बन्धित (बीबक) वेदोक्तिनापनेकोर
 व-शब्दः ॥ संज्ञा-अनु-रूप-अर्थ ॥ = (यूत्रव) व शुभ्र (द्रव्य) संज्ञाके अरुप करनेके लिये वा अंशुवृत्ति के लिये है

बीबाः ॥ व-शब्दवाचिः ॥ इति एवम् ० एतानि ॥ ० श्रीव मी द्रव्ये है ऐसा (अर्थ हावा) है इसमकार ये
 वषयमाणेन कालेन सह ० पृष्ठद्रव्याणि ॥ भवन्ति ॥ = शारीर इमानेकोले काह सहित अर द्रव्ये हाती है

ननु गुण-पर्यय-वत्-द्रव्यम् ॥ इति द्रव्यस्य ॥ = परन, गुण पर्याय बाह्या द्रव्य होता है ऐसा द्रव्यका
 लक्षणम् ॥ इत्यनेन वत्-लक्षणयोगादि परमादीनाम् ॥ = लक्षण (सूत्र ३२ वां में) कहेंगे किस लक्षणक सम्बन्धसे परमादिकोंके

द्रव्यत्व-व्यपदेशः ॥ भवति, न-अर्थ ॥ परि-गणनेन ॥ = द्रव्यत्वनाम शारोरीयगुणा(करने)सेमयाननरी(तो आपने अर द्रव्यैपेसी गणना क्यों की)
 परिगणनम् ॥ अत्रपरण-अर्थम् ॥ तेन ॥ अन्यवादिन् (अच्छर) गिनती है सो नियम के लिये है जिस (गिनती) से ० भिषगादीसे

परिकल्पितानाम् ॥ पृथिवी-आदीनाम् ॥ = मानेगये पृथिवी-नल-वेन वायु आकाश-आल-विशा-आत्मा, मन की अर्थात् पृथिवी
 आदिक इन ती द्रव्योंकी (हेलो 'वर्कसप्रह' दूसरा सूत्र)

निवृत्तिः ॥ कृता ॥ भवति ॥ कथम् ॥ पृथिवी-अपू = निवृत्ति वा रोक पूरी- (= कृता) होती है (परन)केसे पृथिवी, अल,
 तेनो-वायु-मनांसि ॥ पुष्ठद्रव्ये ॥ अन्वर्थवन्ति ॥ = अग्नि, वायु, मन, पुष्ठल द्रव्यपरि गणित है ।

(१) इस प्रसङ्गी याव्यता इसप्रकार है कि अन्यवादियोंतक तक सारहादि स्यात्के गुणोंमें आत्मा आल आकाश विद्या पृथिवी अल तेज वायु
 अर मन भी द्रव्य माने हैं हमारे यहां आत्मा आल आकाश, पुष्ठल मन और अथम ये कह द्रव्य माने हैं परं और अथमें अन्यवादियों ने द्रव्य नहीं
 माने हैं अरु की गलनासे अरु है कि आत्मा आल और आकाश तिसमें विद्या भी गणित है (विद्या का आकाश में गणित होना इसप्रसङ्गी पृथि
 के अलनागमें सिय किया है) हमारे यहां और उनके यहां एक स है । अर अन्यवादियोंकीअप पांच द्रव्ये पृथिवी अल तेज वायु, और मन अर
 गप वा हमारे यहां के पुष्ठल द्रव्यमें सब क सब आत्माते हैं इसलिये अरुक्तमि उपर्युक्त तक संग्रह प्रथममें लक्षित ती द्रव्योंके अथम वा गणना को
 विना में परण करके यह प्रकल किया है कि पुष्ठल द्रव्यमें ये पांचो हैंसे गणित हैं ।

एतावन्ती नारायणाय क्लीब एव षष्ठेद और विमलवर्णं राहिए सर्गाधिकारिका अष्टमः हिन्दीअनुवाद अष्टमः ५ एग २

स्वावेतासस्यानुवृत्तिव्युत्थितानुवृत्तिरपि प्राप्नोति । नैप दोषः । आण्डिलिंगा शब्दा न कदाचिल्लिंग व्यभिचरन्ति । अतो धर्मावयो द्रव्याणि भवन्तीति ॥

अनन्तराद्यानाणामिव द्रव्यव्यपदेशसंज्ञेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो न्यास्यातार्थः ।

स्वात्-प्रकृत् ॥ संज्ञा अनुवृत्त-शब्दः

पुक्ति-अनुवृत्तिः ॥ अपि ० प्राप्नोति ॥

इत्येव "द्रव्यादि" शब्द मी वही बहुवचनमें कहा गो धर्म भवार्थ-भाकार-पुत्रल एव एतमें अप पुक्तिगों हे फिर इरा एतगों

द्रव्य शब्दके पुक्तिगमें इत्याः ऐसा क्यों नही एवला नपुत्रक-किगमें "द्रव्यादि" ऐसा क्यों लागे हे

न ० एता ॥ दोषा ॥ आदि-लिमाः ॥ शब्दाः ॥

न ० द्रव्यादि-लिग ॥ व्यभिचरन्ति ॥

प्रताः-धर्म-भादयः ॥ द्रव्यादि ॥ ॥ भवन्ति ॥ इति ०

पुत्रार्थः ॥ एव ० अनन्तरात् ॥

द्रव्य-व्यपदेशे-प्रथमे ॥ अद्यारोपण-धर्मम् ॥ ॥

इति ॥ उच्यते ॥

सूत्रम् जीवाश्च ॥ ३ ॥

एताः- नीताः ॥ १ ० द्रव्यादि ॥ ॥ भवन्ति ॥

इत्यनुवादा-प्रथमः ॥ व्याख्यात-धर्मः ॥

= यह हो भर्थात् यह मानजो (परत्) संज्ञाके अनुवृत्तिके राधा

= पुक्तिगों अनुवृत्ति मी 'इरा एतमें' प्राप्त होती है भर्थात् मन यह हे कि धर्म

भर्था-भाकाराश पुत्रल इत्योंको मयम एतमें बहुवचनमें लागे हे

इत्येव "द्रव्यादि" ऐसा क्यों नही एवला नपुत्रक-किगमें "द्रव्यादि" ऐसा क्यों लागे हे

= (उपर) यह द्रव्य नही है (क्योंकि) निपेक्षित किगों शब्द भर्थात् किग र शब्दों

के जो जो लिग प्राप्त है

= कभी अपना लिग नहीं छोड़े हे (इतलिये क्योंकि द्रव्य शब्द नपुत्रक किगों है

इरा एतमें मी 'द्रव्यादि' ऐसाव्यव शब्द नपुत्रकिकमें लाये हे

= इत्येव धर्म-भाकार पुत्रल द्रव्य हे ऐसा (अप) है

= एतों (धर्म भर्था-भाकार पुत्रल) के ही अत्यन्त समीचकारे भवता अगायसे

= द्रव्योंके कपनके प्रकृतमें (अन्व द्रव्य के) संस्थापन या नियत करनेके लिये

= यह (अभिप एत में) कहा जाण है कि

= जीवाश्च (द्रव्यादि भवन्ति) = जीवा च द्रव्यादि भवन्ति ॥

= नीप मी द्रव्य हे

= जीव शब्द हे तो कहा हुआ लिपय हे

बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातमेदप्रतिपत्त्यर्थ । चशब्द सञ्चानुकषणाय जावाश्व द्रव्यायां ॥
 एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह षड्द्रव्याणि भवन्ति ॥ ननु द्रव्यस्य लक्षणं वक्ष्यते 'गुण-
 पर्यायवद्वद्रव्यमिति' तस्यैतन्नयोगाद्धर्मादीनां द्रव्यत्वव्यपदेशो भवति, नार्थपरिगणनेन ? ॥
 परिगणनमवधारणार्थं, तेनान्यवादिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीनां निवृत्ति कृता भवति ॥ कथं ?

पृथिव्यस्य जेवायुमनांसि पृथुलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति

बहुत्वनिर्देशः ॥ व्याख्यात-येव-प्रतिपत्ति-अर्थः ॥ (इस सूत्रमें जीवा 'वेसा) बहुवचनका निरूपण वा कथन बर्हित (वीचक) वेदोंके अन्तर्भवनेको
 व-युग्मः ॥ संज्ञा-अनु रूपण-अर्थः ॥ (=सूत्रमें) वा शब्द (द्रव्य) संज्ञाके अर्थ करनेके लिये वा अनुवृत्तिके लिये है
 नीचाः ॥ प-द्रव्याणि ॥ इति एवम् एवानि ॥ ० औष भी द्रव्ये है वेसा (अर्थ शक्ता) है इसप्रकार ये
 पश्यमाणेनैः कालेन सह षड्द्रव्याणि ॥ भवन्ति ॥ ० भागे कर्मानेवाले काळ सति एव द्रव्ये होती है
 ननु गुण-पर्याय-वद्वद्रव्यम् ॥ इति द्रव्यस्पर्शः ॥ ० परन, गुण पर्याय वाक्ता द्रव्य होता है वेसा द्रव्यका
 लक्षणम् ॥ पश्यते ॥ वत्-अक्षययोगोत्तरेणमादीनामूर्तिः ० लक्षण (सूत्र ३० वा में) कहेंगे किस लक्षणक सम्बन्धसे धर्मादिद्रव्यके
 द्रव्यत्व-स्पर्शः ॥ भवति, न-अर्थः ॥ परिगणनम् ॥ ० द्रव्यत्वनाम शवातेगुणना (करने) सेमयोजननरी (तो आपने कह द्रव्यहैऐसी गणना क्यों की)
 परिगणनम् ॥ ० अक्षयपरण अर्थः ॥ ० तेनैः ॥ अन्यवादि-व-वत् ॥ गिनती है सो नियम के लिये है जिस (गिनती) से ० भिन्नवादीसे
 परिकल्पितानामूर्तिः ॥ पृथिवी-आदीनाम् ॥ -यानेगये पृथिवी-जल-जग वायु आकाश काल-दिशा आत्मा, मन की अर्थवत् पृथिवी

आदिक इन नौ द्रव्योंकी (देलो 'तर्कसंग्रह' दूसरा सूत्र)
 निवृत्तिः ॥ कृताः ॥ भवति ॥ कथम् पृथिवी-अप-निवृत्ति वा रोक पूरी- (=कृता) होती है (मन)केसे पृथिवी, अल,
 वेदो-वायु-मनांसि ॥ पृथुलद्रव्ये ॥ अन्तर्भवन्ति ॥ ० अग्नि, वायु, मन, पुथुल द्रव्यसिधे गमित है ।

(१) इस प्रश्नकी योग्यता इसप्रकार है कि कथंवादिप्रायः तर्क सभ्यवादिप्रायः के गद्यमें आत्मा कास आकाश विद्या, पृथिवी अल तेज वायु
 आद मन नौ द्रव्य नाम हैं हमारे यहां आत्मा काल आकाश, पुथुल धम और अथम ये छह द्रव्य माने हैं धर्म और अथम अन्त्यवादियों ने द्रव्य नहीं
 माने हैं उपर की पंक्तिके स्पष्ट है कि आत्मा काल और आकाश जिसमें विद्या भी गमित है (विद्या का आकाश में गमित होना इसल्लेखी पृष्टि
 के अन्तर्भावमें सिद्ध किया है) हमारे यहां और उनके यहां एक से हैं । अब अन्त्यवादियोंकीयाप पांच द्रव्यें पृथिवी, अल तेज वायु, और मन एव
 गद्य सा हमारे यहां के पुथुल द्रव्यमें सब क सब आजाते हैं इसलिये प्रश्नकालि उपपत्तक तर्क सभ्य द्रव्यमें वर्धित नौ द्रव्योंके कथन वा गणना को
 सिद्ध में धारण करके यह प्रश्न किया है कि पुथुल द्रव्यमें ये पांचों कैस गमित हैं ।

एतानिवासी अकारुण्यसाय वकील छत्र परच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वांशसिद्धिका शब्दसः हिन्दीअनुवाद अग्याय ५ सूत्र २
 स्यावेतत्सस्यानुवृत्तिवृत्तिङ्गावृत्तिरपि प्राप्नोति । नैष दोष । आविष्टलिङ्गा शब्दा न कदाचिल्लिङ्ग
 व्यभिचरन्ति । अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति ॥

अन्तरत्वावृत्तणमिव द्रव्यव्यपदेशप्रसंगेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थः ।

स्वात्-यत् ॥ संख्या-अनुवृत्ति-वत् ॥
 पुष्टि-अनुवृत्ति-ऽपि ॥ प्राप्नोति ॥

= यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) संख्याके अनुवृत्तिके सदृश
 = पुष्टिगणी अनुवृत्ति मी 'इस सूत्रमें' प्राप्त होती है अर्थात् प्रत्यय यह है कि धर्म-

धर्म-भाकाश-पुद्गल द्रव्योंको प्रथम सूत्रमें अनुवृत्तमें लाये हैं

इत्यपि "द्रव्याणि" शब्द मी यहाँ अनुवृत्तमें कहा तो धर्म-धर्म-भाकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें जब पुष्टिगणमें है फिर इस सूत्रमें

द्रव्य शब्दके पुष्टिगणमें द्रव्याः ऐसा क्यों नहीं कहा ननुसकलिंगमें "द्रव्याणि" ऐसा क्यों लाये हैं

न ॥ एष ॥ दोषः । आविष्ट लिङ्गाः । सख्याः ।

= (उपर) यह दृष्टान नहीं है (क्योंकि) निवेशित लिङ्गी शब्द अर्थात् जिन २ शब्दों
 को जो ओ लिंग प्राप्त है

= कृमी अपना लिंग नहीं छोड़ते हैं (इत्यपि क्योंकि द्रव्य शब्द ननुसक लिंगी है

इस सूत्रमें मी 'द्रव्याणि' ऐसाद्रव्य शब्द ननुसकलिंगमें लाये हैं

अतःधर्म-भाकाशः । द्रव्याणि ॥ भवन्ति ॥ इति ॥
 पृथगपि ॥ एष ॥ अन्तरत्वात् ॥ ॥

इत्यनुवृत्त-श्रुतम् ॥ अन्तरोपण-धर्मम् ॥ ॥
 इत्ये ॥ ॥ उच्यते ॥

सूत्रम् जीवाश्च ॥ ३ ॥

इत्यर्थः- नीलाः । ॥ ॥ द्रव्याणि ॥ ॥ भवन्ति ॥

इत्यनुवृत्त-श्रुतम् ॥ अन्तरोपण-धर्मम् ॥ ॥

= धर्मोंके कथनके प्रकारमें (अन्य द्रव्य के) संस्थापन वा नियत करनेके लिये

= यह (अग्रिम सूत्र में) कहा जागा है कि

= जीव मी द्रव्य हैं

= जीव शब्द है सो कहा हुआ जिसके

= जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवाश्च द्रव्याणि भवन्ति ॥

पदानिवासीभागरूपसहाय कक्षा: ७७ पृ. ५५ और नियन्त्रण सशित सर्वाधिकारिणा गन्धशान्तिन्दी अनुवाद अभ्यास ५ सूत्र ३

वायुमनसो रूपादियोगामाव इति चेन्न । वायुस्तावद्रूपादिमान्स्पर्शवत्त्वाच्चटादिवत् ॥

अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और द्रव्यमन रूप वा वर्ण, रस, गंध, और स्पर्श सशिव हैं और पुत्रल भी रूप, रस, गन्ध, और स्पर्शवान् हैं जिससे ये पाँचों पुत्रल द्रव्यमने गर्भित हैं (= वेत्) हैं अर्थात् अन्वयवियोगी वर्तकसम्राट्के सूत्र १८ के अनुसार मन परमाणु रूप है (अतः स्पर्शवान् तौ बुद्ध्या) उसके रस, गन्ध, और वर्ण नहीं माने हैं और सूत्र २२ क अनुसार वायु में केवल स्पर्श माना है और वर्ण-रस-गन्ध नहीं माने हैं (देखो तर्कसंग्रह सूत्र १९, २०, २१) नन्वायुर्भोगावत्-स्पर्शवत्त्वात्-रूप-=(वचर) (सो) नहीं है ॥ वायु है सो प्रथम ता स्पर्शवान् होनेसे पटादिके सपान रूप =रस गन्ध वाक्का है अर्थात् जहाँ स्पर्श है वहाँ रूप रस गंध शोष ही हों यह नियम है (१) आदियान् ३

जलमें गर्भसिद्ध क्रिया है अग्निमें रस और गर्भसिद्ध क्रिये ही और वायु में रूप-रस-गंध-सिद्ध क्रिये हैं और द्रव्यमनविषे रस-रूप-गंध सिद्ध क्रिये हैं जिसको अन्वयवदित्यो ने नहींमाना है (३) समस्त पुत्रल परमाणुओंके एक आहिते दूसरी जातिमें लक्ष्य पकटन होती गती है । जैसे पृथिवी से जल होता है जलसे पृथिवी होती है अग्नि से पृथिवी शोष है और पृथिवी आदिक से अग्निहृती है इसकारण पृथिवी आदि से उभये हुए और वायु तथा द्रव्यमनका ब्यारे परमाणु नहीं है, ये समस्त ही पुत्रल के विकास हैं ।

'१) संज्ञावाक्यक पृथिवी शब्द जिसके अन्त में 'वत्' और 'मत्' हों प्रथमा विभक्ति एक वचन द्विवचन बहुवचन और द्विवचन में अन्त के तकार के पहिले व् जोड़ते हैं फिर मत्प्रत्यय लगाते हैं जैसे आदिवत्-और स्वसे पहिले प्रथमा विभक्ति एक वचनमें 'वत्' के पहिलेस्वर जो शोषे करलेते हैं अतः आदिवत् से आदि-मात् हुआ परस्पर-व-व् से प्रथम जोड़ा ती आदिवान् व् हुआ फिर व् प्रथमा विभक्ति एक वचनका प्रत्यय जोड़ा तब आदिवान् व् व् देखा रूप बना जब यह के अन्त में एक अन्त से अधिक हो तो प्रथम रत्तजाता है शोषसब निर आते हैं (शो-) संयोगात्स्वलोपप्रत्याख्यायी सूत्र २-२-२३) अ शोषरूप आदिवान्, आदिवान्-और आदिवान्-और आदिवान् (द्वितीया विभक्तिमें) होते हैं इतिहे आदिवान् परह रूप प्रथमा विभक्ति एक वचन पुंसि ग में बना ।

'संयोगात्स्व लोप- = संयोगात्स्वर् । लोपाः । = संयोगात्स्व लोपः तदन्तस्य सापः स्यात् । = जिस परके अन्तमें संयोग (ध्वजन) वा और = वह संयोग जिस समुदायके अन्तमें शोष सिद्धता लोप होजाये अर्थात् जब तद् इत्यस्य । लोपात् स्यात् ।

एवाविवासी भगवत्सहाय पकील कुठ पक्ष्मद्वे और विभक्त्यर्थसहित सर्वाभ्यांस्त्रिविकिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद अभ्याय ५ सूत्र ३

रूपरसगन्धस्पर्शवित्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ।

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवित्वात् ॥ १ ॥ चक्षुरिन्द्रियवत्क- (उपर) रूप-रस-गंध-और स्पर्शवान् होनेसे नेत्र इन्द्रियके सदृश (पुत्रलक्ष्णसे गर्भित) है

- (१) यहासे आगे इस श्रुतिके अर्थको सन्ने प्रकार समझे के लिये इस दिव्यपी को विच लगाकर समझनेका बाहिये अन्य बाहियोंके माने हुये चार गुणों में दोन दोन किस किस में है?
- (१) रूप-गणिकी जल और तेजमें चलत है (तर्कसंग्रह १-१३) (१) रूप अर्थात् कृष्ण नील रक्त पीत, श्वेत ये गंध रूप वा वर्ण वा रग हैं ।
 (२) रस-गणिकी और जल में रहती है (तर्कसंग्रह १-२०) (२) रस अर्थात् जाड़ा मीठा कटुआ (कटुक) फणयज्जा विरपरा (तिक) य पर्णिक हैं ।
 (३) गंध-गणिकी मात्रमें ही चलत है (तर्कसंग्रह १-२१) (३) गन्ध अर्थात् सुगन्ध (सुर्तमि) दुर्गन्ध (असुर्तमि) मेरु रूप हैं ।
 (४) स्पर्श-गणिकी, जल, तेज और वायुमें रहता है (तर्कसंग्रह १-२२) (४) स्पर्श-कोमल (मृदु) कठोर, जलका मार्गी, शीत उष्ण, सखिफकना (सिग्घ) (कच) रुजा) ।
 (५) नित्य और परमाणुस्मरणी अर्थात् त्रैलोक्याणामुत्पत्तिक्रमण है (५) मत अर्थात् द्रव्यमम जो पुत्रलक्ष्यका विकार है, भावमम आ ज्ञान है आरंभमम गमित है (वैशिकसंग्रह १।२)

एत इतो बीजको के पदम सं यह अकार भिच्छता है कि अन्य बाहियों वायुको रूपवान् नहीं माना है जैतियों न रूपवान् माना है। एत गुणको अर्थम और वायु म नहीं माना है इतम माना है गन्ध को जल अर्थम वायु में नहीं माना है जैतियों ने माना है। एत अन्य बाहियोंने पृथिवी जल पेश और बाय सब में माना है जो इम अर्थम वा में मी माना है इ पृथयात् स्वामीने 'कय' .. प्यवहारोपपत्तः 'तक कृषिकं पृउउ० वृषीरय० ४की १५ वक्रियार्थे तीन पाठे सिद्ध की है (१) आ मरिवादी नौ द्रव्यों मानने हैं ये सब द्रव्य आत्मा-काल-आकाश और पुत्रलक्ष्य में अतमीव हैं इसलिये नौ द्रव्योंके माननकी आवश्यकता नहीं है बल्क परमाण्व्य अर्थमै द्रव्य को मिलाकर केवल इह द्रव्य मानना बाहिय- (२) कय एत-गन्ध-एवो ये पृथिवी, जल अर्थम और वायु और द्रव्यमम में मी (जो पुत्रल द्रव्यका विकार है) विद्यमान हैं और पुत्रलोके गुण हैं और जलमें पाये जाने हैं अर्थात् मिश्रबाहियों न वायु में रूप (एव) नहीं माना है उसका व्यवहन होता है। अर्थम और वायु में एव गुण नहीं माना हैकलका मी रूपकल होता है और एकी प्रकार जल अर्थम-वायुमें गंधन नहीं माना है अकवादी अंतम होता है। यल्लो एतममान है ।

॥ १ ॥ अर्थम है अर्थमिच्छता अर्थात् अर्थमिच्छता

पदानिवासीभगरूपसहाय वकील-इव पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सशिव सर्वांगसिद्धिबिधा शब्दशःहिन्दी अनुवाद आशय ५ सूत्र ३ वायुमनसो रूपादियोगाभाव इति चेन्न । वायुस्तावद्रूपादिमान्स्पर्शवत्त्वाद्धटादिवत् ॥

अर्थात् पृथिवी,जल,अग्नि, वायु और द्रव्यमन रूप वा षण्,रस,गंध,और स्पर्श सशिव और पुद्गल भी रूप,रस,गन्ध,और स्पर्शवान् हैं जिससे ये पाँचों पुद्गल द्रव्यमें गणित हैं वायु-मनसाः१॥रूप आदि-याग-अभावाः२श्रुतिःचेत्०३=वायु और मनके स्पादिकडा सम्बन्ध नहीं है ऐसा मरुत या शंका (=चेत्) है

अर्थात् अन्यत्रायिओंकी वर्तूसप्रारके सूत्र १८ के अनुसार मन परमाणु रूप है (अतःस्पर्शवान् तौ बुद्ध्या) उसके रस,गन्ध,और बण् नहीं माने हैं और सूत्र २२ क अनुसार वायु में केवल स्पर्श माना है और षण्-रस-गन्ध नहीं मान है (वेसो तर्कसंग्रह सूत्र १९,२०, २१) न०वायुःशैलापत्०स्पर्शवत्त्वात्१॥पदाविवत्०रूप=-(उचर) (सो) नहीं है ॥ वायु है सो प्रथम तो स्पर्शवान् होनेसे पटाधिके सपान रूप १)आश्रियान्२

अन्तमें गंधसिद्ध किया है अन्तमें रस और गंधसिद्ध किया है और द्रव्यमनविषये रस-रूप-गंध सिद्ध कि है कि जिनको अन्यत्रायिओं ने नदीयामा है (३) समस्त पुद्गल परमाणुओंके एक आतिले दूसरी आतिले संवेद्य पलटन होती गती है । जैसे पृथिवी से आर होता है अन्तसे पृथिवी होती है अग्नि से पृथिवी शोय है और पृथिवी आधिक से अग्निशोयती है इच्छकार पृथिवी आदि से उपजे हुए और वायु तथा द्रव्यमनक त्वारे परमाणु नहीं है, ये समस्त ही पुद्गल के बिकार हैं ॥

१)संज्ञावाचक पुंलिङ्ग शब्द अन्तके अन्त में चत् और मत् ही प्रथमा विभक्ति एक वचन द्विवचन बहुवचन और द्विवचन में अन्त के टकार के पहिले न् जोड़ते हैं फिर प्रत्यय संगते हैं जैसे आश्रियम्-और सबसे पहिले प्रथमा विभक्ति एक वचनमें 'त्' के पहिलेस्वर ओ शीर्ष करवत है अत आश्रियम् से आदि-मान् हुआ परचाय् म्-त् से प्रथम जोड़ा तो आश्रियान् हुआ फिर च् प्रथमा विभक्ति एक वचनका प्रथम जोड़ा अब आश्रियान् र् च् ऐसा रूप बना अब पर के अन्त में एक व्यजन से अधिक हो तो प्रथम रवजाता है शोयसब गिरा जाते हैं(वेसो-संयोगात्स्वलोपःअष्टाध्यायी सूत्र ८-२-२३) ४) उपरूप आश्रियमन्ती आश्रियमन्तौ आश्रियमन्तौ(श्रियोया विभक्तिकमें) होते ॥ इसलिये आश्रियान् यह रूप प्रथमा विभक्ति एक वचन पुंलिङ्ग ग में बना ॥

संयोगान्तस्य शोप = संयोगान्तस्यः१। शोपः२। = संयोगान्तं यत्परं तत्पतस्य शाप स्यात् ४
 संयोग-अन्तम्, ॥यत्परम् ॥
 तद् अन्तस्यः१। शोपः२। स्यात् १
 = अन्त परके अन्तमें संयोग (व्यंजन) श्रा और
 = वा संयोग बिज सम्बन्धके अन्तमें शोय जिसका शोप होजायै अर्थात् अब
 पदके अन्तमें एक व्यंजनसे अधिक हो तो पहिला रवजाता है शोय सब गिरजाते हैं

एतानिवासी जगत्प्रसादाय बन्धीक कृत् पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वाथिसिद्धिका शब्दशः हिन्दी भानुवाह अध्याय ५ अक्षर २
 चतुरादिकरगुणग्रह्यत्वाभावाद्गुणधभाव इति चेत्यरमाध्वदिष्वतिप्रसङ्ग स्यात् ॥ आपो गन्धवत्य
 स्पर्शवत्वात्पृथिवीवत् ॥ तेजोऽपि रसगन्धवत् रूपवत्वात् ॥ तद्देव मनोऽपि द्विविध द्रव्यमनो
 भावमनश्चेति । तत्र भावमनो ज्ञानम्, तस्य जीवगुणत्वादात्मन्यन्तर्भाव । द्रव्यमनश्च
 रूपादियोगात्पुद्गलद्रव्यविकार ॥

वचुर-आदि-करण-आशय-अभावात्
 का-आदि-अभाव इति च चेतु
 परमाणु-आदिपुत्र

अविमर्शगोस्पात्, अभावात् ॥ स्वमन्तत्वात् ॥ पृथिवीवत् ॥ अविमर्शगोस्पात् ॥ स्वमन्तत्वात् ॥ पृथिवीवत् ॥ अविमर्शगोस्पात् ॥ स्वमन्तत्वात् ॥ पृथिवीवत् ॥

गन्धवत्येव, तेजः ॥ अपि स्वमन्तत्वात् ॥ रस-मन्थवत् ॥

कृ-वत्-पर-अननः ॥ अपि द्विविधवत् ॥
 द्रव्यमनः ॥ भावमनः ॥ अदृष्टि, तत्र भावमनः ॥ अदृष्टि, तत्र भावमनः ॥

ज्ञानवत् ॥ अस्वत् ॥ जीवगुणत्वात् ॥ आत्मनि ॥
 अन्वर्णवत् ॥ द्रव्यमनः ॥ अक्षय-

आदि-योगात् ॥ पुद्गलद्रव्य-विकारः ॥
 अति प्रसङ्ग - अति प्रसक्ति, प्रसंग को छोड़ने वाला कथनम् ॥
 अर्थात् सत्यम् ॥ अक्षय - समन्वयवाक्यात् (१) वायु और पन इन दोके संघर्ष से रसायिक के समान होने का प्रसंग किया गया था जो वायु को
 रसायिक का होनामिच्छ करारिवा वायु के समान ही बनने में तब और अक्षय में एक और गल विधि करनेके पक्षवात् होने पर हृत् मानने की शेष करनेके
 द्रव्यमनसके रूप रस मन-...

=त्रैयदिक इन्द्रियोसे प्ररखयोग्य न होनेसे वा न आकर्मित क्रियेमासकनेसे
 -(पायुके) रूप, रस र्ग्यभादिका अस्तित्व नहीं है । ऐसी शक्यता वा मन है
 =(बषर)ता परपाणु आदिक छद्म्यमें (जो नेत्रोंकर नहीं देखते हैं)
 =गणधानरै (अन्यवायिओंमलमेष्यस्पर्शशीयाने) इसखियेर्गणत्वस्तिष्ठकिया है)
 =अग्नि भी रूपवान् होनेसे रस और गन्धवानरै (क्योंकि अन्यवायिओंने अग्निमें रूप
 और स्पर्शमाने हैं इसखिये यहाँपर रसत्व और गणत्व सिद्ध किये हैं) ।
 =रस (मल)के सदृश ही है ॥ मन भी दो प्रकार है ।
 =द्रव्यमन और भावमन । तहाँ भावमन है
 =सो ज्ञान है । तिस (भावमन) के चेतनका गुणहोनेसे, आत्मा (द्रव्य) में
 व्यापित है । बहुत द्रव्यमन अर्थात् सूक्ष्म पुद्गलका मध्य रूप अथ पाँचुरी के
 फूले कणके आकार इत्य स्वानमें विष्ठा हुआ है सो रूप
 =रस-नीय-स्पर्शक संयोगसे पुद्गलद्रव्य का परिष्काम है ?

गन्धवत्येव, तेजः ॥ अपि स्वमन्तत्वात् ॥ रस-मन्थवत् ॥

कृ-वत्-पर-अननः ॥ अपि द्विविधवत् ॥
 द्रव्यमनः ॥ भावमनः ॥ अदृष्टि, तत्र भावमनः ॥ अदृष्टि, तत्र भावमनः ॥

ज्ञानवत् ॥ अस्वत् ॥ जीवगुणत्वात् ॥ आत्मनि ॥
 अन्वर्णवत् ॥ द्रव्यमनः ॥ अक्षय-

आदि-योगात् ॥ पुद्गलद्रव्य-विकारः ॥
 अति प्रसङ्ग - अति प्रसक्ति, प्रसंग को छोड़ने वाला कथनम् ॥
 अर्थात् सत्यम् ॥ अक्षय - समन्वयवाक्यात् (१) वायु और पन इन दोके संघर्ष से रसायिक के समान होने का प्रसंग किया गया था जो वायु को
 रसायिक का होनामिच्छ करारिवा वायु के समान ही बनने में तब और अक्षय में एक और गल विधि करनेके पक्षवात् होने पर हृत् मानने की शेष करनेके
 द्रव्यमनसके रूप रस मन-...

दिशोऽप्याकाशोऽन्तर्भाव । आदित्योदयाद्यपेक्षया आकाशप्रदेश पक्तिषु इत इदमिति
 व्यवहारोपपत्ते ॥ उक्तानां द्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

अपत् समस्त पुद्गल परमाणुओं के एक भागितसे दूसरी भागितमें सदैव पकटन होती
 रहती है जिस पृथिवी परमाणुओं से जल होता है जल परमाणुओंसे पृथिवी होय है, अग्निसे
 पृथिवी होती है, और पृथिवी कापृथिकसे अग्नि होय है इस प्रकार पृथिवी आदिकसे
 उत्पन्न हुए वायु मनके न्यारे परमाणु नहीं हैं ये समस्त ही पुद्गलके विकार हैं ?

विशः^१ अपि^२ आकाशो^३ अन्तर्भावः^४ आदित्य-उदय-मादि-^५ दिशो^६ का भी आकाश (द्रव्य) में समावेश है । सूर्यके उदय आदिकें
 अपेक्षया^७ आकाश-प्रदेश-पक्तिषु^८ इव इदमिति^९ ।
 इति^{१०} रूपवहार उपपत्तः^{११} ।

मगता है उसओरके आकाशके प्रदेशोंकी पक्तियोंका पूर्वविशा
 करते हैं जहाँ सूर्य भास्व होता हैवस ओरके आकाशके प्रदेशकी पक्तियोंको
 प्रथम दिशा करते हैं इस प्रकार शेष दिशाओं को जानना
 रक्तानामु^{१२} द्रव्यासामु^{१३} विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थमु^{१४} । आह^{१५} = बलिष्ठ द्रव्योंके विशेषज्ञानके लिये (आचार्य उच्यते सूत्रम्) कहते हैं कि
^{१६} नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

= ("धर्मदीनि,^{१७} काल,^{१८} जीवाश्च,^{१९} द्रव्याणि) नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥
 सूत्रार्थ-यम आदीनि^{२०} । आकाशो^{२१} जीवा^{२२} रूपद्रव्याणि^{२३} ॥

नित्य-
 सूत्र वा नित्य है अर्थात् द्रव्यविषय अनेक पर्य है वे (पर्य) द्रव्यपनानी अपेक्षा
 (वा कि पर्यायकी अपेक्षा) अविनाशी हैं अपनया सदा विद्यमान है ।

(१) यहाँ आकाशमें इस सूत्रका पाठ अर्थेणक है (२) यहाँ-आपत्-आकाश-पुद्गल-पकट-मु-किया है (३) आकाश इव अपनयापके अनन्तानोपपत्तौ
 पकटन अपनयापके किया है (४) अपि-
 (५) अपि-
 (६) अपि-
 (७) अपि-
 (८) अपि-
 (९) अपि-
 (१०) अपि-
 (११) अपि-
 (१२) अपि-
 (१३) अपि-
 (१४) अपि-
 (१५) अपि-
 (१६) अपि-
 (१७) अपि-
 (१८) अपि-
 (१९) अपि-
 (२०) अपि-
 (२१) अपि-
 (२२) अपि-
 (२३) अपि-

नित्य ध्रुवमित्यर्थ । ने ध्रुवे त्व इति निष्पादितत्वात् ॥ धर्मादीनि द्रव्याणि गति हेतुत्वादिविशेषलक्षणद्रव्यार्थादिशादस्तित्वादिसामान्यलक्षणद्रव्यार्थादिशाच

अवस्थित—

अवस्थित हैं अथवा क्योंकि त्यों रहते हैं अर्थात् द्रव्योंमें अपने अपने जो जो विशेषलक्षण हैं उनको नहीं छोड़ते हैं जैसे जो द्रव्य चेतन है वह अचेतन नहीं हा सक्ती ना द्रव्य मूर्तिक है वह अमूर्तिक नहीं हो सक्ती और जो अमूर्तिक है वह मूर्तिक नहीं हो सक्ती इस्यादि विसरे द्रव्योंकी संख्याकी व्यवस्था है और यह द्रव्योंकी संख्या १, २, ३, ४, ५, वा ७, इत्यादि नहीं हासकों है

- =(युद्धल द्रव्यके अविरक्त) अरूपी हैं अर्थात् अमूर्तिक हैं
- =नित्य है सां प्रुष अथवा अभिनाशी ऐसा अर्थ है(नि)पादु से स्थिर अर्थमें
- =स्पृ अर्थात् (स्प) प्रत्ययलगाकर (नित्य) ऐसा(शब्द)
- =सिद्ध वा निष्पन्न होता है ॥ धर्म-अपर्म-आकाश-युद्धल-जीव-काल
- =द्रव्यैर्गति-हेतुत्व आदिकसबद्रव्योंमें न ब्यापन वाले गुणोंसे(=विशेष लक्षण)
- =द्रव्यद्रव्यके आवेष्टकारि और (=च) अस्तित्वादिक (=सामान्य लक्षण)
- =सब द्रव्योंमें ब्यापनेवाले गुणोंसे द्रव्यार्थिक नयके नियमसे

- अकृपाणि ॥
- इत्पनुवाद-नित्यम् ॥ ध्रुवम् ॥ इति ॥ अर्थः ध्रुवः ॥ ध्रुवे ॥
- त्वम् इति ॥
- निष्पादितत्वात् ॥ धर्म-अपर्म-आदीनि ॥
- द्रव्याणि ॥ गति-हेतुत्व-आदि-विशेषलक्षण
- द्रव्यार्थः ॥ आदेशात् ॥ च ॥ अस्तित्व-आदि-
- सामान्य-लक्षण-द्रव्य अर्थ-आवेशात् ॥ च ॥

(१) सत्त्वार्थसिद्धि बुझाने प्रथम संस्कार में द्रव्यत्व-आवेशात् पाठ है इनसे 'द्वितीयावृत्ति' का पाठ 'द्रव्यापाराशत् सिषा द्वे क्योंकि यद पिच्छता पाठ तीन हल लिखित प्रतिगोंमें भी मिलता है प्र हांमो पाठो का अर्थ लग भग एक है । (क) गुण अथवा लक्षण के दो भेद हैं (१) सामान्य और (२) विधाय (१) आ स्प द्रव्योंमें अर्थात् वे सामान्य अथवा साधारण हैं वे गुण अनेक हैं परन्तु उनमें अस्तित्व-यस्तुत्व-द्रव्यत्व प्रमेयत्व-अगुणत्वप्रत्यय-ये मुख्यदेवतो अध्याय २ पृष्ठ २४) ॥ जो सब द्रव्योंमें न ब्यापे उसको विशेष गुण कहते हैं उसे जीविका पिण्डगुण कहते हैं । नित्य और अवस्थित शब्दोंमें क्या भेद अथवा अन्तर है । देखो पं० अथर्ववरायकी बल्लिका पृष्ठ ४११) द्रव्यार्थिक अर्थके आशुकारि द्रव्योंका अर्थन गति हेतुत्व स्थिरहेतुत्व आदि विशेष गुण तथा अस्तित्व आदि सामान्य लक्षणका किसी समयमें न छानना सो नित्य है । धर्माधिक पद द्रव्योंकी कही गई संख्या तथा उनके प्रवेष्टोकी कथित श्रृणु (संख्या) कमी भी न्यून वा बढ़ती नहीं होना उसे अवस्थित कहते हैं । भाषार्थ अवस्थित विशेषपद द्रव्यों तथा उनके प्रवेष्टोकी संख्याका कम कमी बढ़ेगा नहीं क्योंकि त्योंका त्यों अथवा बसाही कम रहेगा ॥

कदाचिदपि न व्ययन्तीति नित्यान । वर्यत इह तद्भावाव्यय नित्याभात् इत्येताऽव्याभचारद्वारव्य-
तानि धमादीनि षडपि द्रव्याणि कदाचिदपि षडिति इत्यत्वनातिवर्तन्ते । ततोऽवस्थितानीत्युच्यन्ते ॥
न विद्यते रूपमेवामित्यरूपणि, रूपप्रतिषेधेन तत्सहचारिणा रसादीनामपि प्रतिषेध । तेन
अरूपाण्यमूर्तानीत्यर्थ ॥

यथा सर्वेषां द्रव्याणां नित्यावस्थितानीत्येतत्साधारणं लक्षणं तथा अरूपित्वं पुद्गलानामपि प्राप्तम् ।

कदाचित् ० अपि ० न ० व्ययन्ति ० इति ० कित्यानि ॥ १ ॥
यस्येते ० इति ० तद्भाव - अभ्ययस्य ॥

निरयम् ॥ प्रति ० प्रपचा-अभ्ययिचारतः ॥ अवस्थितानि ॥ ॥
यम् आदीनि ॥ पद ॥ अपि ० द्रव्याणि ॥ कदाचित् ० अपि ० पद ० वर्णाधिकं षड् इति ० अपि, द्रव्यं हैं किंसीत्वात्वं यं मी (=अपि)व्यं हैं

इति ० इतरयम् ॥ न ० अविवर्तने ० I ;
ततः ० अवस्थितानि ॥ प्रति ० वर्यते ० न अविद्यते ० I

स्वयम् ॥ एवम् ॥ प्रति ० अरूपाणि ॥ रूप-प्रतिषेधेनैव ॥
तत्-सहचारिणाम् ॥ रसादीनामर्षं अपि ०
प्रतिषेधः ॥ तेन ० अरूपाणि ॥ ॥ अमूर्तानि ॥ ॥
इति ० भाष्यं ॥ यथा ० सर्वेषाम् ॥ द्रव्याणाम् ॥ नित्य-
अपस्थितानि ॥ इति ० एतद् ॥ साधारणम् ॥

तद्व्ययम् ॥ यथा ० अरूपाणि ॥ पुद्गलानामर्षं अपि ० प्राप्तम् ॥ ॥
(1) निवर्त - यह रूप बिन्दु धातुसंज्ञा है ॥ बिन्दु संज्ञा और धातु दोनों अर्थोंमें आता है जब सब होतारै सब ज्ञान परिहृत, और बुध्गाह ये हीन अर्थ देता है।
(2) बिन्दु अर्थात् इतनीय गणका धातु परस्त्रीपर सकृदाक आत्मना अर्थमें शुद्ध संज्ञाकोच वेत्तु रूपधुधा अन्वयधुधु परक कथन परस्त्रीपर, अतमान कोस
की किया का ति लगानेसे वेदु + ति = वेति हुआ () बिन्दु = होना विजाति अनुयोग्य आत्मनेपद अर्थमेंक धातु यद्योपर है । अनुयोग्यका विकार
'य' और अतमान कास अन्वयधुधु परक कथन आत्मनेपद परकात् 'ओङ्'नेसे विद् + य + ते = विद्यते हुआ () बिन्दु = पाला मुष्वादि अन्वय परी सकृदाक
धातु है विकारक 'य' लगानेसे मयत् अङ्गात्वा आता है विद् + य हुआ नि प्रत्यय लगातेसे विद्यति = पाला है अन्वये किये पाता है यो क्य बनेसे

० अपि ० न ० व्ययन्ति ० इति ० कित्यानि ॥ ॥
० इति ० तद्भाव - अभ्ययस्य ॥
० इति ० प्रपचा-अभ्ययिचारतः ॥ अवस्थितानि ॥ ॥
० यम् आदीनि ॥ पद ॥ अपि ० द्रव्याणि ॥ कदाचित् ० अपि ० पद ० वर्णाधिकं षड् इति ० अपि, द्रव्यं हैं किंसीत्वात्वं यं मी (=अपि)व्यं हैं
० इति ० इतरयम् ॥ न ० अविवर्तने ० I ;
० ततः ० अवस्थितानि ॥ प्रति ० वर्यते ० न अविद्यते ० I
० स्वयम् ॥ एवम् ॥ प्रति ० अरूपाणि ॥ रूप-प्रतिषेधेनैव ॥
० तत्-सहचारिणाम् ॥ रसादीनामर्षं अपि ०
० प्रतिषेधः ॥ तेन ० अरूपाणि ॥ ॥ अमूर्तानि ॥ ॥
० इति ० भाष्यं ॥ यथा ० सर्वेषाम् ॥ द्रव्याणाम् ॥ नित्य-
० अपस्थितानि ॥ इति ० एतद् ॥ साधारणम् ॥

तद्व्ययम् ॥ यथा ० अरूपाणि ॥ पुद्गलानामर्षं अपि ० प्राप्तम् ॥ ॥

(1) निवर्त - यह रूप बिन्दु धातुसंज्ञा है ॥ बिन्दु संज्ञा और धातु दोनों अर्थोंमें आता है जब सब होतारै सब ज्ञान परिहृत, और बुध्गाह ये हीन अर्थ देता है।
(2) बिन्दु अर्थात् इतनीय गणका धातु परस्त्रीपर सकृदाक आत्मना अर्थमें शुद्ध संज्ञाकोच वेत्तु रूपधुधा अन्वयधुधु परक कथन परस्त्रीपर, अतमान कोस
की किया का ति लगानेसे वेदु + ति = वेति हुआ () बिन्दु = होना विजाति अनुयोग्य आत्मनेपद अर्थमेंक धातु यद्योपर है । अनुयोग्यका विकार
'य' और अतमान कास अन्वयधुधु परक कथन आत्मनेपद परकात् 'ओङ्'नेसे विद् + य + ते = विद्यते हुआ () बिन्दु = पाला मुष्वादि अन्वय परी सकृदाक
धातु है विकारक 'य' लगानेसे मयत् अङ्गात्वा आता है विद् + य हुआ नि प्रत्यय लगातेसे विद्यति = पाला है अन्वये किये पाता है यो क्य बनेसे

एतानिवासी गणरूपसहाय वक्रोक्त कुत्र पदभेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वाधिकद्विषिका शब्दशः शिन्वी अनुवादाद अभ्याय ५ सूत्र ५

अतस्तदपवादार्थमाह—

॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥

रूपं मूर्तिरित्यर्थ ॥ का मूर्ति ? रूपादिस्थानपरिणामो मूर्ति ॥ रूपमेवामस्तीति रूपिण । मूर्तिमन्त इत्यर्थ ॥ अथवा रूपमिति गुणविशेषवचनशब्दस्तदेवामस्तीति रूपिण ॥ एसाद्यग्रहणमिति चेत्

अतःशब्द-अपवाद-अपम् १॥ आ I नसखिये उस (अखपित्त) के विषाघ वा निष्पत्ताके खिये (अगळे युवमे) करते हैं कि
 "रूपिण पुद्गलाः ॥ ५ ॥ =रूपिण पुद्गला भवन्ति ॥ ५ ॥
 म्यायः—रूपिणः पुद्गलाः मन्वि I =(सुधार्थ) (रक्तवशा द्रव्यमस कवच) पुद्गल रूपी हैं, पुद्गल मूर्तिमान हैं अर्थात् पुद्गलोंके रूप ब्रह्मा मूर्ति हैं और नग्रास देलेमासकते हैं और स्पष्टों भासकते हैं
 अनुवादाद-रूपम् १॥ मूर्ति १॥ इति-अर्थः १॥ का १॥ मूर्तिः १॥ =रूप हैं सो मूर्ति है ऐसा अर्थ है (अरन) मूर्ति क्या है ? ।
 रूप-आदि-सस्थान- = (वचन) रूप-रस-नस्य-स्पर्शका गोख, विक्राना, चौक्राना खंवा आकार(=सस्थान) का
 परिणामः १॥ मूर्तिः १॥ १० पापम् ॥ अस्ति I इति * =परिखनन है सा मूर्ति है । रूप निनके है एस
 रूपिण १॥ मूर्तिमन्तः १॥ इति-अर्थः १॥ अथवा-अपम् १॥ इति * =रूपी है आकृतिवान् ऐसा अर्थ है अथवा रूप एसा
 गुण-विशेषवचन शब्द १॥ वद १॥ १० पापम् ॥ अस्ति इति रूपिण-गुणका भावि (=रस-गण-स्पर्श का भी) प्राची शब्द है । वह (रूपगुण) मिलके है ऐसे रूपी है
 रस-आदि-अग्रहणम् १॥ इति-चेत् १॥ = (इसमूर्तपरिये रूपमें) रस गण-स्पर्शका ग्रहण नहीं होता है एसी शंका है ?

() विद्म = विचारकरना उचादि सातवर्गिका का नामनेपत्री सङ्केत पातु है । इसका विकरण 'म' को घातुके स्वर और सङ्केते व्यंजनके मध्य लगाते हैं अर्थात् विद्म = विन्दु । यदि क्रियाका क्त, प्रत्यय समाता हो तो इस विकरण का 'म' गिरजाता है इसलिये विन्दु + ते 'ते'के कारण 'वु' म् में ब्रह्मगाया (हेतो) अणम का-याय एत ११ में अरि अर्थात् ब्रह्म स्युः गुणका इत्ये इतलिये ब्रह्म विन्दु = वह विचार (अपने खिये) करता है रूप बनगाया ॥ () विद्म गुणविशेषवचनका आत्मनेपत्री सङ्केत और सङ्केत कृतता प्रसिद्धकरना अनुभव करना रहता वार अर्थोंमें जाता है । इससे विकरण 'अय'के परिणाम घातुके उपनिष्क इत्ये स्वरको प्रायःशुण संज्ञा होजाती है जैसे विद्म = वेद्म + अय) उक्त तके जोङ्गनेसे वेदपठ रूप ब्रह्मा है, प्रसिद्ध करता है अनुभवकरता है रहता है अर्थोंमें रहता है । अतःसङ्केत रूप वयंयति-वेद्यते हैं । (१) होना सम्प्रदायोंमें इस धुणका अर्थ और पाठ एकसा है ? रूपनेगमस्त्वेषु वास्तोठि-रूपिण = रूपम् एगम् अस्ति वा एतु (रूपम्, अस्ति इति रूपिणः = सिगमक रूप है वा जिनमेंरूप है ऐसा) रूपिका शब्दका विग्रह है

पदानाम्नामाङ्गरूपसमाय बहौ कृत् परस्पर्ये और निमित्तर्ये सरित् सर्वाथसिद्धिचिहा शब्दशःशब्दी अनुवाद प्रपाय ५ सूत्र ५
 न । तद्विनाभावान्तदन्तर्भव ॥ पुद्गला इति बहुवचन भेदप्रतिपादनार्थम् ॥ भिन्ना हि
 पुद्गला । स्कन्धपरमाणुभेदात्तद्विकल्प उपरिग्राहक्यते॥ यदि प्रधानवदरूपत्वमेकत्वं चेष्ट स्यात्
 विश्वरूपकार्यदर्शनविरोध स्यात् ॥ आह किं पुद्गल्वद्वर्मादीन्यपि द्रव्याणि प्रत्येकं भिन्नानीत्यत्रोच्यते-
 न०

वद्व-भिन्नानामान्तर्भवः
 (=उपर) सो नही रे अर्थात् रूपमें रस-गन्ध-स्पर्शका द्रवण रे

=रस (रूप) क अभिनाभावकारि अथवा उस (रूप) से व्याप्त होने (केकारण)स वा
 उस (रूप) के बिना उनकी स्थिति न रहने से

=रस (रूप) में (रस-गन्ध-स्पर्श) गर्भित है । (सूत्रमें) पुद्गलाः ऐसा बहुवचन हे
 =सा (पुद्गलके) भेदके ज्ञापनके लिये है । कर्षोक्ति(=हि) पुद्गल विषय विभेद हे

=स्कन्ध परमाणु के भेदसे उन (पुद्गलों) के भेद
 =आगे कहेंगे जो सांख्य मतकी सत्त्वरजस्तमोकर्य धीनों गुणोबाधी मूढतिके सदृश

न्यकरणा और (=च) एकता (पुद्गलके) मानीभाव (=चष्ट स्यात्) तो
 =संसार में मूर्तिक कार्य के दोहनमें विराष होआ अर्थात् यदि सांख्य मतक अनुसार

मद्विज्ञा मरुपी और एक पाने ता भागतमें बहुतसे कार्य मूर्तिक दीखते हैं सो न दीखें
 भाषार्थ मूढतिकार्य, मूर्तिकर्य, उसके बहुत भेद, और विशेष अवस्थाओंमें वीलतेमो हे।

= (शिष्य) एकता हे कि क्या पुद्गल द्रव्यके समान परम अपर्यमाकाश
 = (शिष्य) एकता हे कि क्या पुद्गल द्रव्यके समान परम अपर्यमाकाश

पुद्गल इति ॥ पुद्गलवत्त्वमुच्यते - काशीनः ॥
 प्राप्तिः ॥ अपरोक्षमुच्यते ॥ प्राप्तिः ॥ अपरोक्षमुच्यते ॥ प्राप्तिः ॥ अपरोक्षमुच्यते ॥

समाय इत्येते भान्त मय शब्दे हे जैसे गोरुप्राचि गोमदध्यासि कथात् नो द्रव्य हे । यही रूप शुद्धका मय द्रव्य हे । 'चैतन्य पुत्रकस्य स्वस्व
 बार मयत्येत् अन्यत् चैतन्य पुरयका स्वभाव हे । यही रूप शुद्धता मय स्वभाव हे । यशरूपमवयवर्न काय-शुभाकारमव्याहारा कारये अर्थात् एष्ट
 हे । यही रूप शुद्धका मय भवव हे । 'कर-कल्पादि यशयुक्तानि रूपमयय रूप के भि अथार्थकार महावृत्तौ शुद्धका मयमा मयय
 रूप गुणविक्रम हे । कहीं कहीं पर रूप शुद्धका मयि भी कर्ते हे किन्तु केवल लक्षितके मयस कलन योग्य जो पश्यते तो वह रूप हे । यही रूप शुद्धका
 का मय मयि हे । परंतु अवयव मयक कर्त्तव्ये रहने नी मयको भावनेमय यही पर मय शुद्धका मय मयि हे । यही रूप शुद्धका

वि

पराक्रान्तिशील अणुसंस्थापक काले कृण पदच्छन्द आर विभक्त्यर्थसहितं सर्वार्थसिद्धिद्वयिका शब्दस्य हिन्दी अनुवाद अध्याय ५ सूत्र ६

॥ आ आकाशादिकद्रव्याणि ॥६॥
 ग्राह्यं अयमभिव्यर्थं । सीत्रीमानुपूर्वीमनुसृत्यैतदुक्तं , तेन धर्माऽधर्माकाशानि गृह्यन्ते ।
 एकशब्दं सरख्यावचनस्तेन द्रव्यं विशिष्यते,

(१) आ आकाशादिकद्रव्याणि ॥६॥ = आ आकाशात्-एकद्रव्याणि भवन्ति ॥६॥
 सूत्रार्थ - (१) आ आकाशात्-एकद्रव्याणि = (अयम सूत्रके पूर्व द्रव्यसे लेकर) आकाश पर्यंत एक एक द्रव्य है अर्थात्
 परपदुत्पादः-आरुः, अरुः, अग्निविधि-अयः,
 सीत्रीयोः, आनुपूर्वीभिः
 अनुसृत्य - एतद्-वक्तव्यं, तेन,
 पय-अपम-आकाशानि, एवन्त ।
 अर्थात् इस अध्याय का प्रथम सूत्र ऐसा है कि "धर्म-अधर्म-आकाश-पुनः आ-
 असीत-जायाः" आकाश द्रव्य पर्यंत सूत्रके आरम्भिक क्रमानुसारमें पूर्व-अधर्म
 आकाश तक गमित होगये, शेष द्रव्य कृत्याय

एक द्रव्य, संस्था-अपन, अर्थात् द्रव्यस्य, विद्यमाने । इस सूत्रमें एक शब्द है सो सरख्यावाची है विस (एकशब्द) से द्रव्यं विशेषित है
 - अर्थात् एक शब्द द्रव्यका विशेषण अथवा द्रव्यके गुणका वाचक है

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ संक्षेप एक है ॥ अवेतोऽथ आन्त्यायके संसाधनम् ॥ आ आकाशाद्येकद्रव्याणि ॥ श्रीर आकाशादिक द्रव्याणि ॥ देसे
 शेषात् है निकले पाठमें आरु की (अपमोत्त आ की) आकाश शब्द के साथ संधि कर-रीतर है देसा संसाधन की वरख टिप्पणीमें लिखा है
 (२) अब ये तीनों एक एक द्रव्य हैं तो जीव पुनःगल और काल इस तीनों द्रव्योंमें विना करे सो अनेकथा सिद्ध होसगी ही सो अन्त्यायक
 जीव द्रव्य अन्त्यायक है पुनःगल परमाणु जीवों से अन्त्यायक है और काल द्रव्य के अणु अस्तक्यात है ॥
 (३) आकाशादिकद्रव्याणि (= आ आकाशात्-एक-द्रव्याणि) अन्त्यायक संख्यायके अन्त्यायकत्वार्थोपिणामसूत्र में उपयुक्त पाठ है यहाँ
 प्रथम आ शब्द अतिव्याप्ति (पय न) रूप अर्थका बोधक है पूर्वोक्त पाठमें भी आकाश शब्दके पूर्व 'आ' परन्तु हीप रूप संधि होगी है ॥

एक द्रव्य एकद्रव्यमिति ॥ यद्येवं बहुवचनमयुक्तं, धर्माद्यपेक्षया बहुत्वसिद्धिर्भवति ॥ ननु एकस्या
 ने कार्यप्रत्यायनशक्तियोगादेकैकमिदमित्यस्तु लघुत्वाद्द्रव्यग्रहणमनर्थकं, तत्कियते द्रव्यापेक्षया एकत्व
 ख्यापनार्थं द्रव्यग्रहणम् ॥ तेनभावापेक्षया असंख्येतवान्तत्वविकल्पस्येष्टत्वात् न जीवपुद्गलवत्

= 'एक द्रव्य' समाससम्भवं "एकद्रव्य" ऐसा होता है अर्थात् डुकड़े रूप नहीं है
 न दूरी, तीन, चार पाँच इत्यादि सख्या रूप हैं एक ही द्रव्य हैं बहुत नहीं हैं
 ऐसी-धर्म अर्थ आकाश तीन ही द्रव्य हैं
 = (धरन) जो ऐसा है अर्थात् धर्म-अर्थ आकाश एक एक द्रव्यों वा अमेदरूप द्रव्य है
 = (सूत्र) द्रव्याणि एसा) श्रुतवचन (का प्रयोग) ठीक नहीं है
 = (उत्तर) धर्म अपय-आकाशकी अपेक्षास बहुवचनकी प्राप्ति होती है अर्थात्
 धर्म अर्थ-आकाश ये तीन द्रव्यें पृथक् पृथक् हैं परन्तु एक एक हैं डुकड़े
 रूपमें नहीं हैं तीन होनाक इतुस "द्रव्याणि" इस बहुवचन शब्दकी प्राप्ति है यदि एक द्रव्य
 होती वी सूत्रमें एक वचन 'द्रव्य' ऐसाहात और दो द्रव्यें अमेद रूप वा एक एक
 हातों वा "द्रव्ये" ऐसा द्विवचनसूत्रमें खाते क्यों कि तीनद्रव्यें धर्म-अर्थ और आकाश
 पृथक् पृथक् डुकड़े रहित हैं इमलिय सूत्रमें "द्रव्याणि" एसा बहुवचन वाये है
 = धरन एक (शब्द) क अनक अर्थ कि उपजावनेकी सामर्थ्यके प्रसंगसे
 = (यदि सूत्रमें "एक द्रव्याणि" इस वाचयके स्थानमें) एक एक (= एकैक) ऐसा होता
 = (वा) (सूत्र) खाता शब्दकारि द्रव्य शब्दके ग्रहण की आवश्यकता (ससूत्रमें) न होती
 = (उत्तर अत) एसा किया गया है कि द्रव्यकी अपेक्षास (न कि शेष, वाचकी अपेक्षासे)
 = एकपन (धर्म अपय-आकाश कि) कहनक थिये द्रव्य (शब्द) का (सूत्रमें) आवाहन है
 = क्योंकि कि शेष, वाचकी अपेक्षासे (धर्म अपय-आकाशक) असंख्यातपना अनन्तपनाक
 = येष्ट पाने हैं । न भीष और पुद्गल के समान

यदि ० एवम् ०
 बहुवचनम् ॥ अयुक्तम् ॥
 यम आदि-अपसया ॥ बहुत्वसिद्धिः ॥ पवति ।
 ननु ० एकस्य ॥ अनेक अर्थ प्रत्यायन-इच्छि-मागादि ॥
 एक ण्वकम् ॥ मृति ० अस्तु ।
 लघुत्वात् ॥ द्रव्य-आकाशम् ॥ अनर्थकम् ॥
 वत्-क्रियत ॥ द्रव्य-अपेक्षया ॥
 एहत्सप्यपन अयम् ॥ द्रव्य-आकाशम् ॥
 शेष मात्र अपेक्षया ॥ असंख्येत अनन्तस
 विकल्पस्य ॥ इच्छत्वात् ॥ न ० भीष-पुद्गलस्य वत् ०

१ एषादीनिदिक्ती प्रथमादिभिर् "तत्कियते" के स्थान में "तत्कियते" पाठ है किसी किसी द्रव्यसिद्धि प्रसंगमें लम्बावसे 'ऐसा पाठ है परन्तु बहुधा
 द्रव्यसिद्धि प्रसंगमें तत्कियते' पाठ है इसलिये यह पाठ किया गया है ॥

पदानामासीश्रगरूपसहाय बनील कुत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाथसिद्धिद्वयिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद अध्याय ५ सूत्र ७

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमान पर्यायो द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतु क्रिया, तस्या निष्क्रान्तानि निष्क्रियाणि ॥ अत्र बोधते- धर्मादीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि ततस्तेषामुत्पादो न भवेत् । क्रियापूर्वको हि घटादीनामुत्पादो दृष्ट । उत्पादाभावाच्च व्ययाभाव इति ॥ अतः सर्वद्रव्याणामुत्पादादित्रयकल्पनाव्याघात इति ॥ तन्न ॥ किं कारणम् ?

(१) उभय-निमित्त-^(१) वशात्^(२) द्रव्यस्य^(३) ॥ अत्रान्तरप्राप्ति-^(४) निमित्तक वशात् द्रव्यक^(५) (एकलेशसे) अन्य लेशसे गमन करनेका इन ३ वस्तुष्वन्तः^(६) प्रयाय ३ क्रियाः^(७)

प्रत्याः^(८) निष्क्रान्तानि^(९) ॥ निष्क्रियाणि^(१०) ॥ अत्र^(११) च बोधते^(१२) ॥ अत्र^(१३) क्रिया^(१४) से पूर्वक होनेसे ये क्रिया रहित हैं । यथा^(१५) तक की जाती है कि पम^(१६) आदीनि^(१७) द्रव्याणि^(१८) ॥ यदि^(१९) निष्क्रियाणि^(२०) ॥ ततस्तेषामुत्पादो^(२१) न भवेत्^(२२) ॥ इत्यादि^(२३) निष्क्रियत्वात्^(२४)

क्रिया-पूर्वकः^(२५) हि^(२६) उत्पादीनामुत्पादः^(२७) इत्यदि^(२८)

उत्पाद अभावात्^(२९) व्यय अपाव ३ इति^(३०)

अतः सर्व-द्रव्याणामुत्पाद^(३१) ॥ उत्पाद आदि-वस्तुष्वन्तः^(३२)

व्याघात^(३३) इति^(३४) गमन^(३५) ॥ किं कारणम्^(३६) ॥ ?

(१) सर्वे शब्द पुनश्चिं और भ्रुपसकलिंग बोधो हे (२) क्रियापरिणामशक्तियुक्त द्रव्यस्यन्तःप्राप्तिनिमित्त परव्याप्तिक बाह्यनिमित्त तदवशादित्यर्थः ॥
 क्रियापरिणामशक्ति-वशः^(३) ॥ द्रव्यस्यन्तःप्राप्तिनिमित्तम्^(४) ॥ क्रियारूप परिणाम शक्ति सहित द्रव्य हे सा अत्यन्तर निमित्त है अर्थात् द्रव्यसे क्रियारूप परिणामको प्राप्त्यर्थ हे सो अत्यन्तर निमित्त है ।
 = (बोध पर द्रव्यको) प्रेरणा प्रेषण या सञ्चोदण आदिक हे सो बाह्य कारण है
 = गमन (होने) निमित्तो) के आकारपसे (द्रव्यके क्रियारूपस्य होनी हे) एता तात्पर्य हे
 (१) आदीनि - आदीनां उमात्वादीनि कात्वात् उपदेशेन यथा इत्यादि अन्तर्गतानि क्रियाणि निष्क्रियाणि

प्रत्यय आदिभ्यः, अन्वयानिमित्तम् ॥
 तद्-वशात्^(३७) इति^(३८) अन्वयः^(३९)

(१) आदीनि - आदीनां उमात्वादीनि कात्वात् उपदेशेन यथा इत्यादि अन्तर्गतानि क्रियाणि निष्क्रियाणि

अन्यथोपपत्ते ॥ त्रियानिमित्तोत्पादाभावेऽप्येया धर्मादीनामन्यथोत्पाद कल्प्यन्ते ॥ तद्यथा-द्विविध
उष्णत् स्वनिमित्त परप्रत्ययश्च ॥ स्वनिमित्तस्तावदन्तानामगुरुलघुगुणानामागमप्रामाण्या
दभ्युपगम्यमानानां पटस्थानपतितया वृन्ध्या हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो
द्वयश्च ॥ परप्रत्ययोऽपि अश्वादिरेतिस्यत्यत्रगाहनहेतुत्वात्क्षणे क्षणे तेषां भेदात्तद्वे तुल्यमपि
मित्रमिति परप्रत्ययापेक्ष उत्पादो विनाशश्च व्यवद्ध्यते ॥ ननु यदि निष्क्रियाणि

अन्यथा० उपपत्तेः ॥ क्रियानिमिष-उत्पाद-अभावे ॥ चर्चोक्ति दूसरे प्रकारसे भी सिद्ध होती है । क्रियानिमिषक उत्पादके न होनेपर
भाषणार्थ-धर्म-आदीनामर्थाः अन्यथा० उत्पाद कल्प्यन्ते ॥ भी इन धर्म-अर्थ-आकाशके और प्रकार उत्पाद मानानाता है
तद् ॥ यथा० द्वि-विषयः उत्पादः ॥ स्वनिमित्तः ॥ य० ०५६ ऐस है-उत्पाद का प्रकार है स्वनिमित्त और (०५५)
परमत्यय ॥ स्वनिमित्तः ॥ भावत् ॥ अन्तानामर्थाः अगुरुलघु ॥ परनिमित्त । स्वनिमित्त ता (=भावत्) अन्त्य अगुरुलघु
गुणानाम् ॥ आगम-नामलपात् ॥ ॥ अभ्युपगम्यमानानाम् ॥ गुणोक्त नो शास्त्र प्रमाणकरि माने हुये है
पट-स्थानपतितया ॥ हृन्ध्या ॥ हान्या ॥ च ॥
प्रवर्तमान नाम् ॥ अभ्याभावत् ॥ एतेषाम् ॥
उत्पादः ॥ व्यय ॥ य० ॥
पर-प्रत्ययः ॥ अणि० अस्वादि-गति-स्थिति
अवगाहन श्रुत्वात् ॥ न एते शब्दः
तयाम् ॥ येदात् ॥ तद् श्रुत्वात् ॥ ॥ अण० भिषाम् ॥ इति ॥
कारण अर्थमद्रूप्य है और अस्वादिदान अथवा स्थान वानकारिते आकाश रूप्य है और अणु शब्दमें वन
गति स्थिति अवगाहनक भेद है इसलिये वन गति-स्थिति-स्थान वानके कारणभी पृथक् पृथक् है
परमत्यय अपत्तः ॥ उत्पाद ॥ विनाशः ॥ च ॥
स्वर्द्धिगते ॥ ननु ॥ यदि० निष्क्रियाणि ॥

प्रातिपत्ती आरुपसहाय बर्कोल कृत पृथ्वर और विमन्त्यर्षे सहित सर्वासिद्धिद्वेषिका शब्दश' रिन्दी अलुबाद अध्याय ५ सूत्र ७
 धर्मादीनि, जीवपुद्गलानां गत्यादिहेतुत्व नोपपद्यते । जलादीनि हि क्रियावन्ति मत्स्यादीना
 गत्यादिनिमित्तानि दृष्टानीति ॥ नैष दोष ॥ बलाधाननिमित्तत्वाच्चतुर्वत् । यथारूपोपलब्धौ
 चतुर्निमित्तमपि न व्याज्विप्तमनस्कस्यापि भवति॥ अधिभक्ताना धर्मो धर्मोकाशाना-

यम आदीनि १ ॥ श्रीप पुद्गलानाम् १ ॥ गति भादि
 हेतुत्वम् ॥ न ॥ उपपद्यते । अलादीनि १ ॥ हि ॥ क्रियावन्ति ॥ ॥
 मत्स्य आदीनाम् । गत्यादि-निमित्तानि १ ॥ दृष्टानी १ ॥ अर्थः ॥
 न ० पृ १ ॥ १ ॥ यथाधान निमित्तत्वात् ॥ पञ्चवत् ०

धर्मद्रव्य, अर्पद्रव्य, आकाशद्रव्य तीष तथा पुद्गलोकी यथासंख्य गति,
 स्थिति, अवागाहनके खिये प्रेरणा नहीं करते हैं किन्तु यदि जीव और पुद्गल गमन करें
 तो यद्रव्य गमन में अमेरक निमित्त होती है । अथद्रव्य स्थितियें उदासीनतासे कारणहोतीहै
 और इसी प्रकार आकाश द्रव्य अवागाहनमें यथाधान वा उदासीनतास निमित्त होती है ॥
 यथा ० ख्य-उपलक्ष्यो १ ॥ पञ्चुः १ ॥ निमित्तम् १ ॥ अपि ०
 व्याधिम-मनस्कस्य १ ॥ अपि ०
 न ० पचति ।

= न जोद्रव्य (मनुष्यक) मनके भी वा मनुष्यक अनाकर्षित वितकेयी
 = (रूपकी उपलब्धि) नहीं होती है अर्थात् यदि पुरुषका विष अन्व पदार्थमें
 लगाता तब रूपका नहीं देखसकता है । अब नम और पुरुषका विष दोनों एकही काबमें
 किसी पदार्थको और हावें तब पुरुषक नेत्र रूपके देखनमें निमित्त हैं नहीं तो निमित्त नहीं है
 न्यकरण प्राप्त जे धर्मद्रव्यके, अर्पद्रव्यके, और आकाशद्रव्यके

(१) गत्यादि परिणतस्य बलाधान दुर्बलित म तु स्वयं प्रारब्धवृत्ति नाश । ४
 गत्यादि-परिणतस्य १ ॥ बलाधानम् १ ॥ दुर्बलित । १ ॥ = (धर्मादिक द्रव्य) गमनादिक अथस्याके अमेरक निमित्तको बन्ती है
 न ० पु ० स्वयम् ० प्रारब्धसि । १ ॥ तति ० भाषा, १ ।
 एवके पक्ष्यात् अयम् एतपकोकी बन्धिकासमें विदु निमित्त भागका भाष्य है 'पुदुरि म्पमं अवाग्व है सो पहले सुखमें बद्ध तिल कीमिही
 उपाके नैषके अर्थ है । अथ पुद्गल क्रियामान है' ॥ देवी वीरु अर्थवकी कृता अर्थवकी कृता मुद्रित ७८ पृ १५ ०

निष्क्रियत्वेऽभ्युपगते जीवपुद्गलानां सक्रियत्वमर्थादापन्नम् ॥ कालस्यापि सक्रियत्वमित्तिवन्न ।
 अनधिकारात् अत एवासावर्ते सह नाधिक्रियते ॥ अजीवकाया इत्यत्र क्वयग्रहणेन प्रदेशा-
 स्तित्वमात्रनिर्ज्ञातं नत्वियत्ताप्रधारितां प्रदेशानामतस्तात्रर्धारणार्थमिदमुच्यते—

॥ असङ्ख्येयः प्रदेशा धर्माधर्मकजीवानाम् ॥८॥

निष्क्रियत्वम् ॥ अभ्युपगतेः ॥ श्रीप

पुद्गलानाम् ॥ सक्रियत्वम् ॥ असावर्ते ॥ आप्तमपते ॥

कालस्यैवापि सक्रियत्वम् ॥ इति च तत्र ॥ ७ ॥

अन-अधिकारावर्ते ॥ अतः ॥ एवमसौ ॥

पदेः ॥ सह ॥ न ॥ अधिक्रियते ॥

“अजीव कायाः” इति असङ्ख्येयत्वात् ॥

प्रदेश-अस्तित्वमाप्तम् ॥ निर्ज्ञातम् ॥ न ॥ अतः प्रदेशानाम्-अभेद्योः की केवल (=आर्ष) विद्यमानता जानीमावी है । परन्तु प्रवर्शोका

इयथाः ॥ अत्र गतिवर्तः ॥ अतः ॥

तद् निर्धारण-अर्थम् ॥ इदम् ॥ ॥ उच्यते ॥

=निष्क्रियपना माननेमें बीच और

=पुद्गलोंके सक्रियपन अथवा क्रियावानपन अर्थसे वा विपयसे प्राप्त होता है

=कालद्रव्यके भी क्रियावानपन (माता) है ऐसी शंका (=भेद) है (उपर) सो नहीं है

=क्योंकि कालद्रव्यका (यहां) विषय वा प्रकरण नहीं है। इसलिये तो यह (कालद्रव्य)

=इन (जीव, पुद्गल) के साथ (=एते सह) प्रकरणरूप नहीं क्रियागया है

=‘अजीव काया’ ऐसे यहां (मयम सूत्रमें) ज्ञापके प्रकरण करनेसे

=परियाण वा संख्या (=इयथा) निश्चित नहीं की गई है (=अवधारिता) । इसलिये

=वन(प्रदेशोंकी गिनती)का निरन्व करने केशिये यह(असिम सूत्रमें) ब्रह्माभावार्थ है कि

असंख्येयः प्रदेशा धर्माधर्मकजीवानाम्=धर्म-अधर्म-एकजीवानाम् असंख्येया प्रदेशा भवन्ति ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—धर्म अपर्य एक जीवानाम् ॥

=धर्मद्रव्यके, अपर्यद्रव्यके और एक लीयके

(१) निष्क्रियत्वविषयत्वमर्थ-इयथा अर्थ यहां पर और अथवा भी शानो होसकते हैं। एसाकि विषयविषय उपर्युक्त अनुवापत्से प्रगत है। अथवा ‘और’ के अर्थमें सर्वे तो जीव ही प्रत्ये आ सूत्रमें बंधी हैं उनमें संख्येय अर्थ है अर्थात् अर्थमें अर्थमें आकाश कीजकी आकार्य करता है प्रगत करता है वा प्रहण करता है क्याकि ‘कालद्रव्य का अजीव अकार्य ने उपदेश नहीं किया है। कालद्रव्य भी निष्क्रिय है। यदि ‘अ’ इयथा ‘भी’ अर्थ अर्थ तो उमका सन्वय प्रत्या के गुणाल होअता है यदि उमकी संख्यासे अथात् य ताप प्रत्ये एक एक है दुवरा गुण उममें यह है कि क्रिया रहित है तब शानो सूत्रोंको अर्थ अर्थयत्न सकपतासे यह हाता है कि यम अर्थमें आकाश एक एक प्रत्ये है और क्रिया रहित भी है ॥

(२) इयथा (खी०) = ‘यतनेका होना । सीमा । परिमाण । माप । संख्या । गिनती । पपकम्पकेय । पृष्ठ १७ ॥ अतः ‘इयथा’ का अनुवापत् ‘संख्या’ किया गया है । इत्येतामत्र आन्त्याके समाप्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें इत सूत्रके स्थानमें नीचे लिखे हुये वा सूत्र ही अन्तसे विहित है कि शानो आन्त्यामें इत सूत्रका एकसा तात्पर्य है । अस ख्येयमवशायाधर्मार्थमेयोः ॥ ७ ॥ अतः संख्या च इत समाप्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १२२

पुत्रनिवासी आत्मसाधय रक्षति कृत परस्वेद और विपत्सर्वसहित सर्वार्थसिद्धिचिन्ता शक्यश हिन्दी अनुवाद अध्याय ५ सूत्र ८
 सर्ल्यामतीना असर्ल्येयस्त्रिविध । जघन्य उत्कृष्टोऽजघन्योत्कृष्टश्चेति ॥
 तत्रेहाजघन्योत्कृष्टासंल्येय परिगृह्यते ॥ प्रदिश्यन्त इति प्रदेशा ॥ वक्ष्य मायाश्लशण परमाणु
 स यावति क्षेत्रे व्यवतिष्ठन्ते स प्रदेश इतिव्यवद्ध्यते ॥ धर्माधर्मैकजीवास्तुल्यासख्येयप्रदेशा
 तत्र धर्माधर्मो निष्क्रीयो लोकाकाशा व्याप्य स्थितौ ।

असंल्येया ३ प्रदेशा ३
 = (क्रमसे) असर्ल्याव, असर्ल्याव, और असर्ल्यात(प्रत्येकके)प्रदेश है अर्थात्पर्व द्रव्यके
 असर्ल्याव प्रदेश हैं, अपर्यद्रव्यके असर्ल्याव प्रदेश और एक जीवके भी असर्ल्यावप्रदेश है
 इत्यनुवाद - संल्याप्रा ॥ अतीता ॥ असंल्येया ३ ।
 असंल्येय ३ त्रिविध ३ जघन्य ३ उत्कृष्ट ३ अक्ष
 अजघन्य उत्कृष्ट ३ इति, तत्र ३ अक्षअसंल्येय ३ उत्कृष्ट ३ अप्यप ३
 असंल्येय ३ परिगृह्यते ३ अक्षिरयन्ते ३ इति ३
 प्रदेशा ३
 कृतन है योवार्थ यह है कि यद्यपि आकाश बलंब, निर्देश, सर्वगत और एक द्रव्य है तभी परमाणुओंकरि नापिय ती
 अनत परमाणु होते हैं आर इसमहार आकाशके अनत अथ मानेगत हैं, इसीलिये एक ही आकाशको अनतप्रदेशी
 पर्यायनयकरि कहते हैं परन्तु द्रव्यागिकृतन अथवा द्रव्य अपेक्षासे बलंब, निर्देश, सर्वगत, एक, और विभक्ता रहित आकाश है
 इत्यप्यासश्लशण ३ परमाणु ३
 स ३ यावति ३ तत्रे ३ अथवा विभक्त रूप वा अग्रिम कहेजाने लक्षणयावा परमाणु है
 इति ३ व्यग्रश्चित्त ३ अथवा विभक्त ३ स ३ मदेश ३
 असंल्येय प्रदेशा ३ तत्र ३ अपर्य द्रव्य ३ एकजीवा ३ अणु ३
 साक्ष-आकाशप्र, सुव्याप्य - स्थितौ ३

= (क्रमसे) असर्ल्याव, असर्ल्याव, और असर्ल्यात(प्रत्येकके)प्रदेश है अर्थात्पर्व द्रव्यके
 असर्ल्याव प्रदेश हैं, अपर्यद्रव्यके असर्ल्याव प्रदेश और एक जीवके भी असर्ल्यावप्रदेश है
 =सर्ल्याको उल्लेखयते है वे असंल्येया है अर्थात् जो गणनामें न आसकें वे असर्ल्यात है
 =असंल्येय तीन प्रकार है, जघन्य वा निकृष्ट, उत्कृष्ट वा प्रकर्ष और (-व)
 =असर्ल्याव विभागया है ॥ (मिनकरि आकाशक) विभाग किये गये हैं येस
 =आकाशके विभाग प्रदेश हैं । अर्थात् परमाणुओंद्वारा पर्यायनयकी अपेक्षासे
 आकाशक विभाग किये जाते हैं उन विभागों को अथवा आकाशके प्रदेशोंका प्रदेश
 बलंब, निर्देश, सर्वगत और एक द्रव्य है तभी परमाणुओंकरि नापिय ती
 अनत परमाणु होते हैं आर इसमहार आकाशके अनत अथ मानेगत हैं, इसीलिये एक ही आकाशको अनतप्रदेशी
 पर्यायनयकरि कहते हैं परन्तु द्रव्यागिकृतन अथवा द्रव्य अपेक्षासे बलंब, निर्देश, सर्वगत, एक, और विभक्ता रहित आकाश है
 =यार्थ कथन किये जान लक्षण रूप वा अग्रिम कहेजाने लक्षणयावा परमाणु है
 =यह (परमाणु)मिशन क्षेत्रमें निरबल ठहरो है वा सयाजाती है सो प्रदेश है
 =येसा मानागया है ॥ पर्यद्रव्य, अपर्यद्रव्य और एकजीव समान
 =असंल्येय (असंख्यात) प्रदेशी है । तर्था पर्यद्रव्य अपर्यद्रव्य क्रिया रहित
 =आकाशाकाशके व्याप्त कर स्थित है अर्थात् समस्त आकाशाकी रूप तक पर्यसे और

पदानिगामी भगवन्महाय ब्रह्मोक्तं कृतं पञ्चदशं और विभक्त्यर्थसहितं सर्वांशसिद्धिचिन्ता शब्दशः किन्ती अत्रुवाद् अभ्यास ५ सूत्र ८
जीवस्तावत्प्रदेशोऽपि सन् सहरणविसर्पणं स्वभावत्वात्कर्मनिर्वर्तितं शरीरमणुमहद्वाधितिष्ठं
स्तावदवगाह्य वर्तते यदा तु लोकपूरणं भवति मन्दरस्याधश्चित्रवज्रपटलमध्ये जीवस्याष्टौ मध्य
प्रदेशा व्यवतिष्ठन्ते । इतरं प्रदेशा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् कृत्स्नं लोकाकाशं व्यम्बुवते ॥

अथाकाशस्य कति प्रदेशा इत्यत आह —

इषर उपर सर्वत्र पूरणरूपस पमं और अपमं द्रव्यं ना इत्तन वःन रूप क्रियासे वर्तितं ई भरी हुईं ई

- जीवः॥वावत्०प्रदेशः॥अपि०सन्२॥
- स हरण-विसर्पण-स्वभावत्वात्॥कर्मनिर्वर्तितम्॥
- शरीरम्॥अणु-मावत्-वा०॥अधितिष्ठन्॥वावत्०
- ॥अवगाह-वर्तते॥,०यदा०तु॥लोकपूरणम्॥भवति॥
- मन्दरस्यर्ध-अपसु०चित्र-पत्र-पञ्च-पञ्च-पञ्च॥
- जीवस्यर्ध-अष्टौ॥पञ्चप्रदेशा ॥व्यवतिष्ठन्ते॥
- जीवः इति (= वावत्) अर्थात् अस स्यात् प्रदेशी होते हुयेभी (= अपि सन्)
- स कोच और फैलावरूप स्वभावके होनेस कर्मरहित (अथवा कर्मरहित)
- वादा अववा बड़ा शरीर पात हुए (= अधितिष्ठन्) विसर्पण (वावत्)
- अवगाह — वर्तते I, यदा तु लोकपूरणम् I भवति I विस्तारित बाहर मरवणा है परन्तु मन्(केबलि समुदात् करि) जोक पूरण होताई
- मन्दरस्यर्ध-अपसु-चित्र-पत्र-पञ्च-पञ्च-पञ्च I इति विषयीके समूहयो पटलके मध्यमे
- जीवस्यर्ध-अष्टौ-पञ्चप्रदेशा ॥ व्यवतिष्ठन्ते I
- = जीवक अष्ट मध्यके प्रदेश निरपव विष्टते हैं अर्थात् निस अवसरमें केवली दो
- लोकपूरण सहस्रपात करत हैं तब सुपेर की अठु को विभाषुषिणीकी मौखिके
- बाबर एक सप्तयावन माटी है । विना और कथा प्रियीके फरबोंके बीच
- केवली भगवान् केआत्माके आत्मपथके प्रदेश निरपव उबरते हैं
- = (और केवली भगवानके) अन्य प्रदेश ऊपर नीचे इषर उबर (= द्याये वायें)
- = सप्त सौककाशको व्याप्त करवते हैं । केवलिसमुदात्तका निस्वारेसे इयन
- माननेके स्थिये देसो अभ्यास प्रथम पृष्ठ ११ वसे १२१ तक

अथ आकाशके कितन प्रदेश हैं इसस्थिये (उपर सूच्ये) करते हैं कि

इतरं प्रदेशः कर्ध्वं च अपसु तिर्यक्

कृत्स्नं लोकाकाशम् अपरमुपत I

अपञ्च आकाशस्य ॥ १ ॥ कति प्रदेशाः इति अतः आह

(१) अधितिष्ठन् वर्तमान एतत् है व (२) अवगाह सम्बन्धवत् मूलरूप है (३) अथ वेवनाधिक सातकारकोसे को जीयके प्रवेश मूल शरीर को

न शरीरक शरीरस बाह्य होते हैं उसको समुदात्त करते हैं । वे समुदात्त सातकारके हैं । मूल श्रेष्ठ छुटे पाई इत्यादि कथितके लिये जिनमें

सातकारका समुदात्त परिचित है वेला अभ्यास प्रथम पृष्ठ ११५ स १२१ तक ॥ (५) कति सर्वनाम हे केवल समुदात्तमें आया है ।

एतन्निवासी भागरूपसहाय वहीच कृत् पञ्चदेव और विपस्वस्यसहित सर्वोयसिद्धिविका शब्दश हिन्दी अनुवाद अध्याय ५ सूत्र ८
 संख्यामतीता असस्येयसन्निविध । जघन्य उत्कृष्टोऽजघन्योत्कृष्टश्चेति ॥
 तत्रेहाजघन्योत्कृष्टासस्येय परिगृह्यते । प्रदिश्यन्त इति प्रदेशा ॥ वक्ष्य माणलक्षणा परमाणु
 स यावति क्षेत्रे व्यवतिष्ठते स प्रदेश इतिव्यवद्वियते ॥ धर्माधर्मैकजीवास्तुत्यासस्येयप्रदेशा
 तत्र धर्माधर्मौ निष्क्रीयौ लोकाकाशौ व्याप्य स्थितौ ।

असस्येयाः प्रदेशाः

—संख्याम् ॥ अतीताः । असस्येयाः ।
 इत्यनुवाद — संख्याम् ॥ अतीताः । असस्येयाः ।
 असस्येयः ॥ विविधः । जघन्यः । उत्कृष्टः ।
 अजघन्यः । वक्ष्ये । तत्र । इति । असस्येयोत्कृष्टः ।
 असस्येयः । परिगृह्यते । तत्र । इति ।
 प्रदृशाः ।

—(क्रमसे) असस्येया, असस्येया, और असस्येयात(मत्येकके)प्रदेश है अर्थात् धर्म द्रव्यके असस्येया प्रदेश है, अर्थात् द्रव्यके असस्येयात प्रदेश है और एक लीकके भी असस्येयात प्रदेश है
 =सस्येयाको उत्कृष्टाणये है वे असस्येया है अर्थात् जो गणनामें न आसकें वे असस्येयात है
 =असस्येय तीन प्रकार है, जघन्य वा निकृष्ट, उत्कृष्ट वा महर्ष और (=व)

=असस्येयात खियागया है ॥ (मिनकरि आकाशक) विभाग किये गये हैं ऐसे

—(आकाशके विभाग) प्रदेश है । अर्थात् परमाणुओंद्वारा पर्यायनयकी अपेक्षासे

आकाशक विभाग किये जाते हैं उन विभागों को अथवा आकाशकें प्रदेशोंका प्रदृशा अनन परमाणु होते हैं अतः इतमहार आकाशके अनंत अणु माने जाते हैं, इसीप्रिये एक ही आकाशको अनंतमदेशी पर्यायनयकर कहते हैं परन्तु द्रव्याधिकतय अथवा द्रव्य अपेक्षासे अखंड, निरंश, सर्वगत, एक, और विभवा रहित आकाश है

परमाणुलक्षणः परमाणुः

संख्यावतिः । तत्र । व्यपसितते । सः । प्रदृशाः ।
 इति । व्यपसितताः । परमः । अथप एकनी । तः । प्रदृशय-
 असस्येय प्रदेशाः । तत्र । परमः । असस्येयः । विविधः ।
 तत्र । आकाशम । व्याप्य — स्थितौ ।

=योग कषन किये जान सङ्ख्या रूप वा अग्रिम कहोमाने सङ्ख्यावादा परमाणु है
 =वक्ष्य (परमाणु)मिनत लेकमें निष्कृत वरती है वा सयामाती है सो प्रदेश है
 =येसा मानागया है ॥ परमद्रव्य, अथर्वद्रव्य और एकाकी समान
 =असस्येयात (असस्येयात) प्रदेशी है । तत्र पर्येद्रव्य अथर्वद्रव्य किये रहित
 =लोकाकाशके व्याप्त कर स्थित है अर्थात् समस्त आकाशागतें ऊपर लके मरुतमें अतीत

॥ नाणोः ॥ ११ ॥

अणो प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेष ॥ कृतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात् । यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभावः ॥ किं च ततोऽल्पपरिमाणामावाह ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति । यतोऽस्य प्रदेशा भिधेरन् ॥ एवामवधृत

सूत्रम्—नाणोः ॥ ११ ॥

= नाणो (प्रदेशा भवन्ति) ॥ ११ ॥

यथाय—न० अणोः । प्रदेशाः । भवन्ति ।

= अणुके प्रदेश नहीं होते हैं, शुद्ध पुरल एक परमाणुके बहुत प्रदेशोंका अपावर्ष एक प्रदेशमात्रता ही करी है क्योंकि परमाणुके संरकका अभाव है

हरयनुवाद—अणोः । प्रदेशाः । न० सन्ति । इति० = अणुके प्रदेश नहीं है ऐसा

(१) वाक्यशेषः । इत० न० सन्ति । इति० चेत० = वाक्य शेष है अर्थात् 'न अणो' व शयमपूर्ण है । उसका शेषवाक्य प्रदेशाः सन्ति है

प्रदेश—यात्रत्वात् ॥ ११ ॥

= क्योंकि परमाणुके प्रदेश नहीं है । ऐसी शका है ।

यथा—आकाश—प्रदेशस्य । एकस्यैः । प्रदेश—यैद—

= (वचर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुके बहुत प्रदेश नहीं है)

अभावात् । अत्रदेशत्वम् । ॥ एवम० अणोः । अवि० = न होनेसे अत्रदेशपना है । ऐसे अणुके भी

= प्रदेशमात्रत्वात् ॥ प्रदेश—यैद—अभाव' ।

किम्० च० तदा० अस्य—परियाह—अभावात् ॥

= और क्योंकि (किस विशेषितिस (पर्याह) से लघु परिचयन न शान(के हेतु)से

नहि० अणोः । अल्पीयान् । अन्य' । अस्ति । इत० = अणुसे अन्य (वस्तु) लघुतर नहीं (= न हि) है । जिससे

अस्य । प्रदेशाः । (२) मियेत् । एवम० । अमद्युत = इस (परिमाणु)के प्रदेश भेदे माने ॥ इन निरवयव किये हुये वा निर्णयित किये हुये

(१) वाक्यशेषः वाक्य वा वचनका कृता हुआ वा अर्थका वाक्य अर्थका समर्थपक्षोप (२) मियेत् एत् यद् आरम्भपक्षी विधि

रिग (नित्यहै) । अल्पीयान् किये गणों की जो अपने विशेषोंके गुणों को प्रगट करते हैंतीन अर्थी होती हैं (का) साधारण अर्थका अर्थात् अपने विशेषके साधारण गुण प्रगट करे, अत आम्हा मतुष्य कुरा मतप्य (न) आदिपस्य शेषके अर्थका वह है जो दो विशेषोंमें स एकके गुण वा रूपके कोबुलदे पर लघुता अमुता प्रगट करे जैसे देवकसे यककन कुरा है (मो) हगसे साहत अम्हा है । (ग) अदिशय्य शेषके अर्थका वह है जिससे केवल एक विशेषके

नानन्त्यमिति ॥ नैप दोष । सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्तियोगात्परमाध्यादयो हि सूक्ष्मभावेन परिणामा एकं तस्मिन्नप्याकाशप्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते, अवगाहनशक्तिश्चैषामव्याहताऽस्ति तन्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशे अनन्तानन्तानामवस्थानं न विरुद्ध्यते ॥ पुद्गलानामित्यविशेषवचनात्परमाणोरपि प्रदेशत्वप्रसंगे तत्प्रतिषेधार्थमाह—

न-अनन्त्यम् ॥ इति ७

=अन्त्यम रहित अर्थात् असस्यत्वात् प्रदेश है परन्तु या कार्य यह है कि शोक ता असंस्थान प्रदेशी है उसमें पुद्गलके अनन्त प्रदेशी रहन्य, और अनन्तानन्त प्रदेशी रहन्य जिस प्रकार समासकते है

=(उपर) यह रूपण नहीं है क्याकि (पुद्गल परमाणुओंका) सूक्ष्म वा लघु परिणामन अन्तनाहस-शक्ति-प्राणात्परमाणु-माद्य-इति=(और आकाशके प्रदेशों का) स्थानवान्वेनेकी सायर्थ्यक यागसे परमाणु आदि ही सूक्ष्म-प्राणेन परिणताः ॥ एक एकस्मिन् प्रथित-कथयुक्तवाकर परिणत वा रहे है (और) एक एक ही आकाश प्रदेशों अनन्तानन्ता ॥ यदिति ७

=आकाशक प्रदेशों अनन्तानन्त(परमाणु) विद्यते है और (उपर) परमाणु अस्मान्-शक्तिः ॥ इत्येव ॥ इति ८

=इन (आकाशक प्रदेशों) के स्थानवान्वेनेकी सायर्थ्य आरोक है (=अव्याहता अस्ति) तस्मात्परिष्कस्मिन् नैपि अनेशः

=अनन्तानन्तानाम् अवस्थानम् ॥ नविकथ्यते ८

पुद्गलानाम् इति ७ अर्थिणे-यवनात् ॥ ११

परमाणुः ॥ अर्थि ७ प्रदेशत्व-यवनात् ॥ ११

ननु प्रतिषेध अर्थ्यम् ॥ अर्थि ७ ८

सामान्य बाधयस

=(पुद्गल) परमाणुओं के भी प्रदेशपनाका प्रसंग माने पर

=उस (परिमाणु) के (पुद्गलपरमाणुका) नियेधके स्थित (उपर धर्मों) करते है कि

(१) जैसे एक अणुका कभी तिरुं तिरुं हुये सुगन्ध पुद्गल परमाणु एक रूप परिवर्तनसं संकीच रूप तिष्ठत ही बहुति वही सुगन्ध परमाणु तब बहुत प्रदेशोंमें व्यापक ही जाले है तैसे एक परिवर्तनसं लोकाकारके एक प्रदेशमें तिष्ठते हुए परमाणु बाधक वा लघुवस्तुका परिणाम ही उस रूपमें ही ॥ इसी प्रकार पुनरा उदाहरण है कि जैसे वा गात्र आध्यात्म प्रकाश विद्यमान प्रकाश स्थान ही प्रति स्थितिसे अकार्य अणु भी उस रूपमें ही ॥ अथ उदाहरण अणुकाकार अणुकाकार ॥

अथ पुद्गल का अवस्थान विकट रहित पात्रा जाता ही

॥ नारणोः ॥ ११ ॥

अणो प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेष ॥ कृतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात् । यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभावः ॥ किं च ततोऽल्पपरिमाणामावात्र ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति । यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥ एषामवधृत

सूत्रम् — नारणोः ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ — न० अणोः । प्रदेशोः । भवन्ति ।

एक प्रदेशमात्रता ही कही है क्योंकि परमाणुके संकेतका अभाव है

दृश्यनुवाद — अणोः । प्रवशाः । न० सन्ति । इति०

(१) वाक्यशेषः ।

कृत० न० सन्ति । इति० चेत्०

प्रदेश-मात्रत्वात् ॥

यथा आकाश-प्रदेशस्यै एकस्यै प्रदेश-भेद-

अभावात् ॥ अपदेशत्वम् ॥ एवमणोः । अपि०

प्रदेशमात्रत्वात् ॥ प्रदेश-भेद-अभावः ॥

किम् च० तत्र० अल्प-परिमाण-अभावात् ॥

नहि अणोः । अन्वीयान् । अन्त्याः । अस्ति । गत०

अस्यै । प्रदेशोः । (२) भिद्येरन् । एवमणोः ।

(१) वाक्यशेषः = वाक्य वा वचनका कृता इत्या वा अल्पपरिमाण आकाशा वाक्य आकांक्षा वाक्य आकांक्षा सम्यक्प्रसंगोप (२) सिद्धे रन्, यह आत्मनोपवी विधि

विधि (व्याप्तिः) । अन्वीयान्, विद्ये एवो की ओ अणुने किये व्योके गुणों को प्रगट करते हीन अन्वी दोती है (क) साधारण अन्वया अर्थात् अपने किये

क साधारण गुण का प्रगट करे जैसे अन्वया मनुष्य द्वारा मनुष्य (ग) आदिपत्य बोधक अन्वया यह है जो बो धिये व्योके स एकके गुण वा दृश्य को दृष्ट करे

पट सपुता धरता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे एककपल पुरा है (गोहनसे साहन अन्नको है) (ग) अतिशय्य बोधक अन्वया यह है जिससे केवल एक विद्ये व्योका

= नारणो (प्रदेशा भवन्ति) ॥ १३ ॥

= अणुके प्रदेश नहीं होते हैं, कुछ कुछ एक परमाणु बहुत प्रदेशोंका अभाव है

= वाक्य शेष है अर्थात् 'न अणो' व 'न्यमपूर्ण' है । उसका शेषवान्य प्रदेशाः सन्ति है

= योकर (अणुके प्रदेश) नहीं है । ऐसी शक्य है ।

= (उपर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुक बहुत प्रदेश नहीं है)

= जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद

= न होनेसे अपदेशत्वम् है । ऐसे अणुके भी

= प्रदेशमात्रत्वात् है । प्रदेश-भेद-अभाव है ॥

= और क्योंकि किस किये कि जिस (परमाणु) से बहुत परिणमन न शान (के हेतु) से

= अणुसे अन्य (बस्तु) उत्पन्न नहीं (= न हि) है, भिद्ये

= इस (परिमाणु)के प्रदेश भेदे आवे ॥ इन निरक्षय किये दृश्ये वा निर्णति किये दृश्ये

(१) वाक्यशेषः = वाक्य वा वचनका कृता इत्या वा अल्पपरिमाण आकाशा वाक्य आकांक्षा वाक्य आकांक्षा सम्यक्प्रसंगोप (२) सिद्धे रन्, यह आत्मनोपवी विधि

विधि (व्याप्तिः) । अन्वीयान्, विद्ये एवो की ओ अणुने किये व्योके गुणों को प्रगट करते हीन अन्वी दोती है (क) साधारण अन्वया अर्थात् अपने किये

क साधारण गुण का प्रगट करे जैसे अन्वया मनुष्य द्वारा मनुष्य (ग) आदिपत्य बोधक अन्वया यह है जो बो धिये व्योके स एकके गुण वा दृश्य को दृष्ट करे

पट सपुता धरता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे एककपल पुरा है (गोहनसे साहन अन्नको है) (ग) अतिशय्य बोधक अन्वया यह है जिससे केवल एक विद्ये व्योका

विधि (व्याप्तिः) । अन्वीयान्, विद्ये एवो की ओ अणुने किये व्योके गुणों को प्रगट करते हीन अन्वी दोती है (क) साधारण अन्वया अर्थात् अपने किये

क साधारण गुण का प्रगट करे जैसे अन्वया मनुष्य द्वारा मनुष्य (ग) आदिपत्य बोधक अन्वया यह है जो बो धिये व्योके स एकके गुण वा दृश्य को दृष्ट करे

नानन्त्यमिति ॥ नैष दोष । सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्तियोगात्परमाष्वाद्यो हि सूक्ष्मभावने परिणता एकै तस्मिन्नप्याकाशप्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते, अवगाहनशक्तेश्चैषामव्याहताऽस्ति तस्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशे अनन्तानन्तानामवस्थान न विरुद्ध्यते ॥ पुद्गलानामित्यविशेषवचनात्परमाणोरपि प्रदेशत्वप्रसंगे तत्रप्रतिषेधार्थमाह—

न-अनन्त्यम् ॥ प्रति ३

=अन्त्यम् रीत अर्थात् असम्प्राप्त प्रदेश है परन्तु भाषार्थ यह है कि खाक तो असम्प्राप्त प्रदेशी है उसमें पुद्गलके अनन्त प्रदेशी रहन्त, और अनन्तानन्त प्रदेशी रहन्त किम प्रकार समासकृत है

=(उपर) यह दृष्टण नहीं है क्याकि (पुद्गल परमाणुओंका) सूक्ष्म वा क्षुद्र परिणामन

अवगाहन-शक्ति-यागात्परमाणु-मात्रय ॥ ति ३ = (और आकाशके प्रदेशों का) स्थानदानदेनेकी सामर्थ्यके यागसे परमाणु, आदि ही

मूल-यागेनैर्दरिद्रताम् ॥ एक-रूढस्मिन् नैऋषिपु-कुरुगहाडर परिखत हा रहे है (और) एक एक ही

आकाश-प्रदेशी अनन्तानन्ता ॥ अक्षतिष्ठन्ते ॥ प ३ = आकाशक प्रदेशों में अनन्तानन्त (परमाणु) तिष्ठते है और (=च

एवम् ॥ अवाहन शक्तिः ॥ अवस्थानम् ॥ न विक्रयते ॥ =इन (आकाशक प्रदेशों) के स्थानदानदेनेकी सामर्थ्य अशक है (=अव्यापका अस्ति)

तस्मात्परिष्कृत्स्विनी अपि ३ मरेणः =तिसस एक मी (आकाशके) प्रदेशों में

अनन्तानन्तानाम् ॥ अवस्थानम् ॥ न विक्रयते ॥ =अनन्तानन्त (परमाणुओं) का उदगम नहीं विरोधा जाता है

पुद्गलानाम् ॥ प्रति ३ मरिद्येय-वचनम् ॥ ॥ = (सूक्ष्म) पुद्गलोंके (संख्यात-असंख्यात-अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेश हैं) ऐसे

परमाणु ॥ अपि ३ प्रदेशत्व प्रसंगम् ॥ नत् प्रतिषेध अर्थम् ॥ आ ३ ॥ सामान्य वाक्यस

=(पुद्गल) परमाणुओंक भी प्रदेशपनाका प्रसंग माने पर

=उस (परिमाणु) के (बहुप्रदक्षपनाक) निषेधके लिये (उपर सूक्ष्म) कहते हैं कि

(१) जैसे एक बंपाकी कमी लिनै तिष्ठै हुये सुगन्ध पुद्गल परमाणु नरस रूप परिणामनसे संकोच रूप तिष्ठत है वदुरि वही सुगन्ध परमाणु अत रीके तब सर्व दिशाओंमें व्यापक हो जात है तिम सूक्ष्म परिणामनसे साकाशकादे एक प्रदेशमें तिष्ठते हुए परमाणु वापर वा स्थलरूप परिणाम तब बहुत प्रदेशोंमें तिष्ठते हैं ॥ इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है कि कडे वा गील काष्ठमें प्रकय पिशाचसे रगत परल रूपाय है यदि कर्मिले अक्षयं जाय ना पय रूपमें होकर सब दिशाओंमें मरजाने हैं तस अक्षय साकाशायस अनन्तानन्त अरिब अक्षयान्तर परल का अक्षयान्तर विरुद्ध रीतिल पाया जाता है त

॥ नाराणोः ॥ ११ ॥

अणो प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेष ॥ कृतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात् । यथा
 आकाशप्रदेशस्थैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभाव ॥ किं
 च ततोऽल्पपरिमाणामात्रान्न ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति । यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥ एषामवधत्

सूत्रम् — नाराणो ॥ ११ ॥

= नाराणो (प्रदेशा भवन्ति) ॥ ११ ॥

मूत्राय — न० अणोः । प्रदेशाः । न० सन्ति । इति० = यन्ति ।

= अणुक प्रदेश नहीं होते हैं, कुछ झुल्ल एक परमाणुक बहुत प्रदेशोंका अनावर
 एक प्रदेशभावता ही करी है क्योंकि परमाणुक लंबका अभाव है

हृत्पनुवाद् — अणोः । प्रदेशाः । न० सन्ति । इति० = अणुके प्रदेश नहीं है ऐसा

(१) वाक्यशेषः ।

कृतः ० न० सन्ति । इति० वेत् ०

प्रदेश — भासत्वात् १ ॥

यया आकाश-प्रदेशस्य १ । एकस्वर्गप्रदेश-वेद-

अभावात् १ । अमदेशत्वम् १ ॥ एवम् ० अणोः १ । अपि ० = न

प्रदेशमात्रत्वात् १ ॥ प्रदेश-वेद-अभावः १ ।

किञ्च ० ततः ० अल्प-परिमाण-अभावात् १ ।

नरि-अणोः १ ॥ अल्पीयान् १ । अन्यः १ । अस्ति । प्रवः ० = अणुसे अन्य (बहु) लघुतर नहीं (= न हि) है, जिससे

अस्य १ । प्रदेशाः १ । (२) यिद्येत् १ । एयाम् १ । अवधुत = इस (परिमाणु)के प्रदेश भेदे मात्रै ॥ इन निरुपय किये हुये वा निर्णीति किये हुये

(१) वाक्यशेष = वाक्य वा वल्लका वृत्ता हुआ वा अक्षरोंका वाक्य अक्षरोंका समग्रपवलीय (२) किञ्च रत्, यह आरम्भनेपरी विधि

किं (नयाई) १ । अल्पीयान् किये पलों की जो अपने किये प्योंके गुणों को प्रगट करते हैंतीम अर्थी होती हैं (का) साधारण अवस्था अर्थात् अपने कियेप्य

के माथारथ गुण कामगट करे असे आक्षेप मनुष्य दुरा मन्थ (ब) आधिक्य बोधक अवस्था वह है जो वो कियेप्योंसे स एकके गुण वा गुणव कोरुखरे

पर लघुता अगुता प्रगट करे असे वेकपलसे पल्लव दुरा है म्पोहलसे लोहन अक्षेप है (ग) अधिक्य वापक अवस्था यह है जिससे केवलएक कियेप्यका

= शक्य शेष है अर्थात् 'न-अणोः' व क्यअपूर्व है । उसका शेषवाक्य प्रदेशाः सन्ति है

= बयोद्धर (अणुके प्रदेश) नहीं है । ऐसी शक्य है ।

= (उपर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेस (अणुक बहुत प्रदेश नहीं है)

= जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद

= न होनेस अमदेशत्व है । ऐसे अणुके भी

= प्रदेशमात्रपनासे प्रदेशके मदका अभाव है ॥

= और क्योंकि (किस कियेकि) प्रतिस (परमाणु) से अपु परिणमन न शाने (के हेतु) से

= अणुसे अन्य (बहु) लघुतर नहीं (= न हि) है, जिससे

= इस (परिमाणु)के प्रदेश भेदे मात्रै ॥ इन निरुपय किये हुये वा निर्णीति किये हुये

(१) वाक्यशेष = वाक्य वा वल्लका वृत्ता हुआ वा अक्षरोंका वाक्य अक्षरोंका समग्रपवलीय (२) किञ्च रत्, यह आरम्भनेपरी विधि

किं (नयाई) १ । अल्पीयान् किये पलों की जो अपने किये प्योंके गुणों को प्रगट करते हैंतीम अर्थी होती हैं (का) साधारण अवस्था अर्थात् अपने कियेप्य

के माथारथ गुण कामगट करे असे आक्षेप मनुष्य दुरा मन्थ (ब) आधिक्य बोधक अवस्था वह है जो वो कियेप्योंसे स एकके गुण वा गुणव कोरुखरे

पर लघुता अगुता प्रगट करे असे वेकपलसे पल्लव दुरा है म्पोहलसे लोहन अक्षेप है (ग) अधिक्य वापक अवस्था यह है जिससे केवलएक कियेप्यका

प्रदेशाना धर्मादीनामाधारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

॥ लोकाकाशोऽवगाहः ॥ १२ ॥

उक्ताना धर्मादीना द्रव्याणा लोकाकाशोऽवगाहो न बहिरित्यर्थ ॥ यदि धर्मादीनां लोकाकाशमाधार
व्याकाशस्य क आधार इति ? ॥ आकाशस्य नास्थस्य आधार । स्वप्रतिष्ठमाकाशम् ॥

प्रदेशानां धर्मादीनां आधार-प्रतिपत्ति अर्थस्य उच्यते = अव्ययबले धर्मादिक(द्रव्यों)के अधिकरण जाननेकेलिये यह कहाजाया है कि
(१) सूत्रम् — लोकाकाशोऽवगाह ॥ १२ ॥ = (धर्मादीनाम् द्रव्याणाम्^(१)) लोकाकाशोऽवगाह ॥ १२ ॥
अर्थः = धर्मादीनाम् द्रव्याणाम् ॥ आकाशोऽवगाहोऽवगाहो = धर्म, अर्थ, शीघ्र और पुरुष द्रव्योंकी आकाशाकाशमें स्थिति है
इत्यनुबाहः उक्तानाम् ॥ धर्मादीनाम् ॥ द्रव्याणाम् ॥ = कथित धर्मादिके द्रव्योंकी
लोकाकाशोऽवगाहोऽवगाहो = धर्मादीनाम् द्रव्याणाम् ॥ आकाशोऽवगाहोऽवगाहो = धर्म, अर्थ, शीघ्र और पुरुष द्रव्योंकी आकाशाकाशमें स्थिति है
परिकल्पये आदीनाम् ॥ लोकाकाशोऽवगाहो ॥ आधारः ॥
आकाशस्य ॥ अकारोऽवगाहो ॥ आकाशस्य ॥
नकारान्ति अन्ये आधारोऽवगाहो ॥ आकाशस्य ॥

उप शयना इत्यनु लक्षुना शयना गुरुता बाले आचक पर शाय बर्तने माहल सर्वे शायो नै बयाह है न
इत्यनु अन्ये आधारोऽवगाहो ॥ आकाशस्य ॥
प्रत्यगाहो भगवते के प्रथम शरण अथ वा प्रतिपत्तिके अन्तिम स्वर और यदि शब्द के अन्तमें व्यञ्जन होती अन्तिम व्यञ्जन उसके समीपके स्वरान्वित
का गिरावट है जेव अर्थ = अर्थ + एव = अर्थोपसर्ग) मन्त्र = मन् + अन्, अन् गिरावट (अर्थोपसर्ग) मन्त्र और ध्वजान दोनों गिरावट)
आर इत्ये शब्दके मदीपसर्ग बतलिया है
मन्त्रावै विनये अन्तमें यन् और इत्ये अर्थोपसर्ग हो तो पुनित्तमें शब्दके अन्तिम स्र के पूर्व प्र प्रथम कारके एक बलत प्रियधन
पुरुषबल और अन्ते कारके एक बलत और वा बलनमें आह्वयेत है उक्त स्र शब्दोका द्रव्यतिके अकार दीर्घ हाजाता है । प्रथमा एक बलनके अन्तमें
'अन् वा यन्' शब्दो है । जैसे विद्वत् = विद्वत् + स्र = विद्वत्, स्र = अन् शब्दके अन्तमें यो अथवा शोसे अथिक व्यञ्जन हो तो केबल एक
बलजाता है श्र गिराजाता है। अन् विद्वान् । बगला शब्दके अन्तमें यो अथवा शोसे अथिक व्यञ्जन हो तो केबल एक
अर्थोपसर्ग प्र म = अर्थोपसर्ग ।
(१) इमें सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों अन्तर्मात्रों में एकता है (२) धर्मादीनां द्रव्याणां इव वाक्यका अन्वयधार किया गया है (३) काल
द्रव्यका आधार न अन्त अर्थ न है किया है क्योंकि उसका कथन उक्तानोऽवगाहो अर्थ है इससे अन्तवाक्यमें काल द्रव्यको गमित नहीं किया है
यद्यपि काल द्रव्यकी मा स्थिति लोकाकाश म ही है ।

इसके अन्तर्मात्रों में एकता है (२) धर्मादीनां द्रव्याणां इव वाक्यका अन्वयधार किया गया है (३) काल
द्रव्यका आधार न अन्त अर्थ न है किया है क्योंकि उसका कथन उक्तानोऽवगाहो अर्थ है इससे अन्तवाक्यमें काल द्रव्यको गमित नहीं किया है
यद्यपि काल द्रव्यकी मा स्थिति लोकाकाश म ही है ।

यथाकारं स्वप्रतिष्ठं, धर्मादीन्यपि स्वप्रतिष्ठान्येव । अथ धर्मादीनामन्य आधार कल्प्यते, आकाशस्याप्यन्य आधार कल्प्य । तथा सत्यनवस्थाप्रसङ्ग इति चेन्नैष दोष ॥ नकाशादन्य-दधिकपरिमाणं द्रव्यमस्ति । यत्राकाशं स्थितमित्युच्यते । सर्वतोऽनन्त हि तत् । ततो धर्मादीना पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात् । एवम्भूतनयापेक्षया तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव ॥ तथा चोक्तं

यदि • आकाशम् ॥ स्वप्रतिष्ठम् ॥ धर्मादीनि ॥ अपि •

स्वप्रतिष्ठानि ॥ एव • अपि • धर्मादीनाम् ॥ अन्यम् ॥

आधारम् ॥ कल्प्यते, आकाशस्यम् ॥ अपि • अ यम् ॥ आधारम् ॥

कल्प्यम् ॥ तथा • सतिम् ॥

अनवस्था मसम् ॥ इति • वेद • न • एवम् ॥ दोषम् ॥ ॥

न आकाशाद् ॥ अन्य अपिक-परिमाणम् ॥

द्रव्यम् ॥ अस्तिम् ॥

यत्र • आकाशाद् ॥ स्थितम् ॥ इति • तस्यते ॥

सर्वतः • अनन्तम् ॥ हि • तद् ॥ ततः • धर्मादीनाम् ॥

अधिकरणम् ॥ आकाशाद् ॥ व्यवहारनय-वशाद् ॥

इति • तस्यते ॥ एवम्भूतनय अपेक्षया ॥ सु १ ॥

सर्वाणि ॥ द्रव्याणि ॥ स्वप्रतिष्ठानि ॥ एव ॥ तथाच • उक्तम् ॥

एवम्भूतनय अपेक्षया

= (यत्र) तो आकाश अपने आधार है तो धर्मादिक(द्रव्य) भी

= अपने साथ ही हैं । जो (=अप) धर्मादिक(द्रव्य) का और (=अन्य)

= आधार है कल्प्यते, आकाशका भी अन्य आधार

= मानना चाहिये । ऐसा (=तथा) होने पर अर्थात् आकाशका अय आधार माननेमें

= व्यवस्थाके अभावका प्रसंग होता है, ऐसी शंका है । (उपर) यह स्पष्ट नहीं है

= क्योंकि आकाशसे अन्य विशेष परिमाण वाली

= द्रव्य नहीं है अर्थात् आकाश से कोई दूसरी द्रव्य महान् नहीं है ।

= निसर्ग (=अप) आकाश स्थित हो ऐसा कहा गया है ।

= निसर्ग (=अप) आकाश ही अनन्त है । बहुविध विससे धर्मादिकों का

= आधार (आकाश) है । व्यवहारनयके आश्रयसे

= ऐसा कहा जाता है, और (=व) एवम्भूतनयकी अपेक्षासे अर्थात् जिस

= रूपकारिके पदार्थ हो, जिस स्वकणकारिकों ही नियमकरनेवाली नयकी अपेक्षासे

= एवम्भूतनय अपेक्षया

(१) 'तु' सर्वाविशिष्टिपृच्छिप्रमाणवचि में तु के स्थान में 'व' है कई इत्यादिप्रतिष्ठानि और मिलीय उत्तररूपमें 'तु' शब्द है इसलिये एतन्मो 'तु' वाक मिले है ॥

प्रानिवासी नगररूपसहाय पक्षालकृत पदार्थेव और विमपत्यसंश्लिष सर्वांसिद्धि का शब्दशः सिद्धीअनुवाद अध्याय ५ सूत्र १२

क भवानास्ते ? आत्मनीति ॥ धर्मदीनि लोकाकाशात्त बहि सन्तीति एतावत् अत्राधारा-
धेयकल्पनासाध्यं फलम् ॥ ननु च लोके पूर्वोत्तरकालमाविनामाधाराधेयभावो दृष्ट यथा कुरहे
वदरादीना न तथाऽऽकाश पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि

क भवानम् ॥ (१) आस्ते आत्मनि शिश्विः, पर्मादीनिम् ॥

लोकाकाशात् ॥ न च परितः स्मन्निष्पत्तिः एतावत् ॥

अथ (१) आपार आपेय-रूपना-साध्यम् ॥ फलम् ॥

(१) ननु च चोक्तौ ॥ पूर्व-उपर-अल-भाविनाम् ॥

आपार-आपेयभावः ॥ दृष्टम् ॥

यथा च कुरहे ॥ उदर आदीनाम् ॥

न तथा च आपारम् ॥ पूर्वम् ॥ (१) पर्मादीनिम् ॥ उपर

काल-भावीनिम् ॥

= कि आप कदा बैठे है (उपर) आत्मनि (बैठा है) पर्मादिक (द्रव्य)

= लोकाकाशात्से पारि नहीं है इतनाही

= यहाँ आपार आपेयके माननेका सापनीय अर्थात् सिद्ध करने योग्य फल है

= नुरि मरन, लोकमें परिछे पिछले (पश्चात्) कालमें होनेवाली वस्तुओंके

= आपार आपेयभाव देलानागा है अर्थात् आपार परिछे पश्चात् आयेय देलानागाहै

= जैसे गदूरा (आपार) में बरेके बूझ आदिके वा कपासके पौदा आदिके (आपेयभाव) है

= जैसे आकाश परिछे नहीं है और पर्मादिक (द्रव्य) पश्चात्

= कालवाली (नहीं) है अर्थात् मरन यह है कि गदूरा पहिले होता है उसमें बरे वा

कपासादिका बूझ भीछे होता है । तब आघार आपेयभाव होता है तैसे आकाश

परिछे हो पीछे तिसमें पर्मादिक द्रव्य बरे होय, तब आपार आपेयभाव होना

चाहिये सो इस प्रकार है नहीं । क्योंकि आकाश और पर्मादिक द्रव्योंके अनादि

परिणामिक योग्यपक्षी सिद्धि है । पूर्वमें होना वा पीछेहोना ऐसा भेद नहीं है ॥

(१) कस = बैठना कुरहि (बुझने) गदूरा का दूध है । आपमनेपरी सक्तक है रचलिये आस, + प = आस्ते = वह बैठा है ॥

(२) किलके आत्म वा आसरेसे कोई वस्तु निष्ठी हो उठे आकार करते हैं । यह वस्तु जो किसीके प्रथित सिद्धी हो उठ वस्तुको आपेय कहते हैं

(३) पाठकोंको स्पष्ट रहे कि "ननु च लोके पूर्वोत्तरकालमाविनामाधाराधेयभावो दृष्ट यथा कुरहे" का अर्थ है ।

कामभावीनि । अता उपरकारणपरिच्छेदः ॥ १ ॥ ॥ यथा कुरहे कुरहीको न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । कामदीन्युत्तर

कालभावीनि ॥ १ ॥ ॥ यथा कुरहे कुरहीको न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । कामदीन्युत्तर

अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ नैष दोषः ॥ युगपद्भावविनामपि आधाराधेयभावो दृश्यते । घटे रूपादय शरीरे हस्तादय इति ॥ लोक इत्युच्यते । को लोकः ? । धर्माधर्मदीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोक इति ॥ अधिकरणसाधने घञ् ॥ आकाश द्विधा विभक्तः । लोकाकाशमलोकाकाशं चेति ॥ लोक उक्तः । स यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो वहि सर्व-
 तोजन्तमलोकाकाशम् ॥ लोकालोकविभागश्च धर्माधर्मस्ति कायसद्भावात्,

अथ ० व्यवहारत्वं अन्वेषणोन्मेषि ० अपार-अपेय
 कल्पना अनुपपत्तिः ॥ पृष्ठि ० ॥

न ० यत् ० दोषः ० युगपद् ० भाविनाम् ॥ अपि ०
 अपार अपेय-भावः ॥ एषत्वे ॥ एते ० एषत्वं ॥
 शरीरे ॥ एत-आदयः ॥ पृष्ठि ॥ लोकः ॥ पृष्ठि ० उच्यते ॥
 क-लोकः ० एषत्वं अपर्मादीनि ॥ द्रव्याणि ॥ एषत्वं
 लोकेष्वेव ० स-लोकः ० पृष्ठि ० अपि ० एतन्नापत्तम् ॥
 (१. यत् ॥ आकाशम् ॥ पृष्ठि ० विभक्तम् ॥

लोकाकाशम् ॥ मलोकाकाशम् ॥ ए ० पृष्ठिलोकः ० उच्यते ॥
 स ० एषत्वं ० एते ॥ लोककाशम् ॥ एते ० एषत्वं ०
 सर्व-कल्पनाम् ॥ मलोकाकाशम् ॥ एते ० लोक-
 मलोकाकाशम् ॥ एते ० अपर्मादीनि ॥ द्रव्याणि ॥ एते ०

वृत्तयि व्यवहारनयकी अपेक्षासे यी अपार अपेयके
 =मानकी सिद्धि नहि शोनी है (क्योंकि पूर्व में कथन कर चुके है कि
 एवम्भूतय की अपेक्षासे सब द्रव्य अपने अपने अपार है और
 व्यवहारनयसे आधय आययी (=आधेय) आर है

=उक्त एव रूप नही है (क्योंकि) एक कालमें होनेवालों की
 =अपार आयय याव देसा अत्य है (नैसे) दया में रूपादिक है
 =शरीर में इत्यादिक है ॥ 'लोक ऐसा करा जाता है ॥
 =यस)लोक क्या है ? (उधर) यम, अपर्मादिक द्रव्ये जां
 =देली जाती है सो लोक है (लोक) यत्वं क' अपि कल वा अपार सिद्ध करनेमें
 =यत् (=य) मत्पय लगाया है, जोर है । आकाश दो प्रकारसे क्या हुआ है
 =लोकाकाशय और मलोकाकाशय है । लोक (अर्थात्) धर्मादिक द्रव्ये देली जाती है
 ऐसा) करा गया है

=वह (लोक) नही (=यत्र) है सो (=यत्) लोकाकाश है, विस (लोक) से शरिर
 =चारोंओर अन्तररित मलोकाकाश है और लोक
 =द्रलोक का विना धर्मादिक द्रव्ये, अपर्मादिक द्रव्ये की विधानता से

(१) तात् ० यत् ० अर्थात् देवता है यत् ० मत्पयने घम् ० एत् ० एतेषु लोकेषु ० एतेषु लोकेषु ० एतेषु लोकेषु ० एतेषु लोकेषु ०

पदानिपाती अक्षरपत्रायाय श्रीलोककृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वायसिद्धि का शब्दशः रिचीभनुवाव अभ्याय ५ सूत्र १२

क भवानास्ते ? आत्मनीति ॥ धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहि सन्तीति एतावत् अत्राधारा-
धेयकल्पनासाध्यं फलम् ॥ ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभावितानामाधाराधेयभावो दृष्ट यथा कुर्ये
वदरादीना न तथाऽऽकारा पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि

क० प्रवर्तन् ॥ (१) आलोऽऽत्मानिः ॥ इति ० धर्मादीनिः ॥

लोकाकाशादः ॥ न० बहिः ॥ अन्विता इति ० एतावत् ०

अप० (१) आधाराधेयकल्पनासाध्यम् ॥ फलम् ॥

(१) ननु ० ब० लोके ॥ पूर्वोत्तर-काल-भावितानाम् ॥

आधाराधेयभावः ॥ दृष्टः ॥

यथा ० कुर्ये ॥ वदरादीनाम् ॥

न० वपान् ० आकाशम् ॥ पूर्वम् ॥ धर्मादीनिः ॥ उत्तर

कालभावीनिः ॥

= कि आप करत वेडे हे (उत्तर) आत्मनिषि (वेग ह) धर्माधिक (द्रव्य)

= लोकाकाशसे बाहिर नही हे इतनाही

= यहाँ आधार आधेयके माननेका साधनीय अथवा सिद्ध करने योग्य फल हे

= बहुरि भरन, छोकमें पहिले पिकले(पभाव) आत्ममें होनेवाली वस्तुओंके

= आधार आधेयभाव देवानावा हे अर्थात् आधार पहिले पभाव आधेय देवानावा हे

= जैसे गदरा(आधार)में घेरेके वृक्ष आदिके वा कपासके पैदा आदिके(आधेयभाव) हे

= जैसे आकाश पहिले नही हे और धर्माधिक (द्रव्य) पभाव

= कालांबाली (नहीं) हे अर्थात् भरन यह हे कि गदरा पहिले होता हे उसमें घेर वा

कपासादिका वृक्ष पीछे होता हे । तब आधार आधेयभाव होता हे जैसे आकाश

पहिले हो पीछे विसमें धर्माधिक द्रव्य घरे होंय, तब आधार आधेयभाव होना

चाहिये सो इस प्रकार हे नही । क्योंकि आकाश और धर्माधिक द्रव्योंके अनादि

परिणामिक योग्यपक्की सिद्धि हे । पूर्वमें होना वा पीछेहोना ऐसा भेद नही हे ॥

(१) वस = बैठना आदि (बुद्धे) गणका भागु हे । आत्मनेपदो सकर्मक हे इतलिये कोस + न = आस्ते = वह बैठता हे ॥

(१) विलसे आत्म्य वा आसरेसे छोरे वस्तु निधी वा उधे आधार करते हे । वह वस्तु जो विलसे अभिठ तिथि हो उस वस्तुको आधेय कहते हे

(१) पाठकोको यथा रहे कि "ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभावितानामाधाराधेयभावो दृष्ट यथा कुर्ये

कालभावीनि । अतो वदरादीनामधाराधेयभावो दृष्टि आधाराधेयकल्पनासाध्यसिद्धिः ॥ यथा कुर्ये वदरादीनां न तथाऽऽकारा पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तर

कालभावीनि । अतो वदरादीनामधाराधेयभावो दृष्टि आधाराधेयकल्पनासाध्यसिद्धिः ॥ यथा कुर्ये वदरादीनां न तथाऽऽकारा पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तर

अतो व्यवहारनयापेक्षयापि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ नैष दोष ॥ युगपद्भाविनामपि आधाराधेयभावो दृश्यते । घटे रूपादय शरीरे हस्तादय इति ॥ लोक इत्युच्यते । को लोक ? । धर्माधर्मदीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोक इति ॥ अधिकरणसाधने घञ् ॥ आकाश द्विधा विभक्त । लोकाकाशमलोकाकारां चेति ॥ लोक उक्त । स यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो बहि सर्वतोऽनन्तमलोकाकाशम् ॥ लोकालोकविभागश्च धर्माधर्मस्विकायसद्भावात्,

अतः • व्यवहारनय अपेक्षयाऽपि • आधार-आधेय
कल्पना अनुपपत्तिः । इति • ॥

न • एष • धेय • धेयः • युगपद् • भाविनाम् ॥ अपि •
आधार • आधेय • भावः • परस्पर • । पदे • इ • पादयः •
शरीरे • । इति • आदयः • इति • । लोकः • इति • उच्यते ।
कर्म • लोकः • इति • धर्म • आदीनि • । द्रव्याणि • । यत्र •
लोक्यन्ते • । स • लोकः • इति • अधिकरणसाधनम् • ।
(१) यत्र • । आकाशम् • । द्विधा • विभक्तम् • ।
लोकाकाशम् • । अलोकाकाशम् • । च • इति • लोकः • इति • ।

सन् • यत्र • उच्यते • । लोकाकाशम् • । ततः • उच्यते •
सर्वतः • अनन्तम् • । अलोकाकाशम् • । त्व • लोक
अलोक-विभागः • । धर्म-अधर्म-स्विकाय-सद्भावात् • ।

=स्वल्पे व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी आधार आधेयके
=माननेही सिद्धि नहीं (शेती) है (क्योंकि पूर्व में कथन कर चुके हैं कि
एकस्मूहनय की अपेक्षासे सर्व द्रव्य अपने अपने आधार हैं और
व्यवहारनयसे आश्रय आश्रयी (=आधेय)भाव है
=(वचन)यह द्रव्य नहीं है (क्योंकि) एक कालमें होनेवालोंके भी
=आधार आधेय मान देना ज़ावा है । (कैसे) पड़ा में रूपादिक है
=शरीर में इत्यादिक हैं ॥ 'लोक' ऐसा कहा जाता है ॥
=(मन्त्र)लोक क्या है ? (वचन)यम, अधर्म आदिक द्रव्ये नहीं
=देली जाती है सो लोक है। ऐसे (लोक शब्द को) अधिकरण वा आधार सिद्ध करनेमें
=वच (अन्व) मत्स्य लागया है, जोड़ा है । आकाश दो प्रकारसे क्या हुआ है
=लोकाकाश और अलोकाकाश हैं । लोक (जहाँ धर्मादिक द्रव्ये देली जाती है
ऐसा) कहा गया है

=वह (लोक) नहीं (=यत्र) है सो (=वत्) लोकाकाश है, जिस (लोक) से बाहिर
=बाहोंओर अन्वयित अलोकाकाश है और लोक
=अलोक का विभाग धर्मास्विकायकी, अधर्मास्विकाय की विषयानवा से

(१) यत्र, यानु का अर्थ है जहाँ है यत्र मत्स्यमें यत्र, इत्यु होनेसे लोक उच्यते । त्व लोक + अ ऐसा रूप हुआ, अर्थात् लोक उच्यते यत्र यत्र ।

विज्ञेय ॥ असति हि तस्मिन्धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलानां गतिनियमहेत्वभावाद्भिभागो न स्यात् । असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेराश्रयनिमित्ताभावात् स्थितेरभाव । तस्या अभावे लोका-
लोकविभागभावो वा स्यात् । तस्माद्बुधमयसद्भावाद्भोकोलोकविभागसिद्धिः ॥

तत्रावधियमाणानामवस्थानमेदुसम्भवाद्द्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

पदार्थः ॥

धर्मिः शिवास्मिन् धर्मास्तिकायेश्च

अविपुद्गलानाम् । अति-नियम-हेतु-अभावात् । विभाग-
न-स्यात् । च-असति । अधर्मास्तिकायेश्च । स्थितेर्भूः ।

आश्रय-निमित्त-अभावात् । स्थितेर्भूः । अभाव-भूः । तस्यार्भूः ।

अभावे । श्लोक-अश्लोक-विभाग-अभाव-भूः । वा-अस्यात् ।

तस्यात्-अवयव-सद्भावात् । श्लोक-अश्लोक-विभाग-सिद्धिर्भूः ।

तत्र-अवधियमाणानाम् । अवस्थान

मेदु-सम्भवात् । विशेष-नियमि-अर्थ-भूः । आरा-
(१) सूत्रम् धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ-धर्म-अधर्म-यार्थ-कृत्स्ने । श्लोकाकारोः ॥

अवधार-भू-भवति ।

= जानानायोग्ये (अश्लोक, अपारपर्य, अधर्मद्रव्योकाअस्तित्वे श्लोकलोककाकारे)

= योक्ति (= वि) तिस पर्यास्तिकायके न होनेपर

= शीघ्र पुद्गलोंके गमनके नियमके कारणके अभावसे श्लोक और लोकका विभाग

= नहीं होसकता है और (=च) अधर्मास्तिकाय न होनेपर स्थितिके

= आभावके हेतुके अभावसे स्थितिका अभाव होता है । तिस (स्थिति)के

= न होनेपर श्लोक अश्लोकका विभाग निश्चयसे (=वा) नहीं होगा (अभावः स्यात्)

= तिससे दोनों पर्य, अधर्मद्रव्योंके अस्तित्वसे श्लोक अश्लोकके विभागी सिद्धि है

= वहाँ मुख्यक्रियेय अथवा अवधारणक्रियेयके अवस्थानके

= भेद सम्भव होनेसे विशेष ज्ञानके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि

= धर्माधर्मयोः कृत्स्ने (लोकाकारो अवगाह भवति) १३ ।

= धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यकी समस्त लोकाकारार्थ

= स्थिति है अर्थात् जैसे किछोंमें सर्वत्र कुछ व्याप्त है उसी प्रकार लोकाकारके

समस्त भेदोंमें धर्म अधर्म द्रव्योंके अर्थ पुण्ड्रपत्ते व्याप्त है ।

(१) शीघ्र और तन्मत् तथा विगतपर आत्मायते एक मूल का पाठ भी-०५-०५ मूलके शीघ्र है ।
"कदा चरन्ती रे(वा)" अथवापत्ते ५-५-०५ मूलके शीघ्र है ।

"धर्माधर्मयोः कृत्स्ने" पाठ है दोनों पाठ

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदर्शनार्थम् ।

अगारेऽवस्थितो घट इति यथा, तथा धर्माधर्मयोर्लोकाकाशोऽवगाहो न भवति किं तर्हि ? । कृत्स्ने,
तिलेषु तैलवदिति ॥ अन्योऽन्वयप्रदेशप्रवेशव्याघाताभावोऽवगाहनशक्तियोगाद्धिदितव्य ॥

अतो विपरीतानां मूर्तिमतामेकप्रदेशसंख्येयासख्येयानन्तप्रदेशानां पुद्गलानामवगाहविशेषप्रति-

पत्यर्थमाह—

दुरयनुवादः-कृत्स्न-वचनम् ॥ अशेष-व्याप्ति-प्रदर्शन-अर्थः-इस सूत्रमें कृत्स्न शब्द सर्व-लोकमें व्याप्ति अथवा फैलावटके दितानेके लिये है,

अगारे ॥ अ-वस्थितः ॥ घटः ॥ इति ॥ यथा ॥ तथा ॥

धर्म-अधर्मयोर्लोकाकाशः ॥ अवगाहः ॥ न ॥ भवति ॥

किं ॥ तर्हि ॥ ।

व्यभिचरस्य अधर्मद्रव्य दोषोका लोकाकाशमें अवगाह नहीं होता है

=, मरन) सो कैसे है ? मरनका आचार्य ऐसा है कि आचार्यकी यह बात सुनकर कि

धर्म रखे हुये घटके समान धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोकाकाशमें रखे हुये नहीं है

शिवने अच्युत, बरसक और अर्धर होकर तत्काखरी मरन करदियाफितो कैसे है

(=ठपार, मरुणमें अर्थात् किशोमें लेवके सहज आचार्य जैसे तिलोंमें सर्प वेद व्याप्त

है जैसे लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंमें सर्वत्र धर्म अधर्मद्रव्योंके प्रदेश पूर्णतया व्याप्त है

= (धर्म-अधर्मद्रव्योंके) परस्पर प्रदेशोंके भेदधर्मों व्यायात या स्कावट नहीं है

= (सो स्कावटका अभाव धर्म अधर्मद्रव्योंकी) अवगाहनकी सामर्थ्यके योगसे

= जानना चाहिये अर्थात् धर्मद्रव्यका एकप्रदेश एकधर्मद्रव्यके एक प्रदेशमें व्यायात

रहित प्रदेश है और अधर्मद्रव्यका एकप्रदेश धर्मद्रव्यके एक प्रदेशमें अथवा

रोकट्यक प्रवेश है सो यह परस्पर प्रदेशता धर्म अधर्मके अवगाहनशक्तिके निमित्तसे है

= इसलिये, इन अमूर्तिक धर्म-अधर्मद्रव्योंके प्रवेश, युक्तिमान एकप्रदेशी, सख्यातमदेशी

= इससंख्यात प्रदेशी अनन्त प्रदेशी (अनन्तानन्त प्रदेशी) पुद्गलकोंकी

= अवगाहको विषय जाननेके लिये (अग्निम सूत्रमें) कहेते हैं कि

कृत्स्ने ॥ तिलेषु तैलवद ॥ इति ॥

अ योज्य प्रदेश-प्रवेश-व्यायात-अभावः ॥

अवगाहन शक्ति-योगात् ॥

प्रदितव्यः ॥

अतः ॥ विपरीतानाम् ॥ मूर्तिमताम् ॥ एकप्रदेश-संख्येय

असंख्येय अनन्त-प्रदेशानाम् ॥ पुद्गलख्यानानाम् ॥

अवगाह-विशेष-मतिपक्षि-अर्थः ॥ ॥ आ ॥ ८

विज्ञेय ॥ असति हि तस्मिन्धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलाना गतिनियमहेत्वभावाद्भिभागो न स्यात् । असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेरश्रयनिमित्ताभावात् स्थितेरभाव । तस्या अभावे लोका-
लोकविभागाभावो वा स्यात् । तस्माद्बुभयसद्भावास्त्रोकोलोकविभागसिद्धि ॥

तत्रावधियमाणानामवस्थानभेदसम्भवाद्भिषोषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

विज्ञेयः ॥

असतिः ॥ रिश्वस्तिनः ॥ पर्मास्तिकायेः ॥

जीव-पुद्गलानाम् ॥ गति-नियम-हेतु-भावात् ॥ विभागः ॥

न ॥ स्यात् ॥ इ ॥ असतिः ॥ अपर्मास्तिकायेः ॥ स्थितेः ॥

आश्रय-निमित्त-भावात् ॥ स्थितेः ॥ अभावेः ॥ तस्याः ॥

भावादेः ॥ त्र्यङ्-अलोका-विभाग-भावादेः ॥ वा ॥ स्यात् ॥

तस्मात् ॥ उभय-सद्भावात् ॥ त्र्यङ्-अलोका-विभाग-सिद्धिः ॥

तत्र ॥ अवधियमाणानाम् ॥ अवस्थान

भेद-सम्भवात् ॥ विषय-निमित्त-अर्थत्वात् ॥ आह ॥

(१) सूत्रम् धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

सूत्रार्थ-धर्म-अधर्मयोः ॥ कृत्स्नेः ॥ त्र्यङ्काकार्येः ॥

अपराहर्भः ॥ पथविः ॥

=माननायोग्यैः (आहतक, जहापरपर्यन्त, अपर्यन्तद्रव्योकाप्रस्थित्वहेतुत्वात्कलोकाकार्ये

=पर्योकि (नरि) तिस पर्यास्तिकायके न होनेपर

=जीव पुद्गलोंके गमनके नियमके कारणके अभावसे लोक और लोकाकार्यविभाग

=नहीं होसकवा है और (=च) अपर्यास्तिकाय न होनेपर स्थितिके

=अभायके हेतुके अभावसे स्थितिका अभाव होता है । तिस (स्थिति)के

=न होनेपर लोक अलोकाका विभाग निश्चयसे न्वा) नहीं होगा (अभावः स्यात्)

=तिससे दोनों पर्य, अपर्यन्तद्रव्यो) इ अस्थित्वसे लोक अलोकरु विभागकी सिद्धि है

=वर्षा निर्णयद्विगये अथवा अवधारणद्विगयेके अवस्थानके

=भेद सम्भव होनेसे विशेष ज्ञानके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि

= धर्माधर्मयो कृत्स्ने (लोकाकार्ये अवगाह भवति) १३ ।

=धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यकी समस्त लोकाकार्यमें

=स्थिति है अर्थात् जैसे किछोंमें सर्वत्र तेषु स्यात् है उसी प्रकार लोकाकार्यके

समस्त प्रवेशों में धर्म अधर्म द्रव्योंके प्रदेश पूर्णरूपसे स्यात् है ।

(१) शोनी ज्योतिषर तथा विष्णुपर आत्मानोमे इत्य मूत्रे का पाठ कीट सर्वे पक्षता है न कहीपर "धर्माधर्मयोः काः कलो" वाह है शोनी पाठ "अर्भो एतान्को (वा)" अकार्यवाची उ-प-५५ मूत्रके शीर्षके है ।

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदर्शनार्थम् ।

अग्रादेश्वस्थितो घट इति यथा, तथा धर्माधर्मयोर्लौकाकाशेश्वगाहो न भवति किं तर्हि १ । कृत्स्ने,
तिलेषु तैलवदिनि ॥ अन्योऽन्वचप्रदेशप्रवेशव्याघाताभावोऽवगाहनशक्तियोगाद्द्विदितव्य ॥

अतो विपरीताना मूर्तिमतामेकप्रदेशसंख्येयासख्येयानन्तप्रदेशाना पुद्गलानामवगाहविशेषप्रति-
पत्यर्थमाह—

पुरयुवावःकृत्स्नवचनम् ॥ अशेष-व्याप्ति मदर्शन-अर्थः (इस सूक्ष्मे कृत्स्न शब्द सर्व(लोकमें) व्याप्ति अथवा फैलावटके विये है,
अग्रादेशः ॥ अश्वस्थितः पदः ॥ इति ० यथा ०, तथा ०

धर्म-अधर्मयोर्लौकाकाशेश्वगाहः ॥ अशेषव्याघातः ॥ अशेषव्याघातः ॥ अशेषव्याघातः ॥ अशेषव्याघातः ॥

किं ० तर्हि ० ।

कृत्स्ने ॥ तिथेषु वैलवत् ० इति ० ॥

अयोज्य प्रदेश-प्रवेश-व्याघात-अभावः ॥
अवगाहन शक्ति-योगात् ॥
वेदितव्यः ॥

अतः ० विपरीतानाम् ० मूर्तिमताम् ० एकप्रदेश-संख्येय
असंख्येय अनन्त-प्रदेशानाम् ० पुद्गलानाम् ॥
अवगाह-विशेष-मतिपक्षि-अर्थम् ॥ अथार ८

अथै धर्मो यथा अवस्थित वा रक्ता हुआ है जैसे
धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनोंका लोकाकाशमें अवगाह नहीं होता है

= परन) तो कैसे हैं ! परनका धार्धार्य ऐसा है कि आचार्यकी यह बात सुनकर कि
धर्ममें रक्ते हुये घटके समान धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोकाकाशमें रक्तेहुये नहीं हैं
शिव्यने अवस्थित, उत्सक और अशीर शोकर तत्काशरी भ्रमन करदियाकि तो कैसे हैं
(अचर) समूहमें अर्थात् तिलोंमें तेलके सदृश धार्धार्य जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त
है जैसे लोकाकाशमें समस्त प्रदेशोंमें सर्वत्र धर्म अधर्मद्रव्योंकेप्रदेश पूर्यव्या व्याप्त है
=(धर्म-अधर्मद्रव्योंके) परस्पर प्रदेशोंके प्रवेशमें व्याघात वा रुकावट नहीं है
=(तो रुकावटका अभाव धर्म अधर्मद्रव्योंकी) अवगाहनकी सामर्थ्यके योगसे
=मानना चाहिये अर्थात् धर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश अधर्मद्रव्यके एकट प्रदेशमें व्याघात
रहित प्रवेश है और अधर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश धर्मद्रव्यके पूर्यव्यक प्रदेशमें विना
रोक्योक प्रवेशहै तो यह परस्पर प्रदेशता धर्म अधर्मके अवगाहनशक्तिके निमित्तसे है
=इसलिये, इन अमूर्तोंके धर्म-अधर्मद्रव्योंके अतिरिक्त मूर्तिमान एकप्रदेशी, सख्यात्मकदेशी
=असंख्यात प्रदेशी अनन्त प्रदेशी (अनन्तानन्त प्रदेशी) पुद्गलकोंकी
=अवगाहको विशेष ध्याननेके लिये (अभिप सूक्ष्मे) करते हैं कि

॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः युद्गलानाम् ॥ १४ ॥

(1) सूत्रम्—एकप्रदेशादिषु भाज्य युद्गलानाम् ॥ १४ ॥

= (१ लोकाक्षर) एकप्रदेशादिषु भाज्य (एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां)

युद्गलाना (२) अवगाह

सुभार्य—लोकाक्षरौ॥ एकप्रदेश भादिषु॥

एकप्रदेश-संख्येय असंख्येय

अनन्त-अनन्तान् वयदेशानाम् युद्गलानाम् अवगाहं भवति—अनन्तप्रदेशी, अनन्तानन्तप्रदेशी युद्गलौका अवगाह-स्थिति-अवस्थान-अवगाह-टिकाव
वविभाग करने योग्य है, विकल्पनीय है वा वटिजाने योग्य है अर्थात् लोकाक्षरशब्दके

भाष्यः—

=लोकाक्षरशब्दके एक प्रदेशादिकनिमित्त

=एक प्रदेशी, दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी आदि संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और

एक दो-तीन-चार-पाँच इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसंख्यात प्रदेशों वक्रमे युद्गलद्वयके

के एकपरमाणु, दोपरमाणु, तीनपरमाणु, चारपरमाणु, पाँचपरमाणु, छपरपरमाणु

इत्यादिक संख्यात परमाणु, असंख्यात परमाणु अन व परमाणु, और अनन्तानन्त

परमाणुओंका अवगाह विभाग करने योग्य है, किंजाने योग्य है यावार्थ कि लोका-

क्षरशब्दके एकप्रदेशमें युद्गलद्वयके एकपरमाणु, दोपरमाणुके (दो सूत्रपरिणयो) एकप्रका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ बालो मर्मप्रश्नानामे एकना है। युद्गलानाम् के स्थानमें बर्ता 'बर्ता युद्गलाना' ऐसा पाठ है यह काठककल्पमाला व्याकरणके श्लोकके अन्तर्गत है। (२) 'लोकाक्षर' और 'अवगाह' की बातें बर्ता सूत्रसे अनुपपत्ति है। 'एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्त प्रदेशानां युद्गलानाम्' यह समस्त यदि एक ही दृष्टिसे दलोकाक्षरों की दृष्टान्त सूत्रकी अनुपपत्ति है क्योंकि एक सूत्रमें प्रदेशाक्षरकी अनुपपत्ति आठवाँ सूत्रसे ली गई है अतः यहाँभी प्रदेश अक्षरों सूत्रसे अनुपपत्ति है। यद्यपि सूत्रके 'संख्येय' शब्दमें एक प्रदेश और संख्यात प्रदेश आगत हैं। यद्यपि सूत्रके अन्तर्गत सूत्रमें 'अनन्तानन्त' मो गमित है। तैसाकि एक सूत्रकी वृत्तिके निम्न वाक्योंसे प्रगट है अन्तत सामान्यान्तः। अन्तत प्रमाणात् विविचयसुक्त बरीतानन्त युद्गलानन्तानन्तानन्तं चेति। तत्सर्वमन्ततसामान्येन युद्गले ॥ इन वाक्योंके अर्थके लिये देखो पाठ २४ ॥ (३) यह अनुवाद सूत्रके आधारपर है। (४) 'भाज्य' विभक्त्यर्थपर विभाग करने योग्य विभाज्य विकल्पनीय वटिके योग्य अनन्तपर्यन्तके लिये एकप्रदेशाक्षरी है (५) युद्गलद्वयका अवगाह लोकाक्षरशब्दके एक प्रदेश और अन्ततकपाठ प्रदेश लीये अनेक प्रकार है। (६) अक्षरसूत्रकीकृता अर्थप्रत्यक्षिप्या ॥

तीन परमाणुओं का (जा सूक्ष्मरूपमें पकट गये हैं) स्कंधका चार परमाणुओं के (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका इत्यादि संख्यात परमाणुओं के (जो सूक्ष्मरूपमें परिणामें हैं) स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओं के स्कंधका, तथा सूक्ष्मरूप परिवर्णमें अनन्त पुद्गल परमाणुओं के स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिवर्णत अनन्तान्त व पुद्गल परमाणुओं के स्कंधका भी अवगाह वा अवस्थान (लोककाशके एक प्रदेशमें) है ;

लोककाशके दो प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके दो परमाणु सुखेहुओंका अथवा दो परमाणु धन्ये हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिवर्णये हैं स्थिति है, तीन परमाणुओं के (जो सूक्ष्मरूप विकारको माति हुई हैं) स्कंधका, चार परमाणुओं के (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका और ऐसारी परिवर्णित पाँच परमाणुओं के स्कंधका तथा ऐसारी परिवर्णत छह परमाणुओं के स्कंधका, इत्यादिक ऐसैरी सूक्ष्मरूप परिवर्णित संख्यात पुद्गल परमाणुओं के स्कंधका, ऐसारी स्कंध असंख्यात परमाणुओं के स्कंधका, ऐसारी स्कंध अनन्त परमाणुओं के का और पुद्गलके अनन्तान्त परमाणुओं के (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्णये हैं) स्कंधकामी अवगाह वा उदराव वा स्थिति (लोककाशके दो प्रदेशोंमें) है ;

लोककाशके तीन प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके तीन परमाणु सुखे हुओंका अथवा तीन परमाणु धन्ये हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिवर्णये हैं, चार परमाणुओं के (जो सूक्ष्मरूप परिवर्णमें हैं) स्कंधका, ऐसारी सूक्ष्मरूप परिवर्णत पाँच परमाणुओं के स्कंधका, ऐसारी सूक्ष्मरूप परिवर्णित छह परमाणुओं के स्कंधका अवगाह, इत्यादिक सात, आठ, नौ, दश संख्यात सूक्ष्मरूप परिवर्णत परमाणुओं के स्कंधकी स्थिति, ऐसैरी सूक्ष्मरूप परिवर्णित असंख्यात परमाणुओं के स्कंधका अवस्थान अनन्त परमाणुओं के ऐसैरी स्कंधकी स्थिति, और ऐसैरी सूक्ष्मरूप परिवर्णत अनन्तान्त परमाणुओं की स्थिति तीन प्रदेशोंमें है ।

इसरी प्रकार लोककाशके चार पाँच-छह-सात-आठ-नौ-दश इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेश पर्यंतोंमें चार पाँच-छह-सात-आठ नौ-दश-इत्यादिक संख्यात और असंख्यात पुद्गल परमाणुओं के स्कंध का जो लोककाशके प्रदेशोंकी यथायोग्य गणनानुसार सुखे हुये होसकते हैं वा धन्ये हुये (सूक्ष्मरूपमें नहीं) अथवा उक्त नियमकी गणनानुसार सूक्ष्मरूपमें परिवर्णत भी होसकते हैं, अवस्थान गन्धरूप जानो, परन्तु अनन्त और अनन्तान्त पुद्गल परमाणुओं के स्कंधका लोककाशके एक, दो, तीन, चारसे असंख्यात प्रदेशों तकमें उसी समय, अवस्थान वा अवगाह होसता है जब वे अनन्त परमाणु वा अनन्तान्त परमाणु सूक्ष्मरूपमें परिवर्णित हैं क्योंकि लोककाशक तो असंख्यात ही प्रदेश हैं । स्पष्ट रहे कि जितनी सुखी हुई परमाणु हैं

॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः युद्गलानाम् ॥ १४ ॥

(१) सूत्रम्—एकप्रदेशादिषु ^(१) भाज्य युद्गलानाम् ॥ १४ ॥

= (२) लोकांशो) एकप्रदेशादिषु ^(३) भाज्य (एकप्रदेशसख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां)

युद्गलाना (^(४) अवगाह)

सुभार्यो—लोकाकायाः) एकप्रदेश भाविपुः

एकप्रदेशसंख्येय असंख्येय

अनन्त-अनन्तान् वप्रदेशानां) युद्गलानां) अवगाह) भवति=अनन्तप्रदेशी, अनन्तानन्तप्रदेशी युद्गलौका अवगाह-इति अयस्यान्-उद्गाह-टिकाव

भाज्ये)।

=लोकाकायोके एक प्रदेशादिकनिसे

=एक प्रदेशी, दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी आदि संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और अनन्त-अनन्तप्रदेशी, अनन्तानन्तप्रदेशी युद्गलौका अवगाह-इति अयस्यान्-उद्गाह-टिकाव

व्यवहार करने योग्य है, विकल्पनीय है या घटिजाने योग्य है अर्थात् लोकाकायोके

एक दो-तीन-चार-पाँच इत्यादि संख्यात प्रदेशीसे असंख्यात प्रदेशी तकमें युद्गलानाम्

के एकपरमाणु, दोपरमाणु, तीनपरमाणु, चारपरमाणु, पाँचपरमाणु, छपरमाणु

इत्यादिक संख्यात परमाणु, असंख्यात परमाणु, अनन्त परमाणु, और अनन्तानन्त

परमाणुओंका अवगाह विभाग करने योग्य है, निर्जाने योग्य है अर्थात् कि लोका-

कायोके एकप्रदेशमें युद्गलानाम्के एकपरमाणु, दोपरमाणुके (जो सूत्रमस्ति एष्ये) एकपका

(१) इस सूत्र का पाठ और अर्थ रामो मंत्रप्रयोगीने एकसा है । युद्गलानाम् के स्थानमें अहां कही 'युद्गलानां देसा पाठ है यह काष्ठकल्पमाता व्याकरणको सूत्ररूप ग्रन्थ है । (२) 'काकाश और 'अवगाह' की बारहवां सूत्रसे अनुपुष्टि है । 'एकप्रदेशसख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्त प्रदेशानां प्रदेशानाम् यह समस्त यदि एवम इतिसे लोकांशो ही शुरुवां सूत्रकी अनुपुष्टि है क्योंकि उक्त सूत्रमें प्रदेशाण्युकी अनुपुष्टि काठवां सूत्रसे ली गई है अतः यहीमी प्रथम शतक काठवां सूत्रसे अनुपुष्टि है । युद्गलौकाके संख्येय शब्दमें एक प्रदेश और संख्यात प्रदेश आजात हैं । शुरुवां सूत्रके अन्तमें युद्गलानाम्को गणित है । असाकि उक्त सूत्रकी यत्तिके सिद्ध भाष्योसे प्रगत है काष्ठकल्पमातायु । अन्ततः सामान्याय । अन्ततः प्रमाणात् अविच्छिन्नसुक्तं बरीनामान् युद्गलानाम् वनमानासुं चेति । सप्तमैयमन्तसामान्येयं युद्गले । इन काठयोके अर्थके लिये देखो पृष्ठ २४ । १३) यह अनुवाद शुरुवां सूत्रके आशारपर है । (४) 'भाज्य' विभाजनीय विभाग करने योग्य विकल्पनीय अर्थात् भाग संयोग्य है सर्व प्रकारोंकी है । (५) युद्गलानाम् अवगाह काष्ठकाष्ठके एक प्रदेश ही कल्पना करके शत प्रदेशों तक लीं अनेक प्रकार हैं । वं-तरानुक्तविकल्पना करके विकल्पिका है ।

तीन परमाणुओं का सूक्ष्मरूपमें पकट गय है। स्कंधका चार परमाणुओं (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित है) स्कंधका इत्याद सस्यात परमाणुके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणमें है) स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंधका, तथा सूक्ष्मरूप परिणमें अनन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिणत अनन्तान्तत पुद्गल परमाणुके स्कंधका भी अवगाह वा अवस्थान (लोकाकाशके एक प्रदेशमें) है ;

लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके दोपरमाणु सुखेहुओंका अथवा दो परमाणु बन्ने हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये है स्थिति है, तीन परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप विकारको प्राप्ति हुई है) स्कंधका, चार परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका और ऐसारी परिवर्तित पांच परमाणुके स्कंधका तथा ऐसारी परिणत छह परमाणुओंके स्कंधका, इत्यादिक ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित संख्यात पुद्गल परमाणुके स्कंधका, ऐसारी स्कंध असंख्यात परमाणुओंकेका, ऐसारी स्कंध अनन्त परमाणुओंकेका और पुद्गलके अनन्तान्तत परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणये है) स्कंधकाभी अवगाह वा उदरान वा स्थिति (लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें) है ;

लोकाकाशके तीन प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके तीन परमाणु सुखे हुओंका अथवा तीन परमाणु यंचे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये है, चार परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप परिणमें है) स्कंधका, ऐसारी सूक्ष्मरूप परिणत पांच परमाणुके स्कंधका, ऐसारी सूक्ष्मरूप परिवर्तित छह परमाणुओंके स्कंधका अवगाह, इत्यादिक सात, आठ, नौ, दश सस्यात सूक्ष्मरूप परिणत परमाणुओंके स्कंधका अवगाह, ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंधका अवस्थान अनन्त परमाणुके ऐसेही स्कंधकी स्थिति, ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंधकी स्थिति तीन प्रदेशोंमें है ।

इसही प्रकार लोकाकाशके चार-पांच-छह-सात-आठ-नौ-दश इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेश पर्यंतों चार पांच-छह-सात आठ नौ-दश-इत्यादिक संख्यात और असंख्यात पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका जो लोकाकाशके प्रदेशोंकी वयायोग्य गणनानुसार सुखे हुये होसकते है वा यंचे हुये (सूक्ष्मरूपमें नहीं) अथवा एक नियमकी गणनानुसार सूक्ष्मरूपमें परिणतभी होसकते हैं, अवस्थान भाज्यरूप जानो, परन्तु अनन्त और अनन्तान्तत पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका लोकाकाशके एक-दो,तीन, चारसे असंख्यात प्रदेशों तकमें उत्ती समय, अवस्थान वा अवगाह होसकता है जब वे अनन्त परमाणु वा अनन्तान्तत परमाणु सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं क्योंकि लोकाकाशके दो असंख्यात ही प्रदेश है । सारण रहे कि नितनी सुखी हुई परमाणु है

एक एत प्रदेश एकप्रदेश आदिर्येषा त इमे एकप्रदेशादय । तेषु पुद्गलानामव-
गाहो भाज्यो विकल्प्य ॥ अत्रयवेन विग्रह

उत्तने लोकाकाशके प्रदेशोस अधिकम् अन्यानीय नही होसकती है । अधिकसे अधिक उतने ही
आकाशके प्रदेशोंमें उनका अलगवा वा टिकाव होसकता है जितनी उनकी खुले रूपसे संख्या है ॥
पुरनुवादः—एकमे एव प्रदेशोऽप्येकप्रदेशोऽपि ।
एकप्रदेशोऽपि आदिभिः येषाम् अत्रैकप्रदेशादयम् । = एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् प्रथममें जिनके वे इतने “एक प्रदेशादय” है
तेषुः ।

विविन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पाँच-अह-नर्यादि
सख्यात प्रदेशोंसे, असंख्यात प्रदेशोंतकमें)
= पुद्गलौ (की एकपरमाणु, दो परमाणु, तीन परमाणु, चार परमाणु, पाँच परमाणु, षोडश परमाणु,
अथ परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात,
अन्त्य और अनन्तान्त्य परमाणुओं)की
= स्थिति विभाग करनेयोग्य, = भाज्य है । विकल्पनीय है अंशनीय है ॥
= एकप्रदेशादिषु । इस षडुक्चनविसमासका) टुकड़ेटुकड़ेरूपसे वा अंशअंशकरि
= व्याकरणानुसार व्यवच्छेद (= विग्रह) वा विस्तार ित्रायमाया है सो

अवगाहः भाज्यः विकल्प्यः
अवयवेनः ।
विग्रहः ।

- (१) “एकप्रदेशादिषु” समासके अवयव इसप्रकार होसकत हैं कि—
- ० लोकाकाशके विषयवशते, पुद्गलजालाम् अवगाह मास्य । ० लोकाकाशके विषयसे पुद्गलजालाम् अवगाह मास्य ।
 - ० लोकाकाशके बहुवचनेषु पुद्गलजालम् अवगाह मास्य । ० लोकाकाशक बहुवचनेषु पुद्गलजालाम् अवगाह मास्य ।
 - ० लोकाकाशके एतद्वचनेषु पुद्गलजालाम् अवगाह मास्य । ० लोकाकाशके एतद्वचनेषु पुद्गलजालाम् अवगाह मास्य ।
 - ० लोकाकाशके समावयेषु पुद्गलजालानां अवगाह मास्य । ० लोकाकाशके समावयेषु पुद्गलजालानां अवगाह मास्य ।
 - ० लोकाकाशके अवयवेषु पुद्गलजालानां अवगाह मास्य । ० लोकाकाशके अवयवेषु पुद्गलजालानां अवगाह मास्य ।
 - ० एतेषु लोकाकाशके अवयवेषु पुद्गलजालानां अवगाह मास्य । ० लोकाकाशके अवयवेषु पुद्गलजालानां अवगाह मास्य ।
- (२) दोनों वाक्यों की तुलना करके इन दोनों विधानोंमें विग्रहशुद्धताक समासार्थ देखा पाव है अर्थात् विग्रह शीघ्र शीघ्र शब्दोंको निम्नादिवा है जो
बहुवचनेषु लोकाकाशके अवयवेषु

समुदायः समासार्थ इति एकप्रदेशोऽपि गृह्यते ।

समास-अर्थ-
समुदायः

= सौ-उक्त 'एकप्रदेशादिपुं' समासका भाव, अग्रिमाय, वा तास्य (=अर्थ)

= सर्वप्रथमं प्रारंभ करनेका है (=समुदाय); अथवा इच्छेकर्ममें लियजानेका है (=समुदाय) कि

इति-एक-प्रदेशो-अपि-समुदायः

= इस प्रकारसे (=वि)एकप्रदेश ही लेलियागया है भावार्थ ऐसा है कि 'एकप्रदेशादिपुं'

किन्नामिञ्चित् हेतुकोसे भाव होताहै कि उक्त वाक्य इत्यादि प्रत्ययोंके पूर्व १११ २२ ५१ परन्तमसे भावपदके
विभक्त्यसमुदायः समासार्थ इति वाक्य है । यदि विसर्गके पश्चात् श्-ञ्-स्-आदि तो विसर्गका विसर्ग ल्या एतदेशो वार्हे क्रमसे श्-प्-स्-में पञ्चदशो
एतस्यै विभक्त्यसमुदायः = विभक्त्य-समुदाय (वाक्य)के ।

(क) संस्कारार्थराजवार्तिक मुद्रित ५०७ पर कलकत्तेको संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिकका मुद्रित अन्तर्दाके अन्वय ५ पृष्ठ १७६ पर और ५०
पञ्चाक्षराको दूरी अनुवादित राजवार्तिक इत्यमिचितके अन्वय ५ पृष्ठ ३७ पर और ५० पञ्चाक्षराको श्यापरिवाहक अन्वयवित्त तत्पार्यराजवार्तिक
इत्यमिचितके अन्वय ५ पृष्ठ ५५ पर अन्वयवार्तिक वा है = 'एकप्रदेशादिविभक्त्यस्यपक्षे विभक्त्यः समुदायो वृत्तः' । १३ वाद्योपर'पुष्टि' शब्दका अर्थ समास है ।

अन्वय राजवार्तिकके सूत्र 'अक्षरस्येवमागादिपुं बीनानाम्' । १५ पर 'अक्षरस्येवमागदिपुं वा है कि 'अक्षरस्येव विभक्त्य समुदायो वक्तव्य' इति ।
(ग) अन्ततमागि सृष्टि कृता 'भूतसाधारीटीका' इत्यमिचितप्रतिके पर्व १५३ पर 'अथ श्याकरचन्द्रोपचयेल विमर्शो भवति समुदायः समासार्थो भवति
तथा एकप्रदेशोऽपि गृह्यते अथवा प्रदेशो गृह्यते = अब एकाक्षरस्यै अन्वयव एतद्वि विमर्श हागा है समासका अर्थ समुदाय होता है तब एक प्रदेश भी
प्रत्यय कियागया है और बहुत प्रदेश भी लियेगये है अथवा प्रत्यय लिये गये हैं । इस सम्बन्धमें हमका तत्पार्यसौकर्यातिवक तथा खेताम्बर आम्नायके
समास्यसत्त्वार्थापिगमस्त्रयं तथा इत्यौ माथ्यानुसारिकी तत्पार्य-टीकाओंमें कुछभी नहीं प्राप्त हुआ है ।

(घ) ५० अक्षरस्यपक्षे इत्सो सूत्रकेनेके ऐसा अनुवाद किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिपुं समास अन्वयवकरि कियाहै तारी समुदाय जानना' ।
(ङ) ५० पञ्चाक्षराको दूरीका अनुवाद इस प्रकार है कि 'यहां एकप्रदेशादिकर्मिचिद्वैतेतो समास कोहै सा समुदायस्यपुष्टिके अर्थ सर्वोषिकके समानहै
इक दूरीकीही राजवार्तिक १५वां सूत्रको प्रथमावार्तिक 'अक्षरस्येवमागदिपुं' समास इति का यह अनुवाद किया है कि 'अक्षरस्येवकरि विमर्शकोबारे
अपुष्टिका अर्थ' समुदाय है यथापत्ती पुष्टिका अर्थ' समास है ।

(च) ५० पञ्चाक्षराको श्यापरिवाहक अनुवाद करते हैं 'एक प्रदेशादिके विषये समुदायपुष्टिकय जो अर्थ' है सो सर्वविशयके समान है । ताकारि
एकप्रदेशमी संक्षेप हीच होच है देना जानना' । यह अनुवाद 'एकप्रदेशादिपुं इति विमर्शः समुदायो वृत्तः' समुदायो वृत्तः; समुदायो वृत्तः; समुदायो वृत्तः
पुष्टिका है प्रथम वार्तिक 'एकप्रदेशादिविभक्त्यस्यपक्षे विभक्त्यः समुदायो वृत्तः' का अनुवाद ऐसे किया है कि यहां एकप्रदेशादिपुं या अनुभवकर्ता
वाक्यका विमर्श अन्वयकरि है तारी समुदाय वृत्ति जानना' । 'अक्षरस्येवमागादिपुं जीवानाम्' । १५वां सूत्रको प्रथम वार्तिक 'अक्षरस्येव विमर्श समुदायो
वृत्तः' का अनुवाद ऐसा किया है कि 'अक्षरस्येवकरि विमर्श है सो समासमें समुदायकय अर्थ कृ बने है'
यदि हम जरीहूरं श्यापरिवाहक तत्र माननेतो अक्षरस्य विमर्शसमुदाय-असात्तार्वति एकप्रदेशीप्रियगृहते वाक्यका अनुवाद इसप्रकार होता
अक्षरस्यैतैः विमर्श-समुदायः ।

अनुवर्तते । इति-एकप्रदेशः ३। अर्थः ० = सौ (एकप्रदेशादिपुं) समासका अर्थ है (एकप्रदेशादिपुं) यह समास है इस समासके अर्थ का अर्थ अक्षरस्येवमाग
समास-अर्थः ३। इति-एकप्रदेशः ३। अर्थः ० = सौ (एकप्रदेशादिपुं) समासका अर्थ है (एकप्रदेशादिपुं) यह समास है इस समासके अर्थ का अर्थ अक्षरस्येवमाग

= यहच किया गया है भावार्थ यह है कि (एकप्रदेशादिपुं) यह समास है इस समासके अर्थ का अर्थ अक्षरस्येवमाग

एक एव प्रदेशः एकप्रदेशः । एकप्रदेश आदिर्येषा त इमे एकप्रदेशादयः । तेषु पुद्गलानामव-
गाहो भाज्यो विकल्प्य ॥ अत्रयवेन विग्रह

उत्तने लोकाकाशके प्रदेशोति अधिकमे अवगाहनीय नरी होसकती री । अधिकसे अधिक उत्तने ही
आकाशके प्रदेशोमे उनका अवगाह वा टिकाव होसकता है जितनी उनकी सुले रूपमें संख्या है ॥
रूपनुवादः—एकः एव प्रदेशः । एकप्रदेशः ।
एकप्रदेशः । आदिः । येषाम् । एकप्रदेशादयः । = एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् ययमें जिनके वे इतने “एक प्रदेशादय ” है
तेषु । = तिन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-श्री-नीन-चार-पाँच-छह-इत्यादि
संख्यात प्रदेशोमे, असंख्यात प्रदेशोत्वकर्म)

पुद्गलानाम् ।

=पुद्गलों (की एकपरमाणु, श्री परमाणु, तीन परमाणु, चार परमाणु, पाँच परमाणु,
छह परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तान्त परमाणुओं)की

अपगारः । भाज्यः । विकल्प्यः ।

=स्थिति विभाग करनेयोग्य = भाज्य है । विकल्पनीय है अंशनीय है ॥

= (एकप्रदेशादिषु इस यदुवचनविसमासका) टुकड़े टुकड़े रूपसे वा अंशअंशकरि

= व्याकरणानुसार व्यवच्छेत् (= विग्रह) सार (विग्रह) वा विस्वार िऽयागया है सो

- (1) “एकप्रदेशादिषु समासके अवयव इसकार द्वारा कहत है कि = लोकाकाशके एकप्रदेश । पुद्गलाना अवगाह मात्स्यः । ऐस एकप्रदेशकी विभागया है ॥
0 लोकाकाशके विग्रहोको- पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः । 0 लोकाकाशके विग्रहोषु पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः ।
0 लोकाकाशके बहुप्रदेशेण पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः । 0 लोकाकाशके बहुप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः ।
0 लोकाकाशके चतुर्प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः । 0 लोकाकाशके चतुर्प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः ।
0 लोकाकाशके सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः । 0 लोकाकाशके सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः ।
0 लोकाकाशके अष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः । 0 लोकाकाशके अष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः ।
0 लोकाकाशके दशप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः । 0 लोकाकाशके दशप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः ।
0 लोकाकाशके संख्यात्मकप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह मात्स्यः । 0 लोकाकाशके संख्यात्मकप्रदेशेषु अपि पुद्गलानां अवगाह-मात्स्यत्वम् ॥
(2) यामे वाप्येकी रूपीहूँ संख्यात अर्थात् स्थितिमें विग्रहयुक्ताः समासात् येका पाठ है अर्थात् विग्रह लीट उच्युत्वाव शब्दोको मिकादिषा है सो
बहुवचनो लोकाकाशके संख्यात

समुदाय समासार्थ इति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते ॥

समास अर्थः **—सोः एक 'एकदेशोऽपि' स्यात्सक्य मास, अथियाय, वा तात्पर्य (=अर्थः)**
 समुदायः **—संबन्ध रूपमें प्रष्टय करनेका है (=समुदाय), अथवा इच्छेरूपमें विद्यमानेका है (=समुदाय) कि**
 इति एक प्रदेशः **—(इति) एकप्रदेश मी छेविषयागया है भाषार्थ ऐसा है कि 'एकप्रदेशोऽपि'।**

निम्नलिखित हेतुओंसे ज्ञात होता है कि एक पाठ ग्रन्थ है (क) सर्वाधिकारी तीन हस्तलिखित प्रतिगोके वर्ष १११ २२ ५१ परक्रमसे अथपयवेन विमलसमुदायः समासार्थ इति' पाठ है ॥ यदि विसर्गके पश्चात् छ्, ब्, स्, ङादि जो विसर्गका विसर्ग बना रहनेको चाहे क्रमसे छ्, प्, स्, में एकदशमे दसदशे विषयसमुदायः = विमलः समुदाय (वाक्य) के ॥

(क) अस्वार्थप्रत्ययार्थिक मुद्रित पुष्प २०३ पर कलकत्तेकी संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिकका मुद्रित अनुबाधके अध्याय ५ पुष्प १४४ पर और एवं पद्यालाभको दूनो अनुबाधित राजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पु ३७ पर और एवं पद्यालाभको न्यायविभाकर अनुबाधित तत्कार्यराजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पु २५५ पर प्रत्ययार्थिक यह है 'एकदेशोऽपि विषयवचनेन विमलः समुदायो वृत्तः' ॥ १॥ यहापर 'वृत्ति' शब्दका अर्थ समास है ॥ तत्कार्य राजवार्तिकके सूत्र 'असंबन्धेयमाणादियु औवानाम्' ॥ १५ ॥ पर प्रत्ययार्थिक यह है कि 'अथपयेन विमल समुदाया वृत्तयः' इति

(ग) धृतसागरि सृष्टि हस्ता 'धृतसागरीटीका' हस्तलिखितप्रतिके एवं १५३ पर 'यथा स्वार्थकोऽथवचनेन विमलो भवति समुदायः समासार्थो भवति तथा एकदेशोऽपि गृह्यते अथः अत्र प्रदेशो गृह्यते ॥ अत्र स्वार्थको अथवचन एवैत विमल होना है समासका अथ समुदाय होना है तब एक प्रदेश मी प्रष्टय ङिकागया है और बहुत प्रदेश मी लियेगये है अथवा प्रष्टय लिये गये है ॥ इस संस्करणमें इसको तत्कार्यभूकोत्वार्थिक तथा प्रदेशान्तर आश्रयान्तरके सन्ध्यात्तत्कार्यविमलसूत्रमें तथा उक्तो भाष्यानुसारिणी तत्कार्य टीकामें कुछनी गही मात्र हुआ है ॥

(घ) एवं अत्रकार्यवचनो हसो सूत्रकेगोचरे ऐसा अनुवाद किया है कि 'यहां एकदेशोऽपि समास अथवचनकरि किया है तर्हि समुदाय जानना' ॥ (क) एवं पद्यालाभको दूनोका अनुवाद इस प्रकार है निम्न एकदेशोऽपि कल्पिते नैसो समास ओहै सा समुदायकल्पयुक्तिके अर्थ सर्वाधिकके समासमें उक्त दूनोकीने राजवार्तिक १५५वां सूत्रको प्रथमावार्तिक 'अथपयेन विमलः समुदायो वृत्तयः इति अत्र यत्र अनुवाद किया है कि 'अथवचनकरि विमलहोकरे अथवृत्तिका अर्थ समुदाय है' यहापरनी वृत्तिका अर्थ समास है ॥

(ब) एवं पद्यालाभको न्यायविभाकर अनुवाद करते हैं 'एक प्रदेशोऽपि किये समुदायवृत्तिरूप जो अर्थ है जो सर्वाधिकके समास है ॥ तत्कारि एकदेशोऽपि प्रष्टय होय है ऐसा जानना' ॥ यह अनुवाद 'एकदेशोऽपि' इति विमलः समुदायो वृत्तयः सार्थादिवत् ॥ तैनेकदेशोऽपि अंतर्भवति' वृत्तिका है ॥ प्रथम वार्तिक 'एकदेशोऽपि विषयवचनेन विमलः समुदाया वृत्तयः का अनुवाद ऐसे किया है कि यहां एकदेशोऽपि वा वृत्तयवर्णात् वाचका विमल अथवचनरि है तर्हि समुदाय वृत्ति जानना' ॥ 'असंबन्धेयमाणादियु औवानाम्' ॥ १५५वां सूत्रकी प्रथम वार्तिक 'अथपयेन विमलः समुदायो वृत्तयः इति का अनुवाद ऐसा किया है कि 'अथवचनकरि विमल है जो समासमें समुदायक अर्थ कू है है' ॥

यदि हम धृतोदरि सर्वाथ सिद्धिवृत्तिका पाठ मानेंतो अथवचन विमलसमुदायः समासार्थ इति एकदेशोऽपिगृह्यते वाक्यका अनुवाद इसप्रकार होगा अथपयेन विमलः समुदाय ॥

— इच्छे २ इच्छे वा अंश २ इच्छे विमल (अथवा समासात्त वाचक वाक्य) का (यहां) समास व समुदाय व समास-अर्थः ॥ इति एकदेशोऽपि समासके अर्थ के (स्पष्ट करनेके लिये) है ऐसे (आकाशका) एक प्रदेशमी

— प्रष्टय ङिका गया है मांशय यह है कि (एकदेशोऽपि) अत्र समास है इस समासके अंश वा अथवचनका मांश

गृह्यते ॥

तद्यथा—एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाह द्वयोरैकत्रोभयत्र च बद्धयोरबद्धयोश्च त्रयाणामकत्र
द्वयोल्लिषु च बद्धानामबद्धाना च ॥ एवं संख्येयासख्येयानन्तप्रदेशाना स्वन्धानामेकसख्येया
संख्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेष्वस्थानं प्रत्येतव्यम् ॥

तयथा एकस्मिन् देशे आकाशमदेशेऽ परमाणोर्भूः
अवगाहः॥ द्वयोर्भूः एकत्र अवगाहप्रच
बद्धयोर्भूः अवच्ययोर्भूः च॥

= जैसे एक आकाशके प्रदेशमें (एक) परमाणुका
= अवस्थान है । दो(परमाणु)का एकप्रदेशमें (=एकत्र) तथा दो प्रदेशोंमें (=अभयत्र)
= बंधी हुई का तथा (=च)बुद्धी हुई का (अवगाह) है अर्थात् दो परमाणु, बंधी हुईकी
जो सूक्ष्मरूपमें परिणामी है लोकाकाशके एकप्रदेशमें अवगाह है और दो परमाणु
खुली हुईका जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणामी है तथा दो परमाणु, बंधीका भी जो
सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणामी है लोकाकाशके दो प्रदेशमें अवगाह है ।

च० त्रयाणाम् ॥ एकत्र० अवदानाम् ॥
(प्रयाणाम् ॥) द्वयोर्भूः० बदानाम् ॥ च० अवदानाम् ॥
दो परमाणुं, (सूक्ष्मरूप परिणत) और एक लक्ष्मी हुईका वा तीनों सूक्ष्मरूप परिणतका (अवगाह) है ।
(प्रयाणाम् ॥) त्रिषु ॥ अवदानाम् ॥
पूर्व० संख्येय असंख्येय-अनन्तप्रदेशानाम् ॥ स्कृ चानाम् ॥
(स्वोक्तिप्रा) अनन्तमें अनन्त और अनन्तान्त दोनों जैसा पृथग फरा है आजतैरे)
= एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह इत्यादि संख्यात और अनन्तान्त प्रदेशोंके स्कृत्योंका
= अवगाह अपवा स्थिति यतीति इरानी बाहिये अर्थात् पुद्गलकी दो तीन चार पाँच

आदिक संख्यात, असंख्यात, अनन्त तथा अनन्तानन्त परमाणुओंके भे (सूक्ष्मरूपमें परमाणु) है स्कृत्यका अवगाह
लोकाकाशके एकप्रदेशमें ही है । संख्यात असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कृत्योंका अवगाह
लोकाकाशके संख्यात प्रदेशोंमें ही है और असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कृत्योंका अवगाह
लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें ही है । यद्यपि संख्यात रई कि मितनी लुकी हुई परमाणु रई उतने आकाशके
प्रच नहीं । एकप्रदेशरिषु यद्यपि भी जो बहुतीति समाप्त माना है वह तद्गुणवसतिबाल बहुतीति है इसलिये यद्यपि एकप्रदेशसहित अन्य प्रदेशोंमें
पुद्गलरूपका अवगाहन माला है । यदि यद्यपि अतद्गुणवसतिबाल बहुतीति वह समाप्त माला जाता तो एकप्रदेशका प्रच नहीं होता, फिर एकप्रदेशमें
भी यद्यपि किन्ही पुद्गलकीका अवगाह है वह भी नहीं होसकता ।

तथा—एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाह द्वयोरैकत्रोभयत्र च बद्धयोरबद्धयोरच त्रयाणामेकत्र
द्वयोस्त्रिषु च बद्धानामवद्धानां च ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामेकसंख्येया-
संख्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेष्वस्थानं प्रत्येत्यम् ॥

तथा एकस्मिन् अकाशप्रदेशे परमाणोर्भूः

अवगाहोर्भूः द्वयोर्भूः एकत्र भवत्येव च

बद्धयोर्भूः अवध्ययोर्भूः च

=वैस एक आकाशके प्रदेशमें (एक) परमाणुका

=अवस्थान है । दो(परमाणु)का एकप्रदेशमें (=एकत्र) तथा दो प्रदेशोंमें (=द्वयएव)

=वैधी हुई का तथा (=च)सुखीदुरी का (अवगाह) है अर्थात् दो परमाणु, बंधीदुरीकी

जो सूक्ष्मरूपमें परिणामी है लोकाकाशके एकप्रदेशमें अवगाह है अर्थात् दो परमाणु

सुखी दुरीका जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणामी है तथा दो परमाणु, बंधीका भी जो

सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणामी है लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें अवगाह है ।

=और (=बंधीन)(परमाणुओं)का एकप्रदेशमें (=एकत्र)बंधीदुरीका(सूक्ष्मरूपपरवर्तितका)

=(तीन परमाणुओंका) दो प्रदेशोंमें (=द्वयो)बंधीदुरी और(=च) सुखीदुरीका अर्थात्

=(तीन परमाणु)का तीन प्रदेशोंमें सुखी दुरीका वा तीनों सूक्ष्मरूप परिणतका(अवगाह) है ।

(संख्येय परिणत)और एक सुखी दुरीका वा तीनों सूक्ष्मरूप परिणतका(अवगाह) है ।

=वैस प्रकार संख्यात-असंख्यात अन्त और अनन्तानन्त प्रदेशोंके संख्योका

(स्योक्तिपदां) अनन्तमें अनन्त और अनन्तानन्त दोनों वैसा प्रथम कदाहै आजावेहै)

=एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह इत्यादि संख्यात और असंख्यात लोकाकाशप्रदेशोंमें

=अवगाह अथवा स्थिति प्रतीति करनी चाहिये अर्थात् पुद्गलकी दो तीन चार पाँच

आदिक संख्यात, असंख्यात, अनन्त तथा अनन्तानन्त परमाणुओंके जो (सूक्ष्मरूपमें परणामी) संख्योकाअवगाह

लोकाकाशके एकप्रदेशमें है । संख्यात-असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके संख्योकाअवगाह

लोकाकाशके संख्यात प्रदेशोंमें है और असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके संख्योकाअवगाह

लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें भी है । यहाँपर स्मरण रहे कि भित्तनी सुखीदुरी परमाणु है तनेआकाशके

च एकप्रमाणुर्भूः एकत्र भवदानाम् ॥

(द्वयोर्भूः) द्वयोर्भूः अवदानाम् ॥ च एकप्रमाणुर्भूः

(द्वयोर्भूः) द्वयोर्भूः अवदानाम् ॥

एवं असंख्येय-असंख्येय-अनन्तप्रदेशानाम् ॥ संख्येयानाम् ॥

एक-संख्येय-असंख्येय-प्रदेशेषु लोकाकाशेषु

अवस्थानाम् ॥ प्रत्येत्यम् ॥

अवच नहीं । एकप्रदेशमें एकपर भी जो बहुरीह समाप्त माना है वह तपुःबुधसिद्धान्तबहुतीह है इसलिये यहाँपर एकप्रदेशहित अन्य प्रदेशोंमें
दुर्लभप्रत्येका अवगाहन माना है । यदि यहाँपर अतदुद्गलसंखितल बहुतीहिये यह समाप्त माना जाता तो एकप्रदेशका महत्व नहीं होता, फिर एकप्रदेशमें

ननु युक्तं तावदमृत्यायामधमंयोरकत्राविरोधनावरोध इति। मूर्त्तिमता पुद्गलाना कथमित्यत्रोच्यते-
 श्रवणाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्त्तिमतामप्यवगाहो न विरुध्यते । एकापवरके अनेकदीप-
 प्रकाशावस्थानवत् ॥ आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्यवसेयम् ॥ तदुक्तम्-ओगाढगाढाणि चिञ्चो

प्रदेशोऽस्य अधिक प्रदेशोंमें अवगाहनीय नहीं हो सकती है । अधिकसे अधिक उत्तरो भाकाशके प्रदेशोंमें
 उनका अवगाह वा स्थिति हो सकती है मितनी उनकी सुखेकर्म संख्या है । जैसे पवास सुखी हुई
 परमाणु है तो ये परमाणु पवास ही आकाशके प्रदेशोंकी अवगाहवैगी नकि अधिक प्रदेशोंकी

ननु युक्तम् ३ ॥ तावत्सूक्ष्मपरिणामोऽधमं अवयवो ३ ॥
 एतत्सूक्ष्मपरिणामोऽधमं अवयवो ३ ॥ इति मूर्त्तिप्रामाण्यम् ३ ॥
 पुद्गलानाम ३ ॥ इत्यप्युक्तिः ३ ॥ अथऽध्यवसेयम् ३ ॥
 अवगाहन-स्वभावत्वात् ३ ॥ अथऽसूक्ष्मपरिणामात् ३ ॥
 मूर्त्तिप्रामाण्यम् ३ ॥ अथऽअवगाहः ३ ॥ नऽविरुध्यते ३ ॥

अथ इत्या (आवत्) ठीक (युक्त) है कि अमूर्त्तिक धर्मद्रव्यका और अवयवद्रव्यका
 = एकत्रेकमें विरोधकरि रहित अवगाह वा अवस्थान (= अवरोध) है । स्वी मयवा मूर्त्तिक
 = पुद्गलको जैसे इस प्रकार (परस्पर अवरोधक एकत्रेकमें अवगाह) यथा करणया है
 = (उपर) अवगाहनके स्वभावापणसे तथा (= व) सूक्ष्म परिणामसे
 = स्वी (पुद्गल) निकेंभी अवगाह नहीं विरोधाभावाहै अर्थात् मूर्त्तिकपदायोंकी अवगाहन

स्वभाव वा शक्तिकरि (= अवकाशदान अथवा स्थानदान देनेकी शक्तिस) और सूक्ष्म
 रूप विकारकोपाम होनेसे एक सत्रविधै अवस्थान वा स्थिति अवरोधक है ॥ भाषार्थ द्रव्योंक स्वभाव प्रति नियत है
 और ये विधायिक है इसलिये उनके स्वभावके विषयमें यह भासुपरी नहीं होसकता कि ऐसा होना चाहिये वा ऐसा न
 होना चाहिये जैसे अग्नि आदि पदायोंका स्वभाव बलानेआदिकारै बर्ण पर यह आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि
 इनका स्वभाव बलाने आदिका क्यों नहीं तथा कष्टादि पदायोंका स्वभाव बलानेआदिका
 क्यों है बलानेआदिका क्यों नहीं? क्योंकि जैसा बिसका स्वभाव होगा उसका जैसा ही स्वभाव रहगा वह पक्षत नहीं
 आसकता वैसेही यद्यपि पुद्गलमूर्त्तिमान पदार्थ में तथापि अयनेसमानजातीय पदायोंको अवगाहन दान इत्या उनका
 स्वभाव है अथः एक आकाशके प्रदेशमें भी अनन्त रह सकते है ॥

एकअपवरके ३ ॥ अनेकदीपकाश-अवस्थान-
 सू ३
 ३ ॥ आगम प्रामाण्यम् ३ ॥ तथाऽध्यवसेयम् ३ ॥ तदुक्तम् ३ ॥
 ओगाढ-गाढ-णिचिञ्चो ३ ॥ (अवगाह-गाढ-निचिञ्चो ३ ॥
 = सप्तम (मूर्त्तिक द्रव्योंके भी एकत्रेकविधै परस्पर अवगाह अवरोधकयसे होता है)
 = बंधुकि (= व) आगमके प्रामाण्यनेसे उसी प्रकार आगम चाहिये । कथापीरै कि
 = एक परविधै (= अवपवरके) अनेक दीपकोंके उजालोंकी स्थितिके
 = सप्तम (मूर्त्तिक द्रव्योंके भी एकत्रेकविधै परस्पर अवगाह अवरोधकयसे होता है)
 = बंधुकि (= व) आगमके प्रामाण्यनेसे उसी प्रकार आगम चाहिये । कथापीरै कि

अथ जीवानां कथमवगाहनमित्यत्रोच्यते—

असंख्येयभागोद्विषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

लोकाकाशौ इत्यनुवर्तते। तस्यासंख्येयभागीकृतस्यैको भागोऽसंख्येयभाग इत्युच्यते। स आदियेषां ते

पुगलकाशः (संख्येयलोकाः) पुद्गलकाशेऽसंख्येयलोकाः, अकारोभोर एव लोकाः पुद्गलकाशास

सुदुमरिः (कादरेः) (सूत्रैः) (आदरेः)

प्रखण्डाण्यदिः (विषयदिः) (अनन्यानन्तैः) (विसिधैः)

= यो (पुद्गलकाश) सूक्ष्मवादा (वादादिदिग्वादादिदिग्वाकृतमेतृवीयाके दोनोरूपे हे
= अनन्त्यान्व नानामकारसरे अर्थात् सवभोर यहलोक सूक्ष्म और वादाअनंता

नंत नाना प्रकार पुद्गलकाशोक्ति गाढागाह उसाठस, वा लबासव भराहुआहे
अथ श्रीवानाम् ॥ १५ ॥ असंख्येयभागीकृतस्यैको भागोऽसंख्येयभाग इत्युच्यते। स आदियेषां ते

सूत्रम्— (लोकाकाशौ) असंख्येयभागोद्विषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

सत्राय — लोकाकाशौ ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥
जीवानाम् ॥ अकारोभोर एव लोकाः पुद्गलकाशास

= लोकाकाशक असंख्येयभागोद्विषु

= श्रीवोका अस्वयान् ॥

आदिलेकर लोकरपर्यन्त नीचो की स्थिति है। भावार्थ यह है कि लोकाकाशक एक

भागों में ही एक नीच का अस्वयान् है, दो असंख्यतवें भागों में ही एक नीच का अस्वयान् है, तीन असंख्यतवें

एक नीच का अस्वयान् है चार असंख्यतवें भागों में ही एक नीच की स्थिति वा अस्वयान् है और ऐसे ही

सर्वद्वयात् काने है तब लोकरणं सर्वद्वयात् सखलोक एक नीच का अस्वयान् होता है। नाना अस्वयान् अस्वयान् भो

सर्वलोक में ही। लोके प्रदेश लोकाकाश का अस्वयान् नहीं है। दोनो भागों में इस सखलकापाठ और अथ एकसाथो

अतस्त्रेयभागीकृतस्य ॥ अस्त्रेयभागीकृतस्य ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥

इति ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥

असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥

असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥

असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥ असंख्येयभागोद्विषु ॥

1781
 अनु युक्त तावदमृत्युत्थाधास्योयोरंक्रान्नाविरोधनावरोध इति। मूर्तिमता पुद्गलाना कथमित्यत्रोच्यते-
 श्रवगाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यवगाहो न विरुद्ध्यते । एकापवरके अनेकदीप-
 प्रकाशावस्थानवत् ॥ आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्यवसेयम् ॥ तदुक्तम्-श्रोगाढगढणि चिञ्चो

प्रदेशोंसे अधिक प्रदेशोंमें अवगाहनीय नहीं हो सकती है । अधिकतम अधिक तनेही आकाशके प्रदेशोंमें
 उनका अवगाह वा स्थिति हो सकती है किन्तु उनकी उनकी लुकेरूपमें संख्या है । जैसे पवास खलीदुरी
 परमाणु हैं तो ये परमाणु पवास ही आकाशके प्रदेशोंको अवगाहवैगी नकि अधिक प्रदेशोंको
 =अथ इतना (=आषट्) ठीक (=युक्त) है कि आयुर्वीक कर्मद्रव्यका और आयुर्वद्रव्यका
 =एकसेमें विरोधकरि रहित अवगाह वा अवस्थान(=अवरोध) है । अर्थात् आयुवा युर्वीक
 =युद्गलको जैसे इस प्रकार (परस्पर अविरोधक्य एकसेमें अवगाह) यहाँ करवाया है
 =अथ (अथ) अवगाहनके स्वभावप्रकारसे तथा(= अ)सूक्ष्म परिणामनसे
 =रूपी(पुद्गल)निकैपी अवगाह नहीं विरोधाभावाहै अर्थात् युर्वीकयद्योकी अवगाहन
 स्वभाव वा शक्तिकरि(=अथकाशदान अववा स्थानदान दनेकी शक्तिस)औरसूक्ष्म
 और ये विभक्तिमें अवस्थान वा स्थिति अविरोधक्य है ॥ आचार्य द्रव्योंके स्वभाव प्रति नियत है
 होना कारणसे जैसे अग्नि आदि पदार्थोंका स्वभाव ज्ञानेमादिकाहै वहाँ पर यह आक्षेप नहीं किया जा ऐसा न
 इनका स्वभाव ज्ञानेमादिका स्वभाव ज्ञानेमादिकाहै वहाँ पर यह आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि
 क्यों है ज्ञानेमादिका क्यों नहीं? क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव होगा उसका वैसा ही स्वभाव ररगा यह पलट नहीं
 जासकता वैसीही यद्यपि पुद्गलमूर्तिमान पदार्थ में तथापि अपनेसमानभातीय पदार्थोंको अवगाहन दान देना हमका
 स्वभाव है अत एक आकाशके प्रदेशोंमें अनन्त रह सकते हैं ॥

एक विचारकोमार्ग होनेसे एक क्षणवै अवस्थान वा स्थिति अविरोधक्य है ॥ आचार्य द्रव्योंके स्वभाव प्रति नियत है
 और ये विभक्तिमें अवस्थान वा स्थिति अविरोधक्य है ॥ आचार्य द्रव्योंके स्वभाव प्रति नियत है
 होना कारणसे जैसे अग्नि आदि पदार्थोंका स्वभाव ज्ञानेमादिकाहै वहाँ पर यह आक्षेप नहीं किया जा ऐसा न
 इनका स्वभाव ज्ञानेमादिका स्वभाव ज्ञानेमादिकाहै वहाँ पर यह आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि
 क्यों है ज्ञानेमादिका क्यों नहीं? क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव होगा उसका वैसा ही स्वभाव ररगा यह पलट नहीं
 जासकता वैसीही यद्यपि पुद्गलमूर्तिमान पदार्थ में तथापि अपनेसमानभातीय पदार्थोंको अवगाहन दान देना हमका
 स्वभाव है अत एक आकाशके प्रदेशोंमें अनन्त रह सकते हैं ॥

एक प्रकरणसे ॥ अनेकदीपप्रकाश-अवस्थान-
 वृत् ॥
 = एक पारिवै (=अपवर्क) अनेक दीपकोंके उजालोंकी स्थितिके
 = समान(युर्वीक द्रव्योंके भी एककेअर्थमें परस्पर अवगाह अविरोधक्यसे होता है)
 = बंदुरि(= अ)आगणके यथाप्यनसे बनी प्रकार मानना कारणसे । अथापीहै कि
 आकाशका अत हुआ है ॥ (विभक्तिमें भी पाठ है)

व अगण प्रमाणपर है ॥ तथा अंशप्यवसेयम् ॥ तदुक्तम् ॥
 अगण-नाह-विभक्तिः ॥ (अवगाह-गाह-विभक्तिः)

अनन्तानन्ता वसन्ति ॥ न ते परस्परेण बादरीश्च व्याहन्यन्त इति नास्त्यवगाहविरोध ॥
 अत्राह लोकाकाशतुल्यप्रदेशे एकजीव इत्युक्तं, तस्य कथं लोकस्यासंख्येयभागादिषु वृत्ति ।
 ननु सर्वलोकव्याप्त्यैव भवितव्यमित्यत्रोच्यते—

॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अनन्तानन्ताः॥ वसन्ति ॥ न ते परस्परेण ॥

पञ्चादरीः॥ व्याहन्यन्ते ॥ इति ० न ० अस्ति ॥ अत्राह

विरोधः ॥

अथ ० आह ॥ लोकाकाशतुल्यप्रदेशे ॥ एकजीवैः

इति ० च कथं ॥ तस्यैकव्यैः ० लोकाकाशस्यैव असंख्येय

भागादिषु ॥ इति ॥ ननु असंख्येय

व्याप्त्यैः ॥ एव ० भवितव्यैः ॥ इति ० अथ अव्ययैः ॥

=अनन्तानन्त रहते हैं । न वे (सूक्ष्म सशरीर जीव) परस्परकरि

=व्या बादर(जीवों)से व्यापातेनात हैं । ऐसे नहीं है अत्राहानामें

=विरोध अर्थात् एकरी स्थानमें बहुत जीवोंका अवागह, विना परस्पर रोकटोकके होता है

=यहां पूछना है कि लोकाकाशके बराबर प्रदेश एक जीवमें है

=व्येसा करामत्ता है । विस (जीव)का कैसे लोकके असंख्यातवा

=भागादिकोंमें स्थिति है (=वृष्टि) ॥ सख्यव (=ननु) (बह जो) सब लोक

=व्याप्तिकरि ही होना चाहिये । ऐसे यहां (अक्षिप्त सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम् प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् = प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् (लोकाकाश)

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् अवगाह भवति ॥ १६

सूत्रार्थः—श्वेश-संहारविसर्पाभ्याम् ॥ प्रदीपवत् ०

=श्वेशोंके सकोच और विस्वार होनेसे दीपकके प्रकाशके सारथ

लोकाकाशे ॥ असंख्येयभागादिषु जीवैर्वा ॥ अत्राहः =लोकाकाशके असंख्यातवा भागादिकमें जीवोंका अवगाह वा स्थिति है अर्थात्

(१) परस्पर—यह शब्द निर्दिष्ट है । (२) लोक—यह शब्द पुष्टिग और अपुसकलिंगमें

आता है । (३) स्वतास्पर काम्नायके अयावतत्वादीश्विगामसूत्र”में विसर्पेभ्यां शब्दके स्थानमें ‘विसर्गाभ्यां’ पाठ है और विसर्ग शब्दका अर्थ विस्तार

क्रिया है (पैवा पुष्ट २२३) अथ पाठ दोनों स्वतास्पर तथा विगम्बर आम्नायोमें एकसा है अर्थात् ही एक है । अगरे एतां किलो किलो पुस्तकमें

विसर्पाभ्यां शब्दके स्थानमें विसर्पाभ्यां पाठ है । दोमोही पाठ “अचोरवाभ्यां वे (वा)” ८-४ ४३वां सूत्रसे मुख्य है न परवर्ता सूत्र अनुवर्तियो

वादिह सबत्रा सब इत्य (सत्र)में अत्राश्वार क्रियापत्ता है ।

ऽसख्येयमागादय । तेषु जीवानामवगाहो वेदितव्य ॥ तद्यथा-एकस्मिन्नसख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते ।
 एवद्वित्रिचतरादिष्वपि असख्येयभागेषु आ सर्वलोकादवगाह प्रत्येतव्य ॥ नानाजीवाना तु सर्वलोक
 एव ॥ यद्येकस्मिन्नसख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते, कथं द्रव्यप्रमाणेनानन्तान्तो जीवराशि स-
 शरीरोऽवतिष्ठते ? । लोकाकाशे सूक्ष्मवाद्दर्भेदादवस्थानं प्रत्येतव्यम् । बादरास्तावत्सप्रतिघात-
 शरीरा । सूक्ष्मभावादेवैकनिगोदजीवावगाह्येऽपि प्रदेशे साधारणशरीरा

असख्येय-भागमागादय ॥

= असख्येयभागमादयः (वद्वसिषिद्धानस्य बहुश्रीहिसमासकर्म) है अर्थात्

असख्यातर्वा माग से लेकर लोकपर्यन्त समस्त माग हैं वे असख्येयभागमादयि हैं ॥

= तिन (असख्येय माग आदि लोक पर्यन्त) में जीवों का अणुस्थान

= जानना चाहिये । जैसे एक असख्यातर्वाभागमें एक

= जीव तिष्ठता है । इस प्रकार दो-तीन चार आदिक

= असख्यात भागोंमें भी समस्त लोक पर्यन्त (एक जीव) का अणुमाह

= पर्वीति करना चाहिये अथवा जानना चाहिये । (असख्यात के असख्यात वेद हैं)

विससे लोककाशके असख्यातर्वा मागके भी प्रदेश असख्यातर्वा जानना ।

= नानाजीवों का वो (अवगाह) सर्वलोकमें ही है (परम) जो एक

= असख्यातर्वाभाग में एक जीव तिष्ठता है तो

= कैसे द्रव्यपर्य्यादासे अनन्तान्त जीवराशि है

= सो शरीर सहित (लोकमें) तिष्ठती है (उपर) आकाशमें सूक्ष्मवात्करके

= वेदसे (जीवों का अणुस्थान वा अणुमाह) जानना चाहिये । वादर (जीव) तो (= तावत्)

= समप्रियात शरीर है अर्थात् वादर शरीर परस्पर एक दूसरेसे रुके हैं और रोकें भी हैं

= परन्तु सूक्ष्मजीव शरीर सहित हैं तो भी सूक्ष्मपना से ही (न्यून)

= एक निगोद जीवकफि अणुमाहने योग्य खेकमें (नकि परमाणु से तोके द्रुये प्रदेशमें)

= नानापरका शरीर अर्थात् वे जीव निकट आहार स्वासेष्वुत्पास आणु कोर काय वे

तदुः। जीवानाम् ॥ अणुमाह ॥

नैदिनरूप ॥ तेषु भागेषु एकस्मिन् ॥ असख्येयमाग ॥ एक ॥

जीव ॥ अतिष्ठते ॥ द्रव्य ॥ द्वि-भि-यदुर आदियुक्तं

असख्येयभागेषु ॥ अणि ॥ आ ॥ सर्वलोक ॥ अणुमाह ॥

पर्येतव्य ॥

नानाजीवानाम् ॥ नु ॥ सर्वलोक ॥ एव ॥ यदि ॥ एकस्मिन् ॥

असख्येयमाग ॥ एक ॥ जीव ॥ अतिष्ठते ॥

द्रव्य ॥ द्रव्यपर्यादात् ॥ अनन्तान्त ॥ जीवराशि ॥

शरीर ॥ अतिष्ठते ॥ लोक ॥ काश ॥ सूक्ष्मवाद्

अणुमाह ॥ अणुमाह ॥ पर्येतव्य ॥ वादर ॥ तावत् ॥

समप्रियात-शरीर ॥

तु ॥ अणुमाह ॥ शरीर ॥ अणि ॥ सूक्ष्मपणात् ॥ एव ॥

एक-निगोद-जीव-अणुमाह ॥ अणि ॥ प्रदेश ॥

नानापरका-शरीर ॥

अनवधृतप्रकाशपरिमाणस्य प्रदीपस्य शरावमानिकापवरकाधावरणशशात्परिमाणतेति ॥ अत्राह
धर्मादीनामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशात्सङ्करे सति, एकत्वं प्राप्नोतीति ॥ तन्न । परस्परमत्यन्तसंश्लेषे
सत्यपि स्वभाव न जहति ॥ उक्तं च । अरण्योण्यं पविस्ता दिता श्रोगासमण्यमण्यश्च ॥

अनवधृत प्रकाश-परिमाणस्य शराव-मानिका-अभयोदित प्रकाश परिमाणबाधे दीपकता सङ्कोरा(=शराव-प्राणिका वा पतीबी
अपवरक-आदि आवरण-वशात्) वत्-
परिमाणबाधे इति •

आदिकर्म धरानाता है वष उसका प्रकाशभी उस भाजनदिकके बराबरी परिमित वा सीमामें होजता है
अर्था पृथक्ता है कि यद्यपि द्रव्योंके परस्पर प्रवेशोंके
=भिन्नरहनेसे एकमेक (=संकरे) होजानेपर (दोनोंकी) एकता प्राप्त होती है
=(उपर)अर्था(एकता)जहीं(होती) है । परस्पर अत्यन्त मिलाव होनेपर
=भी (द्रव्यें अपने अपने अपने)स्वभावको नहीं छोड़ती है । कदागया भी है कि
=(ये वष द्रव्य) परस्पर प्रवेश करते हुये
=आपसका (=आपसमें)अवकाश देते है

(१) हा- तीसरे उदाहरणदिग्बद्धा वातु है जिसका धाप परस्परमें स्वाभाव वा कोकना है और आपसमेंपदमें आनेके क्षय में आता है । वहाँपर
कोकनेके क्षय परस्परमें क्षय में आये हैं । तीसरे गणक्य वातु जिसमें एक स्वर हो तो उसको पुनरादेश है अर्था यदि स्वर आदिमें दो तो स्वरको पुनरादेशे
है जैसे एव वातुसे इत्य होया यदि आदिमें व्यंजन हो (जैसाकि वहाँ है) तो आदिके व्यंजनको उसके परस्परके स्वरके साथ पुनरादेश है जैसे हा
वातुका शब्दा रूप होना, पुनरे रूप जिसेरुपे स्वरको रूप करते है (देखो अष्टाध्यायी७-५-४५) और 'दो' 'जैसे' एकदरसे है (देखो अष्टाध्यायी७-५-१२ सूत्र)
तब 'अर्था' ऐसा रूप हुआ है इस 'अर्था' के दोष 'आ' को वर्तमानका (अर्) के प्रथमतः मूलका (= अर्त्थ) है, और आनेके और विभिन्न 'आ'के
उत्पन्न किन्तु अनेकोंके साथ मिला देते है जिनके आदिमें स्वर होता है 'अर्था' से 'अर्' रूप बना और अति (बहुवचनका प्रथम ओङ्कार 'अर्त्थ')
रूप बना, जिसका रूप 'कोकने' है स्वागत है 'इत्य' । और यिष्ट सङ्क प्रत्यय जैसे मि-सि-ति रत्यादिके साथ 'अर्था' रूप रहता है जैसे अर्त्थामि-में
कोकना है अर्त्थसि व कोकना है आदि = अर्त्थ कोकना है । (२) 'पद' मनुसकर्मिण, प्रथमा और द्वितीया विभक्ति-बहुवचनके 'पदसि' और पदसि दो
रूप है और पुक्तिमें दोनों विभक्तियोंका 'पदता' है यहाँ प्रथमा विभक्ति-बहुवचनमें भेदी समकर्म प्रयोग किया गया है ।

अमूर्तस्वभावस्यात्मनोऽनादिवन्धंत्रत्येकत्वात् कथञ्चिन्मूर्तता विभ्रत कर्मणशरीरवशान्महद्गुण
च शरीरमधितिष्ठतस्तद्वशात्प्रदेशसहरणविसर्पणस्वभावस्य तावत्प्रमाणतायां सत्या असंख्येय-
भागादिषु वृत्तिरूपपद्यते, प्रदीपवत् ॥ यथा निरावरणव्योमप्रदेशे

यद्यपि एक-नीचके प्रदेशलोकाकाशके समान है सो वह जीवसर्व लोकाकाशमें व्याप्तहोना चाहिये तथापि वे प्रदेशरीपके मकाश
के समान संकोच विस्वारूप होनाते हैं और जैसा आपार(आभय-शरीर) जीव पाता है वैसारी उस (जीव)के प्रदेश
संकोच विस्वारूप होकर लोकाकाशके असख्यात भागाधिक्यमें उस जीव)का अवगाह होताहै। परन्तु केवलि समुद्रयावकी
अवस्थामें आत्माके मयके आठमदेश केन्द्र मंदिरके नीचे चित्रा पृथ्वीका वज्रमयी पटलके मयके आठमदेशोंमें निखल
विद्यते हैं और केवलि भगवान्के अन्यमदेश ऊर्ध्व अपः विर्यकुक्षयं वायं-दधर-जघर)सर्वप्रसर्वलोकात्मैः पूर्यताया व्याप्तहो जाते हैं ॥

रूपानुवादः-अमूर्त-स्वभावत्वम्। आत्मनः। अनादिबन्धम्।

मतिः। एकत्वात्। कथञ्चित्। मूर्ततायुः।

विभ्रत इ। कास्य। शरीर। वयवः। पदद्वै। बः। अणुः।

शरीरम्। अविच्छिन्नम्। वद-नशात्। प्रदेश-

संरख-विसर्पण-स्वभावस्यम्। तावत्।

मयाणानामयुः। सत्यायुः। असंख्येयव्याप्यवितुः।

प्रदीपवत्। वृत्तिभिः। रूपपद्यते।

=मूर्ति शून्य स्वभाववाले आत्माके(कर्मके) अनादिबन्ध
=मति एकता रूप होनेसे या एक क्षेत्ररूप अवगाह होनेसे कथञ्चित् मूर्तिपनाको
=प्राण करनेवाले(=विभ्रतः)। अर्थात् शरीरके वशसे वज्र और द्योत
=शरीरको ग्रहण करनेवाले और उत्कृष्ट(पदद्वै वा अणु शरीर)के वशसे प्रदेशोंके
=संकोचन और फँसाव स्वकृपवाले (ऐसी आत्माके जवने(देहके)
=व्याप्य होके(=व्याप्यतायां)। सते(=सत्यां)। लोकाकाशके)। असंख्यातर्वा भागाधिक्यमें
=दीपके मकाश सद्यः अवगाह (=वृत्ति) होता है अर्थात् यद्यपि स्वभावसे
आत्मा अमूर्तकि है तोभी कर्मके अनादि सन्ध-पसे एक क्षेत्ररूप अवगाह होने
शरीरके वशसे द्योत अथवा वज्र शरीर पाता है उस मातृक्रियेयुते शरीरके अनुसार
मकाशयु लोकाकाशके असंख्यातर्वा भागाधिक्यमें इस जीवका अवगाह होता है ॥
=नेसे मुझे इन्ने अकाश क्षेत्रम्

से कर्बचित् मूर्तिमान होनातारे और कर्मार्ण शरीरके वशसे द्योत अथवा वज्र शरीर पाता है उस मातृक्रियेयुते शरीरके अनुसार प्रदेशोंको संकोच अथवा विस्वारूपमें दीपके मकाशयु लोकाकाशके असंख्यातर्वा भागाधिक्यमें इस जीवका अवगाह होता है ॥

यथा अनिरपराख-व्योम-प्रदेशे

उसी प्रकारसे परमद्वय भाव और अमेरकनिमित्तचौर जैसे फलदायकत्व और उदासीनवासे मखलीके गमनकरनेमें सहाकारी वा सहायक है और स्थितिमें परिवर्तन होनेवाले भीष और पुद्गलकोंको अपरमद्वय उसी प्रकार भाव और यथापान(अभिनाभाषी) फलदायक है जैसे साया पयिक जनोंके उदरानेमें सहायक वा सहाकारी है, न तो अन्न मखलीको भेरया करता है कि वह गमन करे और न छाया पयिक जनोंको स्वयम् उदरनेकी प्रारक्षा करती है यदि ये गमनस्थिति करे तो उनको उदासीनवासे सहायता प्रदान करती है, परन्तु स्तराय रहे कि उक्त भाव और अमेरक कारण गमन और स्थितिके लिये अभिनाभाषी है कि जिसके बिना गमन और स्थिति नहीं होसकते हैं ॥

यय मन्तारि वा उदायवाका है जैसे उरुदुर्वलित = उपकार अपवा उदायिता करत है (देखा समाप्यत्स्वावापिगमसूक्त पृष्ठ १२०) इसलिय उपकार शब्दका अर्थ भी मन्तारि सहायता कीभाव देता है । इस अर्थ का समर्थन सर्वथा सिद्धिबुधि पृष्ठ २०७के 'उपकियत इत्युपकार = उपकियते इति उपकार = उपकार किया जाता है वा सहायता कीजाती है । इस वाक्यसे होता है । उपमह शब्दका अर्थ मन्तारि अपवा सहायता प्रती(महब की)जाती है देसा है जैसे 'उपगुण्य इत्युपमह' = उपगुण्यते इति उपमह अर्थात् मन्तारि वा सहायता प्रदह कीजाती है (देखो सर्वार्थसिद्धिबुधि पृष्ठ २०७) । दोनो उपमह और उपकार शब्दोंके ये व्युत्पत्त्य हैं, अर्थात् ये अर्थ' व्याकारवकी रीतिसे निकलते हैं ।

उपकार = कैलाये द्वये पुण्यादि(०)की सेना(०)भाजसभा(०)मलेखर, भूयक (देखो पद्यकम्पकाय पृष्ठ ७१ और वेद्य सस्कृत भाष्यकोय पृष्ठ १३५) उपमह = राहु अथ कर्तु आदि प्रह(०)कार(०)पन(०)कारावन्मनोमालना(०)भूयुमा-कारायात्स्य(०)ओङ्ना-भागना-संयोग(०)कम्पयो(०)उप०७१ १३५में क्रमसे है, इत्यादि और भी अर्थोंमें आते हैं उक्त समस्तको छोड़कर अब शांखागुहल तीन बात सिद्ध करनी हैं(क)यह कि उपकार तो सामान्यवचन है अर उपमह विशेष वचन है अर्थात् उपमहोका समुदाय उपकार है जैसे कोई श्वकिसीको पकड़े, योग्य करे, उसका विवाह करे-उसे व्यापारके लिये बन दे तो अवसर आने पर उद्वसकता है कि प्रिये तुम्हारे साथ पाठन उपमह, पोषककर(०)उपगुह, विवाहकर(०)उपगुह, आन्यउपगुह, पानउपगुह, इत्या उपकार किया जिसपर भी तुम मेरे प्रति कृतमता प्रगत करते हो । उपगुहका अर्थ अनुगुहमी है । (क)यह कि उपगुह और उपकार शब्द(०)सहायता-सहा(०)अनुगुह अनुगुहता-मन्तारि(०)कार्त्तु-मिन्त-रतु-म्यस्य अर्थोंमें आते जात हैं । (ग) यह कि अब एकही बातके सम्बन्धमें उपगुह किया जाय तब और अन्य अवसरोंपर भी उपकार और उपगुह शब्द अनेकपक्षसे एक दूसरेके अर्थ में आती जैसे आवाशयकता हो काममें आवेजात है ।

(क) (१) जो इस प्रकार है अर्थात् मलिका उपगुह है और स्थितिका भी उपगुह है ती दो(वचन)का निकटव वा अर्थ उपकार शब्दके प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनोंमें आना बोध्य था तब सूत्रका अर्थिम् माग देसा होता "यानिर्ममोयवप्यदी" (उपर) यह सूत्रक मन्तारि केवौकि सामान्यकरि कदा हुआ गृहीत संख्याबाका (उपकार शब्द)प्राय शब्द (उपगुह)के साथ संबन्ध होनेपर भी प्रथम गुह्य कीहुई संख्याको मन्तारि ओङ्ना है (देखो संस्कृतसर्वाय सिद्धिबुधि पृ० २०७) । (२) "न वैभूयुपकारशब्दस्य शिक्वचनप्रस्था सामान्योपकामाधिकवचनोपपत्तेः = च एवम् उपकार शब्दस्य शिक्वचनप्रस्था न सामान्यउपक्रमत् एक वचन उपपत्तेः और इस प्रकार उपकार शब्दमी दो वचनोंमें स्थिति होने (स्थिति आना चाहिये) । (उपर)मन्तारि(होना चाहिये) केवौकि सामान्यमें आत्म्य करतेस वा सामान्य करतेस एक वचन की प्राप्ति है । (३) "नक्तिसिद्धान्तिसुगुहवचनानि कर्तव्यं । कर्तव्यमैवोपकारशब्देन कार्यसामान्यत्वाभिप्रायात् गठिस्थियुपगुहाविधिकार्यविशेषकृतमत् । इतो कर्त्तव्यं । (४) "नक्तिसिद्धान्तिसुगुहवचनानि कर्तव्यं । (सूत्रमें) केवौ है, मन्तारि आना चाहिये (उपर) (उपगुह शब्द)अने(उपमह)आनाही चाहिये केवौकि उपकार शब्दके सामान्य कार्यनिकटव कियागया है(और) यदि उपगुह, स्थिति उपमहस विशेष कार्यका कथन होता है अर्थात् उपकार सामान्यवचन है और उपगुह विशेष वचन है । (५) (स्त्रोक) 'सुखापुय गृहशरयोप-अये औभाषि(स)किमम्' = सुखादि उपगुहान् अ उपकारान् औभाषिपार्किमम् । इतो कर्त्तव्यं कि पृ० ५२ और सुक्तु-क, औषित, मरय उपगुह है

मेलता त्रिय णिच्च सग सम्भावं ए जहंति ॥ १ ॥ यद्येवं धर्मादीना स्वभावमेद उच्यतामित्यत आह—

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

मेलातां वि० य० णिच्च० (मिलन्तः) अपि० च० नित्यम्०) = और (अ) नित्य = णिच्च = सदा प्रियखते द्रुये होनेपर भी (= वि = अपि)

सा० सम्भावादेण० = त्रिवि (स्वस्वभाव) न अहति ॥ १ ॥ = अपने (अपने) स्वभावको नहीं छोड़ते हैं (= अहति = देखो त्रिष्णुणी (१) पृष्ठ ४६)

यति० उपस०

पर्यादीनाम् ॥ स्वभावमेदं चरन्ताम् । इति० अतः० याएः० धर्माधिक (द्रव्यों) के स्वभावका वेद कराना चाहिये इसलिये (उपर = स्वयं) फालोरोके

(१) सूत्रम्—गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

= (१) जीवानाम् पुद्गलानाम् च) (१) गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकार भवति ॥ १७ ॥

पूर्यार्थ—जीवानाम् पुद्गलानाम् ॥ च० गति-स्थिति-उपग्रहौ ॥ = जीवोंके और पुद्गलोंके गमन और स्थितिका कारण अथवा कार्य (= उपग्रह)

(शाब्द) और च ब्रह्मार्थीन वा उक्तासीनरूपसे परन्तु अविनाशार्थी अर्थात् जिस बिना गमन और स्थिति न होसके ऐसा

(= क्रमसे) परमद्रव्य और अपर्यक्ष्यकी सहायता सहकारता वा उपकार होता है अर्थात् गमनमें परिश्रमन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको

परम-अपर्ययोर् ॥ उपकार-सं-यसति ॥

(१) येनाहत्त आत्मायकं समाप्तत्वरनापि गमनस्यमे' उपग्रहो 'के स्थानमें' उपग्रहो' ऐसा पाठ है और उपग्रहो तीन स्थानमें कानेसे प्रयत्न है कि उनके बर्ताका पाठ यही है इनके की प्रकृति नहीं है यदि और शेषपाठ दोनोसमयबायोमें एक है 'वर्त्मनात्मनो' 'मी' अथोरहास्यां प्रेबा' वृत्तसे युक्त है।
 (२) 'बीदावाम्' शब्दकी अनुक्ति पत्ररत्नां सत्रसे और पुद्गलार्थं शब्द की औपह्वर्त्त सत्रसे (अनपूर्ति) ली गई है।
 (३) उपग्रह और उपकार दोनों शब्द कर्मसाधन कर्मव्ययान अथवा कर्मवि प्रयोग में हैं (देखा तत्कार्यगजकारिणके नार्तिक १० ११ १२, १३ एवं उपक्रमको की दृष्टिका पु० ३४२६)। कर्मसाधन वह है जिसकी क्रियाका कर्मों जाल नहीं पड़ता हो तात्पर्य यह है कि अपनी व्यवस्थामें विद्यमान नहीं है और जो हामी ना उपरकी अवस्थामें हो और जिसमें कर्मके आरम्भके आनेकी आवश्यकता प्रकृतको और यही कर्मकर्ता का प्रतिनिधि गिना जावे जैसे एक भाषा जाना है वहां कर्मों अपनी स्थितिमें विद्यमान नहीं है और जैसे कड़कले रोटी काई जाता है वही कर्मकर्ताके स्थानमें है और अटका कर्म की अवस्थामें न होकर कड़की व्यवस्थामें है एही उपकार गमन (चले) का उपकार किया जाना है समग्रस्यै और स्थितिका उपकार किया जाता है अपर्यग्रहसे प्र प्रयकारका कार्य उपकारके विरुद्ध है अकारण कर्मों का कार्य उपकार तथा उपग्रह कर्मोंमें 'उप' उपकार का

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गति । तद्विपरीता स्थिति । उपगृह्यत इत्युपग्रह । गतिश्च स्थितिश्च गति-
स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ "धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देश ॥

बुधन्यादः-देशान्तर-गति इह ३। गति ३।

तद्-विपरीताः॥ स्मिदि ३।

उपग्रहः । इति० उपग्रह ३ ; गति ३। पृ० स्थितिः॥। च

गति-स्थितीः॥ ; गति-स्थितीः पृ० उपग्रहः॥

गति-स्थिति-उपग्रहः ॥

(१) धर्म-अधर्मयो इति० कर्तृ निर्देश ३।

=द्रव्यका एक प्रेमसे दूसरे स्थानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है

=वस्तु(गति)से उल्टा (अर्थात् गमन क्रियासे रुकना वा बचना)से स्थिति है

=साधारण ग्रहण की जाती है ऐसा उपग्रह है और (=च) अथवा (=च) स्थिति है

=सो गतिस्थिती (इस इंद्रमास रूपमें) है । गति ही उपग्रह और ठहराव ही उपग्रह

=ये गति-स्थिति-उपग्रहो (इस इंद्रमास रूपमें) है अर्थात् गति और स्थिति ही उपग्रह है ।

= (इस सूत्रमें) धर्म-अधर्मयो ऐसा (वाक्य) कृतांकि अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य

उपकारके करनेवाले हैं भावार्थ इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है

करन नीय पुरुगलोंका गमनका उपकार करनेवाली अमेरकरूपसे धर्मद्रव्य है और

नीय पुरुगलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है ।

० यस्य अर्थस्य निर्गो. उक्ता वतनाइया

उपकार सा काका इति अन्तमोक्ते (राजवाणिज्य २.४३) = उपग्रह है सो काका है ऐसा अनुमान किया जाता है ३ पहापर सूत्रमें काकास्य' इत्येक
पदवाच्य 'उपकार अनुवर्तता है और उस काकाका जोष पुत्रुलोंके साथ वर्तना उपग्रह परिणाम उपग्रह किया उपग्रह परवत्उपग्रह
अपग्रह उपग्रह इत्या उपकार है वार्तिककार इन पाँचों उपग्रहोंके लिये "उपकाराः" ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये हैं ॥

० औपगुरुगलानां गतिरुपग्रहे कर्तृत्वे साधारण
साधये धर्माधर्मिकाय

= जिस द्रव्यका (अथ स्य) लक्षण (= लिंग) कहेहुए कर्तों परिणाम किया, परन्तु अपरवत्

= ३४३ है सो काका है ऐसा अनुमान किया जाता है ३ पहापर सूत्रमें काकास्य' इत्येक

पदवाच्य 'उपकार अनुवर्तता है और उस काकाका जोष पुत्रुलोंके साथ वर्तना उपग्रह परिणाम उपग्रह किया उपग्रह परवत्उपग्रह

अपग्रह उपग्रह इत्या उपकार है वार्तिककार इन पाँचों उपग्रहोंके लिये "उपकाराः" ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये हैं ॥

= गमन करने आ जीव पुरुगलद्रव्य तिनके गमनका उपकार विषै साधारण्य

= १ धन धर्मद्रव्य है" अथ० वच० ४२६ 'उपग्रह का अनुवाद उपकार विषै देसा किया है

कादिये (उपकार) कर्ता कारकमें गृहो विमलिका जी विधाय मातागया है अन्तःधर्माधर्मयोः पृच्छो विमलिक द्विवचन पदके उद्धृत मी धर्म अधर्मका कर्ता
होना निर्वाच है (प्रश्न) किसे न किसे कियासे कर्ताका व्यवहार जाना है धर्म अधर्मके साथ जोनसी किया है जो इन (धर्म अधर्म)को कर्ता
मान लिया जाये ३ (उपकार) सूत्रमें उपकार शब्दका प्रवृत्त उपकार स्वकथ कियाके संबन्धसे धर्म और अधर्मको कर्ता
मान गया है ३ सूत्रमें उपकार शब्द साथ साधन है 'उपकरण उपकार ३४६ आभसापन उपकार शब्दका निग्रह। = समासके अर्थ का प्रगट करनेवाला
का ३४७) अथवा व्युत्पत्ति (= एकाकारको रीतिसे शब्दकीसिद्धि) है (प्रत्यय) यदि 'उपकार्ये उपकारः' ऐसे उपकारशब्दको आभसापन माना जायगा तो गति
आर रिगति स्वकथ उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्योंका उपकार है । ३४ कथने ओ 'गतिरियमुपग्रहो' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है
वद न वन सकना क्योंकि किन्ना ता कला में एतलो है इसलिये यहाँ उपकाररूप किया सो धर्म और अधर्मके उदाहरणमें रहेगी तथा उपगृहणोच अर्थात्

देशान्तरप्रासिद्धेतुर्गति । तद्विपरीता स्थिति । उपगृह्यत इत्युपग्रह । गतिश्च स्थितिश्च गति-
स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ ("धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देश ॥

शुभ्यनुवाद-वेशान्तर-माग्नि देहः गतिः ॥

वदु विपरीताः स्थितिः ॥

उपगृह्यते, इति उपग्रहः; गतिः ॥ च स्थितिः ॥ च

गति-स्थितीः ॥; गति-स्थितीः एव उपग्रहौ

गति-स्थिति-उपग्रहः ॥

(1) धर्म-अधर्मयो इत्युक्तिः कर्तृ निर्देशः ॥

= क्रयका एक छेपसे दूसरे स्थानमें मातिका कारण है सो गति अथवा गमन है

= वस (गति) से उकटा (अर्थात् गमन क्रियासे उकना वा बचना) सो स्थिति है

= सहायता ग्रहण की जाती है ऐसा उपग्रह है और (= च) गति तथा (= च) स्थिति है

= सो गतिस्थिति (इस दंडसमास रूपमें) है गति ही उपग्रह और उग्रराव ही उपग्रह

= ये गति-स्थिति-उपग्रहौ (इस दंडसमास रूपमें) हैं अर्थात् गति और स्थिति ही उपग्रह हैं।

= (इस सूत्रमें) धर्म-अधर्मयोः ऐसा (वाच्य) हवाके अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य

उपकारक करनेवाले हैं भावाय इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है

बल्कि बीच पुद्गलोंका गमनका उपकार करनेवाली अनेक रूपसे धर्मद्रव्य है और

नीच पुद्गलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है ।

0) यस्य धर्मस्य किंवा यतः नाशकः

उपकारक साः काका इति अनुमीयते (सांख्यार्थिक २०७) = उपन = ई सो काक है ऐसा अनुमान किया जाता है । यदापर सूत्रमें काकस्य शब्दके

पश्चात् 'उपकारः अनुमर्तता है और उल काकाको ओष पक्षीके साथ बर्तना उपग्रह परिक्राम उपग्रह किया उपग्रह परलक्ष्यपग्रह,

अपगत उपग्रह इत्या उपकार है धर्मिककार इत्ये साधारण-

0) बीचपुद्गलार्थं गतिउपग्रहे कर्तृत्वे साधारण-
काशय धर्मस्थित्यय

(1) इस सूत्रमें 'धर्मधर्मयोः काशय धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यके कर्ताका गमनका उपकार विधि' ऐसा किया है

बादिके (उपकार) कर्ता काकमें यही विमर्शिका नी विद्यान माना गया है अर्थात् धर्मद्रव्यके कर्ता माननेमें यहाँ प्रथमा विमर्शिका द्वारा

होना निर्वाच्य है (मस) किसी न किसी दिशाके सम्बन्धसे कर्ताका गमनका उपकार विधि है जो इन (धर्म अधर्म)के कर्ता

मान किया जाये । (उपकार) सूत्रमें उपकार शब्दका प्रथम है इसलिये 'उपकारोति' अर्थात् उपकार स्वकय क्रियाके संबन्धसे धर्म और अधर्मके कर्ता

माना गया है । सूत्रमें 'उपकार' शब्द मात्र साधन है 'उपकारक' उपकारक वह साधनसाधन उपकार शब्दका विमर्शिका = समासके अर्थ को प्रगट करेनेवाला

कारण व्युत्पत्ति (= व्युत्पत्ति) की गतिसे सम्बन्धी स्थिति है (मस) यदि उपकारक उपकारक ऐसे उपकारक शब्दको भावसाधन माना जायगा तो गति

नीच गति स्वकय उपग्रह धर्म और अधर्म धर्मोंका उपकार है । इस रूपसे जो 'गतिरित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्या है

यह न हम सकलगा क्योंकि किया ता कर्ता में रहता है इसलिये यहाँ उपकारक क्रिया वा धर्म और अधर्मके कर्ताओंमें रहैनी तथा उपग्रहमात्र अर्थात्

6) **बाब विगाकी प्रणलियोका उपकार है**— अर्थात् सुख उपगृह दुःख उपगृह अधिक उपगृह मरण उपगृह यहाँ उपगृह विग्रह यकन है। पुत्रगलोका आधोदो उपकार है (यहाँ उपकार सामान्य यकन है)। (५) कालस्थायप्रदा प्रोक्ता येष्टवर्तमानादयः। स्वाद्य यपोपकारो तस्य तस्मान्निमित्तिस्तिष्ठत्यत ॥
 = पुत्रि ये वर्तमानाय कालस्य उपप्रदा प्रोक्ता स्वाद्य ते एव उपकारः। अथा तस्य अन्तमिति इत्यत (२२वां श्लोकतत्पर्यश्लोकावर्तिक पुष्ट ५१५)
 = पुत्रि अे वर्तमाना-परिग्राम किया परत उपरतय कायमस्येउपप्रद कथयतेहै। वेही उपकारहै इसलियेउप (काव्यप्रपण)के बास्तिस्व)कामिलेय होजाताहै (१७)(१) सहायता-सहायके अर्थमें-अैसे आकाशस्य उपकारःअथमाह = आकाशस्यैवकी सहायता वा सहाय स्थानदाय येनाहै सर्वाथसिद्धियत्पिपु०२०६
 मूल्यानाम् उपकारे वर्तते = सेवकोंकी(यमानिसे स्वामी)सहायता(कारण)में वा सहाय स्थानेमें प्रवर्तताहै पु०२०६
 बाब उपमहात् विना = भारिके सहायता अथवा सहाय विना ॥ सर्वाथसिद्धियत्पि पुष्ट २०७
 एवं उपप्रद प्रवर्तनार्थम् इसम्-यद्युयमानाम् पुत्रगृहकृत उपकार इति = अपने लिये सहायता विनाकनेकेलियेकि पुत्रलोकायप्रदकृत उपकारहै उपगृहजायेहै
 परस्परस्य-उपप्रदः = आपसकी सहायता वा आपसमें एकदूसरेका सहायता [(२१वां सूत्रमें)कहतहै किम् यतावान् एव पुत्रगृहकृत उपकारः = क्या हमनाही पुत्रगृहका कियाहुआ अमुगृह है(सर्वाथं = पूं २०४) परस्परस्य-उपप्रद उपमहाः = आपसकीसहायै वा अमुमहा = अमुमहाहै(हेको तस्वार्थ)अवार्तिकपु०२१० वार्तिक६, अनांवा० पु० ५१०)

- (१) **आरक्ष-निमित्त हेतु मान्यके अर्थ में-अैसे बीवानां सुख दुःख-अधिष्ठि-मरण-उपगृहास्य पुत्रगृहानां उपकारः (सूत्र २०)**
 = बीबोच (अपर)मुकुटा कारण मुकुटा निमित्त-बीबलका हेतु मरणका मरणपत्नी पुत्रगृहकृत सहायता है (संस्कृतसर्वाथसिद्धियत्पि पुं २०४)
- (२) **उपगृह बीर उपकार एकही अर्थमें अैसे गिन्यास्यम् अमुगृहे वर्तते = शिष्योके उपकारमें (= अमुमहा आचार्य) प्रवर्तता है (सर्वाथं) सिद्धि पुं २०६)**
 आचार्यब्राम् उपकारे वर्तते = (शिष्य)आचार्योके उपकारमें प्रवर्तते है (सर्वाथं सिद्धि पुं २०६)
 "०"विन कस्य अग्नि आवाग्नि मरकस्य अपवर्तनं कायुकस्य" उपकार = तथा विन शुक बीर अग्निआग्नि मरकके अर्थात्आयुके अपवर्तन होनेके उपगृह है यहाँ उपकार शब्दका अमुगृह उपग्रह किया है। हेको सामान्यपुं०२१५)
 ०उपगृहो निमित्त अपोका-कारक हेतुरित्यनर्थान्तराम् = उपगृह निमित्त अग्रका कारण ये सब सामान्यार्थक्य है (हेको सामान्यपुं ०२१५)
 बीर उपकारका अर्थ मी निमित्त कारण यक्षमिका बीर अर्थ प्रकाशिकामें
 अकारे यान एव एक वडुन भाषोन बीर अर्थ है किंसक अग्रकंपुष्ट बीर अर्थ संप्रनामा मी नहीं है किंसके पर२६में पर२६वां पर२६वां शब्द उपकारका अर्थ
 कृपा सहायता जिका है बीर इकीसहै शब्द उपगृहका अर्थ तथा सहायता (संप्रनामा मी जिका है किंसको श्लोकूते है)। जिका है।
 (१) **एव शरोरि परिग्रामेयमानां पुत्रगृहकाः उपमहीतार इत्युक्तमिति = तेन शरीरपदि परिग्रामे आयमानं पुत्रगृहाम् उपगृहीतारपदि उक्तं संबन्धि बहुपवन उपगृहीतार बन्ता है किंसका अर्थ उपगृह करनेवाके शोना है वं यताकाकी दुःखीबाकोमि एव तस्यैव राजवार्तिककी इच्छनाहीसनावार्तिकमें आवेपुट एक शब्दका अनुवाक् "उपकार करतेबाके" देना जिका है अर्थात् उपगृहीन् = उपकृतं।**

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गति । तद्विपरीता स्थिति । उपगृह्यत इत्युपग्रह । गतिश्च स्थितिश्च गति-
स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ ("धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देश ॥

पुण्यवाद-देशान्तर-माप्ति हेतुः गतिः ॥

वद-विपरीताः स्थितिः ॥

उपगृह्यते । इति उपग्रहः ॥ गतिः ॥ च द स्थितिः ॥ च

गति-स्थितीः ॥ गति-स्थितीः एव उपग्रहौ

गतिरिति उपग्रहौ ॥

() धर्म-अधर्मयोः इति कर्तृ-निर्देशः ॥

=द्रव्यका एक छेदसे दूसरे स्वानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है
=वस(गति)से स्थिति अर्थात् गमन क्रियासे स्थिति वा बचना)सो स्थिति है
=सहायता ग्रहण की जाती है ऐसा उपग्रह है और (=च)गति तथा (=च)स्थिति है
=सो गतिस्थिति(इस द्रव्यमास रूपमें) है । गति ही उपग्रह और उग्रवाच ही उपग्रह
=वे गति-स्थिति-उपग्रह(इस द्रव्यमास रूपमें) अर्थात् गति और स्थितिही उपग्रह हैं ।
=(इस सूत्रमें धर्म-अधर्मयो एसा (वाच्य) इतना कार्य है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य
उपकारके करनेवाले हैं अर्थात् इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है
परन्तु नीच पुद्गलौका गमनका उपकार करनेवाली अमेरकस्यसे धर्मद्रव्य है और
भीष पुद्गलौको रियतिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है ।

० यस्य धर्मस्य किंवा वत नावयः

उपकारः सा कदा इति धर्मनीचते(साधकारिक २२०) = उपन = ही सो काल है ऐसा अनुमान किया जाता है । एहापर सूत्रमें 'कालस्य' शब्दके
पश्चात् 'उपकारः अनुवर्तता है और वत कालका जोध पुद्गलौके साथ वर्तना उपग्रह परिणाम उपग्रह क्रिया उपग्रह परत्वउपग्रह,
उपग्रह उपग्रह इत्या उपकार है वार्तिककार इति उपकाराः ऐसा शब्द बहुवचनमें आये है ।

० भीषपुद्गलौका गतिरुपग्रहे कर्तव्ये साधारण-
काश्रय धर्मस्थित्याय

(१) इस सूत्रमें 'धर्मधर्मयोः वाच्यसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कर्ता माना है । (प्रस) धर्म अधर्मको कर्ता माननेमें यहाँ प्रथमा विभक्ति होता
आदिसे (उपग्र) कर्ता कारकमें यही विभक्तिका भी विधान माना गया है अर्थात् धर्मधर्मयोः यही विभक्ति द्विवचन पदके उक्त भी धर्म अधर्मका कर्ता
होना निर्वाच है (प्रस) किसी न किसी क्रियासे सम्बन्धसे कर्ताका स्पष्टकार इत्या है धर्म अधर्मके साथ कीनसी क्रिया है जो इन (धर्म अधर्म)को कर्ता
मान किया जाये है (उपग्र) धर्ममें उपकार शब्दका अर्थ है 'उपकारय उपकारा यः मावसायव उपकारा शब्दका अर्थ है 'समासके अर्थ को प्रगट २ रनेवाला
माना गया है । सूत्रमें 'उपकार शब्द माव सायन है 'उपकारय उपकारा यः मावसायव उपकारा शब्दका अर्थ है 'उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है
अथवा स्पृणति (= ग्राहकको रीतिले शब्दकी विधि) है (प्रस) यदि उपकारय उपकारा यः मावसायव उपकारा शब्दका अर्थ है 'उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है
निर विधति स्वकय उपग्रह धर्म और अधर्म धर्मोंका उपकार है । उग्र रूपसे जो 'गतिस्थित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है
वह न वत सकं गा क्वोकि क्रिया ता कर्ता में एहो है इसलिये यहाँ उपकाररूप क्रिया को धर्म और अधर्मरूप कर्ताओंमें रही थी तथा उपगृह्यमाण अर्थात्

उपक्रियत इत्युपकार । क पुनरसौ? गत्युपग्रह स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येवं द्वित्वनिर्देश प्राप्नोति?
 नैष दोष । सामायेन व्युत्पादित उपात्तसंख्य शब्दान्तरसम्बन्धे सत्यपि न पूर्वोपात्ता सख्या
 जहाति ॥ यथा-साधो कार्यं तप श्रुते इति ॥

उपक्रियते इति उपकारः पुनः असौ कः

गति उपग्रहः च स्मित्वात्-उपग्रहः । यदि एवम्

द्वित्व-निर्देशः । मामोति ॥

न एव दोषः । सामान्येन ॥ व्युत्पादितः ।

उपात्तसंख्यः । शब्दान्तर-सम्बन्धेः सति । अपि

न पूर्व-उपात्तासौ । संख्यासौ । जहाति ॥

= उपकार किया जाता है या सहायता की जाती है ऐसा उपकार है । और यह (उपकार) अप्या है
 = जगलका उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है । (अस)ओ ऐसे है अर्थात् गतिकामी उपग्रह है
 और भित्तिकाभी उपग्रह है वो (इस सूत्रमें)

= वा बचनका निरूपण वा रूपन (उपकार शब्दके) प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार
 शब्द दो बचनमें जाना या वचनपर्यायोरुपकारों' सूत्रके अन्तमें होता ॥

= (उपग्रह) ग्रह रूपण नहीं है । (बर्णिके) सामान्यकारि करारुआ

= गृहीत संख्याबाह्या (उपकार शब्द) अन्य शब्द उपग्रहों के साथ सम्बन्ध होनेपर भी

= परिवे ग्रहण की हुई संख्याको नहीं छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको

सामान्यरूपसे ग्रहणकरि एकवचनमें निर्देश किया है यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रह
 शब्दसे ऐसे सम्बन्ध है कि गतिका उपग्रह वर्म, व्यका उपकार और स्थितिका उपग्रह अपर्म द्रव्यका उपकार है तो भी
 प्रथम ग्रहण कियेहुये एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहों शब्द दोबचनान्तके साथ उपकारों
 (दोबचनान्त) ऐसा नहीं होआता है बरन उपकार ऐसाही रहता है ॥ ('वा' पाठ पर देखो टिपणी पृष्ठ ४६)

= जैसे साधु पुण्यका काम तप करना और शाल पचना ऐसा है अर्थात् वाक्यमें तपः श्रुते
 द्विवचन है और इसके अनुसार 'कार्यम् शब्दके स्थानपर कार्यं द्विवचन होना वाशियेपरन्तु
 यहाँपर कार्य शब्द सामान्य है और 'तपो' कार्यम् श्रुते कार्यम् श्रुते दो स्थानोंके लिये आया है । जैसे सामा य होनेके हेतुसे
 (कार्य शब्द) द्विवचन नहीं हुआ तैसेही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामा य है और वर गतिउपकार और स्थितिउपकार इन
 दो बालोंका योक्तक है इसलिये सूत्रमें भी 'उपकार' शब्दको सामान्यवचन होनेसे एकवचनमें कार्य है द्विवचन नहीं किया है ॥

उपक्रियत इत्युपकार । क पुनरसौ ? गत्युपग्रह स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येवं द्वित्वनिर्देश प्राप्नोति ?
नैप दोष । सामान्येन व्युत्पादित उपात्तसंख्य शब्दान्तरसम्बन्धे सत्यपि न पूर्वोपात्तां संख्यां
जहति ॥ यथा-साधो कार्यं तप श्रुते इति ॥

एवमियते इति उपकारः पुनः असौ कः
 गति-उपग्रहः च स्थिति-उपग्रहः । यदि उपबन्धः
 द्वित्वनिर्देशः नामोक्तिः ।
 न एव दोषः सामान्येन ॥ व्युत्पादितः ।
 उपात्तसंख्याः शब्दान्तर-सम्बन्धे सतिः अपि ।
 न पूर्व-उपात्तायाः संख्यायाः अभावः ।

= उपकार किया जाता है वा सहायता की जाती है ऐसा उपकार है । और यह (उपकार) अर्थात्
 = आत्मता उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है । (अत्र) जो ऐसे है अर्थात् गतिकामि उपग्रह है
 और स्थितिकामि उपग्रह है तो (इस सूत्रमें)
 = वा वचनका निबन्धण वा कथन (उपकार शब्दके) प्राप्त होगा है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार
 शब्द दो वचनमें जाना या तब 'पर्यायार्थयोः उपकारी' सूत्रके अन्तमें होगा ॥
 = (अथ) यह रूपण नहीं है । (क्योंकि) सामान्यकारि करारुपमा
 = गृहीत संख्याबाधा (उपकार शब्द) अन्य शब्द उपग्रहों के साथ सम्बन्ध होनेपर भी
 = यद्यपि ग्रहण करि दुई संख्याको नहीं छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको
 सामान्य रूपसे प्रणकारि एकवचनमें निर्देश किया है यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रह
 शब्दसे ऐसे सम्बन्ध है कि गतिका उपग्रह पर्यन्त, व्युत्पादित और स्थितिका उपग्रह अर्थमत् उपकार शब्दका उपग्रह
 प्रथम ग्रहण किये हुए एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहों शब्द दो वचनान्तके साथ उपकार
 (दो वचनान्त) ऐसा नहीं हो जाता है बरन उपकार ऐसा ही रहता है ॥ ('वा' पाठ पर देखो टि पणी पृष्ठ ४६)

यथा साधो कार्यं तप श्रुते ॥ अत्र
 यथापर कार्यं शब्द सामान्य है और इसके अनुसार 'कार्यम्' शब्दके स्थानपर कार्ये द्विवचन होना चाहिये परन्तु
 (कार्यं शब्द) द्विवचन नहीं हुआ वैसे ही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामान्य है और वर गतिव्युत्पादित और स्थिति उपकार इन
 दो शर्तोंका पोकक है इसलिये सूत्रमें 'उपकार' शब्दको सामान्य वचन होनेनेसे एकवचनमें लाये हैं द्विवचन नहीं किया है ॥

निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनम् । धर्माधर्मयोगतिस्थित्योश्च यथासंख्यं भवति, एवं जीवपुद्गलानां यथासंख्यं प्राप्नोति धर्मस्योपकारो जीवानां गति अधर्मस्योपकार पुद्गलानां स्थितिश्चि । तन्निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनं क्रियते ॥ आह धर्माधर्मयोर्धर्मो उपकार स आकाशस्य युक्त सर्वगतत्वादिति चेत्—तदयुक्तं, तस्यान्योपकारसद्भावात् सर्वेषां धर्मादीनां द्रव्याणामवगाहनं यत्प्रयोजनम् । एतस्यानेकप्रयोजनकल्पनायां लोकालोकविभागाभावः ॥

निवृत्ति-अर्थम् ॥ उपग्रह-वचनम् ॥ ॥ धर्म-
 अपरमयो ॥ गति-स्थित्यो ॥ च ॥ यथासंख्यं ॥ अर्थम् ॥
 एवम् ॥ गीत-पुद्गलानाम् ॥ यथासंख्यं ॥ अर्थम् ॥
 धर्मस्य उपकारः ॥ जीवानाम् ॥ गतिः ॥ अधर्मस्य ॥
 उपकारः ॥ पुद्गलानाम् ॥ स्थितिः ॥ अर्थम् ॥ अर्थम् ॥
 उपग्रह-वचनम् ॥ क्रियते ॥ आह ॥ धर्मो अधर्मयोर्धर्मो य ॥
 उपकारः ॥ सः ॥ आकाशस्य ॥ युक्तः ॥ सर्व-गतत्वात् ॥
 इति ॥ च ॥ तदर्थम् ॥ अयुक्तम् ॥ तस्य ॥ अन्य-उपकार
 सद्भावात् ॥ सर्वेषाम् ॥ धर्मादीनाम् ॥ द्रव्याणाम् ॥
 अवगाहनम् ॥ तत् प्रयोजनम् ॥
 एकस्य ॥ अनेकं प्रयोजन-कल्पनायाम् ॥
 लोक-अलोक विभाग अभावः ॥

= निरपेक्षे लिये उपग्रहका कथन (इस सूत्रमें) है पर्यद्रव्य
 = अर्थद्रव्यमें और गतिस्थितिये यथासंख्यं सम्बन्ध होजाता है अर्थात् पर्यद्रव्य
 का गपनसे सम्बन्ध होजाता है और अधर्मद्रव्यका स्थितिये सम्बन्ध होजाता है
 = इस प्रकार जीवों और पुद्गलोंका(भी) यथासंख्यं(क्रम)प्राप्त होता है
 = (तब) पर्यद्रव्यका उपकार जीवोंका गपन अधर्मद्रव्यका
 = उपकार पुद्गलोंकी स्थिति ऐसा अर्थ होजाता है, उसके निरपेक्षे लिये (इस सूत्रमें)
 = उपग्रह वचन किया है (शिव्य) करता है कि धर्म अधर्म द्रव्योंका जो
 = उपकार है सो(उपकार)आकाशके युक्त है क्योंकि (आकाश) सर्वत्र व्यापी है
 = ऐसी शंका है(उपर)सो शंका नहीं है क्योंकि जिस (आकाशके) दूसरे उपकारकी
 = विद्यमानता है (अर्थात्) समस्त पर्याप्तिक द्रव्योंको
 = स्थान धान देना वा अवकाश धान देना उस(आकाश)का प्रयोजन है
 = एक (आकाश)के अनेक प्रयोजन माननेमें
 = लोक अलोकके विभागका अभाव होता है । भावार्थ—यह है कि इस परनके
 होनेपर कि गपन और उद्धारका उपकार धर्म अधर्म द्रव्योंकान होना चाहिये

किन्तु आकाश जो सर्वत्र व्यापक है गतिस्थितिका उपकारी है उपर में आवश्यक करते हैं कि आकाशका असाधारण गुण द्रव्योंको स्थान धान देनेका है यदि उसका कोई दूसरा उपकार कल्पना करते हैं तो लोक अलोक का विभाग

एत्यानिपत्ती नगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सवार्थसिद्धिका शुद्ध्या हिन्दी अनुवाद अध्याय ५ सूत्र १७
 अनूपलब्धेर्न तो स्त खरविपाणयदिति चेन्न—सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्ते । सर्वे हि प्रवादिन प्रत्यक्षा-
 प्रत्यज्ञानार्थानभिमान्छन्ति ॥ अस्मान्प्रतिहेतोरसिद्धेश्च ।

अनूपलब्धेः१॥ तौः१ । सखिपाणयवृत्तनस्त । =स्या मांलकरि न दीलनेसे र्थ-अथर्म)जे दोनो(द्रव्ये)प्रपाके सींगके सहय नहीं है
 प्रति०षवत्०
 =एसी शुका है अर्थात् नैस संसारमें गया(वा शय-खररा)क सींगोंकी कल्पना है
 विद्यमानता नहीं है क्योंकि किसीने अपनी आँसोंस नहीं देखे हैं वैसेही र्थद्रव्य अधर्मद्रव्य
 कवल कल्पनामात्र है वास्तविक वा यथार्थमें उनका कार्य अस्तित्व नहीं है ऐसी शुंका है ॥
 =(खरर) (ऐसा सदैव कि र्थद्रव्य और अधर्मद्रव्य नत्रोंस न दीलनेस गयाके सींगक
 न०
 मुख्य कल्पित द्रव्य है) नहीं (दोना चाबियो)

सर्वे (१) प्रवादित्ति प्रतिप्रतिपत्ते १॥
 सर्वेः१ रि० प्रवादिनः१। त्वत्पृष्ठ अमत्यवानः१।
 अथान्ः१। अभिचाञ्छन्ति । अस्मान्ः१। प्रति०
 इतोः१। असिद्धेः१ । च०
 =वर्गोक्ति(एसे अस्तित्वमें)स्य प्रतिवाकियोंको (हमारे साथ) अधिरोप (=विषाद नहीं) है
 =समस्त ही (=हि) अन्य मातावलम्बी प्रत्यक्ष और परोक्ष
 =पदायोंका मानते हैं हम प्रति अर्थात् हमारे ऊपर
 =(तुम्हारे इस) साधनकी (कि र्थद्रव्य अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध है) सिद्ध भी नहीं है ॥
 भावार्थ यह है कि हम स्वयंदादीनके ऊपर तुम्हारा यह साधन कि र्थर्म, अधर्मद्रव्य अनुप
 लब्ध है उनका अस्तित्व गयेके सींग सहय है निम्नलिखित कारणसे सांगू नहीं है

(१) संसारसे चार वस्तुयें (क) चर अथवा शयविषय (घ) बाँक लीक पत्र (ग) मुगतप्या (घ) बाकाशका फल ये विद्यमान नहीं हैं । जब
 किसी वस्तुके अभावको प्रगट करना होना है तब इन चार पदार्थोंसे प्राय एक या दोका नाम लेते हैं । व चातो वस्तुयें निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट हैं
 एव वरपासतां वाति कपुपवृत्त्येव । मुगतप्याम्भालि स्वातः शक्युङ्घपनुचैत् ॥ १ ॥
 पत्र १; वरपासत १; वातिः (वपः) ॥ अ पृथ-कृत-येव १; । = यह बाँक लीका पत्र आता है । यह बाकाशके फूलोंकी बगार्ं पुरें शिखा वा चाटो है
 (वपः) मुगतप्या अम्भालि १; ॥ सात १; (वपः) शक्युङ्घ-पनुचैत् १; ॥ = वह मुगतप्याके नीचे(पृथमे)जलसम्मिति)मेंबायाहुआ है यह परके सींगकल्पनयकाप्यारी है
 (२) प्रथम बारचे पुरी पुरें सर्वार्थसिद्धिसे प्रतिबाधित्ते शक्य इत शो स्थानोपर है परन्तु द्वितीय संस्कल्पमें ओर लीन इस्तलिखित प्रतियो
 में प्रबाधित शक्य दोनो स्थानोंमें प्रयोग किया गया है । दोनो शक्योच्छ अगमय पदही शर्य है इसने प्रबाधित्ता प्रयोग किया है क्योंकि ये पाठ
 बहुतसो प्रतियोगीमे पाए आते हैं ॥

भूमिजलादीन्येव तत्प्रयोजनसमर्थानि नार्थो धर्माधर्मार्थामिति चेन्न-साधारणाश्रय इति
 विशिष्योक्तत्वात् । अनेककारणसाध्यत्वान्नैकस्य कार्यस्य ॥ तुल्यबलवत्वात्तयोर्गतिस्थितिप्रतिबन्ध
 इति चेन्न-अप्रैरकत्वात् ॥

नहीं होसकता है क्योंकि उबराने और गमन करने में सहायक होना यदि ये कार्य
 आकाशके माने जावेंगे तो आकाश तो अलोकाकाशमें भी है तो बर्हापरमी जीवपुद्गल
 गति और स्थिति करसकेंगे अतः लोफ बल्लोकके विभागका लोप होजावेगा ॥

पृथिवीजलादीनि ॥ एवञ्च तत्र प्रयोजन समर्थानि ॥
 न अर्थो धर्मो धर्मार्थस्य ॥ इति च तद्वचनं ॥
 साधारण
 आश्रयः इति ॥

विशिष्य उक्तत्वात् ॥ अथैकस्य ॥ कार्योपर्य ॥ अनेक
 कारण-साध्यत्वात् ॥
 इति च तद्वचनं ॥

इति च तद्वचनं ॥ तयोश्च गति-स्थिति प्रतिकल्पः ॥
 इति च तद्वचनं ॥

न ॥
 अप्रकल्पत्वात् ॥

पृथिवी आदि गमन स्थिति आदि उपकार करनेमें
 = विशेष आश्रयरूप कहे जाते हैं । और (=च) एक कार्यको अनेक
 = कारण सिद्ध करने योग्य वा साधनीय है अर्थात् एक कार्यको अनेक कारण
 साधते हैं सो यहाँ स्थितिमें पृथिवी भी कारण है और अपर्यट्टन्य भी कारण है
 = (परम अपर्यट्टन्य) समान बलवान होनेसे तिन दोनोंमें गतिस्थितिका विरोध होगा
 = ऐसी शंका है अर्थात् जब परमद्रव्य अपर्यट्टन्य दोनों समान बलवाले हैं सो जिस
 काल पर्यट्टन्य जीव पुद्गलको गमन कराती होगी उसीसमय अपर्यट्टन्य स्थिति
 कराती होगी तब गमन स्थिति दोनोंकी रोक होती होगी ॥
 = सो नहीं (पर्यट्टन्य जीवपुद्गलको गतिक निमित्त अपर्यट्टन्य उनकी स्थितिके रोक)
 = अनेक वा बलापान पावसे है अर्थात् यदि जीव पुद्गल बल्ले हो पर्यट्टन्य
 उदासीनतासे चलनेमें निमित्त होती है और यदि उबरें तो ऐसी अपर्यट्टन्य
 स्थिति बनी नरहणा न करें कि असुकर जीव पुद्गल बल्ले असुकर उबर रहें ॥

अनुपलब्धेर्न तो स्त खरविपाणवदिति चेन्न-सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्ते । सर्वे हि प्रवादिन प्रत्यज्ञा-
प्रत्यज्ञानार्थानभिवाचयन्ति ॥ अस्मान्प्रतिहेतोरसिद्धेश्च ।

अनुपलब्धेर्न ॥ वां । १ लरिषपाणवत् ० न ० स्त । १ = स्या आस्तद्धरि न दीलनेस पर्म-अधर्मत्र दोनो(द्रव्ये)गणके सीगके सदृश नही रे
= एसी शका रे अर्थात् अंत ससारमें गणा(वा शशा-खरहा)के सीगोंकी कल्पना रे
इति ० षत् ०

विद्यमानता नहीं रे क्योंकि किमिने अपनी आत्मासे नही देखे रे वैसेही धर्मद्रव्य अपर्यद्रव्य
कवल कल्पनामात्र ही आस्तत्रिक वा यथार्थमें उनका कार्य अस्तित्व नहीं रे एसी शंका रे ॥
= (उत्तर) (एसा संदेह कि पर्यद्रव्य और अपर्यद्रव्य नभोंस न दीलनेसे गणके सीगके

न ०

सुख्य कल्पित द्रव्य रे) नहीं (होना चाहिय)

सव ० १) प्रवादि अनिमतिपत्ते ॥ १ ॥
सर्वे ॥ रि ० १) प्रवादिन ० प्रत्यक्ष अपत्यघात ॥
अर्थात् ॥ अभिप्रायान्वन्ति । अस्मान् ० प्रति ०
इति ० अतिदे ० १ ० ०

= सपस्त ही (=रि) अन्य माताबलम्बी प्रत्यक्ष और परोक्ष
= पदार्थोंको मानते रे हम प्रति अर्थात् हमारे ऊपर
= (हमारे इस) साधनकी (कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध रे) सिद्ध मी नहीं रे ॥
भाचार्य यह रे कि हम स्याद्वादीनके ऊपर तुम्हारा यह साधन कि धर्म, अपर्यद्रव्य अनुप-
लब्ध रे उनका अस्तित्व गयेके सीग सदृश रे निम्नलिखित कारणसे लागू नहीं रे

(१) सवारमें बार परतुपे (क) बार अपना शकविपाठ (ख) बार स्त्रीका पत्र (ग) मुगतुप्या (घ) आकाशका फल य विद्यमान नहीं रे । जब
किमि परतुके अभावको प्रगट करवा होना रे तब इन बार पदार्थोंसे प्राय एकका दोकना नाम लेते रे । ये चारो वस्तुपे किम्बलिखित श्लोकसे स्पष्ट रे

"एव परत्पान्तो याति कपुपरतुपेखर । मुगतुप्यास्मादि स्नातः शययुक्कपुतुपेखर ॥ १ ॥

एव रे) बरत्पान्त रे) यातिर (एव) ॥ क पुण-रत-शेखर रे) ॥ = यह बरत स्त्रीका पुत्र आता रे । यह आकाशके फलोंकी बनाई हुई शिखा वा घाटी रे
(१२) मुगतुप्या अस्मादि ॥ स्नातः ॥ (एव) ॥ शययुक्-कपुतुपेखर ॥ = यह मुगतुप्याके नीचे(पुण्यमेकसमिति)में शय्याहुकी रे यह खरके सीग कपुतुप्याकारी रे
(२) प्रथम बारको एवी हुई सर्वावसिद्धिमें प्रतिवादिन् शब्द इन दो स्थानोंपर रे परतु प्रितीय सरकरकमें और तीन इस्तत्रिखित प्रतियो
में 'प्रवादिन्' शब्दका दोनो स्थानोंमें प्रयोग किया गया रे । दोनो शब्दोंका अलगग एकही अर्थ रे इतने प्रचारिपत्र प्रयोग किया रे क्योंकि ये पाठ
बहुतसी प्रतियोमें पाए जाते रे ॥

सर्वज्ञेन निरतिशयप्रत्यक्षज्ञानचक्षुषा धर्मादिय सर्वे उपलभ्यन्ते । तदुपदेशाच्च श्रुतज्ञानिभिरपि ॥
 अत्राह यत्रतीन्द्रिययोर्वर्माधर्मयोरुपकारसम्बन्धेनास्तित्वमवधिच्यते, तदनन्तरसुद्विष्टस्य नभसो-
 ज्तीन्द्रियस्याधिगमे क उपकार इत्युच्यते—

॥ आकाशस्यवगाह ॥ १८ ॥

मयवेनेः निरतिशय प्रत्यक्षज्ञान-चक्षुष्याः।
 पर्मा आदयः । सर्वे उपलभ्यन्ते । चक्षुः स्व
 उपदेशात् । भुक्तानिमिः अपिः अवःआह ।
 यदिः अतीन्द्रिययोः यम-अभययोः उपकार
 मन्व-वनेः अस्तित्वम् ॥ अवशिष्टम् १ । त्वन तरम् ॥
 उरिष्टम् ॥ नयसम् ॥ अतीन्द्रियस्य ॥ अधिगमे
 कः उपकारः ॥ इति उच्यते ।

सूत्रम्—^(१) आकाशस्यवगाह ॥ १८ ॥

मूला — जीवानाम् । यः जीवानाम् । आकाशस्यम् ॥
 उपकारः । अवगाहः ।

=सर्वज्ञके परमोत्कृष्ट (=निरतिशय) प्रत्यक्ष(केवल)ज्ञानरूपी नेत्रेन्द्रियकरि
 =यर्मादिक समस्त (द्रव्ये) जानी गई है और उस (सर्वज्ञ) के
 =उपदेशसे श्रुतज्ञानियोंकरिमी (जानी गई) हैं । यहाँ पृथक्ता है कि
 =यदि धर्म अथर्वद्रव्योंकी (जो इन्द्रियोंसे नहीं जानेगासकते हैं) उपकारके
 =सयोगसे विषयमानता निम्नय हीजाती है तो उन(धर्म अथर्व)के अत्यन्त समीप
 =कथित इन्द्रिय अगोचर आकाशके जानने में
 =व्या उपकार वा सहायता है इस हेतुसे(=इति)उत्तर सूत्रमें कहा जाता है कि

= (जीवानाम्-अजीवानाम् च) आकाशस्य(उपकार) अवगाह

=उपकार, सहाय, अथवा-सहायता, अथवाश्रयदान देना वा स्थानदान देना है अर्थात्

समस्त जीव और अचेतन द्रव्योंको स्थानदान देना आकाशका उपकार है

(१) "अजीविकाया धर्माधिगमाद्युद्देशाः" इस प्रथम सूत्रमें धर्मअथर्वके समीपही आकाश उपकार कथन है इसलिये आश्रय सूत्रमें आकाशका

उपकार कथन है ।
 (२) "इति हेतु प्रकृत्य तदाकाशिक्यामित्युं" अकारकाश ताकाई धर्म शब्दक १५५ इति" यह एक नाम हेतु प्रकृत्य-प्रकाश शिष्यव लगति इत्ये
 वा है यहाँ पर हेतु अर्थात् आकाशके धर्ममें किया है इत्ये "इति" का अनुवाद इस हेतुसे" देना किया गया है ।

(३) यः नृपका गत हीरु कर्म दानो जन्मप्राप्तौ चक्रेत् ॥ "अजीविकाम्" का एक अर्थ अकार शिष्यागया है । "अजीविकाम्" शब्दकी अनुप्राप्ति
 इस अर्थपर्यन्त संभवती नृपसे की गई है और "यः" शब्दकी दशात् नृपके हीन है । उपकार अथवा अर्थ नृपके अनुप्राप्त है ।

उपकार इत्यनुवर्तते ॥ जीवपुद्गलानामवगाहिनामवकाशदानमवगाह आकाशस्थोपकारो वेदितव्य ॥ आह जीवपुद्गलाना क्रियावतामवगाहिनामवकाशदानं युक्तम् । धर्मास्तिकायाद्य पुनर्निक्रिया नित्यसम्बन्धास्तेषां कथमवगाह इति चेन्न-उपचारतस्तत्सिद्धे । यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात् एवं धर्माधर्मावपि अवगाहव्रियाभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनादवगाहिनावित्युपचर्येते ॥ आह यद्यवकाशदानमस्य स्वभाव वजादिभिलोष्टादीनां-

उपकारः इति अनुवर्तते उपगारिनाम् ।

जीव-पुद्गलानामवगाहः अवकाशदानम् ॥ अवगारः

आकाशस्थः उपकारः विकृतव्यः आह जीव-पुद्गलानां-आकाशद्रव्यका उपकार जानना चारिये । पूछतारै कि जीव पुद्गल

क्रियावतां अवगारिनां अवकाशदानम् ॥ युक्तम् ॥

पुनर्यथास्तिसाय आदयः । निक्रियाः नित्यसम्बन्धाः

तयाम् । कथम् अवगारः । इति चेत् न

उपचारत अत-सिद्धे । यथा-गमन-अभावे । अपि

सर्वगतम् ॥ आकाशम् ॥ इति उच्यते । सर्वत्र सद्भावात् । सर्वगत आकाशम् है क्योंकि आकाशका सर्व स्थानमें अस्तित्व है

एवम् धर्म अवगारः अपि अवगार-क्रिया अभावः ।

अपि सर्वत्र व्याप्ति-वशनात् । अवगारिनाः इति

उपचरते । आह अपि अवकाशदानम् ॥

आम् ॥ यथाव । यथादिभिः षोडश-आदीनाम् ।

= (इस सूत्रमें) उपकार (शब्द सप्रधान सूत्रसे) आता है रहनेवाले वा अवगारी

= जीव पुद्गलों, पर्यटन्य, अपर्यटन्य काखड्यव्यको स्थानदान देना है सो अवगाह

= क्रियावाले और अवगाह करनवालोंके अवकाशदान देना (तो) ठीक है

= किन्तु (पुनः) यथास्तिसायमादिक अथात् धर्म अवयव और आकाश जो क्रियारहित

और आपसमें नित्य सम्बन्धवाले है अथवा जो क्रियारहित तथा नित्य सम्बन्धरूप है

वदितकों कैसे आकाशका स्थानदान है एसी शंका है । यह शंका नहीं होनी चाहिये

= क्योंकि उपचारसे साकल्पनासे (अवकाशदानकी) प्रसिद्धि है अतएव अवगाहनेपरभी

= सर्वगत आकाश है एसा कहागया है क्योंकि आकाशका सर्व स्थानमें अस्तित्व है

अथात् आकाश है सो सदा गमनरहित है और करिमी उसका हलनचलन आना

जाना नहीं शक्यता है निक्रिय है तोभी उसको सर्वगत कल्पनास करते है ।

= इसी प्रकार धर्म अवयव दानोंभी अवगाहक्य क्रियाके न होनेपर

= भी (लोकाकाशके) सर्वस्थानमें प्रवशताके उपलब्धस अवगाह करनेवाली

= कल्पनी जाती है वा मानी जाती है । पूछता है कि जो स्थान दान देना

= इस (आकाश)का गुण और लक्षण होता है वजादिसे देला वा गोलार्धिका

(१) उपचर्यते उपकर्ष + इत नर वातुये इय उपचर्ये जगोर कमदिप्रधान सम्बन्धरूप द्विवचन वर्तमान क्रियाका पूठ प्रत्यय जगोर कर बनाया है

(२) अपि यह शब्द दोसे अधिक सख्याका बोधक है और बहु प्रथमी इस अभावके सातवीं सत्रक अनुसुक्त चमद्रव्य प्रथमद्रव्य और आकाश

अलोकाकाशे तद्भावादभाव इति चेन्न—स्वभावापरित्यागात् ॥

उक्त आकाशस्योपकार । अथ तदन्तरोद्दिष्टानां पुद्गलानां क उपकार इत्यतोच्यते—

॥ शरीरवाङ्मनः प्राणायानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

ओ सूत्रम् पदार्थ आपसमें अणुकाशदान देते हैं वो आकाशका अणुकाशदान देना कोई असाधारण लक्षण (वह स्वभाव वा गुण जो किसी दूसरों न हो) न उभरा इसके उभरमें आपार्थ करते हैं कि आकाश सर्व पदार्थोंको एकरी कलमें अणु काशदान देता है फारि पदार्थ एसा नहीं है जिसको आकाश स्वान दान न देता हो इससे आकाशका यह अणुकाशदान देना असाधारण लक्षण है और सूत्रम पदार्थमें अणुकाशदान देनेका अपार्थ अथवा असाधारण लक्षण इस हेतुसे नहीं है कि व (सूत्रम पदार्थ) आपसमें एक दूसरेको अणुकाशदान देते हैं सर्व पदार्थोंको एकरी कलमें स्वानदान नहीं देसकते हैं

अलोकाकाशे ॥ तद् भावावर्त्तः ।

अभावात् ॥ इति चन्द्रः ; न च

समाप सपरित्यागावर्त्तः ;

= अलोकाकाशमें वन (अणुकाश करनेवालों)के विषयमान न होनेसे

= (अणुकाशदानका) अभाव है ऐसी शंका है । (उभर) (ऐसी शंका) नहीं इानी वारिये

= क्योंकि (कोईभी पदार्थ) स्वभाव नहीं छोड़ता है अर्थात् आकाशमें अणुकाशन (=अणुकाश

दान देनेका) ही शक्ति और स्वभाव है सो चारे अणुकाश करने वाले उसमें हों वा न हों (जैसे अलो

काकाशमें अणुकाश करनेवाले नहीं हैं)भी वह पदार्थ(अलोकाकाश) अपना स्वभाव नहीं त्यागता है

अन्तः ॥ आकाशस्य ॥ उपकारः ॥ अणुकाशदान्तर = आकाशका उपकार कहा गया अणु उस (आकाश)के अत्यन्त सर्पित वा खगताही

वर्णनानाम् ॥ पुद्गलानाम् ॥

कर्म ॥ उपकारः ॥ इति चन्द्रः च्यते । = क्या उपकार है इस कारण (=इति) यहाँ (उभर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(१) सूत्रम्—

शरीरवाङ्मन प्राणायानां पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

= शरीर-वाङ्मनस्-प्राण-अपाना (जीवानाम्) पुद्गलानाम् (उपकार)

(१) योने ॥ उपकारोमे एत सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है । हमारे यहाँ कही १० पर 'पुद्गलानामके स्थानमें पुद्गलानाम' पाठ है वह बहुततमें कथ्यते है

(२) योने 'जीवानाम्' २१२७७ अनुसृति परतना सूत्रसे लोगरं है । अथवा यो समझका कि "जीवानाम्" शब्दका अर्थात्तर किजा गया है ।

भित्यादिभिर्गन्धादीना च व्याघातो न प्राप्नोति । दृश्यते च व्याघात । तस्माद्स्याव । शदानहं यते
 इति ॥ नैप दोष । वज्रलोष्टादीना स्थूलाना परस्परव्याघात इति नास्यानकाशदानसामर्थ्यहीयते-
 तत्रानगाहिनामेव व्याघातात् । वज्रद्वय पुन स्थूलत्वात्परस्पर प्रत्यवकाशदान न कुर्वन्तीति
 नासावाकाशदोष । ये खलु पुटुगला सूक्ष्मास्ते परस्पर प्रत्यवकाशदान कुर्वन्ति ॥ यद्येव नेदमा-
 काशस्यासाधारण लक्षणमितरेषामपि तत्सद्भावादिति ॥ तन्न । सवपदार्थाना साधारणावगाहनहेतु-
 त्वमस्यासाधारण लक्षणमिति नास्ति दोष ॥

भिति आदिभिः गो आदीनां च व्याघात नभामातिग
 रणत्वात् ॥ व्याघातः न स्यादः अस्य ॥
 अत्राशदानं ॥ शिवानं ॥ शोष ॥
 वज्र-त्वात्-आत्मानम् । स्थूलानां । परस्पर-व्याघातः ।
 नित्यं न भवति ॥ अवकाशदान सामर्थ्यम् ॥ इत्येते ।
 तत्र ॥ अणुगणितानां पृथक् व्याघातः । पुन वज्र
 आदयः स्थूलानां ॥ परस्परः ॥ अतिअवकाश-
 दानम् ॥ न च कृन्ति ॥ इति नभसोः ।
 व्याघात-दोषः । खलु पुटुगलाः । सूक्ष्माः ।
 परस्परः । अतिअवकाशदानं ॥ कृन्ति, यदि एवम्
 न भवति ॥ आकाशस्य ॥ अमायाशक्तम् ॥ लक्षणम् ॥
 शरणम् । अति नव-मन्त्रानां । इति
 तत्र ॥ न परस्परानाम् । मायाशक्तं अणुगण
 एवम् ॥ अस्य ॥ अमायाशक्तम् ॥ अणुगणम् ॥

= और (=च) भीत आदिकरि गऊ आदिका स्काव नहीं प्राप्त होता है
 = और (बलादिकतयागऊआदिका) शोकानानादिलाजालाहै विसंभरणसे असभाकाशक
 = स्थानदान देना बलाजाला है अथवा बाधा जाता है । यह दूषण नहीं है
 = वज्र बलादिक स्थूल अथवा मोटे (पदार्थ) निका आपसमें स्काव है
 = इस (आकाश)की अवकाशदानकी शक्ति नहीं बांधी जाती है
 = पर्योक्तिही (आकाशमें असगाह करनवालोंकेही) परस्पर व्याघात है और वज्र
 = आदिक सूक्ष्म होनेसे एक दूसरको (=मति) स्थान
 = दान नहीं करते हैं । न यहा अर्थात् स्थूल पदार्थोंका एक दूसरेसे अचना ।
 = आकाशका दूषण है । निश्चयसे जे सूक्ष्म पुटुगल हैं । ते
 = एक दूसरको (=मति) अवकाशदान करते हैं । (अश) जो इस प्रकार है
 (अर्थात् जो सूक्ष्म पुटुल आपसमें अवकाशदान करते हैं । जो)
 = यह (अवकाशदान) आकाशका असाधारण स्वभाव नहीं है
 = क्योंकि दूसरोंकेपी ठम (अवकाशदानकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व है
 = (अश) अभाव नहीं है क्योंकि सब पदार्थके साधारण (युगपत्) अवकाशदानका
 = कारण होने इस आकाशका अन्तःत्वा वा अर्थात् स्वभाव है

१ है यद्यपि यह है कि शिष्यक रामसरत पर कि

तदभावे तद्वृत्त्यभावात् ॥ तत्सामर्थ्योपेनेन क्रियावताऽऽत्मना प्रेर्यमाणा पुद्गला वाक्त्वेन विपरि-
 शमन्त इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकी । श्रोत्रेन्द्रियविषयत्वात् ॥ इतरेन्द्रियविषया करमात्र भवति ?
 तद्ग्रहणयोग्यत्वात् ॥ घ्राणग्राह्ये गन्धद्रव्ये रसाद्यनुपलब्धिवत् ॥ अमूर्ता वागिति चेन्न - मूर्ति-
 मद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिसर्वादिदर्शान्मूर्तिमत्वसिद्धे ॥ मनो ह्यिविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति
 भावमनस्तावत्सुबुध्युपयोगलक्षणं पुद्गलावलम्बनत्वात् पौद्गलिकम् ॥

तद् अभावेऽऽ तद्-बुद्धि-
 अभावात् ॥
 तत्-सामर्थ्य-उपेनेन । क्रियावताऽऽ आत्मना ।
 प्रेर्यमाणा । पुद्गलावाक्त्वेनेन ॥ ॥ विपरिशमन्ते ॥
 इति । द्रव्यवाक् । अपि । अयोद्गलिकी ॥ ॥ ओष-इन्द्रिय-
 विषयत्वात् ॥ ॥ इतरेन्द्रिय-विषयाः । कस्मात् । न । प्रवृत्ति-
 तद्-आरभ्य उपयोग्यत्वात् ॥ ॥ ॥ आत्मा-वाक् ॥ ॥
 मन्प-द्रव्ये ॥ ॥ तस्मादि-अनुपलब्धिवत् ॥
 अमूर्ता । वाक् ॥ इति । अर्थात् । न ।
 मूर्तिवत्-आरभ्य-अपरोप-भ्यायात्-
 अभिपत्तादि-दर्शनात् ॥ ॥ ॥ प्रतिकल्पसिद्धे ॥

—वस(भाववाक्)के अभाव होनेपर, वस(भाववाक्)की चेष्टा(व्यवसाय)का
 —अभाव होना है अर्थात् भावपवनके न होनेपर आत्मा बोल नहीं सकता है ॥
 —वस(भाववाक्)की प्रतिकल्पे प्राप्त हुआ (=उपेनेन क्रियावान् आत्माकारि
 —व्येरे हुये पुद्गल पवनरूप होकर परिछमते हैं (वह द्रव्य पवन है)
 —व्येरे द्रव्य वाणीभी पुद्गलसे उषणी है, क्योंकि(द्रव्यपवन)कान इन्द्रियका
 —व्योक्तिवस(हूसरी इन्द्रिय)के प्रारण्य योग्य नहीं है । किस कारणसे =कस्मात्(कि(द्रव्यवाक्)हूसरी इन्द्रियका विषय नहीं है ?
 —योग द्रव्य है । (वह प्राण इन्द्रिय) रसादिक प्रारण्य करने योग्य नहीं है
 —अपन अमूर्तिक है ऐसी शंका है । (उपर)वाणी अमूर्तिक नहीं है
 —क्योंकि मूर्तिकके प्रारण्यसे(मूर्तिककरि)इकजानेसे(मूर्तिकसे) ग्राहको प्राप्त होनेसे
 —(मूर्तिक द्वारा) विरस्तारविक्र देलनेसे मूर्तिपना सिद्ध है अर्थात् वाणीका मूर्तिक
 द्वारा एक विशासे हूसरी विशाको वलोगाना आदि देलनेसे मूर्तिपना सिद्ध है
 =अपन =मन शोभकरकार है । द्रव्यमन और(=)अवमन । (शोभोमकारक मन पुद्गल स्वकार्य)
 =अपपन से (आवत्) कल्पि तथा उपयोग स्वरूप है
 =और पुद्गलके आभयभावसे पुद्गलजन्य है अर्थात्

(*)पनम् ॥ द्विविषयम् ॥ द्रव्यमनम् ॥ अप-अपपनम् ॥ पति-मन ॥ अप-अपपनम् ॥ अप-अपपनम् ॥
 आभयम् ॥ आवत्-कल्पि-उपयोग-स्वरूपम् ॥
 पुद्गल-अपलम्बनत्वात् ॥ पौद्गलिकम् ॥
 (**)मनस(अ)पवत् = अह, रूप (अ)पवत् = बुकोकी मयराता शीर्षेकम् । अकारण्यगुणकल्पिगीहै शिषके प्रथमा एकमवचन नपुलकल्पिय मन, अथाः यथाऽहै

पश्यानिपाणी शगरूपसराय पकीलकण पदच्छेद और पिपत्त्यर्यसहित सर्वाधिकसिद्धि का शब्दशः रिचीअनुवाद अध्याय ५ सूत्र १६

तद्विपाकस्य मूर्तिमत्सम्बन्धनिमित्तत्वात् ॥ दृश्यतेहि व्रीह्यादीनामुदकादिद्रव्यसम्बन्धप्रापित्परिया-
काना पौद्गलिकत्वम् । तथा कर्मणामपि गूढकण्टकादिमूर्तिमद्द्रव्योपनिपाते सति विपच्यमानत्वा-
त्पौद्गलिकमित्यवसेयम् ॥ वाक् द्विविधा । द्रव्यवाग्माववागिति ॥ तत्र भाववाक् तावद्दीर्यान्तरायम
तिश्रुतज्ञानावरणजयोपशामोपाङ्गनामलामनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी ।

तद्विपाकस्य॑ । मूर्तिमत्-सम्बन्ध निमित्तत्वात्॑ ॥५॥

रायते । रि० श्रीरि-आरीनाम् । उदक-आदि-द्रव्य
सम्बन्धप्रापित-परिपाकानाम् ॥

पौद्गलिकत्वम् ॥ नया० कर्मणाम् ॥ अपि० गूढ
कण्टकादि-मूर्तिमत्-द्रव्य उपनिपातम् ॥ सति०
विपच्यमानत्वात् ॥ पौद्गलिकस्य ॥ इति० अत्रवसेयम् ॥ ॥

दरानारण्यः मोरनीयः, अन्तरायकर्मका उदय जानना चारिये । कर्मणाम् मूर्तिमत्-द्रव्योपनिपाते सति विपच्यमानत्वात् । तत्र भाववाक् तावद्दीर्यान्तरायमतिश्रुतज्ञानावरणजयोपशामोपाङ्गनामलामनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी ।

न्यौकिं वस (कार्मण शरीर) के उदयका कारण मूर्तिवान्के संयोगसे है अर्थात्
मूर्तिमान बस्तुका सम्बन्ध वस कर्मणके उदयका कारण है
=मैसे (=रि) देसागया है कि वानल आदिकोंके जल आदिक द्रव्योंके
=संयोग प्राप्त कर भले प्रकारसे पकनेक्य वा उदय पाकरूप होना है इनके
=वेदोंनो श्रीरि उदक पुहलपयो वा पुहलान्य हैं । पुद्गल) । वैसे कर्मण(शरीर)भी गूढ
=कटि आदि मूर्तिक द्रव्योंके संयोग होनेपर

मदिरा बनती है विस मदिराके पीनेसे विष विषयक्य होजाता है उस समय जानावस्थ
उदय जानना चारिये । कर्मणाम् मूर्तिमत्-द्रव्योपनिपाते सति विपच्यमानत्वात् । तत्र भाववाक् तावद्दीर्यान्तरायमतिश्रुतज्ञानावरणजयोपशामोपाङ्गनामलामनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी ।

मदिरा बनती है विस मदिराके पीनेसे विष विषयक्य होजाता है उस समय जानावस्थ उदय जानना चारिये । कर्मणाम् मूर्तिमत्-द्रव्योपनिपाते सति विपच्यमानत्वात् । तत्र भाववाक् तावद्दीर्यान्तरायमतिश्रुतज्ञानावरणजयोपशामोपाङ्गनामलामनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी ।

तदभावे तद्वृत्त्यभावात् ॥ तत्सामर्थ्योपेनेन क्रियावताऽऽत्मना प्रेर्यमाणा पुद्गला वाक्त्वेन विपरि-
 णमन्त इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकी । श्रौत्रेन्द्रियविषयत्वात् ॥ इतरेन्द्रियविषया करमात्र भवति ?
 तद्ग्रहणायोच्यत्वात् ॥ घ्राणग्राह्ये गन्धद्रव्ये रसाद्यनपलब्धिवत् ॥ अमूर्ता वागिति चेन्न - मूर्ति-
 मद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिसर्वादिदर्शान्मूर्तिमत्वसिद्धे ॥ मनो ह्यिविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति
 भावमनस्तावत्सुब्युपयोगलक्षणं पुद्गलावलम्बनत्वात् पौद्गलिकम् ॥

सर्व अभावेऽपि तद्वृत्ति-
 अभावात् ।
 तत्-सामर्थ्य-उपेनेन । क्रियावताऽ । आत्मनाऽ ।
 प्रेर्यमाणाऽ । पुद्गलाऽ । वाक्त्वेनऽ । विपरिणमन्ते ।
 इति च द्रव्यवाक् । अविरोधोपेनेन च । श्रौत्रेन्द्रिय-
 विषयत्वात् । इतरेन्द्रिय-विषयाऽ । कस्मात् । अन्वयवर्ति ।
 तद्वृत्तयः अयोग्यतात् । घ्राण-ग्राह्यः ।
 मन्त-द्रव्येऽपि । रसादि-अनुपलब्धिवत् ।
 अमूर्ताऽ । वाक् । इति च वेत् । अन-
 मूर्तिमत्-अहल-अतरोप-स्यायात-
 अभिमतादि-दर्शनात् । मूर्तिमत्वसिद्धेऽपि ॥

=वस(भाववाक्)के अभाव होनेपर, वस(भाववाक्)की वेश्याभ्यवसत्य का
 =अभाव होआता है अर्थात् भाववचनके न होनेपर आत्मा बोल नहीं सकता है ॥
 =तिस (भाववाक्)की शक्तिको प्राप्त हुआ (=उपेनेन) क्रियावान् आत्माकरि
 =ये हुये पुद्गल वचनरूप होकर परिणामते हैं (एव द्रव्य वचन है)
 =येसे द्रव्य वाणीभी पुद्गलसे उपजी है, क्योंकि द्रव्यवचन) कान इन्द्रियका
 =वर्षोक्तिस (हूसरी इन्द्रिय)के प्रणय योग्य नहीं है । नाक इन्द्रियके प्रणयोप्यम्(=ब्राह्म)
 =यंय द्रव्य है । (एव घ्राण इन्द्रिय) रसादिक प्रणय करने योग्य नहीं है
 =वचन अमूर्तिक है ऐसी शंका है । (एव च) वाणी अमूर्तिक नहीं है
 =वर्षोक्तिस मूर्तिकके प्रणयसे,(मूर्तिककरि)कृमानेसे(मूर्तिकसे) महारको प्राप्त होनेसे
 =(मूर्तिक द्वारा) विरस्तारदिक देसनेसे मूर्तिपना सिद्ध है अर्थात् वाणीका मूर्तिक
 द्वारा एक विद्यासे दूसरी विद्याको बखेगाना आवि देसनेसे मूर्तिपना सिद्ध है
 =वस(भाववाक्)के अभाव होनेपर, वस(भाववाक्)की वेश्याभ्यवसत्य का
 =अभाव होआता है अर्थात् भाववचनके न होनेपर आत्मा बोल नहीं सकता है ॥
 =तिस (भाववाक्)की शक्तिको प्राप्त हुआ (=उपेनेन) क्रियावान् आत्माकरि
 =ये हुये पुद्गल वचनरूप होकर परिणामते हैं (एव द्रव्य वचन है)
 =येसे द्रव्य वाणीभी पुद्गलसे उपजी है, क्योंकि द्रव्यवचन) कान इन्द्रियका
 =वर्षोक्तिस (हूसरी इन्द्रिय)के प्रणय योग्य नहीं है । नाक इन्द्रियके प्रणयोप्यम्(=ब्राह्म)
 =यंय द्रव्य है । (एव घ्राण इन्द्रिय) रसादिक प्रणय करने योग्य नहीं है
 =वचन अमूर्तिक है ऐसी शंका है । (एव च) वाणी अमूर्तिक नहीं है
 =वर्षोक्तिस मूर्तिकके प्रणयसे,(मूर्तिककरि)कृमानेसे(मूर्तिकसे) महारको प्राप्त होनेसे
 =(मूर्तिक द्वारा) विरस्तारदिक देसनेसे मूर्तिपना सिद्ध है अर्थात् वाणीका मूर्तिक
 द्वारा एक विद्यासे दूसरी विद्याको बखेगाना आवि देसनेसे मूर्तिपना सिद्ध है
 =वस(भाववाक्)के अभाव होनेपर, वस(भाववाक्)की वेश्याभ्यवसत्य का
 =अभाव होआता है अर्थात् भाववचनके न होनेपर आत्मा बोल नहीं सकता है ॥
 =तिस (भाववाक्)की शक्तिको प्राप्त हुआ (=उपेनेन) क्रियावान् आत्माकरि
 =ये हुये पुद्गल वचनरूप होकर परिणामते हैं (एव द्रव्य वचन है)
 =येसे द्रव्य वाणीभी पुद्गलसे उपजी है, क्योंकि द्रव्यवचन) कान इन्द्रियका
 =वर्षोक्तिस (हूसरी इन्द्रिय)के प्रणय योग्य नहीं है । नाक इन्द्रियके प्रणयोप्यम्(=ब्राह्म)
 =यंय द्रव्य है । (एव घ्राण इन्द्रिय) रसादिक प्रणय करने योग्य नहीं है
 =वचन अमूर्तिक है ऐसी शंका है । (एव च) वाणी अमूर्तिक नहीं है
 =वर्षोक्तिस मूर्तिकके प्रणयसे,(मूर्तिककरि)कृमानेसे(मूर्तिकसे) महारको प्राप्त होनेसे
 =(मूर्तिक द्वारा) विरस्तारदिक देसनेसे मूर्तिपना सिद्ध है अर्थात् वाणीका मूर्तिक
 द्वारा एक विद्यासे दूसरी विद्याको बखेगाना आवि देसनेसे मूर्तिपना सिद्ध है

पुद्गल अणुसम्पन्नत्वात् । पौद्गलिकपर्यं ॥
 (क)मत्त्व(क)पवत् = ब्रह्म, इत्य (य)मत्त्व = गुणोन्मी मत्त्वता, शीघ्रोन्म्व स आरात्त नपुल्लकडिगते शिबके परमा एकवचन नपुल्लकडिग मत्त्व, एतत् यथाऽपि

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायज्ञयोपशमांगोपागनामलाभप्रत्यया गूणदोषविचारस्मरणादिप्र-
 णिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहका पुद्गला मनस्त्वेन परिश्रुता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिददाह
 मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति । यदयुक्तम् ॥ कथम् ?
 उच्यते-तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यात्

द्रव्यमनः ॥ च ० ज्ञानावरण-बीयां वराय स्रयोपशम-
 मंगोपागनाम-त्नाम-मत्ययाभिभूण दोष-विचार
 स्मरणादि त्रिणिधान-अभिमुखस्यः । आत्मनः ।
 मनग्राहकः । पुद्गलाः । मनस्त्वेनः ।
 परिश्रुताः ।

तदिन्द्रियत्वम् ॥

इति ० आरात्मनः ॥ द्रव्यान्तरम् ॥ रूपादि
 परिणाम-रहितम् ॥ अणु-मात्रम् ॥ तस्य ॥ पौद्गलिकत्वम् ॥ कथम् ॥
 मयुक्तम् ॥ इति ० अदः ॥ अयुक्तम् ॥ कथम् ॥
 उपपन्नो ननु
 इन्द्रियम् ॥ आत्मनः ॥ च ० आत्मनः ॥ च ० आत्मनः ॥ च ० आत्मनः ॥

पुद्गल रूपके स्रयोपशमसे हुआ है विस रहते पुद्गलमयी है ॥

=और(=च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय रूपोंके स्रयोपशमका
 =वया आंगोपांग नामा नामरूपका वदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार
 =स्मरणविके मयत्(=यिणयान)के सन्मुख है जो आत्मा विसके
 =वपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपकरि
 =परिणये है (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त रूपोंके स्रयोपशम तथा उदयसे

'गुण-दोष-विचार-स्मरणविकके वपकारी' इदय स्थानमें विष्टा हुआ सूक्ष्म
 पुद्गलोंका प्रथमरूप अष्टपालुकीके फूले हुये रूपके आकार =मनपनाकरि
 परिकये पुद्गल) है सो द्रव्य मन है

इस प्रकार (बह द्रव्य मन) पुद्गलमन्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे
 पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त
 होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गंध-स्पर्शभाव है ॥

=और प्रकृत करता है कि मन न्यारा द्रव्य है । अर्थात्
 =परिणाम वा विकार बन्धित है, अणुमात्र है, विस (मन)के पुद्गलजन्यपना
 =वीकनरी(उपर)सो(मन)को रूपादिपरिणामबन्धितऔरअणुमात्रकरना)अयुक्त है।(कैसे)
 =उपरवै)कराजाता है कि उस वस्तुके मते मन न्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का
 =परिणये और आत्मासे सम्बन्ध रहता होगा अथवा

असम्बद्धं वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदगुण इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिघ्नमथमिति चेन्न-तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रिय-स्यादृष्टो गुण, स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावा-नस्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ

असम्बद्धम् ३ ॥ वा ३ यद्वि० असम्बद्धम् ३ ॥ ७६ ॥ आत्मनः ॥
 उपकारकम् ३ ॥ यद्वि० ३ ॥ न० अर्थितः, च० इन्द्रियस्पर्शः ॥
 साचिव्यम् ३ ॥ न० अकारोक्तिः अर्थः ॥
 सम्बद्धम् ३ ॥ अर्थः ॥ ७६ ॥ ॥ अणुः ॥ एकस्मिन्प्रदेशे ॥
 सम्बद्धम् ३ ॥ इतरेषु प्रदेशेषु ॥ उपकारम् ३ ॥
 न० कुर्यात् । अदृष्ट-वशात् ॥
 अर्थः ॥ अलात-चक्रवत् ॥
 परिघ्नमथम् ३ ॥
 इति ० वेत् ० न० ॥
 तत्-सामर्थ्यं अभावात् ॥
 अमूर्तस्पर्शः आत्मनः ॥ निष्क्रियस्पर्शः अदृष्टः ॥ गुणः ॥
 सत् ॥ निष्क्रियः ॥ सत् ॥ अन्यत्र ० क्रिया-आरम्भः ॥
 न० समर्थः ॥
 दृष्टः ॥ हि ॥ वायुद्रव्य-विशेषः ॥ क्रियावान् ॥
 स्पर्शवान् ॥ प्राप्त-वनस्पतौ ॥

असंबन्ध होगा । जो संबंध नहीं है तो वह (मन) आत्माका
 =सहायक अथवा सहायरी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका
 =संबंधीपना नहीं करता है । पञ्चान्वरत्तं (=अप) अर्थात् इन्द्रियसे और आत्मासे मनका
 =संबंध है तो वह (मन) अणु होतेसंते इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें
 =सयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
 =नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके) न वीत्तेभानेके बरासे वा अदृष्टगुण होनेसे
 =इस (मनका) अर्द्धरूपकाष्ठ अथवा अंगारके धाकके सहाय
 =(आत्माके सम्बन्धोंमें) परिपूर्ण होता है
 =येसा अन्यमूर्ति) आग्रह करता है (=इतिवत्) उचर सो नहीं है)
 =योंकि वस आत्माके (अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है
 =अमूर्तिक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है
 =सो निष्क्रिय होकर अन्यवस्तुविषय क्रियाके आरम्भमें
 =सामर्थ्यरहित है अर्थात् आत्माका अदृष्टगुण आत्माके मुख्य अमूर्तिक है
 क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहित है
 =जैसे (=इतिवत्) जानता है कि वायुद्रव्य वा गुण क्रियावान् और
 स्पर्शवान् है सो प्राप्त की हुई अर्थात् पवन निनमें धूमती है (न) वनस्पतियोंमें

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायज्योपशमगोपागनामलामप्रत्यया गूणदोषविचारस्मरणादिप्र-
 णिधानाभिमुखस्यात्मनोज्जुग्राहका पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह
 मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमशुभात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति । यदयुक्तम् ॥ कथम् ?
 उच्यते-तदिन्द्रियेणालम्ना च सम्बद्धं वा स्यात्

द्रव्यमनः ॥ च ॥ ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय ज्योपशम
 गोपागनामलाम-मस्यामभुण-दोष-विचार
 स्मरणादि परिणामरहितमशुभात्रं ॥ आत्मनः
 मनो द्रव्यान्तरं ॥ पुद्गलाः ॥ मनस्त्वेन ॥ ॥
 परिणतः ॥

रि० पौद्गलिकम् ॥

कश्चिदाह ॥ आत्मनः ॥ द्रव्यान्तरम् ॥ ॥ रूपादि-
 परिणामरहितम् ॥ अणु-मात्रम् ॥ ॥ अस्मिन् ॥ पौद्गलिकत्वम् ॥ ॥
 अनुत्तम् ॥ ॥ इति ॥ अयुक्तम् ॥ ॥ कथम् ॥
 उच्यते ॥ तद्
 इन्द्रियेण ॥ ॥ आत्मनः ॥ च ॥ सम्बद्धम् ॥ ॥ वा ॥ स्यात् ॥ ॥

पुद्गल कर्मके ज्योपशमसे हुआ है विस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥
 = और (= च) द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मों के ज्योपशमका
 = तथा गोपागण नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार
 = स्मरणादिके मयल (= अणिधान) के सम्मुख है जो आत्मा विसर्ग
 = रूपाकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपाकारि
 = परिणये है (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मों के ज्योपशम तथा उदयसे
 'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिके रूपाकारी' इत्य स्मानने विद्या हुआ मुख्य
 पुद्गलोंका मचयक अष्टपञ्चुरीके फूले हुये कर्मके आकार धमनपनाकारि
 परिणये पुद्गल) है सो द्रव्य मन है

= इस प्रकार (च द्रव्य मन) पुद्गलमय है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे
 पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त
 होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गन्ध-स्पर्शमात्र है ॥
 = और मन करता है कि मन स्यात् द्रव्य है । रूपादि
 = परिणाय वा पिच्छर इति है, अस्मान्नाह, विस (यन) के पुद्गलजन्यपना
 = रूपाकारि (उच्यते) (मनको रूपादिपरिणामकमित्तको अणुमात्रकहना) अयुक्त है कि सो
 = (उच्यते) कहा जाता है कि जब उच्यते मतमें मन स्यात् द्रव्य और अणुमात्र) का
 = सम्बन्धसे और आत्मासे सम्बन्ध रहता होगा अथवा

असम्बद्ध वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिद्व्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदगुण इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अहृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रिय-स्यादृष्टो गुण, स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावा-नस्पर्शवान्प्राप्तवनस्पती

- असम्बद्धम् ॥ वा १०५दि० असम्बद्धम् ॥ १०५दि० ॥ आत्मनर्म् ।
- उपकारकम् ॥ अविद्युत् ॥ १०५दि० ॥ अविद्युत्, चन्द्रत्रियस्पर्श ॥
- साचिद्व्यम् ॥ १०५दि० ॥ अविद्युत् ॥ अविद्युत् ॥
- सम्बद्धम् ॥ १०५दि० ॥ अविद्युत् ॥ एकस्मिन्प्रदेशे ॥
- सम्बद्धम् ॥ १०५दि० ॥ अविद्युत् ॥ उपकारकम् ॥
- न १०५दि० ॥ अविद्युत् ॥ अविद्युत् ॥
- अस्य ॥ १०५दि० ॥ अविद्युत् ॥ अविद्युत् ॥
- परिभ्रमणम् ॥ १०५दि० ॥ अविद्युत् ॥ अविद्युत् ॥
- इति १०५दि० ॥ अविद्युत् ॥ अविद्युत् ॥
- तद्-सामर्थ्यं अभावात् ॥
- अयं स्व-आत्मनर्म् निष्क्रियस्पर्शः अहृष्ट-गुणः ॥
- सर्म्-निष्क्रियः ॥ सत् ॥ अन्यत्र ॥ क्रिया-आत्मनर्म् ॥
- न १०५दि० ॥
- एत-१०५दि० वायुद्रव्य विशेषः ॥ क्रियावान् ॥
- स्पर्शवान् ॥ आत्मानस्पती ॥
- असंभव्य होगा । जो संबंध नहीं है तो वह (मन) आत्माका
- व्यवहारक अथवा सहायक होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका
- संबंधीपना नहीं करता है । पञ्चान्तर्गते (=अथ) अर्थात् इन्द्रियसे और आत्मासे मनका
- संबंध है तो वह (मन) अथु होवेसे वे इन्द्रिय तथा आत्माके एकत्रदेशमें
- व्यवहार होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
- नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके) न देखे जानेके बगुने वा अहृष्टगुण होनेसे
- इस (मनका) अर्द्धदृश्यकाष्ठ अथवा अंगारके चक्रके सहाय
- (आत्माके) संबंधोंमें परिपूर्ण होना है
- व्येसा अन्यमूर्ती) आग्रह करता है (=इतिषेत्) उचर सो नहीं है)
- क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें) क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है
- अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अहृष्ट गुण है
- वसो निष्क्रिय होकर अन्यवस्तुविये क्रियाके आरम्भमें
- सामर्थ्यरहित है अर्थात् आत्माका अहृष्टगुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है
- क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिके रहित
- वैसे (=इति) प्रस्तावना है कि वायुद्रव्य वा गुण क्रियावान् और
- स्पर्शवान् है सो मात ही दुर्ग (अर्थात् पवन भिननें छुल्लती है उन) वनस्पतियोंमें

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमंगोपांगनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्र-
 षिधानामिमुखस्थाल्मनोऽनुशाहका पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह
 मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमशुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति । यदयुक्तम् ॥ कथम् ?
 उच्यते-तदिन्द्रियेणालमना च सम्बद्धं वा स्यात्

पुद्गल रूपके क्षयोपशमसे हुआ है तिस हेतुसे पुद्गलकथ्ययी है ॥
 और(अच)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमका
 अथा अंगोपाय माया नासकर्यका उदय है कारण निसको और गुण-दोष विचार
 स्मरणादिके मयत्(अधिपान)के सम्बुल है जो आत्मा तिसके
 अपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपकरि
 परिणये है (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदयसे
 'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिके लपकारी' इत्य स्मानमें विष्टा हुआ सूक्ष्म
 पुद्गलका मकर्यरूप अष्टपांशुरीके फूले हुये रूपके आकार मनपनाकरि
 परिणये पुद्गल) है सो द्रव्य मन है

इस प्रकार (पर इत्य मन) पुद्गलकथ्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे
 पुद्गल इत्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त
 होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गंध-स्पर्शवान् है ॥
 कोई प्रकन करता है कि मन स्यारा द्रव्य है । कर्पादि
 परिणाम वा विकार बनिव है, अणुमान है, तिस (मन)के पुद्गलजन्यपना
 बीकनहीं(वच)सो(मन)को कर्पादिपरिणामबनिवऔरअणुमात्रकहना)अयुक्त है(कैसे?
 (वच)केकारणमा है कि उस दुम्भारे मतमें मन न्यारा द्रव्य और अणुमान) का
 अचरसे और आत्मनासे सम्बन्ध रहता होगा अथवा

द्रव्यमनः ॥ १७ ॥ ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय-क्षयोपशम
 अंगोपांगनाम-शाम-मस्यपाद्गुण-दोष-विचार
 स्मरणादि-अधिपान-अभिष्टलस्यः आत्मनः
 मनशाहकाः पुद्गलाः मनस्त्वेन ॥
 परिणताः ॥

तिसोपुद्गलकथ्यः ॥

इतिद्विःशतः ॥ द्रव्यान्तरम् ॥ कर्पादि
 परिणाम-परिणामम् ॥ अणु-मात्रम् ॥ तस्यः ॥ भौद्विगलिकत्वस्यः ॥
 अयुक्तम् ॥ इति ॥ अणु-मात्रम् ॥ कथम् ?
 उच्यते ॥
 इन्द्रियम् ॥ आत्मना ॥ सम्बन्धम् ॥ वाक्यम् ॥

असम्बद्ध वा ? । यद्यसम्बद्धं, तत्रात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदगुण इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अष्टवशादस्य अलातचक्रवत्यरिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रिय-स्यादृष्टो गुण, स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावा-न्स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पती

असम्बद्धम् ३ ॥ वा १०यदि०असम्बद्धम् ३ ॥ ७६ ॥ आत्मनर्म् ॥
 उपकारकम् ३ ॥ भविष्यम् ३ ॥ न० अरिभ्रमणम् ॥ ७७ ॥ इन्द्रियस्य ३ ॥

साधिव्यम् ३ ॥ न० अरिभ्रमणम् ०

सम्बद्धम् ३ ॥ सत्तत् ३ ॥ ७८ ॥ अलु ३ ॥ एकस्मिन् प्रदेशे ३

सम्बद्धम् ३ ॥ पतरेषु प्रदेशेषु ३ ॥ उपकारम् ३ ॥

न० कुर्यात् ३ ॥ अष्ट-वशात् ३ ॥

अस्य ३ ॥ अलात-चक्रवत् ०

परिभ्रमणम् ३ ॥

इति० वेत् ० न०

तत्-सामर्थ्यं अभावात् ३ ॥

अमूर्तस्य आत्मनर्म् ३ ॥ निष्क्रियस्य ३ ॥ अष्टम् गुणम् ३ ॥

सत् ३ ॥ निष्क्रिय ३ ॥ सत् ३ ॥ अन्यत्र ० क्रिया-आरम्भे ३ ॥

न० असमर्थम् ३ ॥

दृष्टम् ३ ॥ वायुद्रव्य-विशेष ३ ॥ क्रियावान् ३ ॥

स्पर्शवान् ३ ॥ प्राप्त-वनस्पतौ ३ ॥

=असंबन्ध होगा । जो संबन्ध नहीं है तो वह (मन) आत्माका

=वशापक अबबा सहाकारी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका

=बंधीपना नहीं करता है । पञ्चान्तरमें (=अथ) अर्थात् इन्द्रियसे और आत्मासे मनका

=संबन्ध है तो वह (मन) अगुण होतासंती इन्द्रिय तथा आत्माके एकत्वदेशमें

=संयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको

=नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके) न दीखेजानेके बराबरे वा अष्टगुण होनेसे

=इस (मनका) अर्द्धदेग्यकाष्ठ अबबा अंगारके चकके साथ

=(आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिपूर्ण होता है

=येसा अन्यमती) आग्रह करवा है (=वृत्तिवेत्) (उपर सोनरी है)

=क्योंकि इस आत्माके (अन्यबस्तुमें) क्रिया करवानेकी शक्तिका अभाव है

=अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अष्टगुण है

=सो निष्क्रिय होकर अन्यबस्तुविषय क्रियाके आरम्भमें

=सामर्थ्यरहित है अर्थात् आत्माका अष्टगुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है

क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यबस्तुमें क्रिया करवानेकी शक्तिसे रहित

=जैसे (=रि) श्रेष्ठाभावा है कि वायुद्रव्य वा गुण क्रियावान् और

स्पर्शवान् है सो प्राप्त कीदुर्ग (अर्थात् पवन जिनमें वृक्षती है न) वनस्वितियोंमें

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमंगोपांगनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्र-
 णिधानाभिमुखस्थ्यात्मनोऽनुग्राहकाः पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह
 मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति । यदयुक्तम् ॥ कथम् ?
 उच्यते तदिन्द्रियेणारमना च सम्बद्धं वा स्यात्

द्रव्यमनम् ॥ १ ॥ च ॥ ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय-क्षयोपशम-
 भांगोपांगनाम-क्षाम-शस्यार्थम् ॥ गुण-दोष विचार
 स्मरणादि मणिपान-अभिक्षुतस्यम् । आत्मनम् ।
 मनत्राहकारम् । पुद्गलाः । मनस्त्वेनम् ॥
 परिणताः ।

इति ० पौद्गलिकम् ॥ १ ॥

इति ० आरामनम् ॥ १ ॥ द्रव्यान्तरम् ॥ १ ॥ रूपादि
 परिणाम-रितम् ॥ १ ॥ अणु-मात्रम् ॥ १ ॥ तस्यम् ॥ १ ॥ पौद्गलिकत्वम् ॥ १ ॥
 अयुक्तम् ॥ १ ॥ इति ० अहम् ॥ १ ॥ अयुक्तम् ॥ १ ॥ कथम् ०
 उच्यते । तद्
 इन्द्रियेणम् ॥ १ ॥ आत्मनम् ॥ १ ॥ तस्यम् ॥ १ ॥ वा ० स्थापना

पुद्गल क्रमके क्षयोपशमसे हुआ है जिस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥

=और(=च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मों के क्षयोपशमका

=व्या भांगोपांग नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार

=स्मरणादिके प्रयत्न(=मणिपान)के सन्मुख है जो आत्मा जिसके

=वपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपानसे वा मनरूपकरि

=परिणये है (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मों के क्षयोपशम तथा उदयसे

'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिके वपकारी' हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ सूक्ष्म

पुद्गलोंका प्रथयरूप अष्टांगसूरीके फूले हुये क्रमवर्तके आकार मनपानकरि

परिणये पुद्गल) है सो द्रव्य मन है

=इस प्रकार (वह द्रव्य मन) पुद्गलजन्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके सयोगसे

पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त

होनेसे नैव इन्द्रियके समान रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवान् है ॥

=कोई प्ररन करता है कि मन ग्यारा द्रव्य है । अर्थात्

=परिणाम वा विकार बजित है, अणुमात्र है, जिस (मन)के पुद्गलजन्यपना

=वीकनरि(उपशम)के रूपादिपरिणामरहितऔरअणुमात्रकरना)अयुक्त होकेसे?

=(उपशम)के रूपादिवाला है कि वम उम्भारे मतमें मन ग्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का

=उपशमसे और आत्मासे सम्बन्ध रहता होगा सबवा

असम्बद्धं वा ? । यद्यसम्बद्धं, तत्रात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिब्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदगुण इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्यरिभ्रमणमिति चेतन-तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रिय-स्यादृष्टो गुण, स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावा-नस्पर्शान्वाप्नातवनस्पती

असम्बद्धम् ॥ वा । ०यदि ० असम्बद्धम् ॥ ॥ ॥ ॥ आत्मनः ॥

उपकारकम् ॥ पवित्रम् ॥ न ० अर्हति ॥ य ० इन्द्रियस्वर् ॥

साचिब्यम् ॥ न ० करोति ॥ न्य ०

सम्बद्धम् ॥ सत् ॥ ॥ ॥ ॥ एकस्मिन्प्रदेशे ॥

सम्बद्धम् ॥ इतरेषु प्रदेशेषु ॥ उपकारम् ॥

न ० कुर्यात् ॥ अदृष्ट-वशात् ॥

अस्य ॥ अलात-चक्रवत् ०

परिभ्रमणम् ॥

इति ० यत् ० न ०

तत्-सामर्थ्यं अभावात् ॥

अमूर्तस्य ॥ आत्मनः ॥ निष्क्रियस्य ॥ अदृष्ट-गुणः ॥

स ॥ निष्क्रिय ॥ सत् ॥ अ-पत्र ० क्रिया-आरम्भे ॥

न ० समर्थ ॥

दृष्टो ॥ इति ० वायुद्रव्य-विशेषः ॥ क्रियावान् ॥

स्पर्शवान् ॥ मात-यनस्पती ॥

- ० असंबन्ध होगा । जो संबन्ध नहीं है तो वह (मन) आत्माका
- ० सहायक अथवा सहाकारी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका
- ० संबन्धना नहीं करता है । पञ्चान्वरमें (अथ) अर्थात् इन्द्रियसे और आत्मासे मानका
- ० संबन्ध है तो वह (मन/अणु) होते-होते इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें
- ० संयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
- ० नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके) न शीलेआनेके बशसे वा अदृष्टगुणोनेसे
- ० ईस (मनका) अर्द्धरूपकाष्ट अथवा अंगारके ढक्के सतरा
- ० (आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिपूर्ण होना है
- ० ऐसे आत्मपत्नी) आग्रह करता है (० विवेचते) (उपर सो नहीं है)
- ० क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें) क्रिया करावनेकी शक्तिका अभाव है
- ० अमूर्तक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है
- ० सो निष्क्रिय होकर अन्यवस्तुविये क्रियाके आरम्भमें
- ० सामर्थ्यरहित है अर्थात् आत्माका अदृष्टगुण आत्माके दृश्य अमूर्तक है
- क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहित
- ० जैसे (० वि)श्लेजाजाता है कि वायुद्रव्य वा गुण क्रियावान् और
- स्पर्शवान् है सो मात कीदुर्ग (अर्थात् पवन भिनमें छून्गती है उन) पनस्पतिविये

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्द कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रह परस्परोपग्रह । जीवानामुपकारः ॥ कः पुनरसौ ? । स्वामी भृत्य, आचार्य शिष्य, इत्येवमादि भावेन वृत्ति परस्परोपग्रह ॥

सूत्रम्—परस्परोपग्रहो जीवानाम् (२१) = परस्परोपग्रहो (जीवानाम्) जीवानाम् (उपकार) भवति ॥ २१ ॥

सुत्रार्थः—परस्पर-उपग्रह-^(१)जीवानाम्।
जीवानाम्। ^(२)उपकारम्। भवति।

वृत्तानुवादः—परस्परशब्दम् कर्म-व्यतिहारैः सर्वत्र।
कर्मव्यतिहार-निवृत्तक्रियाव्यतिहारम्।

परस्परस्य। उपग्रहम्। परस्पर-उपग्रहम्।
जीवानाम्। उपकारम्।

कः। पुनरसौ। स्वामी। भृत्यः।
आचार्यः। शिष्यः। इत्येवमत्रिभिः। प्राप्तेनै।
वृत्तिः॥ परस्पर-उपग्रहः।

=परस्पर उपकार जीनोंके

=जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणशयात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुभसा आदिसे उपकार करते हैं आचार्य एक जीव दूसरेको आपसमें सुख (हस सुत्रमें) परस्परशब्द क्रिया (=कर्म)के अलटन पकटन (=व्यतिहार)के अर्थवियें वर्तता है =और (=च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह वह करता है और उसको उपग्रह वह करता है

=आपसका उपग्रह वा अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है

=(वह परस्पर(उपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंके एक दूसरेकेलिये उपकार प्रवर्तता है

= यत्र) बहुविध (उपग्रह) = अस्मै (परस्पर उपग्रह) क्या है (उत्तर) स्वामी, वाकर

= आचार्य शिष्य इत्यादिकृती इत्युपकी व्यवस्थासे (=भावेन)

= अर्थे विना-उपयोग-अपय व्यवसाय = वृत्ति) है सो परस्पर उपग्रह है

(१) हमने अग्रहालीमें इस सूत्रका पाठ कीट करी पढ़ाका है। हमने यहाँ किसी २ पुरातनी जीवानाम् के स्थान पर 'जीवानां' पाठ है यह कारणसे प्राण व्याकरणके अधिकारके अलटन है। (२) 'जीवानाम्' अर्थात् अस्तुति १५५ अर्थके अर्थ है। (३) 'अस्मै' अर्थ अस्मै अस्तुति ५५५ अर्थके अर्थ है।

स्वामी तापद्विक्तत्यागादिना भृत्यानासुपकारे वर्तते । भृत्याश्च द्वितप्रतिपादनेनाहितप्रतिषेधेन च ॥ आचार्य उभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठानेन च शिष्याणामनुग्रहे वर्तते । शिष्या अपि तदानुकूल्यवृत्या आचार्याणासुपकाराधिकारे ॥ पुनरुपग्रहवचनं किमर्थम् ? पूर्वोक्तसुखादिचतुष्टयप्रदर्शनार्थं पुनरुपग्रहवचनं क्रियते ॥ सुखादीन्यपि जीवाना जीवकृत उपकार इति ॥ अह यद्यवश्यं सतोपकारिणा भवितव्यं सश्च कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार

स्वामी, तापद्विक्तत्यागादिना भृत्यानाम् ।
 उपकारे वर्तते भृत्याम् ।
 प्रतिषेधेन ।
 उपदेश दर्शनेन ।
 क्रिया अनुष्ठानेन ।
 वर्तते शिष्या अपि ।
 उपग्रह वचनम् ।
 उक्तं मुत्त आदि ।
 जीवानाम् ।
 सन् ।

= स्वामी तपे = तापद्विक्त (= विष) द्वेने भाविस (= त्यागादिना) । सेषकोंकी
 = सहायता करने में प्रवर्तना है और (= च) आकर श्रितकी बाली करिकरि और भालिका
 = नियेपकरि स्वाभियोंके उपकार में प्रवर्तना है । आचार्य दोनों लोकका फल देनेनाखा (प्रद)
 = उपदेशको दितावनेकरि और (= च) उस उपदेशके अनुकूल उचित भावना योग्य
 = क्रियाका आचरण करानेकरि शिष्योंके उपकार (= अनुग्रह में)
 = प्रवर्तता है । वैसेभी उस आचार्य क अनुकूलपना (= अनुकूल्य) में प्रवृत्ति होकर
 = आचार्योंके उपकार नियमों अधिकारमें प्रवर्तते है । प्रभु (सून अर्थात् इस अध्यायके २० वा सूत्रमें)
 = उपग्रह शब्द (इस सूत्रमें) किसलिये है । पहिल (सून अर्थात् इस अध्यायके २० वा सूत्रमें)
 = करे हुए सुलदुत्स जीवित-मरण चार अवस्थाओंके विस्वावनेके लिये फिर (= पुनः)
 = उपग्रहवाक्य (= इस सूत्रमें) क्रियागगा है सुल-दुत्स-जीवित-मरणभी
 = जीवोंके जीवकृत उपकार है कोरे पूछना है कि जो (= यदि)
 = सपारुपवस्तु (= सत्) अवश्य उपकार सहित होनेयोग्य (= भवितव्यम्) है
 = और काल सपाक्य वा सत्त्वरुप (= सत्) आनागपारै भोतिस (काल) कावया उपकार है

(1) सत् यद्यपि प्रथम विभक्ति एकवचन पुलिस सत् शब्दका है । इसका अर्थ सत् रूप है । (2) प्रवर्तना शब्दार्थानि कर्म आहंसे इत्यप्याश्रयत' तक यह भाष्य देता है । उल्लेखि सर्वाव्यतिवृत्तिम् है । तस्य क उपकारः । के स्थानमें सम्भुपकारः । राशकालिकने है उससे अर्थ भेद नहीं होता है । इस भाष्यका अर्थ यह पठित पञ्जाकालकी कृणीवामे और पठित पञ्जाकालकी कृणीवामे से ले लिया है । ' अतः शिष्य कही ही जो अवश्य

॥ परस्पररोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्द कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रह परस्पररोपग्रह । जीवानामुपकारः ॥ क पुनरसौ ? । स्वामी भृत्य, आचार्य शिष्य, इत्येवमादि भावेन वृत्ति परस्पररोपग्रह ॥

(१) सूत्रम्-परस्पररोपग्रहो जीवानाम् (२१) = परस्पररोपग्रहो (जीवानाम्) जीवानाम् (उपकार) भवति ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—परस्पर-उपग्रहः (१) जीवानाम् ।
जीवानाम् । (२) उपकारः । भवति ।

परस्पर उपकार है अर्थात् जीवकारण्यवशात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुभसा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरेको आपसमें सुख निमित्त, दुःखका निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुभसा आदिका हेतुभी होने है (इस सूत्रमें) परस्परशब्द क्रिया (= कर्म) के अलटन पलटन (= व्यतिहार) के अर्थव्यतिर्भवता है और (= च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह वह करता है और उसको उपग्रह वह करता है

शुपनुपादः—परस्परशब्दार्थः कर्म-व्यतिहारः । सर्वतोऽ
क्य निमित्त, दुःखका
कर्मव्यतिहारः । वक्र क्रियाव्यतिहारः ।

आपसका उपग्रह वा अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है
(वह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंके एक दूसरेकेलिये उपकार प्रवर्तवा है
= प्रक्र) बहुरि (= नुन) ग्रह (= असौ) (परस्पर उपग्रह) क्या है (उपर) स्वामी, पाकर
= आचार्य शिष्य इत्यादिककी इत्यकी अवस्थामें (= भावेन)
= श्री वैष्ण-उपयोग-उपाय व्यवसायय न्युक्ति) है सो परस्पर उपग्रह है

परस्परार्थः उपग्रहार्थः परस्पर-उपग्रहार्थः ।
त्रिधानाम् । उपग्रहार्थः ।
कर्मः पुनः असौ । स्वामीः भृत्यः ।
आचार्यः शिष्यः । इत्येवमश्नादिः । भावेनैः ।
मुक्तिः । परस्पर-उपग्रहार्थः ।

(१) सोनो सम्प्रदायकोमें इस सूत्रका पाठ भीट कार्य एकसा है ॥ इमार यदा किसी २ पुस्तकमें जीवानाम् के स्थान पर 'जीवानो' पाठ है वह काष्ठप्रकृत मात्रा व्याकरणके अनिश्चित अष्टक है (ऐको अक्षरात् प्रथम टिकाकी पुष्ठ ५, भीट पुष्ठ १३३ ५५०)
(२) 'जीवानाम्' उपरकी अनुपुक्ति १५५ के सूत्रके नीचे है । (३) 'अकार' एक उपरकी अनुपुक्ति अक्षरको सूत्रके नीचे है ।

स्वामी तादृह्यत्वादिना भृत्यानामुपकारे वर्तते । भृत्याश्च हितप्रतिपादनेनाहितप्रतिपेधेन च ॥ आचार्य उभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठानेन च शिष्याणामनुग्रहे वर्तते । शिष्या अपि तदानुकूल्यवृत्त्या आचार्याणामुपकाराधिकारे ॥ पुनरुपग्रहवचनं भ्रिमर्थम् ? पूर्वोक्तसुखादिवृत्त्यप्रदर्शनार्थं पुनरुपग्रहवचनं क्रियते ॥ सुखादीन्यपि जीवाना जीवकृत उपकार इति ॥ आह यद्यवश्यं सतोपकारिणा भवितव्यं सश्च कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार

स्वामीः। आरवः। विषयान् आदिनाः। भृत्यानाम् ॥
 उपकारः। भवितव्यम् ॥ च। शिष्याः। तदादनेन ॥ ॥ ॥
 भ्रिमर्थम् ॥ आचार्यः ॥ उपपत्तिक फल भद
 उपदेशदर्शनेन ॥ च। तदुपदेश-विहित-
 क्रिया अनुष्ठानेन ॥ ॥ शिष्याणाम् ॥ अनु ॥ ॥
 वर्तते शिष्याः अपि ॥ च। तदुपदेश-वृत्त्याः ॥
 आचार्याणाम् ॥ उपकारः अपि ॥ ॥ पुनः ॥
 उपग्रह-वचनम् ॥ ॥ क्रियते ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 उक्त-मुक्त आदि-वृत्त्यप्रदर्शनं अर्थम् ॥ ॥ पुनः ॥
 उपग्रह-वचनम् ॥ ॥ क्रियते ॥ ॥ सुखं भवति ॥ ॥ अपि ॥
 जीवनाम् ॥ जीवित-वृत्त्याः ॥ उपकारः ॥ भवति ॥ ॥ अपि ॥
 अग्रपरम् ॥ सत्वाः ॥ उपकारिणाः ॥ भवितव्यम् ॥ ॥
 सन् ॥ च। कालम् ॥ अभिमत-वृत्त्याः ॥ उपकारः ॥

= स्वामी तौ (=आपद) प्रान (=पिष) देने आदिते (=व्यागादिना) । सेषकोकी
 = सहायता करने में मदतगता है और (=च) आकर हितकी शर्ता करिकरि और अहितका
 = नियेषकरि स्मार्थियोंके उपकाररूपवर्तता है आचार्य दोनों लोकका फलदेनेनाळा (भव)
 = उपदेशका विस्वावनेकरि और (=च) उस उपदेशके अनुकूल उचित भयबायोम्य
 = क्रियाका आचरण करानेकरि शिष्योंके उपकार (=अनुग्रह में
 = वचनता है । बोलती उसा आचार्य क अनुकूलपना (=अनुकूल्यमें प्रवृत्ति होकर
 = आचार्योंके उपकार विषयमें अधिकारमें प्रवृत्तते) (अ) च। दुःखि
 = उपग्रह शब्द (इस सूत्रमें) किसलिये है । परिह (सुख अर्थात् इस आचार्यके ० वा सूत्रमें)
 = करे हुए सुखस्तु जीवित-परण चार अवयवोंक विस्वावनेके लिये फिर (व्युत्पन्न)
 = उपग्रहवचनम् (=इस सूत्रमें) क्रियाया है सुख-दुःख जीवित परणभी
 = आचार्योंके जीवित उपकार है कोई पृथक्ता है कि जो (व्यदि)
 = सत्वारूपवस्तु = सत् उपग्रह उपकार सहित होनेयोग्य (=भवितव्यम्) है
 = और काल सहाय्य वा सस्वरूप (=सन) मानागया है वोतिस(काल) कानया उपकार है

(1) सत महापर प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लि 'सत शब्दका है । इसका अर्थ सतकय अथवा सातव उपर्या (1) तस्वार्थगतकवनि कर्म आर्यस इत्याका अर्थ
 तत्क वह वाक्य ऐसा हो है जैसा कि सर्वार्थसिद्धिपुत्रिमें है 'तस्य क उपकारः के स्थानमें सन्निभुपकारः राजवाचिकम् में है उससे अर्थ भये नहीं बाला है।
 इस वाक्यका अनुवाद पठित पञ्चासत्तमी पूर्णोपासे और पठित पञ्चासत्तमी न्यायविचारक म प्रमने ऐसे किया है कि शिष्य करे है जो उपग्रह

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्द कर्मव्यतिहारो वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रह परस्परोपग्रह । जीवानामुपकार ॥ कः पुनरसौ ? । स्वामी मृत्यु, आचार्य शिष्य, इत्येवमादि भावेन वृत्ति परस्परोपग्रह ॥

(1) सूत्रम्—परस्परोपग्रहो जीवानाम् (२१) = परस्परोपग्रहो (जीवानाम्) जीवानाम् (उपकार) भवति ॥ २१ ॥

सुभाषी—परस्पर उपग्रह (१) जीवानाम्
जीवानाम् (२) उपकारम् । भवति ।

शुभानुशासक—परस्परशब्दार्थः कर्म-व्यतिहारो वर्तते ।
कर्मव्यतिहारार्थः कर्मक्रियाव्यतिहारम् ।

परस्परस्यः उपग्रहम् । परस्पर-उपग्रहम् ।
जीवानाम् उपकारम् ।

कर्मः पुनः कर्मसौ । स्वामीः मृत्युम् ।
आचार्यः शिष्यः । इत्ययम् अस्मादिह ॥ आप्तोः ।
वृत्तिः ॥ परस्पर-उपग्रहम् ।

परस्पर उपकार जीवोक्ते
= जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणवशात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुभसा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरेको आपसमें सुख निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुभसा आदिका हेतुभी होते हैं = (इस सूत्रमें) परस्परशब्द क्रिया(=कर्म)के अस्तित्व पलटन(=व्यतिहार)के अर्थव्यतिहार है और (=च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह वह करता है और उसको उपग्रह वह करता है = आपसका उपग्रह या अनग्रह है सो परस्पर उपग्रह है = (वह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंके एक दूसरेके शिष्ये उपकार प्रवर्तव्य है

= यथा/वदुति(=जुना)श्रह(=असौ) परस्पर उपग्रह क्या है (उपग्रह) स्वामी, आचार्य शिष्य इत्यादिककी इत्युक्ति आपस्यसे(=भावेन) एवो वैष्टा-उपयोग-उपाय व्यवसायय न्मुक्ति) है सो परस्पर उपग्रह है

(१) शब्दो उभयपक्षोसे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है । अतएव यहाँ किसी २ पुरुषको जीवानाम् के स्थान पर 'जीवानां' पाठ है वर
कालत्रय माता व्याकरणके कानिष्ठ अष्टक है (एको जन्मान् मृत्युं दिव्यकी पृष्ठ ५ ३, सीट पृष्ठ ५३३, ५३५)
(२) 'जीवानाम्' उप-उपमुक्ति १५३६ मुक्तके शीर्षक है । (३) 'उपकार' इह उपकी उपमुक्ति उपकरणों मुक्तके शीर्षक है ।

= वर्तनापरिणाम-क्रिया-⁽¹⁾परत्वापरत्वेच(जीवानाम्, पुद्गलानाम्) कालस्य(उपकार) भवति ॥ २२ ॥

'और तथा और वर्तनी के अर्थवाको होलकते हैं परन्तु अकार को रोडकमें जानेके परत्वा और' शब्द लाये हैं। इससे जानागइता है कि उपकार का प्रकण्ड समानि होलके कारखसे इस लकसे पिक्से सूत्रके विभाहिया है अर्थात् जीको परत्पर उपकार है (सूच २१) और (अ) कालके वर्तना परिणाम क्रिया परत्प अपरत्प ये पाँच उपकार हैं। सूच २२ ५ येव दोनो सूत्रोको विस्तारकते हैं। 'तथा'शब्द अधिक आन पइताहै अंतिम और शब्द 'परत्वापरत्प समासका ताइनेसे 'परत्प अपरत्प' ऐसा आआता है सो इस अकारका मायानुवाद है। वंदित सवासकरीइता अर्थप्रकाशिका और वंदित अपवर्धबोइता सवार्थसिद्धि अचरिका में अकारका मायानुवाद नहीं है अर्थात् दोनोमें पर्यायम येसा अर्थ किया है कि वर्तना परिणाम क्रिया परत्प अपरत्प ए कालक उपकार हैं। वर्तना परिणाम क्रिया परत्वा परत्प ए कालके उपकार हैं।

(ii) दिग्बजानाल क्यो है (अपर) संकृत सवार्थसिद्धि पुष्ट भव्य का पाठ है कि 'जल वर्तनापरत्पमामानु' अइस अर्थमें वर्तनाका प्रकण्डी होना चाहिये 'तदुभयोः परिणामादवस्तुयां पृथग्व्यवहारमर्थकम्' इइस वर्तनाके अर्थ परिणाम क्रिया परत्प अपरत्प है निम अर्थोका निम प्रकण्ड निप्रयोजन है नावर्धकम् अ निप्रयोजन परिणामवयका प्रकण्ड वरी है। कालकृत सूत्रमाथैव्याप्रकण्डस्य अ क्मीकि कालक वा अर्थ प्रगत करलैक क्रिय विस्तारकण करतन है। काकोहि दिवियः परमार्थकलो व्यवहारकालस्य अ काल दो प्रकार है परमार्थकाल और व्यवहारकाल

परमार्थकालो वर्तना लकय अ वर्तना है अइस अितवा सो परमार्थकाल है। परिणामादि अणुणो व्यवहारकालः अ परिणाम क्रिया परत्प अपरत्प है लकय अिसक सा व्यवहारकाल है। अइ वर्तना निप्रयोजकका लकय है और परिणाम क्रिया परत्प अपरत्प व्यवहारकालके लकय है तप चलना शब्दको एक वचन आनकर और परिणाम क्रिया परत्प अपरत्प इन सबका एक मायकर वागोका विभाकर वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्प येसा द्विपचन किरा है। दोनो शकडोका समाधान येसा होसकता है कि यदि अकारको समुदायके अर्थ में सेले अर्थात् उपकारका प्रकण्ड समप्रति होलैके कारखस इत सूत्रको पूर्वशर्वात्रमे विभाहिया आवे 'वर्तना'को निप्रयवकालस्य लकय मानकर और परिणाम क्रिया-परत्प अपरत्पको व्यवहारकालका लकय मानकर 'दोनोंकारके लकयोका एक एक मानकर विभा ऐवै समास करवैये लो अ वर्तनापरिणामक्रियापरत्पपरत्पयेकालस्य येसा सूत्रवाजाताहै

(1) सवार्थसिद्धि वृत्तिमें 'वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेच कालस्य' येस सूत्रका यह हेतु दिया है कि 'परत्वापरत्प (अपरत्प अपरत्प) च सापेक्ष होमे 'परत्प अपरत्प' को दो शब्द पुण्डू समप्रकट नपुंसकनिगमे द्विपचनमें आवे योवर्तना-परिणाम क्रिया इतनेका एकसमास करक 'वर्तना परिणाम-क्रिया येसा अर्थनिग बहुवचनमें आवे क्योकि क्रियाशब्द स्त्रीनिग है। परत्प अपरत्प दोनो नप संकनिगो हैं और 'वर्तना परिणाम क्रिया और परत्वा परत्प दोनो समासोको विभाता है। अय अय येसा हुआ कि 'वर्तना परिणाम क्रिया और परत्वापरत्पकालके उपकार हैं। अर्थात् स्मरण है कि इत अर्थमें अइस्य शब्दका प्रयाय सामान्यरूपमें किया है कालकृत निप्रयवकाल और व्यवहारकाल अर्थात् समय आनको मुद्दन पइर दिन अर्थात् दोनो का पाठक है इतलिये यह अय हुआ कि 'वर्तना निप्रयव वा परमार्थकालका लकय है और परिणाम क्रिया परत्प और अपरत्प व्यवहारकालके लकय है।

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेचकालस्य ॥ २२ ॥

मावर्ष्य ऐसा है कि जब यह बात सुनिश्चित रूपसे मानी जा चुकी है कि जो सत्स्वरूप होगा वह अनवरत उपकारी होगा जैसे धर्मग्रन्थ अपर्यमर्शव्य इत्यादि पदार्थ सत्स्वरूप है इसलिए वे उपकारी माने गये हैं तब काल द्रव्यभी सत्स्वरूप पदार्थ है उसका उपकार है। कालद्रव्यका सत्त्व विशुद्ध रूपसे आग सूत्र ३६में कहा जायागा और वह अमूर्तीक स्वरूप और निष्कर्म है सब द्रव्योंका परा उपकार भ्रकरण है इसलिए

नि०अव० उच्यते०

—स प्रकार परा (अग्निमसूत्रमें) कहा जाया है कि—
'सूत्रम्—वर्तनापरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

उपकारी वह होता है जो सतत रूप काल अस्मित है सो कहा उपकारवान है" । तत्राप 'राजवर्षादि क अथाप्य पृष्ठ ३६ आर्षो ओ सहाकर्य वस्तु है और उपकारके परिष्कार रूप रूप है। काल द्रव्य भी सत्ता स्वरूप है" सो कालद्रव्य कही उपकारक है तत्रार्थरत्नमाभा अथाप्य ५ पृष्ठ ६२ ॥ (१) इस सूत्रके हर पाठ हैं। मुद्रितनर्मकृत सर्वार्थसिद्धि की और पद्याभाषाकी वाक्याभाषा मुद्रित मोक्षशास्त्रकी दोनों दोनों आशुषियोंमें उपर्युक्त पाठ है—यैक स्मृत्वाय संशुद्ध सर्वार्थसिद्धि क्विया है (२) समाव्ययत्वापर्यायधिसमसूत्र पृष्ठ १०७में वर्तना परिक्रामः क्रिया परत्वापरत्वेचकालस्य' ऐसा पाठ है। वहीपर द्रव्यभावमें यह लिखी गयी है कि 'यहां पर वर्तना परिक्राम और क्रिया इन तीनों पद्योंका विशेष न होनेसे ममान करके पढ़ना चाहिये कोई असमस्त ही पढ़ते हैं। सायण इमिसे परत्वापरत्वाका ता समास है ही' । और तन्वायंशो क्ववार्तिक (मुद्रित) पृष्ठ ५१२में वर्तना परिक्रामा समाप्यका ही पाठ है अर्थात् दोनों आत्मायोंमें इस सूत्रका पाठ एककारसे एकसा' वर्तना परिक्रामा क्रिया परत्वापरत्वेच कालस्य हुआ ॥२३ ॥ और दोनों आत्मायोंमें अर्धोंमें एकसा है ॥ (२) यहिन सहासुकाजी कृता 'अर्थप्रकाशिका' के पृष्ठ ३०८ और पहिन सहासुकाजी कृता सयु सहासुकाजी के पृष्ठ २१ में पहिन अचरत्वायको कृता सर्वार्थसिद्धि सन्निकाके पृष्ठ १५० में निर्णयसागर मुद्रित नर्मकृत के हीन नित्यपाठसमूहके १३६ शानो आशुषियोंमें (अहां तन्वायंशु सूत्रिन है) और श्रीपूज आनन्दश्रीकी मुद्रित तन्वायंशुसूत्रिकि के पृष्ठ १३६ में और समागत सैतपरग्यमाभाके पृष्ठ ६० में तथा तन्वायंशुसूत्रिकि के पृष्ठ ३१३ में लिख्यसिद्धि पाठ है। "वर्तना परिक्राम क्रिया परत्वापरत्वेच कालस्य इत्य पाठमें दो श्रुतार्थ अथाप्य क्रिया ? अथवा इत्य रूपमें पर पवो लाये दूसरी शका यह कि अब वर्तना अथसे पहले संकल्पगत एकसमासवै ओकि तौखिक्वचनमेंसमासागत क्वो ब्रुचिन क्वके ऐसा सूत्र क्वो न क्रिया कि अतनापरिक्रामापरत्वापरत्वादि च कालस्य (क) अकारके सत्करण में एतत्पाठ इत्यामीने एवं कारत्वेन लाय है ही पद्याभाषा पाठसोपाठन मोक्षशास्त्र वाक्योपपत्ती मायाश्रीका सहित प्रित्तिवार्त्तिक के पृष्ठ ३६ में ऐसा अथ क्रिया है " (ब) और (कारत्वे) काकक (वर्तना परिक्रामापरिक्रिया) वर्तना, परिक्रामा क्रिया तथा (परत्वा) अथत्वे परत्वे और अथत्वे के पाठ अथकार है एक अथुकापमें

= वर्तना-परिणाम-क्रिया-^(१)परत्वापरत्वेच(जीवानाम् पुद्गलानाम्) कालस्य(उपकार) भवति ॥ २२ ॥

और तथा और दोनों बड़े कार्यवाही होसकते हैं परन्तु अकार को शेषकर्म खाने के पश्चात् और शब्द जाये हैं । इससे जानपड़ता है कि उपकार का प्रकाश समानि होमेक कारखसे इस सूत्रसे निकले सूत्रके अर्थात् औषके परस्पर उपकार है (सूत्र २१) और (—) कासके वर्तना परिणाम क्रिया परत्य अपरत्य ये वाच्य उपकार हैं । सूत्र २२ ॥ ऐसे दोनों सूत्रोंको मिलासकते हैं । तथा शब्द अथिह ज्ञान पड़ता है अन्तिम 'और' शब्द परत्वापरत्य समासका ताडनसे "परत्य अपरत्यंच ऐसा हाजाना है सी इस अकारका मायागुणात् है । पश्चित सदासुखजीकृता अर्थमच्छाधिक्य और पश्चित अर्थमच्छाधिक्य सर्वाथसिद्धि कथमिहा में अकारका मायानुबाध नहीं है अर्थात् दोनोंमें पर्याप्तम ऐसा अर्थ' क्रिया है कि "वर्तना परिणाम क्रिया परत्य अपरत्य च कालकृत उपकार है । वर्तना परिणाम क्रिया परत्वा परत्य च कासके उपकार है ।

(ii) विरचनानाम चर्यो है (उत्तर) सरकृत सर्वाथसिद्धि पूष्ट शब्द का पाठ है कि नत वर्तनामच्छमेवास्तु — इस अर्थमें वर्तनाका प्रकाश ही होमा बाहिये तदुभेता परिणामादवस्तुर्वा पृथगादवस्तुर्वाकम् प्रवस वर्तनाक मेव परिणाम क्रिया परत्य अपरत्य है तिन अर्थोंका मित प्रकाश निरूप्योजन है मानार्थकम् — निरूप्योजन परिणामपक्षका प्रकाश नहीं है । कालस्य सूत्रकार्थत्याग्रप्रकाशस्य — क्योंकि कालक शो मेव प्रगत करनेके क्रिये विस्तारकृत कथन है । कालादि द्विगुणः परमार्थकाला स्ववहारकालस्य च कास शो प्रकार है परमार्थकाल और स्ववहारकाल

परमार्थकालो वर्तना लक्षण — वर्तना है अथक जिसका सो परमार्थकाल है । परिणामादि सखको स्ववहारकाला — परिणाम क्रिया परत्य अपरत्य है अथक जिसके सा स्ववहारकाल है । अब वर्तना निश्चयकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्य अपरत्य स्ववहारकालके लक्षण है तप वस्तुना शब्दको एक कथन मानकर और परिणाम क्रिया परत्य अपरत्य इन सबको एक मानकर दोनोंका मिश्राकर वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्य देव्या द्विगुण क्रिया है । शरीर शरीरको समाधान देला हासकता है कि यदि अकारको समुच्चरके अर्थ में लेले अर्थात् उपकारका प्रकाश समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रको अर्थ शरीरको निश्चयकाल मिलादिया जावे 'वर्तना'को निश्चयकालका लक्षण मानकर और परिणाम क्रिया परत्वअपरत्यको स्ववहारकालका लक्षण मानकर शरीरको लक्षणका एक एक मानकर मिला देवे समास करेये तो च वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्येकालस्य ऐसा सूत्रबोझाना है

(१) सर्वाथसिद्धि युक्तिमें 'वर्तनापरिणामक्रिया' परत्वापरत्येक कालस्य' एस सूत्रका यह हेतु क्रिया है कि 'परत्वपरत्य (—) परत्य अपरत्य च' सापेक्ष दोषेन परत्य अपरत्य' का शो शब्द पूष्टक पूष्टक समासकर नपुंसकनिगमे द्विवचनमें साथे शरीरवर्तना-परिणाम क्रिया इतनेका एकसमास करके 'वर्तना परिणाम क्रिया' ऐसा अर्थनिग बहुवचनमें साथे क्योंकि क्रियाशब्द ज्योतिग है । परत्य अपरत्य वानो नपुंसकनिगो है और "—" वर्तना परिणाम क्रिया' और परत्वा परत्य दोनों समासोको मिश्राना है । अथ अर्थ देला हुआ कि वर्तना परिणाम क्रिया और परत्वापरत्यकालके उपकार है शरीरपर अरन्ध्र रहे कि इस अर्थमें कालस्य शब्दका प्रयाय सामान्यकर्ममें क्रिया है कालशब्द निश्चयकाल और स्ववहारकाल अर्थात् समय आगती मुद्रत पहर किन एवादि दोनों का पाठक है इसलिये यह अर्थ हुआ कि 'वर्तना निश्चय वा परमार्थकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्य और अपरत्य स्ववहारकालके लक्षण है ।

= "वर्तना-परिणाम-क्रिया - च परत्वम् अपरत्वम् च (= परत्वापरत्वे) जीवानाम् पुद्गलानाम् कालस्य उपकार भवति ॥ २२ ॥

सूत्रार्थ - वर्तना

परिणाम

क्रियाभिः

च अपरत्वम् ॥

अपरत्वम् ॥ २२

जीवानाम् पुद्गलानाम्

कालस्य उपकारम्

= वर्तना = पर्यायोंकी पर्यायोंके पूरण करने में जाऊ सकारता।

= परिणाम (= द्रव्यका अपने स्वभावको न छोड़कर पहिली अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्था रूप्य होना)

= क्रिया (= रहान पल्लनादि रूप्य होना अथवा एक क्षेपसे दूसर क्षेप तक जाना)

= और परत्व (= एकसे दूसरेका काल रचित अवस्थामें बटापन अथवा पहिले होना वा पूर्वता)

= तथा अपरत्व (एक दूसरेका काल रचित अवस्थामें बटापन अथवा पिछलापन वा छोटापन)

= जीवानाम् पुद्गलानाम् (= ये जीव) जीवोंको और पुद्गलोंको

= काल (द्रव्य रूप उपकार है अर्थात् वर्तना सतत निश्चय वा परमार्थ कालका है और परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व स्पष्टाकार कालके लक्षण हैं अर्थात् यह है कि कालद्रव्य दो प्रकारका है (१) निश्चयकाल वा परमार्थकाल (२) व्यवहारकाल (१) जो आदि तथा अन्तस रचित है अर्थात् है, नित्य है समय घंटा आदिका रचनाकाल यह है जो भी समय आदि यदोसे इरहित है और कालानुद्रव्य रूप है यह तो निश्चयकाल है वृद्धद्रव्यसंग्रह (पृष्ठ ५४) (२) जो आदि तथा अन्तसे सहित है समय घण्टिका तथा महः आदि विषयित व्यवहारके रिकार्योंसे युक्त है यह उसी द्रव्यकालका पर्यायवत् व्यवहारकाल है (वृद्धद्रव्य संग्रह पृष्ठ ५४) अथवा जो कहिये कि जीव तथा पुद्गलका परिवर्तन जो नूतन तथा नीर्यं

(१) परमाण्विक द्रव्ये अणुको पर्यायोंके पूर्णार्थ (= पूरणकार्ता) अणुमें अणुमें तथा दृगाम का अणुकरि स्वभावसही वर्तते हैं तीसरे (= तथापरि) से कुन्डलारके

सहकारण है उसीका "वर्तना" कहत है ।

(२) वर्तने जो सर्वद्रव्योके पर्यायों ही उन द्रव्योका प्रगल्भिताना अथवा हेतुकर्ता कालद्रव्य है जिस समय स्वकय वर्तनाको कालका वर्तना कहिये (सर्वार्थ) सिद्धि बचनिका पृष्ठ ५५१) यहाँ आचार्य ऐसे हैं जो यथादि द्रव्योके पर्याय्य समय समय गलेते हैं सो इस प्रकाराने ही समय है सोही निमित्त मान है । जिस समय ही कालकी वर्तना कहिये है । यह वर्तना जो कालानु द्रव्यका अस्तित्व जनाये है । बहुत दिवस चलताहु जोनी बार जमी ताका नाम द्याव कहिये । सा यह व्यवहारकालसका है । सो जिस निश्चयकालकी कल्पना ही से कहिये है ऐसे यह वर्तना द्रव्यभित्तु कालका उपकार है ।

अर्थात् निश्चित बचनिका पृष्ठ ५५१

मान है । जिस समय ही कालकी वर्तना कहिये है । यह वर्तना जो कालानु द्रव्यका अस्तित्व जनाये है । बहुत दिवस चलताहु जोनी बार जमी ताका नाम द्याव कहिये । सा यह व्यवहारकालसका है । सो जिस निश्चयकालकी कल्पना ही से कहिये है ऐसे यह वर्तना द्रव्यभित्तु कालका उपकार है ।

अर्थात् निश्चित बचनिका पृष्ठ ५५१

मान है । जिस समय ही कालकी वर्तना कहिये है । यह वर्तना जो कालानु द्रव्यका अस्तित्व जनाये है । बहुत दिवस चलताहु जोनी बार जमी ताका नाम द्याव कहिये । सा यह व्यवहारकालसका है । सो जिस निश्चयकालकी कल्पना ही से कहिये है ऐसे यह वर्तना द्रव्यभित्तु कालका उपकार है ।

वृत्तेर्गिजन्तात्कर्मणि भावे वा "युट् स्त्रीलिङ्गे घटते । तेनेति भवति ।

पर्याय है उस पर्यायकी जो समय पटिच्छ आदिक्य स्थिति है बहरी मिलका रूप्य है वह द्रव्यपर्यायक्य व्यवहारकाल है सोही संस्कृत आणुत्व कर्मात्मी है कि "स्थिति जो है सो कालसङ्कट है" तात्पर्य यह है कि उस द्रव्यके पर्यायसे संबन्ध रखनेवाली जो समय पटिच्छा आदिक्य स्थिति है वह स्थितिही "व्यवहारकाल" इस संज्ञाकी धारक होती है । निम्नकालका वर्तनाच्छण है और व्यवहारकालके परिछाम, क्रिया, परत्न, अपरत्न लक्षण हैं ये पर्वी निम्नकालके निमित्तसे होते हैं और अन्य द्रव्योंको यह (निम्न)कालद्रव्यका उपकार है और उसी परमार्यकालका अस्तित्व बतावे है । क्योंकि व्यवहारकाल गौल निम्न द्रव्यकाल के बिना नहीं होसकता है ॥ व्यवहारकाल अन्यथाचौ करि जाना जाता है जैसे विनरात आदिक व्यवहारकाल सूर्यादिकके लक्ष्य अस्तसे जाने जाते हैं और व्यवहारकाल ही अन्य पदार्थों के जलानेका कारण है जैसे यह पुल शतवर्षका है ॥ याने (व्यवहारकालसे) निम्नकाल आना जाता है । (सर्वाथसिद्धि) बचनिका पृष्ठ ४४३ देखो "जीवुद्वग्लोकेपरिखमनकरि व्यवहारकाल प्रगट होय है सो यह व्यवहारकाल रीनमकार है" (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३०६) अतीत (=पूत) वर्तमान अनागत (व्यवस्थित) ॥ निम्नकालाचिचै एक एक लोकाकारके प्रवेशविषे आपसमें परस्पर निम्न २ रत्नकी राशिके सहय विष्टते असंस्पृशकालाणु विनकी काव करना सो जो मुख्य है और मूत वर्तमान यथिष्यत् नाम कहना गौण है और व्यवहारकालविषे अतीत वर्तमान अन्त गतनाम है सो जो मुख्य है और काव करना गौण है ।

पुष्पनुषाधर—(१) नृवेऽं । छिच्-अन्तादाँ । नृवृत्त(=रीना) (वाटु) से (पै) छिच् (प्रत्यय) के अन्तमें आनेसे (नृ वाटुका) प्रेरक(प्रयोजक) हेतुकर्ता वा काममें लगाने(हारा) अर्थ होना है अर्थात् नृवृत्त वाटु अकार्यकसे सहैतुक सङ्घर्षक क्रिया होजाती है (सो नृवृत्त वाटु अकार्यविषे (कर्मणि) प्रयोगमें) अर्थात् है अथवा याचमें युट् (=अन) प्रत्यय सशित कर्मणि ॥ यानेऽं वाच्युट् । स्त्रीलिङ्गे घटते । विस (कर्मणि वा भावे) करि ऐसा होता है

(१) पुष्पपाद स्वामीके "युट्" औपचिकित्से "युट्" और अतीतवाचको वृत्तिके लक्षितिके पुष्प प्रत्ययके स्थानमें 'अन' होना है सूत्रमें 'आल' शब्द सामान्यतासे विभक्त्य और व्यवहार कालका घातक है । (२) (क) वृत्तविज्ज्याकार्यवि भावे वा युट् स्त्रीलिङ्गे घटते । अनेति भवति । कर्त्यते वर्तमान वा वर्तना इति ॥ ऐसा गाठ सर्वाथसिद्धिकी वृत्तिकी प्रथमा वृत्तिमें है । (क) वृत्तेविज्ज्याकार्यवि भावे वा युट् स्त्रीलिङ्गे वर्तनेति भवति । कर्त्यते वर्तते वर्तनात्तम् वा वर्तना इति ॥ यह गाठ सर्वाथसिद्धिकी द्वितीया वृत्तिमें है । द्वितीयावृत्तिके पाठमें कर्त्यते'क परभाव' वर्तते' शब्द नहीं होना चाहिये शेष पाठमें वद्यपि दोनों संस्कारों में कुछ अन्तर है परन्तु कर्त्य' दोनों पाठीका एकसा बननाता है जैसे प्रथमक कर्त्यके किये वको इस पद्यको और पुष्पन् को । दूसरेके स्त्रीलिङ्गे वर्तनेति अन्वति वाचकका अर्थ है कि स्त्रीलिङ्गमें वर्तना शब्द ऐसा हाता है । दूसरे मागमें 'वर्तते' शब्द एल हेतुसे ठीक नहीं है कि वह 'कर्त्तरि' प्रभाव "युट्" कालका है और यहाँ पर केवल कर्मणि प्रयोग' और भावे प्रयोग' नृवृत्तमें विद् प्र'वद' लगाया है इती

= ('वर्तना-परिणाम-क्रिया - च परत्वम्-अपरत्वम् च (= परत्वापरत्व)जीवानाम् पुद्गलानाम् कालस्य उपकार भवति ॥ २२ ॥

सूत्राय — वर्तना

परिणाम-

क्रियाः

च-अपरत्वम् ॥

अपरत्वम् ॥ च ७

जीवानाम् पुद्गलानाम्

कालस्य उपकारः

=वर्तना =पदार्थोंकी पर्यायोंके पूरण करनेमें बाध सहकारवा)

=परिणाम(=द्रव्यका अपने स्वभावको न छोड़कर पहिली अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना)

=क्रिया (=बहान-बहानादिकरूप होना अथवा एक जैसे दूसरे जैसे तक जाना)

=और परत्व (=एकसे दूसरेका काल रचित अवस्थामें वशापन अथवा पहिल होना वा पूर्वता)

अथवा अपरत्व (एक दूसरेका काल रचित अवस्थामें वशापन अथवा पहिल होना वा पूर्वता)

=जीवानाम् पुद्गलानाम्

कालस्य उपकारः

=काल(द्रव्य कृत उपकार है अर्थात् वर्तना क्षण निम्न वा परमार्थ कालका है और परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ध्यवहार कालके क्षण हैं यावार्थ यह है कि कालद्रव्य दो प्रकारका है (१) निम्नकाल वा परमार्थकाल (२) व्यवहारकाल (१) जो आदि तथा अन्तस रचित है अपूर्ण है, नित्य है समय घंटा आदिका वषादानकारण मत है जो भी समय आदि भेदोंसे रचित है और कालानुद्रव्यरूप है यह तो निम्नकाल है वृहद्रूपसमूह (पृष्ठ ५४) (२) जो आदि तथा अन्तसे सहित है समय घटिका तथा ग्रहः आदि विषयकित व्यवहारक क्रियाओंसे युक्त है वह उसी द्रव्यकालका पर्यायमूल व्यवहारकाल है (पुहद्रव्य समूह पृष्ठ ५४) अथवा यों करिय ॥ ६ जीव तथा पुद्गलका परिवर्तन जोनूतन तथा जीव

(१) परमार्थिक द्रव्ये अगती अगती पर्यायोंके पूर्णार्थ (अपरकार्य)अगते अगते उपादान कारणकरि स्वभावसही वतें हैं तीनों (अतगाधिकस कुम्हारके

कारक मूलपरमें उसक नीचेकी दिशाकीनी सहकानिधी है तैसे जो उस अन्तरंग परिवर्तितमें अथवा वर्तनेमें बाधाकारण ही जो सब पदार्थोंकी परिणतितमें सहकारी है उसीका "वर्तना" कहत हैं ॥

(२) बनें जो सर्वद्रव्योंके पर्याय हैं उन द्रव्योका प्रवर्तनिकाला अथवा हेतुकर्ता कालद्रव्य है जिस समय स्वरूप वर्तनाको कालका वर्तना कहिये (सर्वार्थसिद्धि सचनिका पृष्ठ ४४) बर्तार्थ यावार्थ येता है जो परमार्थ द्रव्योंके पर्यय समय पलंग ते हैं जो इस पलंगते हैं समय है सोही भिन्नित मात्र है । जिस समय ही कालकी वर्तना कहिये है । यह वर्तना ही कालानु द्रव्यका अस्तित्व अनाधि है । बहुति इस वर्तनाक जोनी बार जगी ताका नाम काल कहिये । जो यह व्यवहारकारकसका है । जो तिक निम्नकालकी अथेहा ही स कहिये है येसे यह वर्तना द्रव्यकित् कालका उपकार है । अन्तर्गमिद्धिपचनिका पृष्ठ ५४

वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ धर्मादीनां स्वपर्यायनिवृत्तिं प्रति

वर्त्यते ।

वर्तनमात्रं वा वर्तनाइ ॥ इति ॥

=वर्त्यायाजाता है (यह याक्य कर्मप्रयोगमें वा 'कर्मप्रधानमें न कि कर्तृप्रयोग वा कर्तुप्रधानमें है)
 =वर्तव्यवनेमात्र वा वर्तनमात्र है सो वर्तना ऐसा भावेप्रयोग=भावमें काम व्यापगया) है । सो वर्तनाशब्द

पैसे बनाएँ कि वृत् + णिच् + युट् + आ (=स्त्रीलिंगका विभे)=वर्त् + अन + आ=वर्तना णिच्केल्लगानेसे श्रुको गुणसंज्ञा होकर वर्त होगया और सहेतुक सकर्मक क्रिया होगई ॥ वर्तना=दूसरोंको प्रवर्तवना अर्थात् पदाचार्यों में परिणामन में सहकारिता । भावार्थ यह है कि वृत् थाहुके अर्थमें णिच्प्रत्यय लगाना जिस णिच् प्रत्ययका यह फल होता है कि वृत् थाहुके श्रुको गुणसंज्ञा होकर वर्त् शब्द बननाता है और वृत् अकर्मक थाहुका (णिच्प्रत्यय) सहेतुक सकर्मक करदेता है अर्थात् वृत् थाहुका अर्थ (दूसरोंको) प्रवर्तवना ऐसा होजाता है फिर युट् प्रत्यय जिसके स्थानमें अन होजाता है ओइया जावा इ सब वर्त् + अन=वर्तन शब्द बना पधाव् 'आ' स्त्रीलिंगका चिन् नोइनेसे वर्त् + अन + आ होजाता है इसलिये वर्तना शब्द स्त्रीलिंग भाव प्रयोगमें बना और उपर्युक्त कथित 'वर्त् + अन + आ' य कर्मप्रधानका चिन् नोइकर फिर अन्यपुरुष एकपचन आत्मनपद वर्तमान क्रियाकाचिन्ह'ते'लगाते हैं सब वर्त् + अन + आ = वर्त्यते कर्मप्रधानमें प्रानगया इस 'वर्त्यते'का अर्थ वर्त्यायाजाता है इसलिये 'वर्तना' भावप्रयोग स्त्रीलिंगमें बना और 'वर्त्यते' कर्मप्रधान, एकपचन, अन्यपुरुष वर्तमानक्रियाका रूप बना ॥

धर्मादीनां स्वपर्याय निवृत्तिः ॥ प्रतिकः =धर्मादिक द्रव्यें अपने अपने पर्यायोंके निवृत्तिके लिये (=निवृत्ति प्रथि)

मान इत्यन्तिक्रिय स्वर्गोभित्तिः यत्र त्वानिरो वर्ततेति गवति । वस्तुत एवमानमार्थ वा वर्ततेति' ऐसा पाठ है ॥ तत्कार्यराजकारिणिकका पाठ कि दोनिये (धर्मविधाप वा विज्ञानाद्) युधि सति वर्ततेति गवति । पर्याय वर्तनमात्र वा वर्तनेति' ऐसा है ॥ इसलिये हमने प्रथमायुक्तिका पाठ लिखा है म स्वर्गमें स्वर्गदि युधि वा तिवृत्तिमें स काई शब्द हो क्योंकि एत लीन शब्दोंमेंसे काईभी उत्पत्तिके अर्थमें आसक्तता है परन्तु 'निवृत्ति' का अर्थ उत्पत्ति नहीं हासक्या है राजकारिण और इवाक्यानि कभी अत्रकोकम विधेगये परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई ॥ "निवृत्ति" कि शब्द मन्वार्थविहित वक्तिकी इत्यन्तिक्रियक लीन प्रतिकोंमें वाप्राजाता है परन्तु स्वर्गोभित्तिकी दोनो धारणियोंमें 'निवृत्ति' कृपा हुआ है ॥ इससे भी इस शब्दको लेकर अनुपाद कहा है और येरी समस्य एक प्रकाल्य वर्तनीरो शब्दोंस परक्यी माध प्रगट होसकता है क्योंकि किनो द्रव्यथयी एक पर्यायको लेकर अनुपाद शब्दी इसमें दूसरो पर्यायको निवृत्ति वा निवृत्ति पाती है अथवा जो कहनकते हैं किनो द्रव्यथयी जिस समय एक पर्यायकी उत्पत्ति होतो है उससे सत्त प्रयायको निवृत्ति पाती है असे जिस समयमें धर्मादिक द्रव्यके एक (वांके) प्रयायकी उत्पत्ति होतो है उको समयमें पर्यायको निवृत्ति पातो है और अनुपादकने उस अनुपादमें प्रतीय है अथवा जो इत्यन्त लोचिय कि जिससमयमें धर्मादिक द्रव्यके उत्पत्ति के अर्थमें व्यापक्या है ॥

स्वात्मनेव वर्तमानानां बाह्योपग्रहादिना तद्रूप्यभावत्तत्प्रवर्तनोपलब्धि त काल

=आपसे स्व आत्मना है। प्री वर्तमानरूप है वा वर्तनेवाली है (वैभी) बाह्य

=निश्चि विना (सहायता विना वा सहाय विना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की

=अन्तरंग परणति (=वृत्ति) वा वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है । इससे

=उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकारनेमें वा प्रवर्तनेमें फल आना जाता है -निश्चय

कियानासारं वा पहाचानाआवाहं (=उपलक्षित) अर्थात् पर्यादिक द्रव्यों हैं वे स्वयं उपादान

कारणकर अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिरूप वर्तती हैं वैभी उनकी उक्त पर्यायोंके

लिये पाह कारणकी आवश्यकता है, पाहनिश्चि विना अन्तरंग परणति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तरंग परणति अथवा

प्रवर्तनेका समय है सो परमार्थकालका चिन्म है ॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदाथों के देखनेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस

को यदि बहुत अर्थसे लेनाकर पदार्थ दिखाय जावें तो वह किसी प्रकार किसीभी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि पाह

सहकारी कारण अर्थात् उन्मेषा नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तरंग शक्ति वर्तनेकी विद्यमान है वैभी द्रव्यकाल वा

निश्चयकालकी सहायता विना वैद्व्य वर्तनेमें असर्वा है । इनद्रव्योंको (३) वर्तनारूप करनेमें प्री निश्चयकालका अस्तित्व श्राव होता है ॥

स्व आत्मना है। एपक (१) वर्तमानानाम् ॥ पाह-
उपग्रहार्थ है। विनाऽप्य
(२) वृत्ति-अभावात् है ।
वृत् प्रवर्तना-उपलक्षितम् है। आशम् है।

- (१) 'धर्मादीनां' और 'वर्तमानानां' वेदोनों शब्द-द्रव्याणां शब्दसे सम्बन्ध रहते हैं और प्रस्वाकां शब्दके विशेष्य हैं अतः मनुसकन्निवमे रसकेयव है ।
- (२) एपकम् कोट पृष्ठ ३१७ में 'वृत्ति' शब्दका अर्थ 'आत्मा-कारण का परिणामविद्येय' और 'वर्तन' सिद्धा है । इसलिये अन्तरंग परणति (प-उसहासु-वृत्ति के अनुसार) और वर्तना (य-उसहासु-पदार्थ) पदा पर "वृत्ति" शब्दका अनुवाद किया गया है ।
- (३) व्याकरण शालमें करण और अधिकारण अथ वे पातुनासे पूर्व प्रत्ययका विधान माना है । यदि पदा पर 'पतौकु-वृत्तने पातुसे करण और कर शब्द अथ वे पूर्व प्रत्यय पर एव 'वर्तते सम्पदा सम्बन्धित वर्तना' अर्थात् जिसके द्वारा वा जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जाकता तो यह निगम है कि प्रत्ययोंका दृष्टं अस्त्वकारणकाला है उनसे ही प्रत्यय होता है । पदापरती पूर्वसे दृष्टं अस्त्वकारणकाले ही प्रत्यय होता अतः 'वर्तनी' ऐसा रूप सिद्ध होना 'वर्तनी' ही फिर स्वमें 'वर्तना शब्दका अस्त्वकारणकाला' अर्थात् 'वर्तना शब्दका प्रत्यय वर्तना शब्द पर पातुसे अर्थात् अस्त्वकारणकाले सिद्धि की गई है इसलिये वदापर की प्रत्ययको कोर् उपादान नहीं है 'वर्तते वर्तमानं वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वकार्य हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ है अथवा "अन्यत्रोपेत्यावा शब्दीनिषो वा जिसका अनुवाद उपलब्धि आता है उससे तात्पर्यकाल प्रत्यय ही हो। इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेमीतर 'पूर्व प्रत्ययका विधान माना है 'पूर्वोक्त' पातुका अनुवाद अस्त्वकारणकाले ही सिद्धि हुई है । वर्तनेश्रीका वर्तना अर्थात् 'वर्तन-परिवर्तन करण ही जिसका स्वभाव ही वह वर्तना है । यह वर्तना शब्दका विग्रह है ।

वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायिनिवृत्तिं प्रति

वर्त्यते ।
 वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायिनिवृत्तिं प्रति

वर्तनायाजावा है (यह पाठ्य कर्मप्रयोगमें वा कर्मप्रधानमें न कि कर्तृप्रयोग वा कर्तृप्रधानमें है)
 =वर्तानेनात्र वा वर्तनमात्र है सो वर्तना ऐसा(भाषेप्रयोग=भावमें काम लायागया) है । सो वर्तनाशब्द
 जैसे बनाई कि वृत् + गिच् + युट + आ (=स्त्रीलिंगका चिह्न)=वर्त् + अन + आ=वर्तना शिच्केल्लगानेसे श्चको
 गुणसमा होकर वर्त् रोगया और सहेतुक सकर्मक क्रिया हागई ॥ वर्तना=दूसरोंको मबर्त्तवाना अर्थात् पवार्योंमें परिग्रहमान
 में सारकारिता । भावार्थ यह है कि वृत् घाटके अतमें शिच्प्रत्यय लगाया गिस शिच् प्रत्ययका यह फल होताहै कि वृत्
 घाटके श्चको गुणसंग्राहकर वर्त् शब्द बनजाताहै और वृत् अकर्मक घाटको (शिच् प्रत्यय) सहेतुक सकर्मक करदेता है
 अर्थात् वृत् घाटका अर्थ (दूसरोंको) घरायना ऐसा होजाता है फिर युट प्रत्यय गिसके स्थानमें अन होजाता है जोड़ा
 जाता है तब वर्त् + अन=वर्तन शब्द बना पवात् 'आ' स्त्रीलिंगका चिन्ह जोड़नेसे वर्त् + अन + आ होजाता है इसलिये
 वर्तना शब्द स्त्रीलिंग भाव मयोगमें बना और उपयुक्त कथित 'वर्त्' घाटमें य कर्मप्रधानका चिन्ह जोड़कर फिर अन्यपुरुष
 एकवचन आरम्भनपद वर्तमान क्रियाकाचिन्हे'लगानेहै तब वर्त् + य + ते=वर्त्यते कर्मप्रधानमें प्रनगया इस'वर्त्यते'काअर्थ
 वर्त्तमानाताहै इसलिये 'वर्तना'भावप्रयोगस्त्रीलिंगमेंयनाऔर'वर्त्यते'कर्मप्रधान, एकवचन, अन्यपुरुष वर्तमानक्रियाका रूप बना।।
 धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायिनिवृत्तिः ॥ प्रति॥ =धर्मादिक द्रव्यों अपने अपने पर्यायोंके निवृत्तिके लिये (=निवृत्ति प्रति)
 मां धर्मशिविन सर्वोपनिधिः यच्च स्त्रीनां सर्वोपनिधिः इति । वस्तुते वच मानमात्रं वा वर्त्तेति । ऐसा पाठ है ॥ तत्पार्थराजवर्षिकका पाठ कि
 न्येतिने (धर्मशिवक वा विद्ममात्र) युधि सति वरतेति अयत्ति । पर्ययं वर्तमानाच्च वा वर्त्तेति । ऐसा है ॥ इसलिये हमने प्रथमायुक्तिका पाठ किया है म
 (१) प उपधमप्रत्यय न वचनिका (पुष्ट ४४२)में अगत्ति विका है सम्भाव है कि जिस पाठवे उबोने वचनिका की हो उस पाठमें शिचि के
 स्थानमें अगत्ति युत्ति वा शिचुं शिमेंस काई शब्द हा क्योंकि इस तीन शब्दोंमेंसे काईसी अत्यधिक अर्थमें आसक्तता है परन्तु 'शिवुत्ति' का अर्थ अगत्ति
 नहीं हासक्तता है राजार्थिक और श्लाकावार्थिककी अवलोकन क्रियायमे परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई ॥ "निर्वृत्ति" का अर्थ अगत्ति
 इत्यभिलिखक नीम प्रतियोगमें वायाजाता है परन्तु सर्वार्थव्यक्तिनी दोनों आनन्दियोगमें 'शिवुत्ति' अर्थ हुआ है ॥ इससे भीम उच शब्दको ले कर अनुवात्
 किया है और मरी धामम्में एक प्रकात्स बानोहो शब्दोंस एकही भाप प्राप्त होसकता है क्योंकि किसी द्रव्यधी एक पर्यायकी जिस समय निवृत्ति
 जाती है उन्ही समयमें दूसरो पर्यायकी अत्यन्त वा शिवुत्ति हाती है अथवा जो कहलकते हैं किन्ही द्रव्यकी जिस समय एक पर्यायको अत्यन्त हातो है
 इतक सरल प्रथाको निवृत्ति हाती है और अगुलीकपस उस अगुलीमें धोपय है अथवा जो कहलान कोशिय कि जिससमयमें अगुलीकप द्रव्यके सरल
 पर्यायको शिवुत्ति हातो है उसी समयमें उसकी एकही पर्यायकी अत्यन्त होतो है ॥ वृत्त = शब्दक (परशब्दक)काअर्थ २१४ अक्ष- 'युत्ति' स्त्रीलिंगमें अत्यन्त
 के अर्थमें आसक्तता है ॥

स्वात्मनैव वर्तमानानां बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्प्रवर्तनोपलब्धित कालः

स्व आत्मनाः। एवञ्च (१) वर्तमानानाम् ॥ बाह्य-
उपग्रहादः। विनाऽऽप्य
(२) वृत्ति-भावात्।
तद् वर्तमाना-न्वर्तनोपलब्धिः। काश्चिद्।

—आपसे स्व-आत्मनाः। १) वर्तमानरूप हैं या वर्तनेवाली हैं (तौमी) बाह्य
—निमित्त विना (सहायता विना या सहायता विना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की
—अन्तर्ग परलति (=वृत्ति) या वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है। इससे
—उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकरणमें या प्रवर्तनेमें काल जाना जाता है-निश्चय
कियानाताहै या परधाना जाताहै(=उपलक्षित)। अर्थात् धर्मादिक द्रव्यों में वे स्वयं उपादान
कारणकारि अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिकर वर्तती हैं तौमी उनकी उक्त पर्यायोंके

खिये बाह्य कारणकी आवश्यकता है, बाह्यनिमित्त विना अन्तर्ग परलति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तर्ग परलति अथवा
प्रवर्तिका समय है सो परमार्यकालका चिन्ह है ॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदार्थों के वेत्नेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस
को यदि बहुत अंधेमें लेनाकर पदार्थ विलाये जावें तो वह किसी प्रकार किसीमी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि बाह्य
सहायारी कारण अर्थात् उन्हेला नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तर्ग शक्ति वर्तनेकी विद्यमान है तौमी द्रव्यकाल वा
निश्चयकालकी सहायता विना वेद्रव्य वर्तनेमें असर्थक हैं। इनद्रव्योंको १) वर्तनारूप करनेमेंही निश्चयकालका अस्तित्व ज्ञात होता है ॥

- (१) 'धर्मादीनां' और 'वर्तमानानां' दोनोंमें शब्द 'द्रव्याणां' शब्दसे सम्बन्ध रखतेहैं और 'द्रव्याणां' शब्दके विद्य पद्यहैं अतः मनुष्यकालिगते एकजैसे हैं।
- (२) एवञ्चन्द्र कोश पृष्ठ ३१४ में 'वृत्ति' शब्दका अर्थ 'अन्तःकरणका परिणामविद्यो' और 'वर्तन' लिखाहै। इसलिये अन्तर्ग परलति (व० सहायताकी
ऊ अनुसार) और बसना (व० अयक्यकरणकी अनुकूल) यहाँ पर 'वृत्ति' शब्दका अनुवाद कियानाया है ॥
- (३) व्याकरण शास्त्रमें कश्च और अपिकरख अर्थ में आठमोसे पूर्व प्रत्ययका विधान, माना है। यदि यहाँ पर 'वर्तक' बताने' चाहुसे कश्च और
अपिकरख अर्थ में पूर्व प्रत्यय कर एवं 'वर्तते' अथवा अर्थात् 'वर्तते' अर्थोंमें अर्थों द्वारा वा जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह
कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जायगा तो यह नियम है कि प्रत्ययोंका रू इसरूपक बनाजाता है उनसे ही प्रत्यय होता है। यहाँपरनी युक्त है इत्सङ्क
बावसे ही प्रत्यय होगा अतः 'वर्तनी' ऐसा रूप सिद्ध होना 'वर्तना' नहीं फिर सूत्रमें 'वर्तना' शब्दका उल्लेख अत्युत्तरी (उत्तर) यहाँपर विद्यमान्यवर्त 'वर्तक'
चाहुसे ही नियममें अर्थात् और अन्तःकरण अर्थ के विद्विहित रूपपर पूर्व प्रत्यय कर वर्तना शब्दकी सिद्धि कीमई है इसलिये यहाँपर ही प्रत्ययको बोधे
समावता नहीं ॥ 'वर्तते वर्तमानात् वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वल्प हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ ॥ अथवा "अन्वर्ततेत्यावा
प्येकीको वा" जिसका अनुवाद एव जाता है उससे वाक्यैकीक अर्थ में अर्थात् 'वह उसका स्वभाव ही हो' इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेमीतर 'पूर्व'
प्रत्ययका विधान माना है 'पूर्वोच्' चाहुका अनुवाद इसरूपक है इसलिये तात्थ्यैकीक अर्थ में पूर्व प्रत्ययकर वर्तना शब्दकी सिद्धि हुई है ॥ वर्तनगीका
वर्तना अर्थात् 'वर्तन-परिवर्तन' करना ही जिसका स्वभाव हो वह वर्तना है। यह वर्तना शब्दका विग्रह है ॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकार ॥ को शिजर्य ? । वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता काल ॥
यद्येव कालस्य क्रियावरवं प्राप्नोति । यथा शिब्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयतीति ॥ नैष दोष ।
निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्ट । यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति । एव कालस्य हेतुकर्तृता ॥

इति० कृत्वा० वर्तना० ॥ कालस्य० उपकार० ॥ ;

क० ॥ शिज० ॥ अर्थ० ? । वर्तते । द्रव्य

पर्याय० ॥ वस्य० (१) वर्तयिता० ॥ काल० ॥ ॥

अर्थ विपै यार् द्रव्यके वर्तवनेका प्रयोजन है । अथवा प्रयोजनके प्रेरक विपै आया है यावार्थ ऐसा है कि पर्मादिक द्रव्योंके पर्याय समप समय पवन्त हैं सो इस पवन्दनेका समय जो काल सोही (इस पवन्दनेको) निमित्त है अतः इस प्रकार करते है कि द्रव्योंकी पर्याय वर्तनी है तिन पर्यायोंका वर्तवनेनाला द्रव्यकाल अथवा निरवयकाल है ॥

यदि० एवम्० कालस्य० क्रियावरस्य० ॥ यामोति० । = जो ऐसे है (कि काल वर्तवनेनाला है) सो कालके क्रियावानुपना प्राप्त होता है

यथा० शिज्य० ॥ अर्पते०, उपाध्याय० ॥ अध्यापयति० = जैसे शिज्य पढ़ता है गुरु पढ़ता है ऐसा (होता है

न० एवम्० ॥ अर्थ० ; निमित्तमात्रे० ॥ अपि०

हेतुकर्तृ० ॥ व्यपदेश० ॥ दृष्ट० ; यथा० कारीप० ॥

अग्नि० ॥ अध्यापयति० ।

एवम्० कालस्य० हेतुकर्तृता० ॥

= इस प्रकार करके (समयरूप) वर्तना कालका उपकार है ।

= ब्रुवुपाठ्यैः शिज्य (मत्स्य जो खगाया है, किसलिये है) (उचर) वर्तनी है द्रव्यकी

वर्णाय, तिस (द्रव्यकी पर्याय) का वर्तवनेवाला काल है अर्थात् 'शिज्य' प्रत्यय

प्रयोजनके हेतुकर्ता विपै (जो कुछ इमारा प्रयोजन है उसके प्रेरकके प्रेरणा करनेवालेके अर्थ विपै यार् द्रव्यके वर्तवनेका प्रयोजन है) अथवा प्रयोजनके प्रेरक विपै आया है यावार्थ ऐसा है कि पर्मादिक द्रव्योंके पर्याय समप समय पवन्त हैं सो इस पवन्दनेका समय जो काल सोही (इस पवन्दनेको) निमित्त है अतः इस प्रकार करते है कि द्रव्योंकी पर्याय वर्तनी है तिन पर्यायोंका वर्तवनेनाला द्रव्यकाल अथवा निरवयकाल है ॥

यदि० एवम्० कालस्य० क्रियावरस्य० ॥ यामोति० । = जो ऐसे है (कि काल वर्तवनेनाला है) सो कालके क्रियावानुपना प्राप्त होता है

यथा० शिज्य० ॥ अर्पते०, उपाध्याय० ॥ अध्यापयति० = जैसे शिज्य पढ़ता है गुरु पढ़ता है ऐसा (होता है

न० एवम्० ॥ अर्थ० ; निमित्तमात्रे० ॥ अपि०

हेतुकर्तृ० ॥ व्यपदेश० ॥ दृष्ट० ; यथा० कारीप० ॥

अग्नि० ॥ अध्यापयति० ।

एवम्० कालस्य० हेतुकर्तृता० ॥

स कथं काल इत्यवसीयते ? समयदीनां क्रियाविशेषाणां समयादिभिर्निर्वर्त्यमानानां च पाकादीनां समय पाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढिसद्भावेऽपि समय कालः, औदनपाककाल इति अर्थोप्यमाण कालव्यपदेशः ।

सर्गः कर्मकालः । इति अवसीयते ? ।

समय-आदीनाम् । (१) क्रियाविशेषाणाम् ।

समय आदिभिर्निर्वर्त्यमानानाम् । च पाक-आदीनाम् । = तथा (= च) समय आदिकरि क्रियेभ्य ए पाक-आदिकोका

समयः, पाकः । त्वेषाम् आदि । १) स्वसंज्ञाकरि

संज्ञादेशे अपि ।

समयः, कालः । औदनपाककालः । प्रतिभष्यारोप्यमाणः = समयकाल तथा भातका पाककालः (अनक्रमसे) । ऐसा भारोपणकरि

काल-व्यपदेशी ।

आवली, घंटा, वा दिन आदि खगता है तथा किसी कार्य जैसे भात ओपधि रसोई आदि

करनेमें तो समय, आवली, घंटा वा दिन आदि व्यतीत होता है उसको (क्रमसे) समयकाल-आवलीकाल-घंटाकाल-दिनसकाल

करते हैं तथा औदन (भात) पाककाल, ओपधि पाककाल, रसोई पाककाल करते हैं तो यह समय, आवली तथा घंटा

आदि व्यवहारकालका काल है अर्थात् समय, आवली, घंटा तथा दिन आदि व्यवहारकाल है ।

(२) 'अनंताकरि-सर्वाथसिद्धि' के दोनो संस्कारोंमें 'स्वसंज्ञाकरि' के स्थानमें 'असंज्ञाकरि' कथ्य कथ्यमाण है । असंज्ञाकरि कथ्यकाङ्कनी शौणिककथ्ये नहीं जाता है असंज्ञाकरि शौणिक असंज्ञा करिसे करि वा प्रसिद्ध होसकती है अतः पाठ कथ्य करविपापभाई । सर्वाथसिद्धि तीन इत्यन्तिकप्रतिषेधोमें भी तथा सर्वाथसंज्ञाकारिकके "समयपाक इत्येवमादिसंज्ञाकरि संज्ञाकारिः" वाक्यमें जो कथ्य का सर्वाथसिद्धि के पाठसे मिलता है 'स्वसंज्ञाकरि' कथ्य पापा जाता है ।

(२) मुख्य परमाणुका कालकी एक कथ्यते दूसरी कथ्यते कथ्यते कथ्यते अथवा जोकाकथ्यते एक प्रदेकसे दूसरे प्रदेकक संभ्रमति कालेमें जोकाल व्यतीत होता है उसको समय कहते हैं । ऐसा करनेमें मुख्य परमाणुकी जाने उपजिवाको विधाय किया कथ्यकते हैं । 'एककाल अपूर्णैती कृती-काल अपूर्णाय पुनःकाली पर्यन्तं तथा समं होत है । अन्तर्को कथ्यो यती सूर्यकाली दिन होय मास पितृ वर्ष, ऐव आदिक कथ्यते है । तर्हि वस्तु बोधी करे परावर्तं बाल यते सोई व्यवहारकाल विनासीक गत है । अतीव भूतान्त वस्तुमात्र परजाय काबान्दुर्वर्तं करी जाकेकर जोक होयान्तविवाच ।

इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकार ॥ को शिज्यर्थ ? । वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता काल ॥
यद्येवं कालस्य क्रियावत्त्वं प्राप्नोति । यथा शिष्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयतीति ॥ नैष दोष ।
निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्ट । यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति । एव कालस्य हेतुकर्तृता ॥

इति ० ह्यस्य ० वर्तना ॥ कालस्य ॥ उपकार ॥ ;

कृ ॥ शिच् ॥ अर्थ ॥ १ वर्तते । द्रव्य

पर्याय ॥ तस्य ॥ (१. वर्तयिता ॥ कालः ॥ ॥

=इस प्रकार करके (समयरूप) वर्तना कालका उपकार है ।

=वृत्तशब्दमें शिच् प्रत्यय जो लगाया है, किसलिये है (उपर) वर्तती है द्रव्यकी

=पर्याय, तिस (द्रव्यकी पर्याय) का वर्तानेवाला काल है अर्थात् 'शिच्' प्रत्यय

प्रयोजनके हेतुकर्ता नियें (जो कुछ हमारा प्रयोजन है उसके प्रेरकके प्रत्या करनेवालेके अर्थ नियें यहां द्रव्यके वर्तानेका प्रयोजन है) अथवा प्रयोजनके प्रेरक नियें आया है भावार्थ ऐसा है कि घर्मादिक द्रव्योंके पर्याय समय समय फल्यते हैं सो इस पलटनेका समय जो काल सोही (इस पलटनेको) निमित्त है अतः इस प्रकार करते है कि द्रव्योंको पर्याय वर्तती है तिन पर्यायोंका वर्तानेवाला द्रव्यकाल अथवा निरूपयकाल है ॥

यदि ० एवम् ० कालस्य ॥ क्रियात्तरुम् ॥ ॥ मास्मिदि ॥ =जो ऐसे है (कि काल वर्तानेवाला है) जो कालके क्रियावान्पना प्राप्त होता है

यथा ० शिच् ॥ अर्थात्, उपाध्यायः ॥ अध्यापयति इति ॥ =नैसे शिष्य पढ़ता है गुरु पढ़ता है ऐसा (शेता है

न ० एव ॥ दोष ॥ ; निमित्तमात्रे ॥ अपि ०

हेतुकर्तृव्यपदेशः ॥ दृष्टः ॥ यथा ० कारीयः ॥

अग्निः ॥ अध्यापयति ।

=हेतु कर्ताका कथन वा नाम देला जाता है जैसे कारीय अथवा कंठेकी
=भाग (शीतकालमें) पढ़ती है अर्थात् शीतकालमें शिष्य कंठेकी आगके सहासे स्वयं
पढ़ते है परन्तु संसार में ऐसेभी करते हैं कि जादेकी ध्वद्वयें अथवा जड़कालमें कंठेकी
भाग शिष्यको पढ़ाती है ।

=ऐसे कालके (प्रायों के वर्तानेमें) हेतुकर्तापना वा प्रेरकपना है ।

एवम् ० कालस्य ॥ हेतुकर्ता ॥

तद्व्यपदेशनिमित्तस्य सुखस्य कालस्यास्तित्वं गमयति । कुत ? गौणस्य सुख्यापेक्षत्वात् ॥
 इयस्य पर्यायो धर्मान्तरनिवृत्तिधर्मान्तरोपजननरूप अपरिस्पन्दात्मक परिणामो, जीवस्य
 क्रोधादि । प्रहलस्य वर्यादि । धर्मो धर्माकारानामगुह्यधुगुण-

हृद-व्यपदेशनिमित्तस्य।

मुत्पत्त्यर्थाः कालस्य। अस्तित्वस्य॥ गमयति ।

=स (व्यवहारकाल)का (व्यपेक्ष)कथन (अपने) निमित्तक अथवा हेतुकता
 =निश्चय (=सुख)वा परमार्थ (=सुख)कालकी विधानताको जतावा है भावार्थ समय
 भावली घटिका इत्यादिरूप जो व्यवहारकाल है तिससमय भावली-घटिकादिरूप
 नामको निमित्त ऐसा जो निरवयवकाल (=असंस्पृष्टरूपकालाणु) तिन असंस्पृष्ट
 कलाणुओंका अस्तित्व वा विधानता इस(समय-भावली-घटिकादिरूप व्यवहारकालसे जानी जाती है
 = मम) व्यवहारकालसे निश्चयकालका ज्ञान/संयोजक होता है । गौणकी (विषयमानता)
 =सुखकी अपेक्षासे होती है अर्थात् क्योंकि गौण सुखके विना कभीभी नहीं होसकतारे
 भावार्थ व्यवहारकाल गौण है, निश्चयकाल मुख्य है, ओदनपाकादि जो अस्तित्व
 व्यवहारकाल है वह निश्चयकालसे उत्पन्न होने वाले अथवा अतिका समूह है विना निश्चयकालके
 व्यवहारकाल उत्पन्न नहीं होसकता इसलिये व्यवहारकालसे निश्चयकाल जाना जाता है ॥

इतः । गौणस्य।

मुख्य अपेक्षत्वात्॥

दृश्यस्य॥ पर्यायः। पमान्तः-निवृत्ति-धर्मान्तर-
 उपजननस्य॥ अपरिस्पन्दस्य॥ परिणामः।
 नरिस्य। आयातिः। प्रहलस्य। वर्यः-आदिः।
 पर्यायः-आकाशानाम्॥ (२) अगुह्यधुगुण

(१) एक इत्यादिवाक्य अतिक गुण ५४ पर मिलित तिन
 स्वर्ना अणुय करता है । यहाँ पर गरिसे अणु है ०
 (२) जिस अणुके निकलसे प्रत्यक्षी द्रव्यता स्थिर रहे अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिवर्तित होत एक गुण दूसरे गुणरूप न परिवर्तित तथा
 एक द्रव्यके सौके ना अन्तर्गुण विकारकर जुड़े न होजायें उसको अगुह्यधुगुण कहते हैं ०
 (३) यहाँ २ पर दिया नीम प्रकारकी सामी है प्रथम सायागाति क्रितीक विस्तृततामिति और गुणीय विधाकागति इनमें सायेगेमिति पुरुषवयस्य अणु है ०
 निमित्तवागति = स्वयं परिवर्तितकसेअन्तर्गौण (अधिकता) = निश्चय) उपपन्नत्व और स्वयं परिवर्तितकसे अणुव्यवहारके बाकी विधाकागति पुरुषवयस्य अणु है ०

=पर्यायार्थ आकाशके अगुह्यधुगुण अथवा द्रव्यकालव्यवहारसेवाञ्छे गुणकी
 शब्द है वह अगुह्य है क्योंकि निवृत्तिका अथ ओदनका निश्चित होनाका है निवृत्तिका अथ

प्रपञ्चस्य ॥ कालो हि द्विविध परमार्थकालो व्यवहारकालश्च । परमार्थकालो वर्तनालक्षणः ।
 परिणामादिलक्षणो व्यवहारकालः ॥ अन्येन परिच्छिन्न अन्यस्य परिच्छेदहेतु क्रियाविशेष काल
 इति व्यवहियते । स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानो भविष्यन्ति ॥ तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो
 मुख्यः । भूतादिव्यपदेशो गौणः ॥ व्यवहारकाले भूतादिव्यपदेशो मुख्यः । कालव्यपदेशो गौणः ।

मपञ्चस्यः; कालः; विच्छिन्नः; परमार्थकालः;
 व्यवहारकालः; वर्तनालक्षणः; परमार्थ
 रणामादिलक्षणः;
 भूतः; अन्यः; परिच्छिन्नः;

न्यस्यः; परिच्छेदः; हेतुः;

क्रिया-विशेषः; कालः;। विध्यव्यपदेशः।

सः; विषयः; भूतः; वर्तमानः; भविष्यत्;। विच्छि
 व्यपदिष्टः। तत्र परमार्थकालोः काल-व्यपदेशः।

सुख्यः; भूतादिव्यपदेशः।

गौणः; व्यवहारकालः; भूत आदिव्यपदेशः।

सुख्यः; शब्द-व्यपदेशः; गौणः।

=विस्ताररूप(पूर्वोक्त कथन) है । जैसे(=है)काल दो प्रकार है, परमार्थकाल
 =और(=च)व्यवहारकाल; वर्तना है छत्रण भिसका सो परमार्थ वा निरूप्य
 =काल है । परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व है छत्रण भिसके सो
 =व्यवहारकाल है । (वह व्यवहारकाल)अन्य(पदार्थ) करि जाना जाता है
 (जैसे सूर्य चन्द्र आदिके उदय अस्तसे दिन राति जाने जाते हैं जो व्यवहार काल है
 नीच और पुद्गलके परिछमनसमी व्यवहारकाल मगट होताहै)

=(व्यवहारकाल)इसरी(वस्तु)के ज्ञान करानेमें निमित्त है जैसे (क) इस कालसे निमित्त-
 काल जानानाहारे(इसअध्यायका पृष्ठ=४५) यह पुल सौर्षकारै(ऐसीअवस्थायुलकीहै
 =क्रिया क्रिये है सो कालहै ऐसा व्यवहार क्रियानाहारे (क्रियाका विशेष व्यवहारकालहै)

=जह(व्यवहारकाल)नीच प्रकार अतीत-वर्तमान-अनागत ऐसे
 =व्यवस्थित है । (तहां परमार्थकाल(की अपेक्षा) बिपै कालका नाम वा कथन
 (अर्थात् लोकाकारके एककमदेशपरएककालाणुभिन्नमित्त तिष्ठतेहुआँकोकालकरना)

=सुख्य वा प्रधान है, भूत, वर्तमान, भविष्यत्का कथन(निमित्तकालकी अपेक्षासे)
 =गौण वा अप्रधान है । व्यवहारकाल बिपै अतीत वर्तमान अनागतका कथन
 =प्रधान है और काल करना गौण वा अप्रधान है अर्थात् निमित्तकाल वा परमार्थकाल

काल(नी) वर्तमाना पर है और उपवर्तमानकी अपेक्षासे लोकाद वर्तमाना उपर है । जहां वर्तमाना तथा लोकाद उपवर्तमानको केन्द्रकर वर्तनादि सब
 व्यवहारके लोकाद वर्तमाना उपर है अर्थात् लोकाद वर्तमाना उपर है अर्थात् लोकाद वर्तमाना उपर है अर्थात् लोकाद वर्तमाना उपर है

क्रियावद्व्यापेक्षत्वालकृतत्वाच्च ॥

अत्राह धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ता । लक्षणं चोक्तम् "उपयोगो लक्षण-
मित्येवमादि" पुद्गलाना तु सामान्यलक्षणमुक्तं "अजीवकाया इति" विशेषलक्षणं नोक्तम् ।
तत्किमित्यत्रोच्यते—

॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

कहना गौण है नकि समय, आवली, घटिका, महर, दिन, राति, पच मास, ऋतु, अयन, वरस इत्यादिको कहना
गौण है क्योंकि कउन करते समय ये सब (समय, आवली, घटिका इत्यादि) यानो मूक्कालमें वा वर्तमान
कालमें वा भविष्यत्कालमें आनावेगे, गणित हो जावेंगे और सम्बन्ध रखेंगे ॥ फिर भूतादिको मुख्य
कहना, समय घटिकादिको गौण कहना एकही वस्तुको मुख्य गौण कहदेना है सो ठीक नहीं ॥

- (१) क्रियावत् ० द्रव्य अपेक्षत्वात् ॥ च ०
- काल-कृतत्वात् ॥
- अत्र ० आश्रयम् अयम् आकाश-पुद्गल-जीव-कालानाम् ॥
- उपकाराद् उक्तम् ॥ क्षणम् ॥ च ० चक्रम् ॥ "उपयोगम् ॥
- लक्षणम् ॥ इत्येवम् आदि ॥" पुद्गलानाम् ॥ सु ०
- "अजीव-कायाद् ॥ इति" सामान्य लक्षणम् ॥ चक्रम् ॥
- विशेष-लक्षणम् ॥ च ० चक्रम् ॥ तद् ॥ किम् ॥
- इति ० अत्र ० च ० चक्रम् ॥

सूत्रम् "स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः २३ = स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः", (भवन्ति) ॥ २३ ॥

(१) (प्रश्न) समय आवली घटिका महर दिन इत्यादि नै स्वयंशर काल नाम हीस पाया है । (उत्तर) किंगवान् ज क्षय द्रव्य किमको अपेक्षार
स्वयंशर काल नाम पाया है तथा किमय काश्चिदिति क्रियेगये है अ समय आवली घटिका महर दिन रातिादि तिससे (स्वयंशर) काल नाम पाया है ॥
(२) इस सूत्र का पाठ और अय नाम येनाम्बर तथा किम् च सम्प्रदायोर्मे एकता है ।

प्रपञ्चस्य ॥ कालो हि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च । परमार्थकालो वर्तनालक्षणः । परिणामादिलक्षणो व्यवहारकालः ॥ अथेन परिच्छिन्न अन्यस्य परिच्छेदहेतु क्रियाविशेष काल इति व्यवहियते । स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानो भविष्यति ॥ तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो मुख्यः । भूतादिव्यपदेशो गौणः ॥ व्यवहारकाले भूतादिव्यपदेशो मुख्यः । कालव्यपदेशो गौणः ।

प्रपञ्चस्यः कालः १। द्विविधः २। परमार्थकालः ३।

व्यवहारकालः ४। वर्तनालक्षणः ५। परमार्थ

कालः ६। परिणामादिलक्षणः ७।

व्यवहारकालः ८। अन्यः ९। परिच्छिन्नः १०।

अप्यस्यः परिच्छेदः ११।

क्रियाविशेषः १२। कालः १३। इति १४। अन्यविशेषः १५।

मार्गः १६। भिन्नाः १७। वर्तमानः १८। भविष्यत् १९। इति २०।

व्यपदिष्टेः २१। तत्र २२। परमार्थकालः २३। कालव्यपदेशः २४।

मुख्यः २५। भूतादिव्यपदेशः २६।

गौणः २७। व्यवहारकालः २८। मृत-आदि-व्यपदेशः २९।

मुख्यः ३०। कालव्यपदेशः ३१। गौणः ३२।

=विस्ताररूप(पूर्वोक्त कथन) है । जैसे(वह)काल वो प्रकार है, परमार्थकाल

=मौल(=व)व्यवहारकाल; वर्तना है कालय भिन्नका सो परमार्थ वा निरूपय

=काल है । परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व है कालय भिन्नके सो

=व्यवहारकाल है । (वह व्यवहारकाल)अन्य(पदार्थ)करि जाना जाता है

(जैसे सूर्य चन्द्र आदिके उदय अस्तसे दिन राति जाने जाते हैं सो व्यवहार काल है

जीव और पुद्गलके परिणयनसेमी व्यवहारकाल प्रगट होतारै)

=(व्यवहारकाल)मूलती(बस्तु)के ज्ञान करानेमें निमित्त है जैसे (क) इस कालसे निम्न-काल

जानाजातारै(इसअवस्थाका घुट्ट=४)ल) यह गुण सौवर्णकारै-ऐसीअवस्थापुलकारै

=क्रिया विद्येय है सो कालहै ऐसा व्यवहार क्रियानातारै (क्रियाका विद्येय व्यवहारकालहै)

=वह(व्यवहारकाल)जीन प्रकार अतीत-वर्तमान-अनागत ऐसे

=व्यवस्थित है । (यहां परमार्थकाल(की अपेक्षा) बिपै कालका नाम वा कथन

(अर्थावशोकाकाशके एकएकदेशपरएकएककालायुभिकभिय किष्टुहेतुओंकोकालकरना)

=मुख्य वा प्रधान है, मृत, वर्तमान, भविष्यत्का कथन(निम्नकालकी अपेक्षासे)

=गौण वा अग्रधान है । व्यवहारकाल बिपै अतीत वर्तमान अनागतका कथन

=प्रधान है और काल करना गौण वा अग्रधान है अर्थात् निम्नकाल वा परमार्थकाल

प्रपञ्च(प्रपञ्च) पर है और उपवर्षकोकी अपेक्षासे लोकाद वर्षकोका उपर है ३ यहाँ व्यंजना गया वेनकड पणकडपरलक्षणे केइकर वर्तनादि कथन

कालगत है कथन्य वर्तमान इति कथन कालगत कथन्य है कालके उपकार है ३

क्रियावद्बुद्ध्यापेक्षत्वात्कालकृतत्वाच्च ॥

अत्राह धर्माधिकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ता । लक्षणं चोक्तम् “उपयोगो लक्षण-
मित्येवमादि” पुद्गलानां तु सामान्यलक्षणमुक्तं “अजीविकाया इति” विशेषलक्षणं नोक्तम् ।
तत्किमित्यत्रोच्यते—

॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

करना गौष्ठे हे नकि समय, आष्वी, घटिका, नार, दिन, राति, पच मास, ऋतु, अयन, वरस इत्यादिको करना
गौष्ठे हे क्योकि करन करते समय ये सष (समय, आष्वी, घटिका इत्यादि) यातो भूतकालमें वा वर्तमान
कालमें वा भविष्यत्कालमें आनाबंगे, गर्भित हो जावंगे और सम्बन्ध रखवंगे ॥ फिर भूतादिको मुख्य
करना, समय घटिकादिको गौष्ठे करना एकरी वस्तुको मुख्य गौष्ठे करदेना हे सो ठीक नही ॥

(१) क्रियावत् ० द्रव्य-अपेक्षत्वात् ॥ १ ०
काल-कृतत्वात् ॥

अन ० आर ० अर्प ० अर्प ० आकाय ० पुद्गल ० जीव ० कालानाम् ॥

उपकारान् ० उपा ० षष्ठ्यणम् ॥ १ ० उक्तम् ॥ ॥ “उपयोगम् ॥

लक्षणम् ॥ इत्यवस ० आदि ॥ ॥” पुद्गलानाम् ॥ तु ०

“अजीव-काया ॥ इति” सामान्य-लक्षणम् ॥ उक्तम् ॥ ॥

विराज-लक्षणम् ॥ ॥ न ० उक्तम् ॥ ॥ तद्रे ॥ ॥ किम् ॥ ॥

इति ० अत्र ० उच्यते ॥

सूत्रम् “स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गला २३ = स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ (भवन्ति) ॥ २३ ॥

(१) (प्रश्न) समय कायको घोटका प्रहर दिन इत्यादि में व्यवहार काल नाम कीत पाया हे । (उत्तर) किण्वान् उ काय द्रव्य तिमकी उपकार
व्यवहारकाल, नाम पाया हे तः ॥ निश्चय कालकति क्रियेगये हे अे समय आष्वी घटिका प्रहर, दिन इत्यादि तिघसे (व्यवहार) काल नाम पाया हे ॥
। (२) हे लक्षणमुक्ता गौष्ठे और सष दानो यत्नाम्बर तथा विगम्बर सम्प्रदायोमी वकला हे ।

इति । नित्ययोगे "भन्निर्देश" ॥ यथा क्षीरिणो न्यग्रोघा इति ॥ ननु च "रूपिण पुद्गला" इत्यत्र पुद्गलाना रूपवत्त्वमुक्तं तद्विनाभाविनश्च रसादयस्तत्रैव परिगृहीता इति व्याख्यातं तस्मात्तेनैव पुद्गलानां रूपादिमत्त्वसिद्धे सूत्रमिदमनर्थकमिति ॥ नैष दोषः । नित्यावस्थितान्यरूपपाणीत्यत्र घर्मादीना नित्यत्वादिनिरूपणेन

इति नित्य-योगः मत्-निर्देशः ॥

= न स प्रकार सर्वैव संयोगमे महत् (= मत् प्रत्ययका निरूपण है भावार्थ "स्पर्श- रस-गंध-वर्णवन्तः" इस वाक्यको जब पृथक् पृथक् करते हैं तब स्पर्शवान् रसवान्-गंधवान्-वर्णवान्-येसे चार शब्द होते हैं स्पर्शका नित्य है संयोग जिसमें अथवा स्पर्शगुण सर्वैव जिसमें रहता है वर स्पर्शवान् (पुद्गल) है इसका महत् (=मत्) प्रत्यय स्पर्शगुणके सर्वैव विद्यमान रहनेके-अर्थमें-हागाया गया है ऐसी रसवान्-गंधवान्-वर्णवान् मानना ॥ स्पष्ट रहै कि इस सूत्रके दो प्रकारसे विभाग होसकते हैं

(क) स्पर्शवन्तः पुद्गलाः; रसवान् पुद्गलाः; गंधवान् पुद्गलाः; वर्णवन्तः पुद्गलाः; अथवा

(ख) स्पर्शवान् पुद्गलाः; रसवान् पुद्गलाः; गंधवान् पुद्गलाः; वर्णवान् पुद्गलाः ॥

यथा क्षीरिणः न्यग्रोघाः इति ननु च क्षीरिणः

पुद्गलाः इति अप्यपुद्गलानामर्थः रूपवत्त्वम् ॥ तत्रम् ॥

तद्विनाभावान्निः ॥ चरस आदयः ॥ तत्र च

एव परिगृहीताः इति व्याख्यातम् ॥

तस्मात्तेनैव एव पुद्गलानामर्थः

रूप आदित्यत्वसिद्धेः ॥ मत्त्वम् ॥ इदम् ॥ अनर्थकम् ॥ इति ॥ = रूप्यपना, स्पर्शपना, रसपना, गंधपना सिद्ध होनेसे यह सूत्र निव्ययोजन है ॥

न चरसः दोषः; नित्य अवस्थानिः ॥ अरुपाणिः ॥

इति अप्यप्यप्यादीनाम् ॥ नित्यत्वादि-निरूपणेन ॥

= नैसे बूबालो अथवा रूपयुक्त बट्टुबुत्त (=टट्टुबुत्त) पुनि भरन, रूपी वा यूर्तीक

= पुद्गल हैं ऐसे यहाँ अभ्याय ५ सूत्रमें पुद्गलको रूपपना करागया है

= और (=च) अस (रूप) का अभियानाभी तथा पिन्न न रहनेबाले रस-स्पर्श गंध तथा

= (रस पांचवो सूत्रसे) ही ग्रहण कियेगये ऐसा वर्णन कियागया है

= तिस कारणसे (=वत्सात्) अस (इस अभ्यायके पांचवो सूत्र) करिरी पुद्गलको

= रूप्यपना, स्पर्शपना, रसपना, गंधपना सिद्ध होनेसे यह सूत्र निव्ययोजन है ॥

= (उपर) यह रूप्य नही है नित्य, अवस्थानि और अरुपाणि,

= ऐसे यहाँ प्रमादिकोंका धुषणनादिकका कथन करनेसे

१) प्रगमापत्ति स्वर्गान्ति विदुषु चित्तमिर्देशः पाठ है द्वितीयावृत्तिमें और एव इत्तच्छिब्रप्रतियोगिं वत्तिर्देशः पाठ है त्रितीयावृत्तिमें भिर्देशः पाठ है चतुर्थीवृत्तिमें चित्तमिर्देशः पाठ है पंचमीवृत्तिमें चित्तमिर्देशः पाठ है षष्ठीवृत्तिमें चित्तमिर्देशः पाठ है सप्तमीवृत्तिमें चित्तमिर्देशः पाठ है अष्टमीवृत्तिमें चित्तमिर्देशः पाठ है नवमीवृत्तिमें चित्तमिर्देशः पाठ है दशमीवृत्तिमें चित्तमिर्देशः पाठ है एतद्विषय इति चित्तमिर्देशः पाठ है एतद्विषय इति चित्तमिर्देशः पाठ है एतद्विषय इति चित्तमिर्देशः पाठ है एतद्विषय इति चित्तमिर्देशः पाठ है

स्पृश्यते स्पर्शनमात्रं वा स्पर्शं । सोऽष्टविध । मृदुकठिनगुल्फलघुशीतोष्णरिन्गन्धरूक्षभेदात् ॥
 रस्यते रसनमात्र वा रस । स पञ्चविध । तिक्ताम्लकटुमधुरकषायभेदात् ॥ गन्ध्यने गन्धन-
 मात्र वा गन्ध । स द्वेधा । सुरभिरसुरभिरिति ॥ वर्णयते वर्णनमात्र वा वर्ण । स पञ्चविध ।
 कृष्णानीलपीतशुक्ललोहितभेदात् ॥ त एते मूलभेदा प्रत्येक सख्येयासख्येयानन्तभेदाश्च भवन्ति ॥
 स्पर्शश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णास्त एतेषा सन्तीति स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त

वृषार्थः—स्पर्श-रसनान्य-वर्णवन्तः। पृदुगल्फाः।

वृषुषुषार-सूर्यते । वा स्पर्शनमात्रम् ॥ स्पर्शः।

सः। अष्टविधः। मृदु-कठिन-गुल्फ-लघु-शील-

उष्ण-रिन्गन्ध-रूक्ष-भेदात् ॥ रस्यते । रसनमात्रम् ॥ वाः

रसः। म । पञ्चविधः। तिक्त-म्ल-कटु-मधुर

कषाय-भेदात् ॥ गन्ध्यते वा गन्धनमात्रम् ॥ गन्धः।

सः। द्वेधाः सुरभिरभिः। असुरभिरभिः। इतिहा वस्यते ।

वाः षण्णमात्रम् ॥ वर्णयते। रस-नैय-अविष-नैः। ऋष्ण-नील-पीत

शुक्ल-लोहित-भेदात् ॥ तः। एतेः। मूलभेदाः। प्रत्येकम् ॥

सन्त्येव असख्येय भवन्तभेदाः। वः भवन्ति ।

स्पर्शः। पञ्च रसः। वः षण्णव्यः। पञ्च वर्णः। पञ्च

स्पर्शरसगन्धवर्णाः। वेः।

वर्णयते। रस-नैय-अविष-नैः। ऋष्ण-नील-पीत-शुक्ल-लोहित-भेदात् ॥

=स्पर्शं, रसं, गन्धं, वर्णवन्तं पृदुगल्फं होते हैं अर्थात् स्पर्श रस, गन्ध, वर्ण ये चार गुणोंकरि सरित्त अथवा खेक्षणोंकरि युक्त पृदुगल्फ होते हैं ॥

= (वृषिका अनुषाद्य) जो स्पर्श या भ्रूमा आता है अथवा सूनेमात्र सो स्पर्श है वर 'स्पर्श' आठ प्रकार, क्रोमल सुखायम (पृदु) कठोर (कटा) भारी, हल्का, ठंडा,

= गरम, सचिकन (= चिकन) रसा भेदसे है । स्वाद खियाजातारै वा स्वादमात्र = रस है सो पांच प्रकार चिरपर (परपर) स्वाहा (आमिल) कड़वा (कटुक) मीठा,

= कषायवा (कशैला) भेदसे है । जो संघा जाता है अथवा वासमात्र है सो गन्ध है = वर (गन्ध) श्रो मकार सुगन्ध दुमन्त्र होती है । जो वर्ण स्वरूप देखेजाता है

= वा र पमात्र सो वर्ण है । सो पांच प्रकार काला, नीला, पीला

= रस-दो गन्धके भेदोंमेंसे प्रत्येकर भेदके स्वानकोंकी अपेक्षासे (एक-दो-तीन-चार

= संख्यात, असंख्यात और भवन्त भेद होते हैं अर्थात् इन बीस (= स्पर्श ५ वर्ण

इत्यादि संख्यातभेद, असंख्यातभेद, अविभाग रिच्छेदोंकी अपेक्षासे भवन्तभेद

= और (= व, स्पर्श और (= च) रस और (= व) गन्ध और (= व) वर्ण है

= सो दृष्टमात्रसे स्पर्शरसगन्धवर्णाः (येसा वाक्य) होता है । ते (स्पर्शरसगन्धवर्ण

= रसके रसने ईकेसे स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाके ई कषात के पदगल्फ

शब्दो द्विविधो भाषालक्षणो विपरीतश्चेति ॥ भाषालक्षणो द्विविधः । सावरोऽनन्तरश्चेति ॥ अक्षरीकृतः
 शास्त्राभिव्यञ्जकः संस्कृतविपरीतभेदादर्थान्त्वव्यवहारहेतु ॥ अनन्तरालमको द्वीन्द्रियादीनामतिशय-
 ज्ञानस्वरूपप्रतिपादनहेतु स एष सर्वप्रायोगिक । अत्रमाधत्मको द्विविधः । प्रायोगिको वैसूक्तिकश्चेति ॥

तमोक्तान् पुद्गलाः वा तमोक्तान् पुद्गलाः ।
 व्यापकत्वं पुद्गलाः वा व्यापकान् पुद्गलाः ।
 आपकत्वं पुद्गलाः वा आपकान् पुद्गलाः ।
 वः उच्यते यन्तः पुद्गलाः ।
 वा उच्यते यन्तः पुद्गलाः ।

पुण्यवादः शब्दो द्विविधः । व्यापकत्वं । वः
 विपरीतः । द्विविधः । व्यापकत्वं । द्विविधः ।
 सः अक्षरीकृतः । अक्षरीकृतः । अक्षरीकृतः ।
 अक्षरीकृतः । अक्षरीकृतः । अक्षरीकृतः ।
 विपरीतः ।

मेवात् । अर्थः स्वच्छः स्वच्छः स्वच्छः ।
 द्विविधः । अक्षरीकृतः । अक्षरीकृतः ।
 अक्षरीकृतः । अक्षरीकृतः । अक्षरीकृतः ।
 अक्षरीकृतः । अक्षरीकृतः । अक्षरीकृतः ।

सः । अर्थः सर्वः । अर्थः सर्वः ।
 व्यापकः । व्यापकः । व्यापकः ।
 वैसूक्तिकः । वैसूक्तिकः । वैसूक्तिकः ।

अपकारवाले पुद्गल हैं अथवा अपकारसंपुक्त पुद्गल है
 कारासहित पुद्गल है अथवा आहवान् पुद्गल है
 अक्षरसंपुक्त पुद्गल है अथवा उच्छस्वत आवासासहित पुद्गल है
 और शीतल मकाय जैसे चांदनी (चंद्रमा की पट्टी मना की चमक) वाले पुद्गल हैं
 आठवे बनाले यान् जैसे चांदनीवान् पुद्गल है अर्थात् येकशुद्गल इत्येकं पर्याय,
 परिणाम, विकार वा अपस्थापितोप है ।

अन्वय दोषकार है मायास्वरूप वा मायात्मक और (अन्वय)
 अतिशुद्ध अर्थात् अपायास्वरूप वा अपायात्मक; मायात्मकशब्द दो मकार है
 अक्षररूप (अक्षरसहित, अक्षरीकृत) और (अन्वय अनक्षररूप (अक्षररहित)
 अक्षररूपमाया (मायात्मक शब्द) शब्दके प्रगटकारनेवाली संस्कृत और
 (संस्कृतसे) अतिशुद्ध वा विरोधीमाया अर्थात् देशमाया, मऊव, पेशाचीमादि
 अर्थसे अर्थ और स्वेच्छा (अन्वय) के व्यवहारका कारण है । अनक्षररूप माया
 और द्विविधः अर्थात् अक्षरीकृत और अक्षररहित अर्थात् अक्षररहित अर्थात् अक्षररहित

माया है तो दो द्विविधवाले भी बौद्ध, तीन शब्दियवाले जी बौद्ध, चार शब्दिय वाले
 जी बौद्ध, और कितने ही पांच शब्दियवाले भी बौद्धियाई माडी और (अक्षररहित माया भी)
 अक्षररूप अथवा मऊवमानके मऊवशब्दके कारण सर्वज्ञके विषयबुद्धिनिर्माणी है ॥
 तो यह (मायात्मक शब्द) मपस्त प्रायोगिक है अर्थात् पुरुषक मपलसे होता है ॥
 अत्रमायात्मक (शब्द) दो मकार है, प्रायोगिक अर्थात् पुरुषके निमित्तसे उपमाक
 और वैसूक्तिक (वैसूक्तिक) पुरुषके मपलकी अपेक्षारहित स्वभावसे उपपन्नेकाका ॥

तत्रान्त्यं परमाणूनाम् । आपेक्षिकं बिल्यामलकबदरादीनाम् ॥ स्थौल्यमपिद्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं चेति ॥ तत्रान्त्यं जगद्रव्यापिनि महास्कन्धे । आपेक्षिकं बदरामलकबिल्वतालादिषु ॥ संस्थानमाकृति । तद्विद्विविधं, इत्यंलक्षणमनित्यलक्षणं चेति ॥ वृत्तत्रयसूचतुस्रायत-

तत्र ० अन्त्यम् ॥ परमाणूनाम् ॥ आपेक्षिकम् ॥ ॥ विषय
 आमलक-बदर आदीनाम् ॥ ॥

=वां परमाणुओंकी (सूक्ष्मता) अन्त्य है । आपेक्षिक सूक्ष्मता बेल (विषय)
 =आमलके फलकी (=आमलक) और बरेआदिकी सूक्ष्मता है अर्थात् बेलके फलसे
 आमलके फल सूक्ष्म है और आमलके फलसे भरबरेके बरेआदि छोटे होते हैं
 =वां अन्तिम (सूक्ष्मता) जगत्में क्या होनेवाला वा सर्वलोकव्यापीयशास्त्रके प्रमर्
 =आपेक्षिक (सूक्ष्मता) बरे, आमलके फल, बेलफल और तालफलादिकमें है अर्थात्
 भरबरेके बरेकी अपेक्षा आमला सूक्ष्म होगी आमलसे बेल बड़ा होता है
 और बेलकी अपेक्षा तालफलादिक बड़े होते हैं ॥

अपेक्षिकम् ॥ बदर-आमलक-विषय-ताल आदिषु ॥

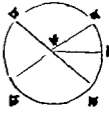
संस्थानम् ॥ आकृतिः ॥

तत्र ॥ द्विविधम् ॥ इत्यम् ॥ लक्षणम् ॥

अनित्यम् ॥ लक्षणम् ॥ अच ० इति ० ॥

वृष-अयस्, चतुस्र-आयक-

=संस्थान है सो आकृति अथवा आकार है अर्थात् अथयम रचनाविशय है ।
 =अइ (आकार, दोमकार है इत्यंलक्षण अर्थात् आकार निसकालक्षण कथनयोग्य है
 =और (अच) अनित्य लक्षण अर्थात् यह आकार निसकालक्षण कथनयोग्य नहीं
 =गोखना चतुस्र (वृष) विकोना (अयस्) चतुष्कोण (चतुरस्र) अर्थात्, जायायत
 अर्थात् समानान्तर चतुस्रुज निसके सबकोन समकोन हों किंतु सबमुज
 पराबर नहीं परंतु आमनेसामनेके भुज पराबर हों ॥



पराबर नहीं परंतु आमनेसामनेके भुज पराबर हों ॥

'वृष' यह नाम परातल ऐन है जो एक रेखासे मिलके परिधि खूब है फिर हो और ऐसा हो कि उसके ऊपर एक
 पिष्टेन विगुले परिधि तक मिलती रेखा ओंकी अर्ध यह सब आपसमें बराबर हो और इस विगुले उद्यपुष्टका समुद्र इति ॥
 वृत्त यह गोला ऐन है जिसकी अर्ध अ रेखा परिधि है वह ऐन है और जिसकी अर्ध अ रेखा अर्ध अ रेखा है
 आपसमें बराबर है ॥

वैसूक्तिको बलाहकादिप्रभव । प्रायोगिकश्चतुर्धा, ततविततघनसौषिरभेदात् ॥ तत्र चर्मतनननिमित्त
 पुष्परभेरीदुर्दुरादिप्रभवस्तत । तन्त्रीकृतवीणासुघोषादिसमुद्रवो वितत । तालघण्टालालनाद्यभिघा-
 तजो घन । वशशंखादिनिमित्त सौषिर ॥ बन्धो द्विविधो वैसूक्तिक प्रायोगिकश्च ॥ पुरुषप्रयोगानपेक्षो-
 वैसूक्तिक । तद्यथा-स्निग्धरूचत्वगुणनिमित्तो विद्युदुल्काजलधारानीन्द्रधनुशरादिविषय ॥ पुरुषप्रयोग-
 निमित्त प्रायोगिक, अजीवविषयो जीवाजीव विषयश्चेति द्विधाभिन्न । तत्राजीवविषयो जतुकाष्टादि-
 लक्षणः । जीवाजीवविषयः कर्मनोक्तर्मबन्ध ॥ सौक्ष्म्यं द्विविधं, अन्यमापेक्षिक च ॥

वैसूक्तिक (अभाषास्वरूपशब्द) असे मेघ (बलाहक) आदिसे उपजनेवाला ॥

प्रायोगिक (अभाषास्वरूपशब्द, शारमकार, तत्त-वितत-घन-सौषिर भेदसे है
 जहाँ बंधोंके तननेके कारण वा हेतुसे संजरी (=पुष्कर) सुदुग्धि-दोल-नगारा
 =दुर्दुर (एकप्रकारका) भासा आदिसे उत्पन्न होनेवाला शब्द मत है ।
 जीव विषया वाररचित यीन (=वीणा) सुयोग अर्थात् एकप्रकारका सितार
 =आदिसे उपमाक (शब्द) विकृत है ॥ ताल-व्यंटाका शिखाना (=खालन, आदिके
 =घोटसे उपनाख (=अभियातन) शब्द यन है । बंधुरीशत्व आदिहै कारण जिसको
 पुष्प मयाग-अनपेक्ष-वैसूक्तिकः च ॥ =ऐसा शब्द सौषिर है । बन्ध दो प्रकार है । वैसूक्तिक और प्रायोगिक
 स्निग्ध-रूचत्व-गुण-निमित्तः, विपुट उष्ण जलधार
 अग्नि-दग्ध-पुत्र आदि-विषयः, गुरुप्रयोगनिमित्तः
 प्रायोगिकः, अजीवविषयः, वंश-वीणा-विषयः, इति
 दिवा-विषयः, गुण-अजीवविषयः, तनु-काष्ठ-दि
 लक्षणः, जीव-अजीव विषय । कर्म-नोक्तर्म-बन्धः
 और-स्वप्नः ॥ विषयः ॥ अल्पः ॥ प्रायश्चित्तः ॥ ॥ ॥

वैसूक्तिक (अभाषास्वरूपशब्द) असे मेघ (बलाहक) आदिसे उपजनेवाला ॥
 प्रायोगिक (अभाषास्वरूपशब्द, शारमकार, तत्त-वितत-घन-सौषिर भेदसे है
 जहाँ बंधोंके तननेके कारण वा हेतुसे संजरी (=पुष्कर) सुदुग्धि-दोल-नगारा
 =दुर्दुर (एकप्रकारका) भासा आदिसे उत्पन्न होनेवाला शब्द मत है ।
 जीव विषया वाररचित यीन (=वीणा) सुयोग अर्थात् एकप्रकारका सितार
 =आदिसे उपमाक (शब्द) विकृत है ॥ ताल-व्यंटाका शिखाना (=खालन, आदिके
 =घोटसे उपनाख (=अभियातन) शब्द यन है । बंधुरीशत्व आदिहै कारण जिसको
 पुष्प मयाग-अनपेक्ष-वैसूक्तिकः च ॥ =ऐसा शब्द सौषिर है । बन्ध दो प्रकार है । वैसूक्तिक और प्रायोगिक
 स्निग्ध-रूचत्व-गुण-निमित्तः, विपुट उष्ण जलधार
 अग्नि-दग्ध-पुत्र आदि-विषयः, गुरुप्रयोगनिमित्तः
 प्रायोगिकः, अजीवविषयः, वंश-वीणा-विषयः, इति
 दिवा-विषयः, गुण-अजीवविषयः, तनु-काष्ठ-दि
 लक्षणः, जीव-अजीव विषय । कर्म-नोक्तर्म-बन्धः
 और-स्वप्नः ॥ विषयः ॥ अल्पः ॥ प्रायश्चित्तः ॥ ॥ ॥

वैसूक्तिक (अभाषास्वरूपशब्द) असे मेघ (बलाहक) आदिसे उपजनेवाला ॥

प्रायोगिक (अभाषास्वरूपशब्द, शारमकार, तत्त-वितत-घन-सौषिर भेदसे है

जहाँ बंधोंके तननेके कारण वा हेतुसे संजरी (=पुष्कर) सुदुग्धि-दोल-नगारा

=दुर्दुर (एकप्रकारका) भासा आदिसे उत्पन्न होनेवाला शब्द मत है ।

जीव विषया वाररचित यीन (=वीणा) सुयोग अर्थात् एकप्रकारका सितार

=आदिसे उपमाक (शब्द) विकृत है ॥ ताल-व्यंटाका शिखाना (=खालन, आदिके
 =घोटसे उपनाख (=अभियातन) शब्द यन है । बंधुरीशत्व आदिहै कारण जिसको
 पुष्प मयाग-अनपेक्ष-वैसूक्तिकः च ॥ =ऐसा शब्द सौषिर है । बन्ध दो प्रकार है । वैसूक्तिक और प्रायोगिक
 स्निग्ध-रूचत्व-गुण-निमित्तः, विपुट उष्ण जलधार
 अग्नि-दग्ध-पुत्र आदि-विषयः, गुरुप्रयोगनिमित्तः
 प्रायोगिकः, अजीवविषयः, वंश-वीणा-विषयः, इति
 दिवा-विषयः, गुण-अजीवविषयः, तनु-काष्ठ-दि
 लक्षणः, जीव-अजीव विषय । कर्म-नोक्तर्म-बन्धः
 और-स्वप्नः ॥ विषयः ॥ अल्पः ॥ प्रायश्चित्तः ॥ ॥ ॥

तत्रान्त्यं परमायूनाम् । आपांचिकं षड्वामलकवदरादीनाम् ॥ स्थौल्यमपिद्विविधं, अन्त्यमापंचिकं चेति ॥ तत्रान्त्यं जगद्व्यपिनि महास्कन्धे । आपंचिकं बदरामलकविल्वतालादिषु ॥ संस्थानमाकृति । तद्विद्विधं, इत्थंलक्षणमनित्यलक्षणं चेति ॥ वृत्तान्त्यसूचतुसूयत-

वृत्तं अन्त्यम् ॥ परमायूनाम् ॥ आपंचिकम् ॥ ॥ विष्व-
 आपंचिकं बदर-आदीनाम् ॥ ॥

=वर्षा परमायुर्भौकी (सूक्ष्मता) अन्त्य है । आपंचिक सूक्ष्मता बेल =विष्व
 =आमलके फलकी(=आमलक)और बरेआदिफलीसूक्ष्मता है अर्थात् बेलकेफलसे
 आमलकेफल सूक्ष्म है औरआमलकेफलसे भरबेरीके बरेआदि छोटे होतेहैं
 =वर्षा अन्तिक (सूक्ष्मता,जगतमें भ्यात होनेवाला वा सर्वलोक्यपिमाहास्कन्धमें है
 =आपंचिक(सूक्ष्मता)बेर, आमकेफल,बेलफल और तालफलादिकमें है अर्थात्
 भरबेरीकेबेरकी अपेक्षा आमलका सूक्ष्म होता है आमलकेसे बेल बड़ा होताहै
 और बेलकी अपेक्षा तालफलादिक बड़े होते हैं ॥

=संस्थान है सो आकृति अथवा आकार है अर्थात् अक्षय्य रचनाविशय है ।
 =वह(आकार,दीपकार है इत्यलक्षण अर्थात् आकार जिसकालखण्डकयनयोग्य है
 =और(=ब) अन्तिकं लक्षणअर्थात् वहआकारजिसकालखण्ड कयनयोग्य नहीं है
 =जोबला बहुत (व्युत्प) विकोना(=व्युत्प) षट्कोण(षट्तरसू) आयत, जार्यायत
 अर्थात् समानान्तर षट्पुंज नित्यके सबकोन समकोन हैं किंतु सबपुंज
 बराबर नहीं परंतु आपनसामनेके पुंज बराबर हैं ॥

सौम्यम् ॥ अपिद्वि-विषम् ॥ अन्त्यम् ॥ आपंचिकम् ॥ आपंचिकम् ॥
 तत्र अन्त्यम् ॥ जगद्व्यपिनि महास्कन्धे ॥
 आपंचिकम् ॥ बदर-आमलक-विष्व-ताल-आदिषु ॥

संस्थानम् ॥ आकृतिः ॥
 वत् ॥ द्विविधम् ॥ इत्यम् ॥ षड्खण्डम् ॥
 अनित्यम् ॥ षड्खण्डम् ॥ च इति ॥
 वृत्त-अन्त्यम्, षट्पुंज-आयत-



'वृत्त' बह मय घरातक छेत्त है जो एक रेखासे जिसको परिधि कहते हैं मिरा हो और ऐसा हो कि इसके आकर एक
 विशेष विषुसे परिधि एक कितनी रेखा कीनी जाय वह सब आपसमें बराबर हो और इस विषुको बसवृत्तका केन्द्रकहतेहैं
 पुंज यह जोन छेत्त है जिसकी मय ब ब रेखा परिधि है 'क' केन्द्र है और जिसकी कत्र, कक कक क ग और कक सब रेखायें
 बराबर हैं ॥

प्रतिविम्बमात्रात्मिका चेति ॥ आतप आदित्यादिनिमित्तः उष्णप्रकाशालङ्कारः ॥ उद्योतश्चन्द्रमणि-
 खयोतादिप्रभवः प्रकाशः ॥ त एते शब्दादय पुद्गलद्रव्यविकारास्त एषा सन्तीति शब्दबन्धसौच्य-
 स्थौल्यसंस्थानभेदतमश्चायाऽस्तपोद्योतवन्त पुद्गला इत्यभिसम्बध्यते ॥ च शब्देन नोदनाभिघाता-
 दय पुद्गलपरिणामा भागमे प्रसिद्धा समुच्च्रीयन्ते ॥ उक्तानां पुद्गलाना भेदप्रदर्शनार्थमाह—

प्रतिविम्बमात्र-आत्मिकाः ॥ च ० इति ० ।

उष्ण प्रकाश-अणुणां भावपदं

आदित्य-आदि-निमित्तानां

उद्योतानां चन्द्रमणि

सपोत-आदि नमपदप्रकाशानां । तेषां एते शब्दादयः ।

पुद्गलद्रव्य विकाराणां तेषां

एषामात्मिनि ० इति ० शब्द-बन्ध-सौच्य-स्थौल्य

संस्थान भेद-व्यप-क्षया-आताप-उद्योतवन्तानां

पुद्गलानां प्रति ० अभिसम्बध्यते ॥ च-शब्देन ।

नोदनाभिघात-आदयानां पुद्गल परिणामानां

भागमे प्रसिद्धानां समुच्च्रीयन्ते ॥

उक्तानामां पुद्गलानामां भेद-प्रदर्शन-अर्थमाह ॥ आतप

चौर (च प्रतिविम्बस्वरूप शी-आद्य)

चाण (उष्ण-सवस्तु रूप है स्वभावा-उष्ण) निसका ऐसा प्रकाश वा उजाला है सो आतप है

उष्ण आतप सूर्य, अग्नि, इत्यादिके निमित्तसे उत्पन्न होता है जैसे घृण, घाम, लो सरित

आदि का प्रकाश

उदंटा (शील्ल) प्रकाश वा उजाला सो उद्योत है यह चन्द्रमणि

उद्योत (पदबीचना) आदिकसे व्यपनेवाला प्रकाश है । ये इतने शब्दादिक

पुद्गलद्रव्यके विकार, पर्याय, परिणाम वा परिणत है । ये (शब्दादिक)

नमित्तके (विषयमान) हैं ऐसे शब्द-बन्धान-सूक्ष्मता-सूक्ष्मतावाले

आकार, भेद, अन्यकार, क्षया, तप्तउजाला, शील्ल प्रकाश

पुद्गल है ऐसा सम्बन्ध किया जाता है (इस सूत्रमें) शब्दाकार

नरेया (नोदना) अभिघात (मारना) आदिक पुद्गलद्रव्यके विकार वा पर्याय

(आपरिणाम) आत्मिनि विख्यात वा व्यक्त है इकट्ठे जाये गये हैं अर्थात् प्रकृत किये गये हैं ॥

उक्तानामां पुद्गलानामां भेद दिखाने के लिये उचर सूत्रमें) कहते हैं कि

पुद्गल उचरना द्वारा विषयका धारण है जो प्रेरण आर्षमे (= प्रेरण) जाता है । (मन्त्र) यदि स्वर्ण रसादि तथा शब्दबन्धादि पुद्गलोद्दीर्घमे होते हैं तो

एतदधिक तथा शब्दादिकके किये पुष्पक २ दो पुष्प क्यो किये । अर्थात् स्वर्ण रस गन्ध इत्यादि (२३) तथा शब्द-बन्ध इत्यादि (२४) दो पुष्प क्यो किये

एकही सूत्रसे कार्य चलता (उचर) स्वर्ण रस आदि जो हैं वे पत्तालुओंमें तथा रसक्योंमें स्वभावसे ही बात है और शब्द-बन्ध-आदि तो रसक्योंहीमें

होते हैं और इनके निमित्तोंसे होते हैं व कि केवल परिणाम बन्ध इसलिये पुष्पक सूत्र किये गये हैं ।

परिमण्डलादीनामित्यलक्षणम् । ततोऽयन्मेघादीना संस्थानमनेकविधमित्यभिदिमिति निरूपणा-
 भावादनित्यलक्षणम् ॥ मेघा घोडा, उत्करचूर्णखण्डचूर्णिकाप्रतराणुचटनविकल्पात् ॥ तत्रोत्कर
 काष्ठादीना करपत्रादिभिरुत्करणम् । चूर्णो यवगोधूमादीना सक्तुकणिकादि । खण्डोघटादीना क-
 पालशर्करादि । चूर्णिका माषमुद्गादीना । प्रतरोऽप्रपटलादीनाम् । अणुचटनं सन्तप्ताय पिएडा-
 दिषु अयोधनादिभिरभिहन्यमानेषु स्फुलिङ्गनिर्गम ॥ तमो दृष्टिप्रतिबधकारणं प्रकाशविरोधि ॥ ज्ञाया
 प्रकाशावरणनिमित्ता । सा हेधा, वर्णाद्विकारपरिणता

परिस्पष्ट-आदीनाम् । इत्यलक्षणम् ॥ । इयम् ॥ इयम् ॥ इति ॥ = चारोभोर गोखमादिकके इत्यलक्षण(संस्थान) हे ऐसे यह इयम् हे
 त्त ॥ अल्पद्वेषे आदीनाम् । संस्थानम् ॥ अनेकविषयम् ॥ = तिस (इत्यलक्षणसंस्थान)से अन्यथावल आदिकका आकार बहुत्मकाररे ।
 निकल्प भाषयम् ।
 अनित्यलक्षणम् ॥ । मेघादीपोडावटकर-वृत्तं
 तपर-वृत्तिका मतर मणुपटन-विकल्पात् ॥ ॥
 तत् उत्कर-ध्याव आदीनाम् । करपत्र-आदिभिर्भू-
 रत्करणम् ॥ । चूर्णम् । यव गौष्य आदीनाम् ।
 मसु इतिस्मदिने । तपर-मेघादीनाम् । कपाल शर्करादिम् ।
 वृत्तिकादीनाम् मृत्-आदीनाम् । प्रतरोऽप्र-
 पट आदीनाम् । मणुपटनम् । तपवत् अपस्
 परिस्पष्टम् अपस्-पन आदिभिर्भूमिभिरन्यमानेषु ।
 इति-निर्गमम् । तम् ॥ इति प्रतिबन्धकारणम् ॥
 मकाश-विरादिम् । ज्ञाया प्रकाश आवरणनिमित्तम् ॥
 मा-मेघा-वर्ण-आदि-विकार-परिणताम् ॥
 =सो परिपाणु अथवा कयनक्रियेज्जनेके अभावसे
 =अनित्यं लक्षण(संस्थान)हे । मेघ छ प्रकार (=योष)अर्थात् उत्कर-वृत्त-
 =स्पष्ट-वृत्तिका मतर अणुचटन विकल्पसे हे
 =तथा उत्कर मेघ कावाविका मारा (=करपत्र-रूपच) व्यादिकसे
 =विदारण हे । चूर्णं जौ गौ(=गौष्य) आदिकोंका
 =सतुआ आया वा जून आदिक हे त्वं पदादिकोंके दुष्का रोडादिक हे ।
 =वृत्तिका वरव (माष) मृग (=मृग) आदिकी दाल हे । मतर अन्नके
 =वृत्तिकादीना (उपाटना) हे । अणुचटन वा अनुतर अतिगरमखोरेके
 =पिदादिक विषे खोरेके पनादिकरि पोटेनेपर वा पीटनेपर
 =दुखिगोष्ठ निर्गमन, उखलनावानिच्छनादि । तमअन्धकार दृष्टिकारोकेनाका
 =वजावेका विलोम वा प्रतिच्छल हे । ज्ञाया ज्ञानोके इकनेकाकारण हे ।
 =वह ज्ञाया दो प्रकार हे एणादि विकार परिणत अथवा मसु वृत्त परिणत
 (=ज्याव कीचिरे दुष्के) कणादिकका परिणमन दीप्त्वा

संघातानां द्वितयनिमित्तवशाद्द्विद्वारणं भेद । पृथग्भूतानामेकत्वापसि सघात ॥ ननु च द्वित्वाद्द्विद्वचनेन भवितव्यम् ॥ बहुवचननिर्देशस्तृतीयसंग्रहार्थ । भेदात्संघाताद्भेदसंघाताभ्यां च उत्पद्यन्ते इति ॥ तद्यथा—द्वयो परमाणवो सघाताद्द्विप्रदेश स्कन्ध उत्पद्यते । द्विप्रदेशस्याणोश्च त्रयाणां वा अणूनां सघातात्त्रिप्रदेश । द्वयोर्द्विप्रदेशयोस्त्रिप्रदेशस्याणोश्चतुर्णां वा अणूनां सघाताच्चतु प्रदेश

तथा ऐसेही किसी स्कन्धक भेद होनेसे अथवा विद्वारे जानेस और वसी सपर्यमें अन्य स्कूपोंक संघातके जुड़नेसे स्कन्धोंकी वत्तपि होती है =सघातोंक दोनों (बाप और अम्यन्तर)निमित्तोंके बलसे =द्वेना(यारा न्यारावाभिन्न २ होना)ई सो भेद है । न्यारीन्यारी श्रव्योंके एकूपनानी =आप्ति है सो सघात है । पुनि मरन द्वित्यसे अर्थात् भेदपना और संघातपना के निमित्तोंस (इस सुप्रमे)

=दो बचन युक्त भेदसघाताभ्याम् ऐसा न कि बहुबचन भेद सघातम्य ऐसा) =दोना वार्थिप । (उपर इससपर्यमें) बहुबचनका निरूपण वा वर्णन =वीसर(भेदसंघाताभ्याम्)क समुच्चय के लिये है । (पुरुषोंके स्कन्ध) विद्युत्तसे =मिलने(जुड़ने)से और(=च) मिलने विद्युत्त (दोनो)स =मत्स्र होते हैं(अथारभेदसघातम्य)ऐसा बहुबचन है । जैसेकि दो परमाणुओंके =जुड़नेसे दो प्रदेशबाबा स्कन्ध उपपत्ता है । दो प्रदेशबाळ (स्कन्ध)कें और(=च) =अणुके (=अणु)के(संघातसे) अथवा तीन(सुखीदुरै)परमाणुके मिलनेसे(=सघातात्) =तीन प्रदेशबाळा(स्कन्ध)उपपत्ता है । दो दो प्रदेशबाळ दो (स्कन्धों)क (सघातसे), =तीन प्रदेशबाळ(स्कन्ध) के और अणुके संघातस, अथवा चार (सुखीदुरै) =परमाणुओंके संघातसे चार प्रदेशी(स्कन्ध)उत्पत्ता होता है

युष्पनुपादः—सघातानाम् । द्वितयनिमित्तवशात् ।
विदारणम् । भेदार्थः । पृथग्भूतानाम् । एकत्व
आपत्तिः । सहातः । ननु एकवद्वित्वात् ।

द्विसंघनेनै ।
परितोष्यम् । । बहुबचननिर्देशः ।
वृत्तीय-सम्राह अर्थः । भेदात् ।
सघातात् । भेद-सघातात् । ५०
उत्पद्यन्ताश्चिद्वचनानाम् । परमाणवोः ।
सघातात् । द्विप्रदेशः । स्कन्ध । उत्पद्यते । द्विप्रदेशः । ५०
अणुः । परमाणुम् । का । अणुनाम् । संघातात् ।
विप्रदेशः । द्वयोः । द्वि प्रदेशोः ।
वि प्रदेशः । अणुः । परमाणुम् । का ।
अणुनाम् । संघातात् । वतुः प्रदेशः ।

शब्दबन्धसौच्यस्थूल्यसस्थानभेदतमश्चायातपो द्योतवन्तश्च स्पर्शादिमन्तश्चेति ॥ आह किमेया
 पुद्गलानामणुस्कन्धलक्षण परिणामोऽनादिरुत आदिमानित्युच्यते । स खलूत्पत्तिमत्त्वादादिमानप्रति-
 ज्ञायते ॥ यथेवं तस्माद्भिधीयता कस्मान्निमित्तादुत्पद्यन्त इति ॥ तत्र स्कन्धाना तावदुत्पत्तिहेतु-
 प्रतिपादनार्थमुच्यते—

॥ भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

उत्पद्यन्तः सौख्यस्वीन्यसंस्थानभेदे । तसंस्थाना-आत्म-
 उपोत्पन्नः । व ० स्पर्श-आदिमन्तः । व ० इति ॥
 आत्मा किम् ० एषाम् । पुद्गलानाम् । आयुस्क पञ्चलक्षणः ।
 परिणामः । अनादिः । उत ० आदिमानः । इति ० उत्पद्यते ।
 मः । गतु ० उत्पत्तिमत्त्वात् । आदिमानः । प्रविश्यायवेत् ।
 गति ० एतत् ० तस्मात् । अभिधीयताम् । कर्मात् ।
 निमित्तात् । उत्पत्त्यन्तरिति । यत्र ० संकथानाम् । तावत् ०
 उपपत्ति-इतिपादन अर्थम् । उत्पद्यते ।

॥ (१) भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥
 = पुद्गलाना स्कधा भेदात्-संघातात् भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

मूर्ध्या - पुद्गलानाम् । संकथाः । भेदात् । संघातात् ।
 भेद-संघाताभ्याम् । व ० उत्पद्यते ।

व्युत्पद्य, व, व, सूच्यता, स्थूलता, आकार, लंब, अपकार, क्षीर, तप्त, मकाश
 = और (=च) श्रितिल मकाश संयुक्त हैं । (और) स्पर्श रस गव-शब्दान् भी (व) है
 = शिष्य पूछता है कि क्या इन पुद्गलोंके अणुस्वरूप वास्तविक
 = प्रकार अनादि है अथवा (=उत्) आदिमान है (उपरमें ऐसा कहाजाता है कि
 = यह, परिणाम) निमित्तसे उत्पत्तिमान होनेसे आदिमान कहागया है
 = जो ऐसा है अर्थात् आदिमान है तो (=वत्) आदिमान करारमाना चाहिये कि किस
 = निमित्तसे वा किस कारणसे उत्पन्न होते हैं । तहां मयम (=तावत्) स्कंधोंकी
 = उत्पत्तिका कारण करनेके लिये (उपर सूत्रमें) कहाजाता है कि

= पुद्गलोंके रूप भेदसे और संघातसे

= और (एकरी कालमें) भेद संघात (दोनोंसे) उत्पन्न होते हैं अर्थात् (१) वाक्य या
 अभ्यन्तरिक निमित्तसे स्कंधोंके टूट जानेसे दो परमाणुओं तकके अनेक रूप
 उत्पन्न होते हैं (२) और वाक्य या अभ्यन्तरिक कारणसे अथ अथ स्कंधोंके संघातसे भी रूप होते हैं

(1) स्तेतावत् आत्मावत्के सामान्यतावाचिभयमनुवने "संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते" इत्या पाठ अणुस्वरूपमुत्पत्तिहेतुत्वात् ।

एव सर्व्येयासख्येयानन्तानामनन्तानन्ताना च सघातात्तावत्प्रदेशा । एषामेव भेदात्तावद्द्विप्रदेश-
पर्यन्ता स्कन्धा उत्पद्यन्ते ॥ एवं भेदसघाताभ्यामेकसामयिकाभ्या द्विप्रदेशादय स्कन्धाउत्पद्यन्ते ।
अन्यतो भेदेनान्यस्य सघातेनेति ॥ एवं स्कन्धानामुत्पत्तिहेतुरुक्त ॥ अणोरुत्पत्तिहेतुप्रदर्शनार्थमाह—

॥ भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥

पृष्ठ ७३ मध्येय अस म्येय-अनन्तानाम् ॥ १ ॥ घञ्=इसकार स स्यात् असंस्यात्-अनन्त-और(=च) अनन्तानन्तके

=स घावसे उतने प्रदेशवाले स्कन्ध(उपगतरे)इन(स्कन्धों)के ही विद्यारणसे

=तावत्-‘वाच्यके मूफके खिये है’ ओ प्रदेशीकक स्कन्ध उपगते हैं अर्थात् अन्य

पहुत प्रदेशवाले स्कन्ध यदि विद्वांर जाये तो वे स्कन्ध टूट टूटकर छोटेसे छोटे

स्कन्धों प्रदेश तकक होसकते हैं । इससे छोटा स्कन्ध नहीं हासकता है

=इस प्रकार एक समयकरि:=सामयिकभेद सघात दोनोंसे

=दो प्रदेशादिक वाले स्कन्ध उत्पन्न होते हैं अर्थात् किसी स्कन्धका विद्यारण

हो और वही समय में किसी दूसरे स्कन्धसे उसका संघात होगो इसमकारभेद

सघात दोनों से एक ही समय में स्कन्ध उपगते हैं

=अन्यसे भेदकरि (और) अणका सघात करि (ये स्कन्ध उत्पन्न होते हैं)

अर्थात् य भेद सघात (दोनों) सेएक ही समयमें उत्पन्न होनेवाले स्कन्ध इस

मकार होते हैं कि किसीएक स्कन्धकी जिस समय टूटन हुई वही समय किसी

दूसरेस्कन्धक साथ उसका जुड़नाशरतो करेगैकि अणुस्कन्धभेद सघातसेउपजाई

=इस प्रकार स्कन्धोंकी उत्पत्तिका कारण करा गया

अणु की उत्पत्तिका कारण दिखानेके खिये (आधार्य उचर सूत्रमें) करते हैं कि

= भेदात् अणु (उत्पद्यते) ॥ २७ ॥

पृष्ठ ७३ मध्येय अस म्येय-अनन्तानाम् ॥ १ ॥ घञ्=इसकार स स्यात् असंस्यात्-अनन्त-और(=च) अनन्तानन्तके

व पाठाद्गुणः ॥ २७ ॥ एषाम् ॥ एवञ्च भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥ एषाम् ॥ एवञ्च भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥

पृष्ठ ७३ मध्येय अस म्येय-अनन्तानाम् ॥ १ ॥ घञ्=इसकार स स्यात् असंस्यात्-अनन्त-और(=च) अनन्तानन्तके

व पाठाद्गुणः ॥ २७ ॥ एषाम् ॥ एवञ्च भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥ एषाम् ॥ एवञ्च भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥

पृष्ठ ७३ मध्येय अस म्येय-अनन्तानाम् ॥ १ ॥ घञ्=इसकार स स्यात् असंस्यात्-अनन्त-और(=च) अनन्तानन्तके

व पाठाद्गुणः ॥ २७ ॥ एषाम् ॥ एवञ्च भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥ एषाम् ॥ एवञ्च भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥

अन्य • मदन • अनस्य • संघात • इति • ॥

पृष्ठ ७३ मध्येय अस म्येय-अनन्तानाम् ॥ १ ॥ घञ्=इसकार स स्यात् असंस्यात्-अनन्त-और(=च) अनन्तानन्तके

व पाठाद्गुणः ॥ २७ ॥ एषाम् ॥ एवञ्च भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥ एषाम् ॥ एवञ्च भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥

सूत्रम्-भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥

(1) एषाम् ॥ एवञ्च भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥ एषाम् ॥ एवञ्च भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥ एषाम् ॥ एवञ्च भेदाद्गुणः ॥ २७ ॥

सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थो भवति। अणोरूपत्तिर्भेदादेव, न सघातान्नापि भेदसंघाताभ्यामिति ॥
 आह संघातादेव स्फुधानामाललाभे सिद्धे भेदग्रहणमनर्थकमिति ॥ तद्ग्रहणप्रयोजनप्रति-
 पादनार्थमिदमुच्यते—

सूत्रार्थः—भेदात् १। अणुः २। उत्पद्यते ३

वृत्त्यनुवादः—सिद्धः १। विधिः २। आरभ्यमाणः ३। नियम-अर्थः ४।=सिद्ध होनेपर अर्थात् सिद्ध होनेके पश्चात् विधि सूत्रका नाम्म नियमके लिये
 भवति ३

=बोता है वह नियमके लिये होता है और उसको नियम सूत्र(सोपानंपद सूत्र) कहते हैं जैसे पयीसर्वा सूत्रमें कहा
 है कि पुद्गलके अणु और स्कंप दो भेद होते हैं और ध्वनीसर्वा सूत्रमें करते हैं कि (१)भेदसे (२) सघातसे और (३)
 भेद संघात दोनोंसे स्कंप उत्पन्न होते हैं यह विधि सूत्र अथवा एक बातको साधारण वर्णन करनेवाला सूत्र है,
 पयीसर्वा सूत्रसे इस २६वां सूत्रमें अणुवः स्कंधाः दोनोकी अनुपुष्टियां यदि खीनावै तो यह अर्थ होगा कि अणु
 और स्कंप (१) भेदसे (२) सघातसे और (३) एकही समयमें भेद संघात दोनोसेही उत्पन्न होते हैं, यथार्थमें यह
 अर्थ है नहीं इसलिये ऊपरके अर्थको नियमित या रोकनेके लिये पूर्वोक्त विधि सूत्र २६वां के पश्चात्ही दूसरा विधि सूत्र
 अर्थात् २७वां सूत्र कि अणु भेदसेही उत्पद्यते १। (नकि संघातसे और भेद संघात दोनोसे उत्पद्यते १) दिया है ॥

अणोर्नोत्पत्तिर्भेदोत्पत्तिर्भवति १। अणुः २। संघातात् ३। अणुः ४।

भेदसंघाताभ्याम् ३। इति ४। आह १। संघातात् २। एव ३।

स्कंधानाम् ३। आत्म-ज्ञानम् ३। सिद्धः ३। भेदग्रहणम् ३।

अनर्थकम् ३। इति ४।

वद-ग्रहण मयोजन प्रतिपादन अर्थम् ३।

इदम् ३। उत्पद्यते ३

=भेद से अणु उत्पन्न होता है अर्थात् अणु किसी वस्तुके स्फट से उत्पन्नता है
 न कि किसी वस्तु के जुड़ने अथवा मिलने से ॥

=बोता है अर्थात् जो पहले विधि सूत्रसे अर्थ सिद्ध होनेपर फिर विधि सूत्र
 कहा जाता है और उसको नियम सूत्र(सोपानंपद सूत्र) कहते हैं जैसे पयीसर्वा सूत्रमें कहा
 है कि पुद्गलके अणु और स्कंप दो भेद होते हैं और ध्वनीसर्वा सूत्रमें करते हैं कि (१)भेदसे (२) सघातसे और (३)
 भेद संघात दोनोंसे स्कंप उत्पन्न होते हैं यह विधि सूत्र अथवा एक बातको साधारण वर्णन करनेवाला सूत्र है,
 पयीसर्वा सूत्रसे इस २६वां सूत्रमें अणुवः स्कंधाः दोनोकी अनुपुष्टियां यदि खीनावै तो यह अर्थ होगा कि अणु
 और स्कंप (१) भेदसे (२) सघातसे और (३) एकही समयमें भेद संघात दोनोसेही उत्पन्न होते हैं, यथार्थमें यह
 अर्थ है नहीं इसलिये ऊपरके अर्थको नियमित या रोकनेके लिये पूर्वोक्त विधि सूत्र २६वां के पश्चात्ही दूसरा विधि सूत्र
 अर्थात् २७वां सूत्र कि अणु भेदसेही उत्पद्यते १। (नकि संघातसे और भेद संघात दोनोसे उत्पद्यते १) दिया है ॥

=अणुकी उत्पत्ति भेदसेही है नकि संघातसे भी ॥

=(और नकि एकसमयमें)भेदसंघात दोनोसे(होती है)(विश्व)शकं करताहैकि संघातसेही

=स्कंधोंके स्वरूप ज्ञान सिद्ध होने पर(संघातक साथ) भेदको ग्रहण करना

=नियमयोजन है अर्थात् संघातसे स्कंप उत्पन्न होते हैं फिर भेद संघातसे उत्पत्ति

करना निरर्थक है

=इस संघातके साथ भेद(शब्द)के ज्ञानके मयोजन करनेके लिये

भ्यः(अग्निम सूत्र)क्यागता है कि

॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अनन्तान तपरमाणुममुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुष कश्चिदचाक्षुष ॥ तत्र योऽचाक्षुष

सूत्रम्-भेदसंघाताभ्यां चाक्षुष (१) ॥ २८ ॥ = भेदसंघाताभ्यामचाक्षुष (स्कन्ध उत्पद्यते) ॥ २८ ॥

प्राथम्य — परसंघाताभ्याम् १। चाक्षुष १। स्कन्ध १। उत्पद्यते ८=वेद संघात(दोनो)सेही नेत्र इन्द्रियगोचर स्कन्ध उत्पन्न होता है(भेदसे नहीं होता) अर्थात् जो सूक्ष्म परिणामनक्षप स्कन्ध है उसका भेद अथवा संघ होनेपर जो सूक्ष्म परिणामको नहीं छांटता ई इससे वह नेत्र इन्द्रियसे अगोचर है परन्तु जब वह सूक्ष्म परिणाम(=भेद) रूप क्रिया हुआ स्कन्ध अथ स्कन्धमें संघातरूप होकर मिले तब सूक्ष्मपणाके परिणामको छोड़कर स्थूलपणाको प्राप्त होकर नेत्र इन्द्रिय प्राय होता है इसलिये करते हैं कि भेद संघात दोनोंसं नकि केवल भेदसे नेत्र इन्द्रियगोचर स्कन्ध पैदा होता है पुरानुवादः—अन तानन्त-परमाणु-मुदय-निष्पाय १-अपि १-अन तानन्त परमाणुके समूहकर उत्पन्न होने योग्य(स्कन्ध)में यी चयित् ० चाक्षुष १। कश्चि ० अचाक्षुष १। न ० य १। अचाक्षुष १।

=कोई एक (स्कन्ध)नेत्र इन्द्रियकरि प्राप्त है, कोई एक नेत्र इन्द्रियकरि ग्रहण योग्य नहीं है

=वहाँ जो स्कन्ध नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य नहीं (अचाक्षुष) है

(१) नेत्र इन्द्रियगोचर ० नेत्र इन्द्रियस प्रत्यक्षहोनेवासा नेत्र इन्द्रियक प्रकाश योग्य (२) विगम्बर आत्मापकी वस्तुतत्वी मुद्रकपथमकी कल्पने तथा इत्यन्तिकिज वई नजियोसे यह मत्र एवोकि लेखअनुसार है परन्तु प्रवेताम्बर सम्यदायके समाप्यत्सर्वाधिगतसूत्रमें तन्नाभीविद्यसेसत्सुरि शक्तिता मापणानुगारि) तन्नाभ्यंटी काक वृत्त ४०६ पर यह सूत्र इस प्रकार है कि 'नेत्रसंघाताभ्यां चाक्षुषा ॥ अर्थात् चाक्षुषा यदुक्तवन् चाक्षुष (नेत्र इन्द्रियगोचर) वा है वाच्यः ॥ अत्र ई वाच्यता और सूत्रतायां वद जान परती है कि स्कन्धाः शब्दको अनुवृत्ति पञ्चोसर्वा सूत्रसे कोर उपपन्न शब्दकी अनुवृत्ति इत्येवम् ११ यत्रसे नेत्र इन्द्रियगोचरसे नैकाताती विना कियेद्वय 'भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषा स्कन्धाः उपपन्ने' मय अनुवृत्तियोकसूत्र हीजाता है। तन्मै यह वही कि एक अक्षरके उपरान्त हीय हाजाताहै अर्थात् 'भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः' हाजाता है अनुवृत्ति स्कन्धाके स्थानमें स्कन्धाः की मादती पड़ने) है कोर एवो प्रकाश उपपन्नक स्थानमें उपपन्नकी। अर्थात् इसप्रकार समाप्यत्सर्वाधिगतसूत्रमें किया है कि भेद-संघाताभ्यां, चाक्षुषाः १। स्कन्धाः १।

० भेद-संघात (घानो), स ही नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष प्राप्त कियेवाले स्कन्ध

० अक्षुष होने है कोर (० तु) आदित्र इन्द्रियगोचर नहीं है य जे कि (कुन्धीसर्वाक्षुषमें कदापया है कि) उपपन्ना १। भेदसंघात १। अचाक्षुष १।

० अचाक्षुष १। अचाक्षुष १। अचाक्षुष १।

स कथं चानुपो भवतीति चेदुच्यते । भेदसघाताभ्या चानुष । न भेदादिति ॥ का तत्रोपपत्तिरिति चेत्-त्रुम् । सूक्ष्मपरिणामस्य स्वरूथस्य भेदे सौक्ष्म्यापरित्यागाद् चानुषत्वमेव । सौक्ष्म्यपरिणतः पुनरपर सत्यपि तद्भेदेन्यसघातान्तरसयोगात्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चानुषो भवति ॥ आह धर्मादीना द्रव्याणां विशेषलक्षणान्युत्पत्तिः सामान्यलक्षणं नोक्तं, तद्वक्तव्यम् ॥ उच्यते—

॥ सदृद्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

सः) इयम् चानुपरी पवति । इति चेत उच्यते ॥
 यदसंघाताभ्याम् । चानुपरी न च भेदात् इति ॥
 का) तत्र च उपपत्तिः । इति चेत उच्यते ॥
 सूक्ष्मपरिणामस्य स्वरूपस्य भेदे । सौक्ष्म्यपरिणामात् । चानुपरी न च भेदात् इति ॥
 सौक्ष्म्यपरिणतः पुनरपर सत्यपि तद्भेदेन्यसघातान्तरसयोगात्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चानुषो भवति ॥
 अथ संघात-अन्तर-संयोगात् । सौक्ष्म्यपरिणाम-उपरमे । स्यौल्य-उत्पत्तौ । चानुपरी पवति ॥
 आशुपमादीनां द्रव्याणां विशेष-लक्षणानि । चकानि ॥
 सामान्य-लक्षणम् । च उच्यते । चकानि ॥
 सदृद्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

सूक्ष्म-सत् । द्रव्य-लक्षणम् । पवति ॥

इतिनाम्नरसान्नाकं समारणप्रकार्यं धियमसूत्रं तथा माष्यनुवारिको तस्मात् हीनामं यद् सूत्रं गहो है अर्थात् इतका सूत्र गहो माषा है वार्तिक और पुष्टि रूपमें दिया है ॥

एतद्विधाती आरुपसहाय कर्त्तव्यताय तद्व्येदं और विषयस्यसहित सक्तोभित्ति का शब्दः। विन्धीभुत्वाद् अर्थात् ३ सूत्र २८, २९

स कर्त्तव्यं चानुयो भवतीति चेदुच्यते । भेदसघाताभ्यां चानुष । न भेदादिति ॥ का तत्रोपपत्तिरिति चेत्तन्म । सूक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौक्ष्म्यापरित्यागाद्चानुषत्वमेव । सौक्ष्म्यपरिणत पुनरपर सत्यपि तद्वेदेन्यसघातान्तरसयोगत्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चानुषो भवति ॥ आह धर्मादीना द्रव्याणा विशेषलक्षणान्युत्तानि, सामान्यलक्षणं नोक्तं, तद्वचक्यम् ॥ उच्यते—

॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

यत्प्रकृत्युपासुपभेदविविक्तवैतद्व्यपेक्षितम् ।
मदसंघाताभ्याम् । चासुपभेदमेवावैद्विक्त
कार्त्तव्यत्वं च उपपत्तिः । प्रतिशब्दोत्पत्तयाम् ।
सूक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे । सौक्ष्म्य
प्रतिस्थापनात् । अथासुपलक्षणम् ॥ एवम् ।
सौक्ष्म्यपरिणतत्वं पुनरपरत्वं । अपि शब्द-भेदे ।
अथ सघात-अन्तर-संयोगात् । सौक्ष्म्य
परिणाम उपपत्तेः सौक्ष्म्य-उत्पत्तौ । पासुपभेदविविक्तम् ॥
आरूप्यादीनां द्रव्याणां विशेष-लक्षणानि । चकार्त्तव्यम् ।
सामान्य-लक्षणम् । न च उक्तम् । शब्द-वचक्यम् । उच्यते

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

सुभाषः-सद्वै । द्रव्य-लक्षणम् ॥ भवति ।

=सो कसे नेत्र इन्द्रियगोचर होता है । ऐसी शंका होनेपर कहाजाता है कि
=भेदसंघात दोनों, से नेत्र इन्द्रियगोचर (स्कन्ध) प्रोता है न वेध वा संदसे केवल ।
=व्योक्त वही चानुषस्कन्धकी उत्पत्ति है ऐसा सर्वेद है (उपरमे) इय कहते हैं कि
=सूक्ष्म परिणामरूप स्कन्धके भेद वा संद होनेपर सूक्ष्मताके
=न छोड़नेके कारणसे नेत्र इन्द्रियके अगोचर ही रहता है ।
=बहुतरि दोरे एक (=अपर) सूक्ष्मता रूप परिणामा (स्कन्ध) प्रोत्सत् (स्कन्ध) के भेद होनेपर
=अन्या स्कन्ध का संघात विशेषके अन्तर, विधानसे सूक्ष्मताके
=परिणामको छोड़नेपर और (=च, स्थूलताके उत्पत्ति होनेपर नेत्र इन्द्रियगोचर होता है
=शिष्य पूजता है कि कर्मादिक द्रव्योंके विशेष लक्षण करेगये
=सामान्य लक्षण नही कहागया, उस सामान्य लक्षणको कहना चाहिये-कहाजाता है कि
= सत्-द्रव्य-लक्षणम् (भवति) ॥ २९ ॥

=द्रव्यका लक्षण सत् है वही द्रव्य है अथवा जो स्वरूप है वही द्रव्य है

इतिपरिणामात्वे समाप्त्यर्थेधिगमसूत्रं तथा सामानुवारिबी उत्सार्थं टीकांमे यद् सूत्रं गहो हे अर्थात् इसको सूत्र गहो भाग्य हे वार्तिक और वृत्ति कर्त्तव्य दिया है ३

तथा पूर्वभावविगमनं व्यय । यथा घटोत्पत्तौ पिएडाकृते ॥ अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदया-
भावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुव ।

नाश होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद जानना
=वैसेही (=जवा)परिष्ठी अत्रस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुच्छद होना अथवा

अभाव होना सो व्यय है

व्ययकथं उत्पादोत्पत्तिः॥ अनादि

पाणिणादि-स्वभावः॥ १) व्यय-उदय अथावात् २)

(१) ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुवः २)

सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजती है, अत्यन्तभावकरि उत्पाद विनाशक्य नहीं है ध्रुव है ही ॥

उत्पन्नरूप अत्रस्थाका नष्ट होना सो विनाश वा व्यय है और पीतराग मारीपण आदि अपनी सामंकी आत्तिको कियं हुए शोको अवस्थाभ्रोमे विपाम

रहना सो प्रीत्य है । और भी जैसे मिट्टीके पिढका घट करना सो उत्पाद है । और पिढपर्यायका अभाव सो स्वयंही और पिढपर्यायमें तथा घटपर्यायमें

मिट्टीका अभाव न होना तथा सर्व मिट्टीके गुणोंको धारण किये हुये हीनो पिढ तथा घट अवस्थाकोमे रहना है सो प्रीत्य है ।

(१) स्वेभावस्यात्मनो इत्यस्यैव मित्यभिप्रायः और पाठ ऐसे है कि (क)उत्पादपर्यायम् प्रीत्येकं च पुलंसम्" (ख)उत्पादपर्यायम् प्रीत्येकं च

प्रीत्यं च ततो अलक्ष्यम् (ग)उत्पादपर्यायम् प्रीत्यं च ततो अलक्ष्यम् (घ)उत्पादपर्यायम् प्रीत्यं च ततो अलक्ष्यम् (ङ)उत्पादपर्यायम् प्रीत्यं च ततो अलक्ष्यम् (च)उत्पादपर्यायम् प्रीत्यं च ततो अलक्ष्यम् (छ)उत्पादपर्यायम् प्रीत्यं च ततो अलक्ष्यम् (ज)उत्पादपर्यायम् प्रीत्यं च ततो अलक्ष्यम् (झ)उत्पादपर्यायम् प्रीत्यं च ततो अलक्ष्यम् (ञ)उत्पादपर्यायम् प्रीत्यं च ततो अलक्ष्यम्

व्यय प्रीत्य सहित सत् है ।

(२) वीमेकान्तस्वरूप वस्तुके अभावही ओडकर ली गच्छ है और व्यतिरेकी पर्याय है जैसे मृत्तिकाविधि स्यार्थं एतस गच्छ रूप ये तो गुण्य हैं और पिढ घट

काल जंठ उपर्यायिक पर्याय है । स्यार्थं एतस गच्छ रूप ये तो मृत्तिका के लयाही घट कपाल अकारिक सर्वपर्यायोंमें पाये जात है जिससे

एगर्थादि गुण अस्मयी हैं । और घट कपालादिक पर्याय निष्कामिध कालमें पायेजाते हैं । जिस कालमें पिढ पर्याय है जिस कालमें घटादिक अस्म्य पर्याय

नहीं है और घट पर्याय है तिसमें पिएडादिक पर्याय नहीं है जिससे पर्याय व्यतिरेकी है और अस्म्यसे गुण पर्याय मिक नहीं है गुण पर्यायामकी इत्य

है न गुण है व ता अस्म्यमें गुणपर्यत् मयतंति हैं और पर्याय है त अस्म्यदि मयतंती है तिससे गुणपर्याय है त अस्म्यका स्वभाव मूल है जिससे अस्म्यकल्पयमा

का धारण करती है । इस प्रकार अत्रके तीन अलक्ष्य (उत्पाद-व्यय प्रीत्य) कहेगये हैं ।

यत्सत्तद्द्रव्यमित्यर्थ ॥ अद्येवं तद्भेदं तावद्द्रव्यं किं सत् ? इत्यत आह—

॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

चेतनस्याचेतनस्य वा द्रव्यस्य स्वा जातिमजहत उभयनिमित्तवशाद्भावान्तरावाप्तिरुत्पादन-
मुत्पाद । मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत् ॥

रूपमुत्पाद—यद्द्रुं॥सत्॥त्वंद्रुं॥द्रव्यमद्रुं॥इतिअर्थः॥=नो सर्वे वा द्रव्ये हे ऐसा तात्पर्य है

परमं॥परमं॥नामत्वंद्रुं॥॥॥ एव ॥

वचनस्य॥द्रुं॥सत्॥॥ इतिअर्थः॥आत् ॥

॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं ३० ॥ = भवति सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् ॥ ३०

मूर्तार्थे — उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् ॥ सत् ॥ भवति । =व्यचि-नाश-स्विरता स्वरूप (=युक्त) सत् है वा उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तवाळा
(=युक्त) सत् है अर्थात् (३) उच्यते, पर्यायका उपनना सोरी पूर्वं पर्यायका नाश
राना है और जो पूर्व पर्यायका नाशहोना सोरी उच्य पर्यायका उत्पाद है और द्रव्य है सो उत्पादमेंभी वही द्रव्य है और व्यय
में भी वही द्रव्य है अन्य द्रव्य नहीं रागर्ग है और उत्पादव्ययध्रौव्यमें समय सम्यक् होता है इससे सर्वद्रव्य परिणामी है परिणामन
विना किसी समयमेंभी कहां द्रव्य नहीं रहती है । ये (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) तीनों गुण द्रव्यमें एक साथ निरन्तर रहते हैं ।

रूपमुत्पाद—त्वाम्द्रुं॥नामिद्रुं॥अनात्तं॥वचनस्य॥॥ =मिसने अपनी जातिको नहीं छोड़ा है चेतन

अचेतनस्य॥वाक्यस्य॥अमय-निमित्त-नशात् ॥

भागात् न भवामि ॥ उत्पादनमद्रुं ॥ उत्पाद है

मुद्रुं ॥ पिण्डस्य ॥ घट-पर्यायवत् ॥

=अथवा अचेतन द्रव्यके (वायु, अस्यत्तर) दोनों कारणोंके बलसे
=(एक अवस्थासे)अन्य अवस्था या परिणतिको प्राप्त होना सो उत्पाद है
=भाटीके पिण्डके घट पर्याय होने सहज है अर्थात् मृत्तिका द्रव्य विषे पिण्ड पर्यायिका

(१) इस मूल्याका वाक और अर्थ अतः अचेतनमयत्वप्रमाणसे एकता है । अनेकान्तर भावनायतं कई वाक्यों में उक्तमे एक वाक मिश्रता है (देखा पृष्ठ २००) ।
(२) (अतः) उक्त उचिततामिति सूत्रार्थे 'अथ' शब्द है तत्र परी जोपरची सूत्रमें सत् द्रव्य कवी भावते है, अतीवकी स्थान कानुपुति केकर देना सूत्र कवी
नहीं करता है । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं ३० इत्यतः अर्थ उच्यते अनेकान्तरमिति निकाशः अनेकान्तरमिति अनेकान्तरमिति अनेकान्तरमिति अनेकान्तरमिति अनेकान्तरमिति

तथा पूर्वभावविगमनं व्यय । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृतेः ॥ अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदया-
भावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुव ।

तथा अपूर्वभाषिगमनम् ॥ व्ययः ॥ ।

नाथ होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद जानना
= जैसे ही (उत्था) परिष्ठी भावस्याका विनाश होना (= विगमनं) समुच्छेद होना अथवा
अभाव होना सो व्यय है

यथा घट उत्पत्तौ ॥ स्थिर-आकृत्यैर्दः ॥ अनादि
पारिणामिक-स्वभावेन ॥ १) व्यय-उदय-अभावात् ॥
(२) ध्रुवति ॥ स्थिरीभवति ॥ इति ध्रुवः ॥

= जैसे घटके उपननेमें पिण्डके आकारका (विनाश होना) अनादिकाखसे
= परिणामन होनेवाला स्वभाव द्वारा (पर्यायके) विनाश उत्पादनके बशसे रहित
= स्थिर रहना है वा अव्यथिष्ठमान रहना है (= स्थिरी भवति) ऐसा ध्रुव है अर्थात् जो
पूर्वभावका नाश और उपरभावका उत्पाद होनेमें अपनी आतिको नही छोड़ता है
सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजती है और विनश्यती है, इव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाशरूप नही है ध्रुव है ही ॥

उपलक्षण अस्याका नष्ट होना (२) विनाश वा स्वय है और परिरूप आरिपन छादि अणकी सोमको आतिको जिय हुए दोनों अवस्थाओंमें विद्यमान
रहना सो प्रौढ्य है । और भी जैसे मिट्टीके पिण्डका घट करना सो उत्पाद है ॥ और पिण्डपर्यायका अभाव सो व्यय है और पिण्डपर्यायमें तथा घटपर्यायमें
(मिट्टीका अभाव न होना तथा सर्व मिट्टीके गुणको धारण किये हुए दोनों पिण्ड तथा घट अवस्थाओंमें रहना है सो प्रौढ्य है ॥

(१) स्वेताश्वरामाचार्यमें इस सूत्रके निबन्धितमात्र्य और पाठ ऐसे हैं कि (क) उत्पादरूपमात्र्य प्रौढ्येय च युक्तं सत् (ख) अथावस्थयात्र्य प्रौढ्येयव
युक्तसोत्पत्तयम् (ग) यात्रसे स्वयसे युक्त होना यह सत्यका अर्थक्य है (ग) अथावस्थयौ प्रौढ्यं सैतत् चिठचयुक्तं सत् (घ) उत्पादरूपयौ
प्रौढ्यं च सतो मत्तम् (ङ) अथावस्थयौ प्रौढ्ययुक्तं सत् अर्थात् उत्पाद स्वय प्रौढ्य ये तीनों एकही पदमें पड़े हैं ॥ सर्वथा सूत्रका यह अर्थही कि उत्पाद,
व्यय, प्रौढ्य सहित सत् है ॥

(२) अद्वैतानुसंधय वस्तुके अत्यन्त ही नष्ट है और व्यतिरेकी पर्याय है जैसे मुक्तिकाविधि स्पष्ट रस गन्ध रूप ये तो गुण हैं और पिण्ड घट
कपाल वाद अर्द्धरात्रिक पर्याय हैं ॥ स्वयं रस गन्ध बन्ध गुण हैं ते तो मुक्तिघट के तापही घट कपाल अर्द्धरात्रिक सर्वपर्यायोंमें पाये आते हैं तिससे
स्पर्शदि गुण आत्मीय हैं । और घट कपालादि क पर्याय निबन्धित काकमें पाये जाते हैं । जिस काकमें पिण्ड पर्याय है जिस काकमें घटात्रिक अन्त्य पर्याय
नहीं है और घट पर्याय है तिसमें विपरीतदि पर्याय नहीं है तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और प्रत्यसे गुण पर्याय भिन्न नहीं है गुण पर्यायका ही प्रत्य
है ॥ गुण है ये तो प्रथमें यागपत्त मन्तोंमें है और पर्याय है त क्रमकरि प्रवर्तनी है तिससे गुणपर्यायों में प्रथमका स्वभाव सत् ही तिससे प्रथमकपर्यायमा
को धारण करती है ॥ इस प्रकार प्रत्यके तीन अर्थक्य (उत्पाद-स्वय प्रौढ्य) अर्थक्य हैं ।

तथा पूर्वभावविगमनं व्यय । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृते ॥ अनादिपारिणामिभस्वभावेन व्ययोदया-
भावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुव ।

नाथ होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद जानना
 =वैसही (=वहा)पलिखी अवस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुष्कद होना अथवा
 अभाव होना सो व्यय है
 =जैसे घटके उपगमनेमें पिण्डके आकारका (विनाश होना)अनादिकाखाले
 =परिणामन होनेवाले स्वभाष द्वारा (पर्यायोक्ते) विनाश उत्पादनक वयसे रहित
 =स्थिर रहता है वा अपविष्टमान रहता है (=स्थिरी भवति) एसा ध्रुव है अर्थात् जो
 पूर्वमानका नाश और उचरभाषका उत्पाद होनेवी अपनी आतिका नही छोड़ता है
 सो ध्रुव है, पर्याय नषीन उपजती है और विनशवी है, द्रव्यस्वभावपरि उत्पाद विनाशक्य नषी है ध्रुव है ही ॥

दुपककचय अवस्थाका घट होना सो विनाश वा व्यय है और पीतरंग मारीपन आदि अपनी सोभको आतिका शिव हुए दोनों अवस्थाकोमें विद्यमान
 रहना सो प्रीत्य है । और भी जैसे सिद्धीके पिण्डका घट करना सो उत्पाद है ॥ और पिण्डवर्थाका अभाव सो व्यय है और पिण्डपर्यायमें तथा घटपर्यायमें
 मिष्टीका अभाव वा होना तथा सर्व मिष्टीके गुणको धारण किये हुये दोनों पिण्ड तथा घट अवस्थाकोमें रहना है सो प्रीत्य है ॥

(1) स्वेताश्वरआत्मवर्गे इस सूत्रके भिन्नविग्रमाय्य और पाठ येसे है कि (क)उत्पादव्ययमाय्य प्रीत्येक च युक्तसत्त्वं (ख)उत्पादव्ययमाय्य प्रीत्येकच
 युक्तसत्त्वेकचकम् (ग)पादसे व्ययसे तथा प्रीत्यसे एक होना यह सप्तका कथय है (घ) उपपादव्ययी प्रीत्यं वैतत् नितवयुक्तं सत्त्वं (च) उत्पादव्ययी
 प्रीत्यं च सत्त्वेकचकम् (ज)उत्पादव्ययप्रोत्ययुक्त सत्त्वं अर्थात् उत्पाद व्यय प्रीत्य ये तीनों एकही पदमें पडे है । सर्वथा सूत्रक यह अर्थ है कि उत्पाद,
 व्यय प्रीत्य सहित सत्त्वं है ॥

(2) इति कस्तस्वकच वस्तुके आशयी ओङ्कार ती गण है और व्यतिरेकी पर्याय है जैसे मुक्तिकाविये स्वयं एत गण क्य ये तो गुण है और पिण्ड घट
 कपाल स्रष्ट, उर्ध्वपार्थिक पर्याय है ॥ स्वयं एत गण्य सर्वं गुण है तो मुक्तिका के क्षापही घट कपाल कर्माधिक सर्वपर्यायोंमें पाये जात है तिससे
 स्वयंमि गुण स्वकपी है । और घट कपालादिक पर्याय मिश्रमिग कालमें पाये जाते है । जिस कालमें पिण्ड पर्याय है जिस कालमें घटादिक अन्य पर्याय
 नही है और घट पर्याय है तिसमें विग्रहादिक पर्याय नही है तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नही है गुण पर्यायमाय्यकी द्रव्य
 है ॥ गुण है वे तो द्रव्यमें वागपत् मन्वर्तते है और पर्याय है व क्रमकरि मन्वर्तती है तिससे गुणपर्याय है व द्रव्यका स्वभाव मृत है तिससे द्रव्यलक्षकपरमा
 को धारण करती है ॥ इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय प्रीत्य) कहे जाते है ।

भ्रुस्य भाव कर्म वा श्रोत्र्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यवय ॥ तैरुत्पादव्ययधीवैर्यैर्युक्तं
सदिति ॥ आहभेदे सति युक्तशब्दो दृष्टः । यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सतितेषा त्रयाणा

भ्रुस्य भाव कर्म वा श्रोत्र्यम् ॥ या श्रोत्र्यम् ॥ ॥ ।	भ्रुवका भाव अथवा कर्म है सो श्रोत्र्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना श्रोत्र्य है
पणा० १ पृष्ठ पिण्ड-यत्रादि अवस्थासु ॥ मृद आदि	= भूसे मिट्टिका ईशा घट (कपास) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है
अन्त्ये ॥	= सो जोड़ रूप वा सर्व दशाओं में सम्यक् रूप है अर्थात् वही मिट्टी पिण्ड में ही वही घट में
नः ॥ यत्राद-स्य श्रोत्र्ये ॥ युक्तम् ॥ ॥ सत्वः ॥ इति ॥	= तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनों) करि संहित (=युक्त) सत्व है ॥
आरा० १ पदोऽमितिः युक्तशब्दोऽष्टम् ॥ ।	= स्वरन करता है कि भेद होने में युक्त शब्द देला जाला है अर्थात् जहाँ एक वस्तु से दूसरी वस्तु भिन्न विलानी होती है वहाँ युक्त शब्द छाते है
पणा० १ द्रव्यम् ॥ युक्तम् ॥ द्रव्यम् ॥ इति ॥	= जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य वस्तु है । देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
तथा० मितिः ॥ ताम् ॥ अणाम् ॥ ।	= इस भाँति (=तया) होने में (=सति) तिन चीन (उत्पाद-स्य श्रोत्र्य) के

(1) "एषा मृत्पिण्ड पटाद्यवस्थाम् मृदाद्यवय" देला पाठ हो अर्थात् 'मृदाद्यवय के स्थान में 'मृदाद्यवय' हो तो 'पिण्डका अण' जोहा (देखो पदकर्मरोग पृष्ठ ३१६) होगा और वाक्यका अर्थ इस प्रकार होगा कि जैसे मिट्टी और लोहा (= पिण्ड, पट आदिक लोहा कपडा आदिकाओं में मिट्टी कोर नाईक आकरत वा अन्वय रूप है (१) द्राव्यका एक अणु मत्त कहा एक उत्पाद एवम श्रोत्र्य युक्तयला कहा । एक गूख पर्ययकात् (देखो सूत्र ३०) कहा है सो मीन लकड़ोंक मय पकट कहन पर अन्य दो लकड़ पर संधी आजाते हैं ३ सग लकड़के कहनमें उत्पाद एवम श्रोत्र्यकात् एना और गख पर्ययकात् एना स्वकर्मके आजाते हैं ३ और उत्पाद एवम श्रोत्र्यकात् कहन पर सतयला और गुणपर्ययकात् एसा स्वकर्मके गमित होजाता है और गुख पर्ययकात् एका कर्मके मीनकत्व एवम श्रोत्र्यपणा स्वकर्मके आजाते हैं ३

तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभाव प्राप्नोति ॥ नैष दोषः । भेदेऽपि कथञ्चिदभेदमनयापेक्षया युक्त-
शब्दो दृष्टः । यथा सारयुक्तं स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावत्सह्यपदेशो युक्तः ॥
समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहित तदात्मक इत्यर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

चत्नेऽनुपुक्तस्य ॥ द्रव्यस्य ॥ आभावः ॥ आसौचित्यः ॥
= और (च) तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) करि युक्त द्रव्यके अभाव मात हावा हे अर्थात् जो

येसे तीन भाष पुण् पुण् पुण् करि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आवा है
= (अपर) या रूपक नहीं है, भेद होनेपरभी कभी कभी

न ० एषधौ दोषः । (१) भेदः अपि कथञ्चित् ०
अभेदतत्त्वोपपत्तिः ॥ युक्तशब्दः ॥ दृष्टः ॥
= अवेदतत्त्वकी अपेक्षासे युक्त शब्द देलागया है अर्थात् वहाँ एक वस्तुसे दूसरी वस्तुको
पुण्क् विलाना होता है वहाँ तो युक्त शब्द छाते ही हैं परन्तु कभी कभी
अभेदपनाके अर्थमें ही युक्त शब्द आता है ।

यथा सारयुक्तं स्तम्भ इति ॥ तथा असति तेषां युक्तं ॥
= जैसे सारयुक्त स्तम्भ है, तैसे होनेमें तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) के
अविनाभावत्सह्यपदेशो युक्तं ॥
= अथवा युक्त शब्द एकमेकता रूप वचन (= स्यापि वचन) हैं । युक्त है सो समाहित

समाधिवचनो वा युक्तशब्दः ॥ युक्तः समाहितः ॥
= अथवा युक्त शब्द एकमेकता रूप वचन (= स्यापि वचन) हैं । युक्त है सो समाहित
तदात्मकः इति अर्थः ॥ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तः ॥ सत् ॥
= उत्पादक पाठत्व रूप ऐसा अर्थ है । उत्पत्ति, नाश, स्थिरता, मिथिल (= युक्त) सत् है,

(१) सर्वार्थसिद्धका प्रथमानुष्ठानं "अनेदपि कथञ्चिदभेदमनयापेक्षया युक्तं" इत्येव
वेद्यया इत्यपि वाक्यान्तरम् इति नानुष्ठानि तेषामेव यो चरत्त्वसिद्धयः ॥ परन्तु "अनेदपि कथञ्चिदभेदमनयापेक्षया
इत्यादि पाठ है यह धारणे की स्मृति
है अथवा स्तम्भ है कि इत्यत्र प्रकृत्यो स्मृति हो कथञ्चिदभेदमनयापेक्षया" इत्येव शब्द है तो अर्थमें भेद शब्द बोना चाहिये यदि
प्रारम्भमें "भेद" शब्द हो तो दूसरा शब्द अथवा बोना चाहिये ॥ दो इत्यखिलत प्रतिगोमे "अनेदपि कथञ्चिदभेदमनयापेक्षया" पाठ है एक इत्यत्र इत्य
खिलत पुस्तकमें "अनेदपि कथञ्चिदभेदमनयापेक्षया" ऐसा पाठ है । इन समस्त पाठोंको छोड़कर हमने प्रथमानुष्ठान पाठ लिया है क्योंकि शिष्यके
प्रत्येक शब्दके अन्वयानुसार कथन मात होता है अर्थात् नीचेके सिद्धी अनुयायसे प्रसृत है । प्रथम अन्वय है कि "भेद होनेमें युक्त शब्द देना जाता है
अर्थात् वहाँ एक वस्तुसे दूसरी वस्तु निक रिजाली होती है वहाँ युक्त शब्द आते हैं जैसे वृक्ष करि युक्त देववृक्ष अर्थात् देव वस्तु है तो वेतल है और
वृक्ष अथवा ताम्र वस्तु है देववृक्ष और वृक्ष अर्थात् नदी है इस अंति होनेपर तिन तीव (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) के और अन्वय (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) करि युक्त
प्रत्येक अभाव मात होता है अर्थात् जो ऐसे वीलमात्र सिद्ध करि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आता है (उत्पाद) वह वृक्ष नहीं है । भेद होनेपरभी कभी कभी
अभाववचनो अपेक्षासे युक्त शब्द देना जाता है अर्थात् जो ऐसे वीलमात्र सिद्ध करि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आता है (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) करि युक्त
अभाववचनो अपेक्षासे युक्त शब्द देना जाता है अर्थात् जो ऐसे वीलमात्र सिद्ध करि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आता है (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) करि युक्त
अभाववचनो अपेक्षासे युक्त शब्द देना जाता है अर्थात् जो ऐसे वीलमात्र सिद्ध करि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आता है (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) करि युक्त

ध्रुस्य भाव कर्म वा ध्रौव्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यवय ॥ तैस्त्यादव्ययध्रौवैर्युक्त
सन्ति ॥ आहभेदे सति युक्तशब्दो दृष्टः । यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सतितेषात्रयाणा

ध्रुवम् । भावः । कर्मः ॥ वाः ध्रौव्यम् ॥ १ ॥
यथा० । मृदु पिण्ड-यद्यदि अवस्थासु ॥ मृदु आदि
अन्वयः ॥
मैः । मृदाद-व्यय प्राप्तेः । युक्तम् ॥ सत् ॥ इति ॥
आरा मृदाः सति । युक्तशब्दो दृष्टः ।
पपा० दृष्टम् ॥ युक्तः । दण्डवत् ॥ इति ॥
यथा० मृत्पिण्डः । यथाणा ॥ १ ॥

ध्रुवका भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य है
अैसे मिर्चीका देला घट (कपाळ) आदिक अवस्थाओं में मिर्ची आदि है
=सो जोड़ रूप वा सर्व दशाओंमें सम्बन्ध है अर्थात् बारी मिर्ची पिण्डमें की बारी घटमें
=तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनों) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
=अरन करता है कि पेंद होनेमें युक्त शब्द देला जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी
वस्तु मिल दिलानी होती है वहां युक्त शब्द लाते है
=अैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य
वस्तु है । देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
=इस यांति (=यथा) होने में (=सति) तिन चीन (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) के

(1) "यथा मृत्पिण्ड मृदाद्यवस्थासु मृदाद्यवय" देला पाठ हो अर्थात् 'मृदाद्यवय' के स्थानमें 'मृदाद्यवयव' हो तो पिण्डका अर्थ लोहा (हिन्दी
पदचन्द्रिका पृष्ठ ३१६) होगा और वाक्यका अर्थ इत्यत्रकार होगा कि जैसे मिर्ची और लावा (= पिण्ड, घट आदिक लोहा काहा अक्षरशास्त्रोंमें मिर्चीकी
भाईक आठरूप वा अन्वय कर है (१) मृदाका एक लक्षण सत् कहा एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य वक्तव्यका कहा । एक गव्य पयोगकाय (१को सूत्र ३०)
कहा इन तीन कथनोंक मरण वक्त कहल पर अन्वय दो अन्वय काका नाम है । सत्, लक्षणके कहनेमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यकाय गला और गव्य
पयोगकाय गला स्वयमेव साजान है । और उत्पाद व्यय ध्रौव्यकाय कहने पर सत्पुला और गुणपुला वयान् लक्षणेक गमित होजाता है और गुण
पयोगकाय वक्त कहनेमें अन्वय और उत्पाद व्यय ध्रौव्यकाय स्वयमेव साजाने है ॥

तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभाव प्राप्नोति ॥ नैष दोषः । भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया युक्त-
 शब्दो दृष्टः । यथा सारयुक्तं स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सहस्रघटदेशो युक्तः ॥
 समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहित तदात्मक इत्यर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

वचनैर्युक्तस्य ॥ द्रव्यस्य ॥ अभावध्रौ भामो वि ॥

नैष दोषः । यथा सारयुक्तं स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सहस्रघटदेशो युक्तः ॥

समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहित तदात्मक इत्यर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

वचनैर्युक्तस्य ॥ द्रव्यस्य ॥ अभावध्रौ भामो वि ॥

नैष दोषः । यथा सारयुक्तं स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सहस्रघटदेशो युक्तः ॥

समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहित तदात्मक इत्यर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

वचनैर्युक्तस्य ॥ द्रव्यस्य ॥ अभावध्रौ भामो वि ॥

नैष दोषः । यथा सारयुक्तं स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सहस्रघटदेशो युक्तः ॥

समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहित तदात्मक इत्यर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

वचनैर्युक्तस्य ॥ द्रव्यस्य ॥ अभावध्रौ भामो वि ॥

नैष दोषः । यथा सारयुक्तं स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सहस्रघटदेशो युक्तः ॥

समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहित तदात्मक इत्यर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

वचनैर्युक्तस्य ॥ द्रव्यस्य ॥ अभावध्रौ भामो वि ॥

नैष दोषः । यथा सारयुक्तं स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सहस्रघटदेशो युक्तः ॥

समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहित तदात्मक इत्यर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

वचनैर्युक्तस्य ॥ द्रव्यस्य ॥ अभावध्रौ भामो वि ॥

अन्ये वीन मावः पृथक्, पृथक्कुरि युक्तः है तो द्रव्यका अभावः अभावः है

अभेदेनपक्षी अपेक्षासेयुक्तः शब्दः देसनागारैः अर्थात् अहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तुको

पृथक्, विसाना होता है अहां वो युक्तः शब्दः जाते ही है परन्तु कभी कभी

अभेदेपक्षाके अर्थमेंभी युक्तः शब्दः आता है ।

यथाऽसारयुक्तं स्तम्भ इति ॥ तथाऽसतिरेषाम् ॥ जैसे सारयुक्तः स्तम्भ है, तैसे होनेमें तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-कें)

अविनाभावात्सहस्रघटदेशो युक्तः ॥ अविनाभाव होनेसे(=अकृषिना दूसरेका अस्तित्व न रहसकनेकेहेतुसे)सहस्रघटका कथन है

समाधिवचनो वा युक्तः समाहितः ॥ अथवा युक्तः शब्दः एकैका रूप वचन (=समाधिपचन) है । युक्तः है सो समाधिव

चर्यात्मकः इति ॥ अर्थः ॥ उत्पाद-व्यय ध्रौव्य-युक्तः ॥ सत् ॥ उत्पादक वा उत्सृजक ऐसा अर्थ है । उत्पादि, नाश, स्थिरता, स्थिति, (युक्त) सत् है,

(१) सर्वाथसिद्धका प्रयत्नात्पि नैष दोषः । इस पर चरकदिल्ली वेत्ते है कि 'अनेकेऽपि कथञ्चिदभेदे वा-
 देषवा इत्यपि पाठान्तराय् कित्तीपावृत्तिमें भी पाठो चरकदिल्ली वेत्ते है परन्तु 'अनेकेऽपि कथञ्चिदभेदेऽप्येकैका इत्यादि पाठ है यह कृपेकी कृपयुक्ति
 है अथवा सत्त्व है कि अन्य प्रकारकी कृपयुक्ति हो क्योंकि कर्षेनी पाठ इस लो बरि सारसमे 'अनेक' शब्द है ही मध्यमें अर्थ शब्द बोना बाहिये यदि
 प्रारम्भमें 'अर्थ' शब्द हो तो दूसरा शब्द अनेक बोना बाहिये ॥ दो इत्यादिबाध प्रतिनिर्देश 'अनेकेऽपि कथञ्चिदभेदेनयापेक्षया' पाठ है एक अन्य दृष्ट
 सिद्धिगत युक्तस्य 'अनेकेन कथञ्चिदभेदेनयापेक्षया' ऐसा पाठ है । इन सारसत् पाठोको छोड़कर हमने प्रयत्नात्पिका पाठ किया है क्योंकि शिल्पके
 प्रसङ्गे शब्दोंके क्रमानुसार उचित प्राप्त होजाता है असाकि नीचेके सिद्धी अनुभावसे प्राप्त है । प्रसन्न करता है कि 'अर्थ होनेमें युक्तशब्द देना आता है
 अर्थात् अहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तु किन्न विजाली होती है अहां युक्तः शब्दः जाते है जैसे वृंशकरि युक्तः शब्दः अर्थात् शेषवचन मनुष्य है सो वेलन है और
 वृंश अनेकन अन्य वस्तु है शेषवचन और वृंश एकही नहीं है इस भांति होनेपर तिन तीन (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य-कें) और वल (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य-कें) अरि युक्त
 द्रव्यके अभाव प्राप्त होता है अर्थात् ओ ऐसे तीनमात्र किन्नरकरि युक्तः है तो प्रसन्न अभाव आता है (उत्तर) यह शब्द नहीं है । अर्थ होनेपर भी कभीकभी
 अनेकवस्तु अपेक्षास युक्तः शब्द देनाजाता है अर्थात् अहां एक वस्तुसे दूसरा वस्तुके युक्तः विजाला होता है अहां तो युक्तः शब्दः जाते ही है परन्तु
 कभीकभी अभेदेपक्षाके अर्थमें भी युक्तः शब्द आता है । जैसे सार युक्तः स्तम्भ है ऐसे होनेपर तिन (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य-कें) अविनाभावात्सहस्रघटदेशो युक्तः शब्दः

ध्रुस्य भावः कर्म वा ध्रौव्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यवय ॥ तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्तं
सदिति ॥ आहभेदे सति युक्तशब्दो दृष्टः । यथा द्रुपदेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सतितेषां त्रयाणां

ध्रुव्यभावात् । इमं ॥ वा ० ध्रौव्यम् ॥ ।
यथा ० । मृदु पिण्ड-पत्रादि अवस्थासु ॥ मृदु-आदि
प्रत्यये ॥
मृदुत्पाद-स्य प्राप्ये ॥ पुत्रम् ॥ । इति ॥ ।
भावात् ॥ मृदुत्पाद-स्य ॥ इति ॥ ।
यथा ० द्रुपदेन ॥ पुत्रम् ॥ । देवदत्त ॥ इति ॥ ।
यथा ० मृदुत्पाद-स्य ॥ इति ॥ ।

ध्रुव्यता भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य है
= जैसे मिट्टीका देखा पट (कपाल) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है
= सो जोड़ रूप वा सर्न दशाओंमें सम्बन्धरूप है अर्थात् वही मिट्टी पिटमें थी वही घटमें
= तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनी) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
= धरन करता है कि भेद होनेमें युक्त शब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी
वस्तु भिन्न दिशानी होती है वहां युक्त शब्द लाते है
= जैसे द्रुपदकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य
वस्तु है । देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
= इस भाँति (=वया) इति में (=सति) तिन चीन (उत्पाद-स्यय ध्रौव्य) कं

(1) "यथा मत्पिण्ड पत्रापद्यवस्थासु मृदाद्यवय" देखा पाठ हो अर्थात् 'युक्त-वया' के स्थानमें 'मृदाद्यवय' हो तो (पिण्डका अर्थ) जोहा (जिहो) गद-वद-पत्र पद ३३) होगा और वाक्यका अर्थ इसप्रकार होगाकि जैसे मिट्टी और लोहा (= पिण्ड, पत्र आदिक लोहा) काहा अवस्थाओंमें मिट्टीऔर लोहा आदि का अर्थय रूप है (२) द्रुपदका एक अर्थय सत् कहा एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य यत्कण्ठा कडा । एक मत्त पर्यायवाच्य" (इको सूत्र ३०) इति । इन मीत्र लक्षकों मत्त गदक बदले पर अर्थय ही कडक अर्थ लेती आजात है । अतः लक्षकों बदलने उत्पाद व्यय ध्रौव्यवाच्य गला और मत्त पर्यायवाच्य गला सम्बन्धे आजाते हैं । और उत्पाद व्यय ध्रौव्यवाच्य बदल पर मत्तगला और मत्तगलीवच्य गला सम्बन्धे गदित होजाता है और मत्त गला पर्यायवाच्य कडक बदलेने अतः गला काट उत्पाद व्यय ध्रौव्यवचना सम्बन्धे आजाते हैं ।

उत्पादत्रयध्रौञ्च्यात्मकमिति यावत् । एतदुक्त भवति—उत्पादादीनि त्रीणि द्रव्यस्य लक्षणानि ।
द्रव्यं लक्ष्यम् । तत्पर्यायार्थिकनयापेक्षया परस्परतो द्रव्याच्चार्यन्तरभाव ॥ द्रव्यार्थिकनया-
पेक्षया व्यतिरेकेशानुपलब्धेरनर्थान्तरभाव इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धिः ॥

आह नित्यावस्थितान्यरूपणीत्युक्तं तत्र न ज्ञायते किं नित्यमित्यत आह—

॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

उत्पाद-न्यप्य पर्याय आत्मरश्म इति यावत् ॥ एकद्वैतकं भवति । =व्यति-विनाश-स्थिरता स्वरूप होना इतना (=यावत्) अर्थे अर्थावयवसिद्ध होतारोकि
उत्पाद भावनिः ॥ श्रीणिः ॥ द्रव्यस्य ॥ लक्षणानिः ॥

द्रव्यम् ॥ स्वरूपम् ॥ अन्-नयायार्थिक-नय
अपेक्षया ॥ परस्परतः ॥ द्रव्यात् ॥ न ॥ अर्थ अन्तर भाव ॥ =अपेक्षासे आपसमें तथा (=च) द्रव्यसे अन्य अन्य पक्षार्थे अर्थात् विशेषकी अपेक्षा
समस्त पर्याय क्रमवर्ती विभक्ति है, परस्पर भिन्न नहीं विसकरि विभ है

पर्यायि-नय-अपेक्षया ॥ व्यतिरेकणैः
अन्तर-तः ॥ मनर्थं अन्तर भाव-न इति ॥

नप्य गणनार मिदि ॥ आहा नित्य अवस्थितानिः ॥
अन्याणिः ॥ इति ॥ अन्तरम् ॥

न ॥ अन्तरानुपलब्धेरनर्थान्तरभाव इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धिः ॥
नप्य गणनार मिदि ॥ आहा नित्य अवस्थितानिः ॥
अन्याणिः ॥ इति ॥ अन्तरम् ॥

नप्य गणनार मिदि ॥ आहा नित्य अवस्थितानिः ॥
अन्याणिः ॥ इति ॥ अन्तरम् ॥

नप्य गणनार मिदि ॥ आहा नित्य अवस्थितानिः ॥
अन्याणिः ॥ इति ॥ अन्तरम् ॥

नप्य गणनार मिदि ॥ आहा नित्य अवस्थितानिः ॥
अन्याणिः ॥ इति ॥ अन्तरम् ॥

तत्राव इत्युच्यते । कस्तद्भाव ? । प्रत्यभिज्ञानहेतुता । तदेवेदमिति स्मरणं प्रत्यभिज्ञानम् । तदकस्मात् भवतीति योऽस्य हेतु स तद्भाव । तस्य भावस्तद्भाव ॥ येनात्मना प्राग्दृष्टं वस्तु तेनेवात्मना पुनरपि भावात्तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञायते ॥ यद्यत्यन्तविरोधोऽभिनवप्रादुर्भावमात्रमेव वा स्तात्त

अर्थात्-शब्द-भाव ओ पहिले समयमें या सोरी दूसरे समयमें या उसका नाश न होना सोरी नित्य है आचार्य यह है कि पहिले कदा हुआ (तदु)अपना २६वां सूत्रमें कथित सत् ओ स्वभायसे अविनाशी वा विनाशरहित है सोरी नित्य है अर्थात् अिस स्वप्नकारि वस्तु पूर्वमें देखाया उसी स्वरूपकारि वर्तमानमें देखिये है ऐसा जोड़क्य वस्तु में भाव बारी तद्भाव है, उस जोड़क्य भाव द्वारा विनाश रहित (अव्यय)ओ उतीको नित्य करवें । सर्वथा नित्य अर्थात् छूटस्य कोरि वस्तु नही है छूटस्यके पर्याय पलटनेका अभाव है तब संसार तथा संसारके अभावके कारण विधानमें विरोध आता है ।

बुप्यनुषावः-वस्त्रावर्ध इति ॥ चप्यतेऽकथे वस्त्रावर्धे ॥ प्रत्यभिज्ञान-=(सूत्रमें) तदुभाव ऐसा करागया है । तद्भाव क्या है । प्रत्यभिज्ञानका हेतुता है ; शब्दः ॥ एष ॥ इदम् ॥ ॥ इति ॥

स्मरणम् ॥ प्रत्यभिज्ञानम् ॥ ॥ इदम् ॥ ॥ अकस्मात् ॥

न ॥ अर्थात् इति ॥ यदं ॥ अस्पर्शं ॥ हेतुः ॥ स ॥ वस्त्रावर्धे वस्त्रं ॥ ॥

भावात् वस्त्रावर्धे ॥ येनै ॥ आत्मना ॥ भावः ॥ इदम् ॥ ॥

तेनै ॥ एष ॥ आत्मना ॥ पुनः ॥ अपि ॥ अभावात् ॥

तदु ॥ ॥ एष ॥ इदम् ॥ इति ॥ प्रत्यभिज्ञायते ॥ ॥

यदि अस्यन्त-विरोधम् ॥

अभिनव प्रादुर्भावमात्रम् ॥ एष ॥ वा ॥ स्यात् ॥ एत ॥

नैरेतुपन वा कारणपना है । यह (न-इदम्)वर्षारी है (शब्द-एष) ऐसी =स्मृति प्रत्यभिज्ञान है; वा-प्रत्यभिज्ञान/अकस्मात्(विना हेतु वस्तुमें)

=नही रोका है, जो इस-प्रत्यभिज्ञान)का कारण सो कद्भाव है तिस (सत्)का

=भाव अपना होना सो तदुभाव है । अिस स्वप्नकारि पहिले देखा हुआ पदार्थ है

=तिसरी स्वरूपकारि फिरभी विद्यमान होनेसे । स्वभावात्)

=कि यह बरारी है इस प्रकार प्रत्यभिज्ञान कियाजाता है

=ओ(पूर्व)क प्रत्यभिज्ञानके अस्तित्व के)अतिशय विपरीत हो अर्थात् प्रत्यभि

ज्ञान का अभाव हो

=अवशष नवीन आभिर्भावमात्री हो, ततो

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विशेषः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतु
 भवत ॥ अत्राहसतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसघातेभ्य सता स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु
 सन्दिग्धं, किं संघात संयोगादेव द्रघणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवधिप्रियत इति? उच्यते—सति
 संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकालसंघातो निष्पद्यते। यथेवमिदमुच्यता, कुतो नु खलु पुद्गलजाल्यपरित्यागे

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

=विशेषार्पणसे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित किया जाय और
 पर्यायरूपसे अर्पित (योगित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

=इस प्रकार विशेष नहीं है । बहुविरि (=बहुवै) (बोनों) सामान्य-विशेष

=कथयित् यैव अभेदसे व्यवहारक कारण होते हैं ।

=यहाँ (कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

=भेद तथा संघात और भेदसंघातकरि से सत् जहाँ तिनको =सत्वात्, एकपत्यरूप

करि इत्येच युक्तिमान् (=उपपन्नाः) है सारांश सत् है ताके अनेक व्यवहारके

आधीनपणा है यत्ते सत् रूप पुद्गल स्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

दृश्यं ॥ तत्र सन्दिग्धम् ॥ किम् ॥ द्वि ब्रह्मक आदि-अव्ययम् ॥ संघातम् ॥ इत्यन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि कृत्वाणवाला संघात

संयोगात् ॥ एष भवति उव अकथित् विनियमः ॥ अपभ्रियते इति । = संयोगमात्रसे ही होता है ॥ अत्राहसतोऽनेकनयव्यवहारके

अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होता है वाक्य और वात है ॥

उच्यते इत्यन्तात् ॥ एकत्वपरिणाम-आत्मकत्वात् ॥ सति संयोगे ॥ = (उचर्यते) - कदागता है कि एकत्व परिणाम स्वरूप ध्वन्यतसे संयोगानेपर

संघातः निष्पद्यते ॥ यदि एष एव उच्यताम् ॥

=संघात उपपन्ना है जो इस प्रकार कहा जाय तो (अर्थात् जो आप करते हैं कि

संयोग होते संते एकत्व परिणामस्वरूप भेषसे संघातकी निष्पत्ति होती है

तौ (= नु) करीसे (एसाहोवा, है क्योंकि पुद्गल (अपनी) आधिको निश्चयसे नखोदेसे संते

विशेष अर्थखया ॥ अनित्यम् ॥

इति अन अस्ति विशेषः ॥ तौ ॥ एष सामान्यविशेषौ ॥

अत्राहसतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् ॥

उपपन्नाः भेद संघातस्य ॥ सत्वात् ॥ स्कंध आत्मन उत्पत्तिः ॥

॥

दृश्यं ॥ तत्र सन्दिग्धम् ॥ किम् ॥ द्वि ब्रह्मक आदि-अव्ययम् ॥ संघातम् ॥ इत्यन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि कृत्वाणवाला संघात

संयोगात् ॥ एष भवति उव अकथित् विनियमः ॥ अपभ्रियते इति । = संयोगमात्रसे ही होता है ॥ अत्राहसतोऽनेकनयव्यवहारके

अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होता है वाक्य और वात है ॥

उच्यते इत्यन्तात् ॥ एकत्वपरिणाम-आत्मकत्वात् ॥ सति संयोगे ॥ = (उचर्यते) - कदागता है कि एकत्व परिणाम स्वरूप ध्वन्यतसे संयोगानेपर

संघातः निष्पद्यते ॥ यदि एष एव उच्यताम् ॥

संयोग होते संते एकत्व परिणामस्वरूप भेषसे संघातकी निष्पत्ति होती है

तौ (= नु) करीसे (एसाहोवा, है क्योंकि पुद्गल (अपनी) आधिको निश्चयसे नखोदेसे संते

सतोऽप्यत्रिज्जा भवतीत्युपसर्जनीभूतमननर्पितमित्युच्यते । अर्पित चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्या
 सिद्धेरर्पितानर्पिनसिद्धेर्नोस्ति विरोध । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो आता भागिनेय
 इत्येवमादय सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यते । अर्पणशब्देनात् ॥ पुत्रार्पणं पिता
 पित्रर्पणया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्य

भाषाय—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके नशासे प्रधान
 करि करै सो वो अर्पित है और प्रयोजन के बिना वस्तुके जिस धर्मके करनेकी इच्छा न करै यह अनर्पित है ।

इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं करागया है वह वस्तुमें ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मालोक है
 =सत् की अविषया भी होती है अर्थात् सत् की विषया तथा अविषया दोनों होती हैं
 जिस से सत् रूप होय तिसहूँ प्रयोजन के नशासे अविषया करये सो गौण है इस
 लिय विरोय रहित। दोनों (विषया तथा अविषया) में वस्तु की सिद्धि है
 =अप्रधानपूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है

=आर् (=व) अर्पित और (व=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (इन्द्र समास रूपमें है)
 =निन (अर्पित अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे “अर्पित-अनर्पित सिद्धे” (ऐसा सूत्र)
 =विरोय रहित है । जैसे कि एक देवदत्तका
 =पिता-पुत्र-भारं मानआ-दर्यादिक

=सम्बन्ध जनकपत्ता (तथा) जयपत्ता आदिक निमित्त
 =अर्पण वा व्युत्पत्ताक भेदसे नहीं विरोधया जाता है । तेदेकी अपेक्षाकरि (वद पुत्रव)
 =बाप है शपकी अपेक्षासे वही पुत्रव वद इत्यधिक है ॥
 =नैसर्गिक(=तथा)द्रव्य भी सामान्य अर्पणसे नित्यै अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

करि करै सो वो अर्पित है और प्रयोजन के बिना वस्तुके जिस धर्मके करनेकी इच्छा न करै यह अनर्पित है ।

इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं करागया है वह वस्तुमें ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मालोक है

सत् की अविषया भी होती है अर्थात् सत् की विषया तथा अविषया दोनों होती हैं जिस से सत् रूप होय तिसहूँ प्रयोजन के नशासे अविषया करये सो गौण है इस लिय विरोय रहित। दोनों (विषया तथा अविषया) में वस्तु की सिद्धि है =अप्रधानपूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है =आर् (=व) अर्पित और (व=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (इन्द्र समास रूपमें है) =निन (अर्पित अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे “अर्पित-अनर्पित सिद्धे” (ऐसा सूत्र) =विरोय रहित है । जैसे कि एक देवदत्तका =पिता-पुत्र-भारं मानआ-दर्यादिक =सम्बन्ध जनकपत्ता (तथा) जयपत्ता आदिक निमित्त =अर्पण वा व्युत्पत्ताक भेदसे नहीं विरोधया जाता है । तेदेकी अपेक्षाकरि (वद पुत्रव) =बाप है शपकी अपेक्षासे वही पुत्रव वद इत्यधिक है ॥ =नैसर्गिक(=तथा)द्रव्य भी सामान्य अर्पणसे नित्यै अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

(1) स्वामीजीव विष्णुनिजी प्रमाणपरिचिते माताशब्द नहीं है । जो न हीन इत्यन्त विक्रित प्रतियोगी भी यह शब्द नहीं है । पञ्चमस्यशब्दका वा स्वामीकाते भी नहीं है
 देवकीनेत्रिब भव्यशब्द मन्वन्त स्वर्गसिद्धिदिप्रतिभे है इससे हमारे माता शब्द नहीं रचका है यह माता शब्द युगा शब्दके प्रधान विधीयापुत्रिभे है ।
 (2) वही पर लब्धे स्वामीरे र्-शपका है अनेकशब्दक से बरे अर्थात् विष्णु = विष्णु + अर्पण + अर्पणसिद्धि + अर्पणसिद्धि = अर्पणसिद्धि + अर्पणसिद्धि = अर्पणसिद्धि + अर्पणसिद्धि + अर्पणसिद्धि + अर्पणसिद्धि

विशेषार्णयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतु
 भवतः ॥ अत्राहसनेऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्यः सतां स्क्रयात्मनोत्यन्तिरिद्धं त
 सन्दिग्धं, किं संघात संयोगादेव ह्यणुकादिलक्षणयो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवधिप्रयत्न इति ॥ उच्यते—सति
 संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकसंघातो निष्पद्यते ॥ यद्येवमिदमुच्यता, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

विशेष अर्थलयाः ॥ अनित्यम् ॥

इति न न अस्ति विशेषः ॥ तौ च सामान्यविशेषौ
 कथञ्चित् भेद-अभेदाभ्यां व्यवहार-हेतुः प्रपत्तः ॥
 यत्र न आह उच्यते ॥ अनेकनय-व्यवहार-व-त्त्वात् ॥
 उपपन्ना भेद संघातस्य ॥ सत्त्वात् ॥ एकं प्र आत्यन्त-इत्यपि ॥

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

=विशेषअर्थलयासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित किया जाय और
 पर्यायरूपसे अर्पित (योञ्जित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

=इस प्रकार विशेष नहीं है ॥ बहुरि (=बहु) (दोनों) सामान्य-विशेष
 =कथञ्चित् भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं ॥

=यहां (कोई) पुद्गल है कि सर्वके अनेकनयके व्यवहारके आपीनपनासे
 =भेद क्या संघात और भेदसंघातकारि ये सत् जहाँ तिनके (=सत्त्व) एकस्वरूप

करि उत्पत्ति युक्तमान (=व्यपन्ना) है सारांश सत् है तार्क अनेक व्यवहारके
 करि उत्पत्ति पुद्गल स्वरूपिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात क्या भेदसंघातसे है

आपीनपणा है यहाँ सत्त्व रूप पुद्गल स्वरूपिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात क्या भेदसंघातसे है

इदम् ॥ त्वं सन्निवृत्तः ॥ किम् ॥ इति-अणुत्वं अवि-चक्षणाः संघातः ॥ परन्तु या संदेह है कि क्या दो अणुकादि कृच्छ्रणयाला संघात
 संयोगात् ॥ एवंप्रति । उत कश्चिद्विशेषोऽवधिप्रयत्न इति ॥ संयोगात् ॥ अवि-चक्षणाः संघातः ॥ परन्तु या संदेह है कि क्या दो अणुकादि कृच्छ्रणयाला संघात
 व-पनेऽव-पात् ॥ एकत्वपरिणाम-आत्मकत्वे ॥ सति संयोगः ॥
 संघातः ॥ निष्पद्यते ॥ यदि एवमव्यवहारः ॥

=संघात उपपन्ना है जो इस प्रकार कदापि नो (अर्थात् जो आप करते हैं) कि
 संयोग होते सते एकत्व परिणामनस्वरूप वपसे संघातकी निष्पत्ति होती है
 =संघात उपपन्ना है जो इस प्रकार कदापि नो (अर्थात् जो आप करते हैं) कि
 संयोग होते सते एकत्व परिणामनस्वरूप वपसे संघातकी निष्पत्ति होती है
 =तौ (तु) करारसे (ऐसा होता, है न्यौंकि पुद्गल (अपनी) जाकिन्तो निश्चयसे नबोइतेसे

उक्तः ॥ (१) तु, खलु पुद्गलजाति अपरित्यागे ॥

(१) तु - तिनके = विद्यत वरुं अर्थात् तर्कसे पद्यात् तर्कसे तर्क निष्काशना (जो पद्यकम्प-अप-पु-२२१) इत्यत्र अनुवाद 'जो' किया गया है

सतोऽप्यत्रिज्जा भवतीत्यपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताम्या
 मिबेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नोस्ति विरोध । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो आता भाग्निनेय
 इत्येवमादय सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यते । अर्पणामेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता
 पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्य

मावर्ण—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रयान
 करि कई सो वो अर्पित है और प्रयोजन क विना वस्तुके जिस धर्मके कइनेकी इच्छा न करै वर अनर्पित है ।
 इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं करागया है वर वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है
 वस्तु की अविच्छेदा भी होती है अर्थात् सत् की विच्छेदा तथा अविच्छेदा दोनों होती है
 जिस स सत् रूप रूप जिसहुँ प्रयोजन के वशसे अविच्छेदा करये सो गौण है इस
 स्थिय विराय रहित, दोनों (विच्छेदा तथा अविच्छेदा) में वस्तु की सिद्धि है
 =अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है
 =और (=च) अर्पित और (व=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)
 =निन (अर्पित-अनर्पित) दोनोंस सिद्धि होनेसे “अर्पित-अनर्पित सिद्धेः” (ऐसा सूत्र)
 =विरोध रहित है । जैसे कि एक देवदत्तका
 =पिता-पुत्र-भार्य मानआ-दर्यादिक
 =सम्बन्ध जनकपना (तया) ज-यपना आदिक निमित्त
 =अर्पण या मुख्यताक भेदसे नहीं विरोधया जाता है । देतेकी अपेक्षाकरि (वह पुत्रव)
 =बाप है बापकी अपेक्षासे बही पुत्रव बेटा इत्यादिक है ॥
 =जैसेही(=तया, द्राय भी समा-य अर्पणसे नित्यहै अर्थात् जब द्रव्यरूपस अर्पित किया

करि कई सो वो अर्पित है । इति ०
 इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं करागया है वर वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है
 वस्तु की अविच्छेदा भी होती है अर्थात् सत् की विच्छेदा तथा अविच्छेदा दोनों होती है
 जिस स सत् रूप रूप जिसहुँ प्रयोजन के वशसे अविच्छेदा करये सो गौण है इस
 स्थिय विराय रहित, दोनों (विच्छेदा तथा अविच्छेदा) में वस्तु की सिद्धि है
 =अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है
 =और (=च) अर्पित और (व=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)
 =निन (अर्पित-अनर्पित) दोनोंस सिद्धि होनेसे “अर्पित-अनर्पित सिद्धेः” (ऐसा सूत्र)
 =विरोध रहित है । जैसे कि एक देवदत्तका
 =पिता-पुत्र-भार्य मानआ-दर्यादिक
 =सम्बन्ध जनकपना (तया) ज-यपना आदिक निमित्त
 =अर्पण या मुख्यताक भेदसे नहीं विरोधया जाता है । देतेकी अपेक्षाकरि (वह पुत्रव)
 =बाप है बापकी अपेक्षासे बही पुत्रव बेटा इत्यादिक है ॥
 =जैसेही(=तया, द्राय भी समा-य अर्पणसे नित्यहै अर्थात् जब द्रव्यरूपस अर्पित किया

(1) प्रयोभीनस्त्विति माताशब्द नहीं है व नीन इत्थन निमित्त प्रलकोसे भी वह शब्द नहीं है ० उच्यते इच्छा वा कल्पनिकासे भी नहीं है
 देवदत्तनीव नन्वदत्त न्दत्तन अर्थात् अर्पिते है इससे इत्थे माता शब्द नहीं इच्छा है वह माता शब्द आत्मा शब्दके पश्चात् मिलीयापुत्रिने है व
 (2) वही पर शब्द ल्यागते व, हीनया है अनेकवाक्य पर वरें अर्पण, मित्रु = मित्रु, (शब्दके रवानसे दू, आत्मन्) + अनेकवा = विचयेकवा कताया व

विशेषार्पणयाज्ञित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्या व्यवहारहेतु
भवत ॥ अत्राहसनोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसघातेभ्य सता स्कंधाल्मनोत्पत्तिरिदं तु
सन्दिग्धं, किं संघात संयोगादेव ह्ययुक्तादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवधिप्रयत इति॥ उच्यते—सति
संयोगे त्रन्धादेकत्रयपरिणामाल्मकाल्मसघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यते, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया ठव नित्यत्प सिद्ध है ॥

=विशेषोपसर्पणसे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और
पर्यायरूपसे अर्पित(गामित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥
=इस प्रकार विरोध नहीं है । बद्रिरि(=ब्रह्मि)दोनों सामान्य-विशेष
=कथयित् भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं ।

=वर्षा(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आपीनपनासे
=भेद तथा संघात और भेदसंघातकरि ये सत् नबै विनको, =सताम्, एकप्रस्वरूप
करि उत्पत्ति युक्तिमान्(=उपपन्ना) है सारांश सत् है तार्के अनेक व्यवहारके
आपीनपणा है यार्के सत् रूप पुद्गल स्कंधनिकी जो उत्पत्ति सौ भेद और संघात तथा भेदसंघातस है

=परन्तु यह संदेह है कि क्या वो अणुकादि लक्षणवाला संघात
=संयोगमात्रसे ही होता है या(=उत्पत्ति)और(=कथित)विशेषनिर्णय कियाजाया है
अर्थात् वो परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होता है वा कुछ और बात है ॥
=उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणामन स्वरूप धन्यानसे संयोगहोनेपर
=संघात उपपन्ना है जो इस प्रकार कराजाय सो (अर्थात् जो आप करतेहैंकि
संयोग होते संते एकत्व परिणामनस्वरूप रूपसे संघातकी निष्पत्ति होती है
=वो(=नु)करासे(पेसाहोगा, है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नखीइतेसते

विरोध अर्थकथाः॥ अनित्यम् ॥

इति न ० अस्ति विरोधः ॥ नो ॥ त्व ० सामान्यविशेषाः ॥

कथयित् भेद अभेदस्याप्तः ॥ व्यवहार-तन्त्रः ॥ उपपत्ताः ॥

अप ० आह ॥ संघातः ॥ अनक-नय-व्यवहार-त-पन्नात् ॥ ॥

उपपन्नाः ॥ भेद सघातव्यम् ॥ सत्वात् ॥ स्कंध आत्मन उत्पत्ति ॥

इत् ॥ ॥ तु ० सान्द्रियम् ॥ ॥ किम् ॥ ॥ दि-अणुक आदि-लक्षणः ॥ संघातः ॥ ॥ परन्तु यह संदेह है कि क्या वो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात् ॥ एव ० उपपत्ति उव ० कथित ० विशेषः ॥ अथविशेषतेऽपि ॥ संयोगमात्रसे ही होता है या (कथित) विशेषनिर्णय कियाजाया है

अर्थात् वो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होता है वा कुछ और बात है ॥

उत्पत्ताय ० पादः ॥ एकत्वपरिणाम आत्मकादः ॥ स्वदि ॥ संयोगः ॥

संघातः ॥ निष्पत्तेः ॥ यदि ० एव ० उपपत्ताम् ॥

इत् ॥ ० (१) तु, खलु ० पुद्गलजाति-अपरित्यागे ॥

(१) तु = निवर्क = विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकलना (देखो पद्यकम्पण्ड पृ० २२१) इत्यत्र अनुवाद 'तो' किया गया है

(१) तु = निवर्क = विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकलना (देखो पद्यकम्पण्ड पृ० २२१) इत्यत्र अनुवाद 'तो' किया गया है

सतोऽप्यत्रिवृत्ता भवतीत्युपसर्जनीभूतमननर्पितमित्युच्यते । अर्पित चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्या
सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोधः । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता माग्निनेय
इत्येवमादयः सम्बन्धाजनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न निरुद्ध्यन्ते । अर्पणामेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता
पित्रर्पेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्यम्

मावाय—वस्तु में अनेक पद हैं सो वक्ता जिस पदको प्रयोजनके वशसे प्रयान
करि करे सो वो अर्पित है और प्रयोजन के बिना वस्तुके जिस पदके इत्थानकी इच्छा न करे वह अनर्पित है ।
इसमे यह न समझना चाहिये कि जो धर्मनहीं कहागया है वह वस्तुसे है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्माल्लक है
=सर्व की अविच्छा भी होती है अर्थात् सर्व की विच्छा तथा अविच्छा दोनों होती है
जिस से सर्व रूप होय तिससर्व प्रयोजन के वशसे अविच्छा करये सो गौण है इस
लिय निरोध रहित, दोनों (विच्छा तथा अविच्छा) में वस्तु की सिद्धि है

=अवधानपूर्वक अनर्पित ऐसे करा जाता है
=और (=च) अर्पित और (=च) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)
=निन (अर्पित अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे “अर्पित-अनर्पित सिद्धेः” (पेसा सूत्र)
=विरोध रहित है । जैसे कि एक देवदत्तका
=पिता-पुत्र भाई भानजा-भ्रातृयादिक
=सम्बन्ध जनकपना (तथा) अन्यपना आदिक निमित्त
=अर्पणा वा मुख्यताके भेदसे नहीं विरोधया जाता है । वेदकी अपेक्षाकरि (वह पुरुष)
=बाप है बापकी अपेक्षासे बही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥
=वैसरी (=तथा) द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

सर्पितानर्पितम् ॥ अनर्पितम् ॥ पृथिव्ययुक्ते ॥
अर्पितम् ॥ पृथिव्ययुक्ते ॥ व ॥ अर्पितानर्पिते ॥
अर्पितम् ॥ पृथिव्ये ॥ अर्पित-अनर्पित सिद्धेः ॥
न ॥ अर्पितानर्पितान् ॥ एकस्यादेवपत्न्या
निम्ना ॥ पुत्र ॥ भ्राता ॥ भागिनपत्न्यै ॥ इत्यप्यमोदरपत्न्यै ॥
मन्व्यापै ॥ नतकस्य न पत्न्यौ ॥ निमित्ताः ॥
भ्रजा पेदापै ॥ नदिकापये ॥ पुत्र अपेक्षया ॥
निम्ना ॥ विदुः ॥ विदुः ॥ इत्यप्यम् ॥ आदिः ॥
नया ॥ इत्यप्यम् ॥ अर्पितः सामान्यभरणयोः ॥ नित्यम्

(1) सर्वभित्तिः (विद्युः) प्रणामपूर्वकमे मातापुत्र मही है ॥ तीन इत्यन्त निमित्तान प्रतिकीमे मी यह शब्द मही है पञ्चमशब्दकृता वा वचनिकामे मी मही है
द्वयमर्पितोव न्-पुत्रक आरुज कर्षार्थेऽर्पितकृतिमे है एवमे इत्येते मातापुत्र मही त्यक्ता है यह मातापुत्र मातापुत्रके प्रधान प्रियोगापूर्वकमे है ॥
(2) कर्षी पर अर्पिते श्यायमे र्-दानया है अनेकवाक्य का करे अर्थात् विदुः-निमित्त-अर्पिते + अनेकया = अर्पितेकया बनाया व

विशेषापर्यायान्नित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतु
 भवत ॥ अत्राहसन्नोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसघातेभ्य सतां स्कंधात्मनोत्यत्तिरिदं तू
 सन्दिग्धं, किं संघात संयोगादेव द्वयशुक्लादिलज्जणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवधिप्रियत इति? उच्यते—सति
 संयोगे नन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्सघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यते, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

विशेष अपर्यणयार्थः॥ अनित्यम्॥

इति अनंघसिद्धा विरोधः॥ नोऽन्वयसामान्यविशेषोऽर्थः
 कथञ्चित् अयं-अभेदाभ्याम्॥ व्यवहार-रूपः॥ भवता ॥
 अत्र० आह ॥ सतः॥ अन्त-नय-व्यवहार-त-प्रत्वात्॥
 उपपन्नं भेद संघातभ्यः॥ सताम्॥ स्कंध-आत्मन उत्यधिः॥

अधीनपणा हे यतै सत्त्वरूप आदि-खच्छणः॥ संघातः॥ परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि वास्तुषाखा संघात
 संयोगात्॥ एवमवति । उत कश्चित् विचारः॥ भववियोगेऽस्ति॥ संयोगः॥
 अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके फेरल संयोगमात्रसे ही होता है वा अणुकादि वास्तुषाखा संघात
 उच्यते॥ सत्त्वात्॥ एकत्वपरिणाम आत्मरूपत्वं सति॥ संयोगः॥
 संघातः॥ निष्पद्यता ॥ यदि उपपन्नं उच्यताम् ॥

कुतः० (१) नु, खलु पुद्गलमाति अपरित्यागेः॥

(१) नु = किंतु = विशेष तर्क सत्त्वात् तर्कसे पश्चात् तर्कसे तर्क निकालना (ऐसो पक्षकम्कोप १० २२१) इसका अनुवाद 'तो किया गया है

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया वह नित्यत्व सिद्ध है ॥

नविशेषअपर्यणसे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियामाय और

पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

न्यत प्रकार विरोध नहीं है । कश्चि(=कश्चे)दोनों सामान्य-विशेष

=कथञ्चित् भेद अथेदसे व्यवहारक कारण होते हैं ।

=यार्(कोई) पुद्गला है कि सत्त्वे अनेकनयके व्यवहारके अधीनपनासे

=भेद तथा संघात और भेदसंघातकरि ये सत्त्वात् विनको(=सताम्) अकंधस्वरूप

करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्ना) है सारांश सत्त्वं है तर्क अनेक व्यवहारके

सत्त्वरूप पुद्गल स्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि वास्तुषाखा संघात

संयोगात् है एवमवति (=वत्) अर्थात् (संयोगमात्रसे ही होता है वा अणुकादि वास्तुषाखा संघात

उच्यते) सत्त्वात् एकत्वपरिणाम आत्मरूपत्वं सति संयोगः

संघातः निष्पद्यता ॥ यदि उपपन्नं उच्यताम् ॥

कुतः० (१) नु, खलु पुद्गलमाति अपरित्यागेः॥

=संघात उपपत्ता है जो इस प्रकार कहाजाय वो (अर्थात् जो आप कहते हैं) कि

संयोग होते सते एकत्व परिणामस्वरूप वयसे सघातकी निष्पत्ति होती है

=यौ(=नु) अर्थात्(ऐसा) होता है क्योंकि पुद्गल(अपनी) नातिको निम्नसे न छोड़ते सते

सतोऽप्यत्रिवक्षा भवतीत्युपमर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अप्रित चानर्पितं चाप्रितानर्पिते । ताभ्या
भिन्देर्पितानर्पिनसिद्धेर्नार्पितं विरोधः । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो आता भागिनेय
इत्येवमादयः सम्यग्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणामेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता
पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादिः । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्य

भाषाय—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान
करि करि सो वो अप्रित है और प्रयोजन के बिना वस्तुके जिस धर्मके करनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है ।
इससे यह न समझना चाहिए कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मालोक है
=सर्व की अविबद्धा भी होती है अर्थात् सर्व की विवक्षा तथा अविबक्षा दोनों होती है
विस से सर्व रूप होय विसवृत् प्रयोजन के वशसे अविबद्धा करये सो गौण है इस
लिये विरोध रहित। दोनों (विबद्धा तथा अविबद्धा) में वस्तु की सिद्धि है
=अप्रयानभूत अनर्पित एसे करा जाता है

• और (=च) अप्रित और (च=) अनर्पित अप्रितानर्पिते (इन्द्र समास रूपमें है)
=निन (अर्पित अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धेः" (पसा सूच)
=विरोध रहित है । जैसे कि एक देवदत्तका
=पिता-पुत्र-पार्थ मानज-इत्यादिक
=सम्बन्ध जनकपना (तथा) ज-पना आदिके निमित्त
=अर्पणा या मुख्यताक भेदसे नहीं विरोधया आता है । नेन्की अपेक्षाकरि (वद पुत्रप)
=बाप है बापकी अपेक्षासे बही पुत्रप चेत् इत्यादिक है ॥
=पैसही=वया, इय भी सामान्य अर्पणसे नियत है अर्थात् जब द्रव्यकपत अप्रित किया

मना अपि० अविबद्धाः॥ मपतिः॥ इति०
रममनीमूर्त्तुः॥ अनर्पितमूर्त्तुः॥ इति० उच्यते ।
अर्पितमूर्त्तुः॥ च० अनर्पितमूर्त्तुः॥ च० अप्रितानर्पितेः॥
गत्यामूर्त्तुः॥ मिदं च० अप्रित अनर्पित सिद्धेः॥
न० अविभ्रुत्सापाः॥ नगया० एकस्मै देवतास्य
निताः॥ दुर्गे आताः प्रागिनयाः इत्यस्य आदयः॥
मगन्ताः॥ तनकर न एत आदि-निमित्ताः॥
सराज पेटानां न० विरापनेतुपुत्र अपेक्षयाः॥
नियाः॥ पितृ प्रारणाः॥ नृपः॥ इत्येषु० आदिः॥
गया० इत्यमूर्त्तुः॥ अर्पि० सामान्यार्पणयाः॥ नित्यम्

(1) मूर्त्तिवद्विभक्ति पञ्चमानीमे ज्ञानाकार्य नहीं है । नीच इस निमित्त प्रतीयोमे भी यह शब्द नहीं है च० अविबद्धाका या अविबद्धाके भी नहीं है
केवलविरोध का अर्थच संकल्प मर्पार्थविद्वान्पिते है । एवमे वनेमे आता शब्द नहीं रचका है यह माना शब्द माना शब्दके पञ्चम टिप्पणीमात्रुभिने है न
(2) बही पर शब्दके स्थानमे र् दोनका है अर्पेक्षयाका ज परे अर्पणु भित्तु = अभिन्द (शब्दके स्थानमे र् दोनके) + अपेक्षया = विपक्षया वनाया न

सयोगे च सति भवति वेपाचिद्वन्धोऽन्येषा च नेति । उच्यते यस्मात्तेषां पुद्गलात्माविशेषेऽप्यनन्त-
पर्यायाणां परस्परविलक्षणपरिणामादाहितसामर्थ्याद्भवन्प्रतीतं

॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥

(1) भयान्तरेप० मन्दिरेभामिनः
 इत्यविवृ० न्य । अन्यथाप । प० न० अग्निः
 प्रपन्न-यामात्० नयाम् । पुद्गल माय्य अविशयः । अग्निः०
 प्रन न यथाशालाम् । परस्पर विलक्षण-परिणामाद् । अहित-अन त पर्यायैके परस्पर विलक्षण परिणामनकस्मिन्नणकरीभरी (= अहित)
 मामप्याद् । मयनः । प्रतीतः ।
 (= सामर्थ्यसे बन्धका होना प्रतीत है । येषन् वर्तमानकृदन्त प्रथमा एकपचनपुञ्जिगरे)
 (1) सूत्रम् - (1) स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥ = (पुद्गलानां) स्निग्धरूक्षत्वात् बन्धः (भवति) ॥ ३३ ॥

(1) दानोनात्करी इतीदृशे मायार्थमिद्विपुलिते । सयोगे सति सति बन्धि वाप्य सुप्रसे दहयार्थेनोकि यहवाप्य सोमहत्याविकृतिसवर्धोसिद्धिपुलिकी
 र्त्तनोमे विपमान है और मायार्थरूक्षत्वानिक सुद्रित प० २४० पर तथा इस्तमितित राजपर्यायिकोमेमी उक्त पापक्य' सति शब्देके अतिरिक्त पाया जाता है
 रिता कन्त काय सुप्रसे नही होनाकना है न पापवोका परस्पर सहबन्ध मिल सकता है ।

(1) दानोनात्करी इत्येवमतीति एत मन्त्रेण गाठ और अण एकमा है । कर्त्तव्य-पर्य गाठहे कर्त्तव्य-पर्य गाठ है दोनों गाठ हीक है (1) अथप्याय ५४० । ५४१)
 (1) एव तयो न्तरेषा वर्ग और मायार्थे गृह्य हे अनेके अनेक देगस हमारे यहाँ माप्यकारो तथा द्विती नोकाकारोमे उक्त सूत्रोका तापर्यमं बिकारो हे
 है । "अने उक्तपिबो परिणामको के अर्थमे हमारे यहाँ अनेपिबो परिणामिको व स्य हे अर्थमे यहाँ 'अ' हे उक्त यहाँ 'सम अन्व हे ॥
 दोनो अर्थको हे पाठसे एकी समानता दोमेपर जो गिहल तीव सूत्रोके अर्थो में अर्थ पाया जाता है किनाका अर्थोके हम प्रसंगानुसार आणकरहेने । उक्त
 र्त्तनो अर्थोके समानमेव मरुत्तर प्रपय दिया गया है प्रथम इत्येक कि हम एकक पुण्यत् सूत्रका अर्थ' कहे यह उचित है कि दोनो अर्थमायार्थोमे आ अण
 वेद हे उक्त मन्त्रेमे सुप्र उल्लेख किया जाये । तिनपका स्निग्धत्वात् दोगुल (= अविभाग्यरित्येके) अर्थिककति कथ्य होता है और उक्तका कथ्यत्वात्
 एत अर्थिककति कथ्य होना है और कथ्यत्वात् दोगुल अर्थिककति कथ्य होता है और स्निग्धत्वात् उद्धारः दोगुल अर्थिककति कथ्य होता है
 उक्तप्युक्तो द्वाद्दर उक्त ही अर्थिकगुल सम(अज्ञान ५३ = १० १२ इत्यादि) ही अर्थया नियम(अर्थान्त १७२ १२ १३ इत्यादि) ही दोगुल अर्थिककति की
 र्त्तनो हे उक्तपि नही है । दोनात्करी न्तरेषा वर्ग और मायार्थोके अर्थमायार्थोमे सूत्रका अर्थकथ्य यह अण कर्त्तव्य कि गणनाअर्थसति
 न एतन्ही अर्थो मे सति गुणको नामना दोमेपर एतन् पुद्गलोके अर्थ नही होना हमारे यहाँके प्रथम मायका माना है और दूसरे मायका नही माना है
 एतन्ही अर्थका स्निग्धत्वात् दोगुल अर्थिककति कथ्य होना है और उक्तका कथ्यत्वात् दोगुल अर्थिककति कथ्य होना है और इत्येव मन्त्रमेव ही और उक्त
 है कि उक्तका स्निग्धत्वात् कथ्य होना है और स्निग्धत्वात् कथ्य होना है और उक्तका कथ्यत्वात् दोगुल अर्थिककति कथ्य होना है और इत्येव मन्त्रमेव ही और उक्त

सुमार्थ — १) बुद्धगलानाम् २) स्निग्धपदानां वा विकल्पनांसे
 रुद्रसन्निह ॥ इत्यर्थः ॥ यवनिगि

= बुद्धगलानाम् (परस्पर धूमनिपत्त सुप्त वा सार्थे होनेपर) स्निग्धपदानां वा विकल्पनांसे
 = (और) रुद्रपदानासे कल्पनेसे, वा शरकरेपनसे बन्य होता है अर्थात्
 दो प्रत्ययपूर्वक परमाणुओंका बन्य परस्पर स्वरूपपर्यं और दो आवृत्ति पूर्णकृत्यपूर्व स्वरूपोंका

रसो इत्ये उद्योने "निरि अचिदातिपुञ्जानि तु सद्यमानां कनो मयति" इस सूत्रमें केवल 'सद्यमानां' को अनुवृत्ति ली है और यह अर्थ किया है कि सद्योके
 रूपके लिये दोगुण अधिक होनेकी आवश्यकता है अतसद्योके रूपके लिये अचिक गुणोंकी कोई आवश्यकता नहीं है । इस अर्थ से पुण्य कार्त्तिके लिये
 कि असद्योका रूप तथा विना गुणोंकी अचिकताके होअता है इसारे यद्यपि "अचिके अचिकी परिष्कारमौच" के स्थानमें बन्ये समाधिद्वी परिष्कारमौच" सत्य
 दिया है और यह अर्थ किया है कि 'कन्ये सति सामगुणस्य समगुणाः परिष्कारमासा मयति अचिकेसुको हीनकेशमि' अर्थ्य इतिगपर यदि सामगुण है तब तो
 सामगुण वा सामगुणाकाही परिष्कार होता और हीन गुणका अचिक गणकाम्य परिष्कार होता अर्थात् असद्योके रूपमें अर्धा गुणोंकी समता है यहाँ
 सामगुणाका परिष्कार हाता और सद्योके रूपमें अर्धा दोगुण अचिक है यहाँ अचिक गणकाम्य परिष्कार होगा । "असत्यगुणकालोका रूप्य गही होता"
 इस अर्थिगम सिद्धान्तमें हीनो सामग्य सहमत है ।

(१) यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'बुद्धगलानां' शब्दका अर्थवा 'अणुनां' शब्दका अर्थवाह करना चाहिये अर्थात् यद्यस्य केवल अणुओंसे सत्य
 रचना है अथवा अणुओं और सद्योको दोनोंसे सम्बन्ध रचना है अथवा अर्थ है कि एकत्र मरुसे सघातसे और मरुसघातसे उत्पन्न होता है।
 यहाँपर संघात शब्द और रूप अणुका एकही अर्थ जान पड़ता है अर्थात् आगे रूप्य सघात परस्पर और संयोगके अन्तगत रिक्तानेमें सिद्ध करते ।
 रूप्य सघात परस्पर सघातके अर्थदिलिये इस अर्थ्यायका पृष्ठ १५०, १५१, देखो । (अपर) यह सूत्र अणु और सद्यो दोनोंसे सम्बन्ध रचना है क्योंकि

(क) वा गुणक २ परमाणुका के रूप्य वा संघातसे रूप्य होता है । एक परमाणु और सद्योके संघातसे रूप्य उत्पन्न होता है दो तीन आधिक
 सद्योके रूप्यसे रूप्य होता है और रूप्यका कारण सिन्धुपत्त और सद्योके संघातसे रूप्य उत्पन्न होता है दो त्रुत्पत्तसे दो रूप्य होता है । अब
 सद्योके भी कारण के रूप्यके लिये संघातना और सद्योके भी सद्योके संघातसे रूप्य उत्पन्न होता है । परमाणुओंके सिन्धुपत्त और त्रुत्पत्तसे दो रूप्य
 "बुद्धगलानां" शब्दका अर्थवाह करना चाहिये (नकि केवल अणुनां अर्थका) अर्थात् कि सिन्धुपत्त उत्पत्तसे दो रूप्य उत्पन्न होता है । अब
 दिया है अर्थात् कि वा परमाणुओंके अर्थसे दो प्रवेष्टाणा रूप्य उत्पन्नता है दो प्रवेष्टाणाके रूप्यके दो प्रवेष्टाणाके संघातसे वा तीन गुणी हुई परमाणुओंके
 मिलनेसे तीनप्रवेष्टाणा रूप्य उत्पन्नता है । दो दो प्रवेष्टाणाके संघातसे तीन प्रवेष्टाणाके रूप्यके दो प्रवेष्टाणाके संघातसे वा तीन गुणी हुई परमाणुओंके
 हुए परमाणुके संघातसे चार प्रवेष्टी रूप्य उत्पन्नता है । दो दो प्रवेष्टाणाके संघातसे तीन प्रवेष्टाणाके रूप्यके दो प्रवेष्टाणाके संघातसे चार गुणी
 इसत माट है कि एक रूप्यका दूसरे रूप्यके साथ परस्पर संघातसे सिन्धुपत्त उत्पन्नता है । इस प्रकार संघात अर्थक्यात, अन्तर्गततामर्थक संघातसे उत्पन्न प्रवेष्टाणाके रूप्य उत्पन्नता है
 अन्तर्गततामर्थक और रूप्य उत्पन्नता है नकि केवल परमाणुओंसे ही ।

(ख) ऐसे स्निग्धपदानां बुद्धगलानां परस्पर रूप्य आगना" १०० संघात उत्पन्नतामर्थक उत्पत्त (स्पर्शिक) वाक्यवेदो ।
 (ग) "य सद्योका क तथा संघातकस्य अविनापपरिष्कारके निमित्तपर्यं एक परमाणु तथा स्निग्धपदानां स्निग्धपदानां स्निग्धपदानां
 तथा तत्पर्यं स्निग्धपदानां पृष्ठ १३ । अणु क यत्पत्त, यह अर्थ है कि सिन्धुपत्त और सद्योके संघातसे दो रूप्य उत्पन्नता है । दो दो प्रवेष्टाणाके संघातसे
 परस्पर रूप्य होता है । एक परमाणु तथा तीन परमाणु वाले रूप्यके परस्पर रूप्य होता है एक परमाणु तथा चार अणुवा रूप्यके परस्पर रूप्य
 होता है इसी प्रकार एक परमाणु तथा चार आधिक अणुवा रूप्यके परस्पर रूप्य आगना ।

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तच्छक्तौ बन्धो ह्यथुक्कादि परिणामः ।

स्निग्ध-रूक्षत्वाद्ग्राह्यनिवहत्तु निर्देशः । = विद्वन्नापन स्वस्वापनस पसरुक्का रूपनईअर्णत्ति वणकाकारणतो पुद्रलोमें है वर्षाविकनार्इ स्वस्वापनं है तदु ह्यु नै 'वर्णनोऽद्दि अणुक आदि-परिणाम' है। उदन (स्निग्धपपन-रूक्षपन) का क्रिया हुआ बाप दो अणुकादि परिणामनस होता है ॥

(१) स्निग्ध-रूक्षत्वात् इस बाक्यसे हो प्रस उरण्य हात है प्रथम यह कि सूत्रमें स्निग्ध रूक्षत्वात् क्यो भावे कृवत्तपद्रुकावण्य इतना सूत्र होता तो सूत्र नपु हो जाता और पद्रुत्वात् शब्दके भी अणुवाहात् कायेको वाचययकता नहीं होती और न यह शब्द उत्तर्य होतो कि सूत्रमें 'अणुना शब्दका अर्थवाहार किया जाये अणुवापुद्रुत्वानो' अर्थका । दूसरा प्रस यह है कि बापका भिन्निष्ठ वा हेतु सूत्रके शार्दागकृत्तु (न कि सिद्धान्तके अंतर्गुण), स्निग्धपपन इत्यादि मिले हुए हैं अणुना (स्निग्धरूक्षत्वात्) मिले हुये और वणक गुणक, शोनी है अर्णान् सन्नक शब्दोंक अणु के अंतसार् स्निग्धपपन और रूक्षपण कागणो वीं कहिये कि कल्पन भिन्नापन (लंगोण अणुवायमें) बापका हेतु है वा स्निग्धरूक्षत्वात् और रूक्षत्वात्कालपुण्यकृत्मी वणक कागणो है (वहिल प्रसत्ता उत्तर) पद्रुत्वाके हुय अणुय हो अर्थ है । अणुयकप रूक्षत्वा है और उसक निम्नादिभित्त बौरस गच्छ है । वरुं पाँच (अंत पीत शीघ्र अरण्य कृत्वा) । उस पाँच (निक, कृत्वा कृवायका कदा मीठा) । गण वा (सुगण सुगण्य) और शर्योके मुख आठ (शीत उच्छ स्निग्ध कप सूत्र कठार दलका मारी) । अणु गृह्य है और उसमें पाँचगुण होत है अर्णान् पाँच दलोमेंस एक पाँच कर्वामेंसे एक हो गण्यमेंसे एक शर्योके अर्णगुणोमें से वो शीत होणा अणुय हाणा कप होणा उपक्वा स्निग्ध कविवर पंथानलिराव्योने "द्रव्यसंमिद को भावामे वखाभी है कि वक् अर्णोय शर्यो है वारो (अ-यर्थ अर्णम अर्णण्य बान्) अन्निक कमी विभाव न होय । पुद्रुत्त सुय अणुय विराओ सुय अन् गुण पाँचो जोय ॥ सोत ताव प्रत्यक्विकमी (मे)स वो रस गण्य वरन इकभाव । यय अणुयबोय गुण पराट देखेत्राले बहन साथ ॥ क्वचित्त ३॥ भाग्य प्रथ्यसंधसे उद्रुयुग ॥ इन पुद्रुलोके गुकोमेंसे बापका बाण्य स्निग्धपपनोपद्रुत्वावहो है एवलिये इस वेतीवर्षा) सत्रमें स्निग्धपपन रूक्षत्वा भाये है कि पाठरुणय वह न समझलें कि वणं रस गण्यमें से काई गुण और शर्यके आठ गणोमें स स्निग्धरूक्षत्वाक अतिरिक्त काई बाण्य गुणकी कण्यका कारण है ।

(दूसरे प्रकार उत्तर) सिद्धान्त नी यह है कि स्निग्धरूक्षत्वात् रूक्षत्वात् स्निग्धरूक्षत्वात् रूक्षत्वात् अणुयके हेतु है परन्तु निम्न निश्चि हेतुकोसे मूत्रका शरण्य गृही है कि स्निग्धरूक्षत्वात् रूक्षत्वात् रूक्षत्वात् रूक्षत्वात् अणुयके कारण है अर्णान् स्निग्धका बाप रूक्षक साथ होता है अणुवा वो कहिये कि रूक्षक बाप स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धक साथनी बाप्य हाणा है और रूक्षका रूक्षके साथनी बाप्य होता है क्योकि यदि उमास्थानीका (विद्यालक अम कुल) यह अस्मिनाय कि स्निग्धरूक्षत्वात् रूक्षत्वात् स्निग्धरूक्षत्वात् और स्निग्धरूक्षत्वात्का परस्परबाण्य हाता है। भावको रचनी एस हातो कि 'स्निग्धरूक्षत्वात् अणुयक' अर्णान् स्निग्धपपनसे और रूक्षपपनसे और स्निग्धपपन रूक्षत्वात्का अणुयबाण्य हाता एयानीको 'अणुयशातय उत्तरयत सूत्र रखा है कि (पुद्रुगलोका स्फुट्य/अदसे उग्रता है अणुनाल उग्रता है और अणुयपात्रसमी उपजताहीय दूसरे यह कि 'गुणसाम्यबरणामी' सूत्रमें इन सूत्रकी अन्तर्गत प्रहस्य कोअर्थ है कि गुकोकी समागता हाणपर सहजोका और असहजो (स्निग्धरूक्षत्वात्)का भी बाण्य नहीं हाता है और गुकोकी विगमता हाणपर स्निग्धरूक्षत्वात् रूक्षत्वात् रूक्षत्वात् रूक्षत्वात् और असहजो (स्निग्धरूक्षत्वात्)का भी अज्ञाति काय रस गिरले कह हुए सूत्रका अर्थ' करौय। नीसेर यहकि ब्राह्मिक बजस दलाल की है सच्छुनक माण्यकार अैन पम्पणाव स्वामी अकलक स्वामी शोधनसाग नरिन समाप्येक रचयित्ता एयानिने और भागाक टीकाकारों ने इन सूत्रका अर्थ' यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वात् बाप्य होता है कितीने रस सूत्रकेअणु गेणह नहा भिक्वा कि स्निग्धरूक्षत्वात् रूक्षत्वात् रूक्षत्वात् बाप्य हाता है । हा रत्ना श्रव्यातिकक रचयित्ता शोधयिनाम्प स्वामीने सूत्रके अर्थकारनमें था यही उग्रय किया है कि स्निग्धरूक्षत्वात् से बाण्य हाथीपरन्तु एसीसूत्रके माण्यमें दूसरे इत्याकमें यथाप्यसिद्धत्वात् हेतुवाही है। स्निग्धत्वा

त्राद्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावान् स्निग्धत्वमिति स्निग्ध । तथा रुक्षणाद्भ्रूज ।
स्निग्धश्च रुक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भाव स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षण पर्याय ।
तद्विपरीतपरिणामो रुक्षत्वं ॥

आपसमें बन्ध अन्ध एक पक्षमें स्निग्धता और रुक्षताक हेतुस होता है ॥

बुधय-बाय अभ्यन्तर कारणवशात् स्नेहपर्याय चरिंरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिकण पर्यायके

प्रविपत्वाद् स्निग्धे । अस्मिन् प्रति * स्निग्धे नवाभ्यान्वाट होनेसे जिसमें चिकनार् है (=स्निग्धते) ऐसा स्निग्ध है । वैसेही

रुक्षणाद् रुक्षः ।

स्निग्ध १ व रुक्ष १ ॥ १ ॥ स्निग्ध-रूक्षौ १ ॥

वशो १ भाव १ स्निग्ध-रूक्षत्वयो १ ॥

चिक्कणुसदस १ पर्याय १ स्निग्धत्वयो १ ॥

नृ-विपरीत-परिणामो १ रुक्षत्वयो १ ॥

=रूखेपनसे रुक्ष है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायक होनेस जिसमें रुक्षताही सो रुक्ष है
=और स्निग्धऔर रुक्ष हैं उनका एक सो (दो) इसभासमें स्निग्धरूक्षी ऐसा बाक्य बनताही ।
=उनयोर्नो (स्निग्धरूक्ष) का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रुक्षापन है ॥
=चिकनापनलक्षणपाशा पर्याय है सो स्निग्धता है
=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम वा पर्याय सो रुक्षापन है

(घ) आह गव्यो गतिरस्य रुक्षगुणवशात् पुरुगलानां बन्धः स्यात् । स्नेहगुणयोगान् स्निग्धत्वात् रुक्षगुणयोगात् रुक्षताः । अत्रावात् पुरुगलानां बन्ध स्यात्
= चिक्कणुसक सवोक्ते स्निग्ध है रुक्षगुणके सयोगसे रुक्ष है उनके भावस (= होनेके) पुरुगलोका वन्ध होता है । तस्मात् श्लोकवार्तिक पृ० ४३५ रेको ।
रवाक-रुक्षता बन्धस्य चास्येत् स्निग्धरूक्षत्वयोगत । पुरुगलानामिति अस्ता सन्नस्मिस्तत्रावात्ता ॥ १ ॥ तत्पार्थस्योक्त्वार्तिक पृ० ४३५ रेको ।
= रुक्षता बन्धात् सा च अस्ति पर्याय स्निग्ध रूक्षत्वयोगत । पुरुगलानां इति धस्ता सूत्रे अस्मिन् तदु भ्रमावता ॥ = बन्धसे भन्ध होता है और (घ)
पररुक्षत्वपदपूर्वको चिकनार् रूखेपनके योगसद्वताही (पुरुगलोका) आशुहोताही । ससमंसे उससिद्योगत्वात् कि पुरुगलगतको भासहोताही, अभावही ॥
(रवाक) स्निग्धत्वित्येतया उकारात् स्निग्धत्वात् पुरुगला । बन्ध यथासते रुक्षयसिद्धौ चोच्यन्तासि ॥ २ ॥

= स्निग्धता स्निग्धो तथा रुक्षा रुक्षैः स्निग्धता च पुरुगला । बन्ध यथा आसते रुक्षयसिद्धे वाप कदाचित् ॥
= स्निग्ध/पुरुगल स्निग्धवर्तिनगारु/पुरुगल/रुक्षवर्तिधीर/घ) स्निग्ध पुरुगल/रुक्षवर्ति, यथायोग्य/बन्ध) बन्धको भास होता है रुक्षयकी सिद्धि वाचारहितही
(घ) "स्निग्धरूक्षयो पुरुगलयो परस्परयो रुक्षयो बन्धो भवतीति" - स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके) पुरुगलोका आपसमें झुजाने पर बन्ध होता है ।
साभ्यात्स्वार्थविभक्त्यर्थ पृ० १३७ । पुरुगलाः शब्दक भावसे स्पष्ट है रुक्ष्य और रुक्ष्य पुरुगलोका बन्ध रुक्ष रुक्ष द्वारा होता है ॥
(घ) बन्धो बन्ध मे रुक्षयोके बन्धका अभाव आताही और यह नियमसा होजाताही कि संभागमें बन्ध अस्त्युपेक्षाही रुक्षयोका नहीं
होता यह बात पर्यायता और वाक्याक विरुद्ध है कि केवल अस्त्युपेक्षाही बन्ध होताहो । अतः उच्यते अस्त्युपेक्षा बन्ध बात स्पष्टतया सिद्ध आती कि यह
सूत्र अस्त्युपेक्षा योगरूक्षयोकोके बन्धसे साबन्ध रचनाही बात हमने "पुरुगलानां शब्दको अन्वयात् रुक्ष रुक्ष स्युक्तानां भावस्य ऊपर यह लिखा है कि यह
पुरुगल परस्परानुकोका बन्ध परस्पर रुक्षयसिद्धये और दो कारि पुरुगल रुक्षयोका आपसमें बन्ध अर्थ रुक्षरूपमें स्निग्धता और रुक्षतासे होताही ॥

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तद्धतो वन्धो ह्ययुष्कादि परिणाम ।

स्निग्ध-रूक्षत्वादेः॥प्रतिशेदु निर्देशः । =विक्रनापन स्लापनस परसेदुका कथनैर्भयति यपकाकारखभो पुत्रलोमें है पहाधिकनार् स्लापनने
 वदु ठुत नैगन्धैर्दि अयुष्क-आदि-परिणाम है।अवन(स्निग्धपन-रूक्षपन)का किया हुआ बन्ध दो अयुष्कादि परिणामनस होता है ।।

(१.) स्निग्ध-रूक्षत्व, इस शब्दसे वा प्रस उपाह होस है प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्ध रूक्षत्वात्'को लाये कवचपुत्रहा।कम्य इतनी लघु होता
 तो सूत्र नपु होजाता और 'पुत्राणां शब्दकेनी आशयकार करनेकी आशयकता नहीं होती और न यह शंका उरपण होती कि सूत्रमें 'अप्यानां शब्दका
 आशयकार किया जावे अथवा पुत्राणां शब्दका । दूसरा प्रस यह है कि कथयका निमित्त वा हेतु सूत्रके शब्दनिष्कल(न कि सिद्धात्के अयुष्कत्व)।स्निग्धत्व
 रूक्षत्व मिले हुये है अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पुष्पपुष्क, वीरों है अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थ के अन्वयार स्निग्धपन और रूक्षपन
 अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (संकीर्ण अर्थवर्णामें) बन्धका हेतु है वा स्निग्धत्व विनिरुक्तत्व पुष्क और रूक्षत्वकल्पयुष्क भी वंचक कारख है
 (परिसे प्रसका उचर) पत्रके ठाव अमुक हो गेते हैं । अयुष्कत्व एकमेव है और उसक निम्नलिखित बीस गण हैं । १. वर्षे पोष (अत पीत गीळ
 अरुस छत्र) । २. रस पोष (निळ कटु उष्ण कपायका कसु मीठा) । गण वा (सुगंध सुगंध) और स्पर्शके गण आठ (शीत उष्ण स्निग्ध कठ सूक्ष्
 कठोर हलका भारी) । ३. अयुष्क है और उसमें पोषगुण होत है अर्थात् पोष रसोंमेंसे एक पोष वर्णमेंसे एक दो गणमेंसे एक स्पर्शके आठगुणोंमें
 से नौ शीत होती अथवा उष्ण हागा कठ होता अथवा स्निग्ध कविचर य आनिरावकती "प्रत्यसप्रह को मागामें क्वामी है कि पच अजीन शुद्ध है
 थारी (—वर्षे अर्थात् आकाश काळ) किन्नक कभी विमाल न होय । पुत्रन सुख अमुक विराई सुख अन्-गुन पोषा ओय । सीत ताग इत्य विकल्प(ने)स
 हो रस गण्य बरत इच्छाय । अथ अयुष्कबीस गुण पराठ देखेनामे अतन साय । कविच ३।। भाया प्रहस्यसंप्रहसे अयुष्पुन । इन पुत्रलोके गुणोंमेंसे
 वन्धका कारण स्निग्धत्वऔररूक्षत्वो है इसलिये इस ठेकीसर्वां सत्रमें स्निग्धस रूक्षत्व लाये हैं कि पाठअगळ यह न समझें कि वर्ण रस गणमें से
 कोई गुण और रसके आठ गुणोंमें स स्निग्धत्वरूक्षत्वके अनिश्चित कई अन्य गुणकी कथयका कारण है ।

(दूसरे प्रसका उचर) सिद्धात् नी यह है कि स्निग्धत्व रूक्ष रूक्ष स्निग्धत्व (स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्ष रूक्ष रूक्ष वर्णके हेतु है परन्तु निम्न
 लिखित हेतुओंसे सूत्रका शब्दाग यही है कि स्निग्धत्व रूक्ष रूक्ष स्निग्धत्व वर्णके कारण है अर्थात् स्निग्धका वर्ण रूक्ष साथ होता है अथवा
 यों कहिये कि रूक्षका वर्ण स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथमी वर्ण हागा है और रूक्षका रूक्षके साथमी वर्ण हाता है क्योंकि
 यदि उमास्वामीका(मिथ्यामेके अक्षुण्ण)यह अस्मिन्नाय कि विनिरुक्त स्निग्धत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परवन्ध हाता
 है तो सबको रचना पसे होनी कि स्निग्धरूक्षत्वगोबन्ध, अर्थात् गन्धत्वसे और रूक्षत्वसे और स्निग्धत्वसे अथवा हाता है असाकि रूक्ष
 स्वामीकोने 'मेदसपातम्य अथपत्त सूत्र रवा है कि (पुत्रगुणोका रूक्षत्व)मेदसे उपकता है अथानसे उपकता है और मेदसपातम्यसमी उपकता है। दूसरे
 यह कि 'गुणसाध्यमेदशानां सूत्रमें इस सूत्रकी अन्तर्गुण महल्य कोलाये कि गुणोंकी समानता होनेपर सद्योका और अतसद्यो (स्निग्धरूक्षत्व)का भी
 वर्ण नहीं हागा है और गुणोंका विद्यमानता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) शानोंमें कथ हाता है
 असाकि भाग इस पिछले क्व गुर सूत्रका अर्थ करेते।/नीसरे यहकि अर्थात् हमने उदाह की है सत्पत्तके माप्यकार अथ पत्तयात् रवामी अकलक
 स्वामी प्रोधनसाग मरित समान्ये के रचयिता हयवित्ते और भाग्यके टीकाकारों ने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे वर्ण होता है
 कितीने इस सूत्रकेअर्थ में यह नहीं लिखा कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्वसे वर्ण हाता है । हां उमास्वामिकके रचयिता प्रोविद्यान्व स्वामीने
 सूत्रके अर्थकारमें वा यही उद्देश किये है कि स्निग्धरूक्षत्व से वर्ण हाता है परन्तु इसीसूत्रके माप्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धात् देवियाई'सिन्धवा

तथा रूक्षगुणोऽपि ॥ तद्गुणाः परमाणवः सन्ति । यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीनीरघृतेषु स्नेहगुण प्रकर्षो-
 प्रकर्षेण प्रवर्तते । पाशुक्रियकार्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्टः । तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्ति
 प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते ॥ स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाह-

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा रूक्षगुणोऽपि ॥

रूक्ष-गुणः ॥ परमाणवः सन्ति । यथा श्लोथ-अवा
 मो-अरिपि-वृष्टी-धीर-मृतेषुः अरुण्डधे
 प्रकर्ष-अमकर्षेणैः प्रवर्तते । चक्षुषीयु-अलिङ्गा
 शर्करादिषुः रूक्षगुणोऽपि ॥ तथा •
 परमाणुः अपि • स्निग्ध-रूक्षगुणयोर्भूवृत्तिः ॥
 प्रकर्ष-अमकर्षेणैः अनुमीयते ॥ स्निग्ध-रूक्षत्व
 गुणनिमित्तयोः अविशेषेणैः प्रसक्तेः
 अनिष्ट-गुण-निवृत्ति-अर्थम् ॥ ॥ आह ।

=वैसेती(=जवा)रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच
 छह इत्यादि संख्याएँ, असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते हैं

=गुणकचित(=दृष्ट)धिक्ये स्नेसगुणवाली परमाणु है । जैसे जल(=तोय)प्रकरी(अजा)

=गक(=तो)भ्रंस(=अरिपि)वटनी(=वृष्टी)के दूध थी वियै सधिक्यगुण

=अकर्षक और घटतीकरि प्रवर्तता है । और (=व)पृस्ति(=पाणु)आलु(=कणिका)

=कंठरादिकमें रूक्षगुण(बडवा घटवा क्रमसे) देखा जाता है । जैसे

=परमाणुओंमें भी विकने कसे दोनों गुणोंकी स्थिति (=वृत्ति)

=बडवाई घटवाई अनुमान की जाती है । अचिह्नता और रूक्षापन

=गुणनिमित्तक यथै अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर

=अनिष्ट फलके निवारण के लिये करते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे विकनार्ह

रूक्षापनके हेतुसे पन्थ होवा है इससे यह मतंग आवा है कि यदि सचिकणता

और रूक्षापन परमाणुओंमें वर्तमान वा नियमान है तो पात्र सर्व प्रकार अभेदरूपसे विशेषता

रहित होरी जावाहीगा इस अनिश्चित अनुमानक दूर करने के लिये अक्षिप सूत्रमें करते हैं कि

॥ सूत्रम्—न जघन्यगुणानाम् (परमाणुना बन्ध भवति) ॥ ३४ ॥

स्निग्धरूक्षत्वाते निष्टगुणोंके परमाणुका प्रथमही होता है अर्थात् जिस परमाणुमें

इस एकका पाठ और अंग भी दोनों आम्नायोमें एकता है । हमारे वहाँ कहीं कहीं पर गच्छगणनाम गाठ है यद्य काननरूपमाला व्यापारकके
 अतिरिक्त कच्छक है (अ० पृ० ५४०, ५४१) इस सूत्रमें परमाणुका और अक्षिप सूत्रका अन्वय ही और परमेश्वरकी अगुणिय प्रतीतिप्रतीति है ।

द्वयो स्निग्धरुच्यधोरणवो परस्परश्लेषलक्षणे वन्धे सति द्वययुक्तस्वन्धो भवति ॥ एवं संख्येया-
संख्येयानन्तप्रदेश स्वन्धो योज्य । तत्र स्नेहगुण एकद्वित्रिचतु संख्येयासंख्येयानन्तविकरूप ॥

दशो ३ । स्निग्धरुच्यो ३ । अणवो ३ । परस्पर-रुच्य-लक्षणे ३ = दो बिहनी क्ली अणुभूमिं आपसकं एकमेक (= श्लेष, स्पर्शपरिचय) (= श्लेषो)
रूपं । सति ३ द्वि अणुत्-रुच्य ३ । पबविति ३ ॥

रुच्यणुसिद्धिर्न ही उक्त परस्पर सर्वासिमावदकरि प्रदेशानुवशात्मक एव अणुबाष्ठा स्वरूप बाष्ठा है अर्थात् दो परमाणु स्निग्ध और
परस्पर संख्येय असन्तप्रदेश ३ । स्नेह ३ । योज्य ३ । = इस प्रकार संख्याव असंख्याव और अनन्त प्रदेशबाष्ठा स्वरूप बलव्य शोभा है
तत्र अणुगुण ३ । एक द्वि-त्रि-चतु-संख्येय-
असंख्येय-अन्तद्विद्वय ३ ।

गुण स्निग्ध, चारगुण स्निग्ध, पांचगुण स्निग्ध, षण्णगुण स्निग्ध इत्यादि ऐसे संख्यावगुण
स्निग्ध, असंख्यावगुणस्निग्ध और अनन्तगुण स्निग्ध एक एक परमाणुमें होसकते हैं ॥

विनायेकभावद्वाराकरी: स्निग्धवाचक पुरुषता परस्पाव उक्त स्वामीकीके गुणसाम्ये संख्यानां च बन्धे माप्यसे यह बाग मूलकतीही किस्तिगपकक्यावदुत्तरा,
एव इत्यत्र स्निग्धवाचकम एवएव (बहोवच उवका शब्दाय है) रचना है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथ बाण्य और रूका एकके साथ कथ से ॥
१) योप गद कि उपर्व क धान से रचनाका और कानका महत्व प्राप्त होता है सा कैसे? इस प्रकार कि ३३३३ स्त्रु बाण्यका केवल हेतु प्राप्त करना ही
और योभोमो) स न न्योमायवस्ते ततोमवो स नका अणुवाच है वंतीमवात्स्य मुबोकी समानतामें तेषोमवात्स्यका अणुवाच हातेदुबेमी विद्यमानकीकी
घरगन्तमें उत्स(गीसर्षो) स्रुका विद्याग करना है इतोसर्षो सूत्र एव विद्याकी वृद्धिओ पूरा करता है कि दो अधिक आदिगुणको हातेपरवही संख्या
और घ-शोका बाण्य हाता है स्तोसर्षो सूत्रमें बाण्य हातपर प्रत्येकी एककीसरी अवस्था वा तीसरा स्वक्य शोकाता है न प्रथम रूप ही न दूसरा
हाते शब्दांतर परकीमगसव पाण्य करतीहैवेते काकावीका रंग याकाकरमिजातेपर कीरके एकसंख्या इराहाजाताहैइकठप्यबकीहै न वीतपयकीहै
(१) "दो अधिकलक्षणका वा रूकाबाष्ठा अविनागपरिच्छेद है तिमहीदुपुण्य बद्ध है ॥ परमाणुमें सचिक्काण्यका एकअविनागपरिच्छेदसे लेय
अनप पर्येण बद्ध है ॥ अत एक परमाणुमें अनेक अविनाग परिच्छेद से घटे तो संसंख्यात वा संख्यात दोर तथा एक अंतपर्यंत रईश्रवा सचिक्का
यामपु एव हाजाव है ॥ इव श्रमायु सचिक्काय हाय है व सम्य समप परिष्कल है अत बाष्ठा प्रत्येक काज आवाधिककिके निमित्तपरिचर है ॥ येस
स्निग्धपुरुषता परमाणुमें तथा संख्यामें जातना ३ वं लदानुकीकी कृता ३ वं प्रकाशिका पुं ३ ३ ३ सूत्र ततीसकी भाषा से उक्तपुत।

(२) यह न क्यात प्रदेशी संख्या इस प्रकार उत्पन्न होता है कि रूकागना तथा चिकनापताके अविनाग परिच्छेदके निमित्तस हापरमाणुका अनुमेस
प्रदेशाभा ३ संख्य उत्पन्नता है । शम्पदेशाभाके संख्याके और अणुत्क स वातसे अणुवा तीन जाती हुई परमाणुत्क मिश्रणसे तीन प्रदेशबाष्ठा संख्या
जायदेशी संख्या उत्पन्नता है इसी प्रकार बाण्य न भयान प्रदेशी संख्यापुबोक्त अणुगुणार कली हुई और कली हुई परमाणुसे संख्या है येकाही काम
बल क्यात प्रदेशी संख्याकी अन्तम प्रदेशी संख्याकी और अन्तगुणान्त प्रदेशी संख्याकी उत्पत्ति जानी ॥

तथा रूक्षगुणोऽपि॥ तद्गुणा परमाखवः सन्ति। यथा तोयाजागोमहिष्युट्टीक्षीरचूर्तेषु स्नेहगुण प्रकर्षा-
 प्रकर्षेण प्रवर्तते। पांशुक्कणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्टः। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्ति
 प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते॥ स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाह -

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा ० रूक्षगुणाः ० अपि ० ॥

वद्गुणाः ० परमाणुवद्भेदात् ० । यथाश्लेष भजा

नो-नरिपि-वृत्ती-क्षीर-पूतपुः-स्नेहगुण-ः

मर्कप-भ्रमकपेणैः। मवर्तते ० । चक्षुष्यु-रुणिका

शर्करादिपुः ० रूक्षगुण-ः ० दृष्टम् ० । तथा ०

परमाणुदुः ० अपि ० स्निग्ध-रूक्षगुणयोर्द्विवृत्तिः ० ॥

मर्कप-भ्रमकपेणैः ० अनुमीयते ० ॥ स्निग्धरूक्षत्व

गुणनिमित्तो ० य-पेनैः अविशेषेण ० प्रसक्तेः

अनिष्ट-गुण-निवृत्ति-अर्थम् ० ॥ आह ०

= वैशरी (= वरा) रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच

छाह इत्यादि संख्याव, असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते हैं

= पूर्वकथित (= वद्) विकरणे स्नेहगुणशाली परमाणु हैं। जैसे जख (= श्लेष) शर्करा (= भजा)

व्याज (= यो) में स (= नरिपि) वृटती (= वृत्ती) के दूध घी विये सविकरगुण

व्यकर्षकारि और घटवीकारि प्रवर्तता है। और (= च) वृत्ति (= पांशु) शालु (= कणिका)

= कंकरादिकमें रूक्षगुण (= वरा) घटना क्रमसे देखा जाता है। जैसे

= परमाणुओंमें भी विकरने कले दोनो गुणोंकी स्थिति (= वृत्ति)

= बहवार घटवारसे अनुमान की जाती है। सविकरता और रूक्षापन

गुणनिमित्तक बन्धमें अविशेषकारि प्रसंग आनेपर

= अनिष्ट फलक निषारण के लिये करते हैं अर्थात् पुद्गलक गुणोंमेंसे विकरनाई

रूक्षापनके हेतुसे पत्य होता है इससे यह प्रसंग जाता है कि यदि सविकरता

और रूक्षापन परमाणुओंमें वर्तमान वा विद्यमान है तो बांध सर्व प्रकार अपेक्षरूपसे नियोजता

रहित होती जावारीगा इस अनिच्छित अनुमानक दूर करने के लिये अग्रिम सूत्रमें कहत हैं कि

(१) सूत्रम्— न जघन्यगुणानाम् (परमाणुना बन्ध भवति) ॥ ३४ ॥

स्निग्धरूक्षत्वार्त् ॥ न जपय गुणानां परमाणुनां ॥ ३५ ॥

इस सूत्रका याद और अर्थ भी वाली आम्नायीमें पच्छा है। हमारे यहां कहीं कहीं पर 'मर्कपगुणानां' याद है यह कालप्रकृतमाया व्याकरणके

अतिरिक्त अर्थ है (अ० १००५४०५४१) इस सूत्रमें परमाणुनां और 'भवति' शब्दोंका अप्याकार क्रियागमाई और पञ्चशब्दकी अनुपस्थिति ३-वां सन्देश है।

द्वयो र्निगधरुन्जयोरपवो परस्परश्लेषलक्षणे बन्धे सति द्व्यणुवस्कन्धो भवति ॥ एवं संख्येया-
 संख्येयानन्तप्रदेश स्कन्धो योज्य । तत्र स्नेहगुण एकद्वित्रिचतु संख्येयासंख्येयानन्तविकल्प ॥

द्वयोः स्तिर-रुन्जयोः प्रस्परश्लेषलक्षणो बन्धो विक्रान्ती क्ली अणुबन्धो आपसके एकमेका-रक्षण, स्वरूपविधौ (=व्युत्पत्त्यौ)
 बन्धो सति द्वौ अणुवस्कन्धो भवति ॥

रुन्जयोः सति द्वौ अणुवस्कन्धो भवति ॥
 = बन्धु होनेपर = सति द्वौ अणुबन्धा स्केप होता है अर्थात् दो परमाणु स्तिरव और
 एक-संख्येय-असंख्येय अन्त-प्रदेश संख्येय-असंख्येय अणुबन्धा स्केप होनेपर दो अणुबन्धा स्केप अल्प होता है
 तत्र संख्येयानन्तप्रदेश संख्येयानन्तविकल्प ॥
 = यहाँ स्तिरगुण एक, दो, तीन, चार संख्या

= असंख्येय और अनन्तप्रदेश हैं अर्थात् एक-गुण स्तिरव, दोगुण स्तिरव, दोगुण स्तिरव, तीन
 गुण स्तिरव, चारगुण स्तिरव, पाँचगुण स्तिरव, षड्गुण स्तिरव इत्यादि ऐसे संख्येयगुण
 स्तिरव, असंख्येयगुण स्तिरव और अनन्तगुण स्तिरव एक एक परमाणु में हो सकते हैं ॥

स्तिर-अणुवस्कन्धोः स्तिरगण-रुन्जयोः प्रस्परश्लेषलक्षणो बन्धो विक्रान्ती क्ली अणुबन्धो आपसके एकमेका-रक्षण, स्वरूपविधौ (=व्युत्पत्त्यौ)
 बन्धो सति द्वौ अणुवस्कन्धो भवति ॥

रुन्जयोः सति द्वौ अणुवस्कन्धो भवति ॥
 = बन्धु होनेपर = सति द्वौ अणुबन्धा स्केप होता है अर्थात् दो परमाणु स्तिरव और
 एक-संख्येय-असंख्येय अन्त-प्रदेश संख्येय-असंख्येय अणुबन्धा स्केप होनेपर दो अणुबन्धा स्केप अल्प होता है
 तत्र संख्येयानन्तप्रदेश संख्येयानन्तविकल्प ॥
 = यहाँ स्तिरगुण एक, दो, तीन, चार संख्या

= असंख्येय और अनन्तप्रदेश हैं अर्थात् एक-गुण स्तिरव, दोगुण स्तिरव, दोगुण स्तिरव, तीन
 गुण स्तिरव, चारगुण स्तिरव, पाँचगुण स्तिरव, षड्गुण स्तिरव इत्यादि ऐसे संख्येयगुण
 स्तिरव, असंख्येयगुण स्तिरव और अनन्तगुण स्तिरव एक एक परमाणु में हो सकते हैं ॥

स्तिर-अणुवस्कन्धोः स्तिरगण-रुन्जयोः प्रस्परश्लेषलक्षणो बन्धो विक्रान्ती क्ली अणुबन्धो आपसके एकमेका-रक्षण, स्वरूपविधौ (=व्युत्पत्त्यौ)
 बन्धो सति द्वौ अणुवस्कन्धो भवति ॥

तथा रूच्यगुणोऽपि ॥ तद्गुणा परमाणवः सन्ति । यथा तोयाजागोमहिष्युष्टीक्षीरघृतेषु स्नेहगुण प्रकर्षा-
 प्रकर्षेण प्रवर्तते । पाशुकायिकाशर्करादिषु च रूच्यगुणो दृष्ट । तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूच्यगुणयोर्वृत्ति
 प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते ॥ स्निग्धरूच्यत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाह

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

धया ० रूच्यगुणोऽपि ० ॥

वदन्त्याम् ॥ परमाणवाम् ॥ सन्ति ॥ यथा ० श्लोच अना
 गो-भरिषि-सर्वी-क्षीर-मूत्रेषु ॥ अङ्गुणाम् ॥
 प्रकर्ष-अमकर्षणम् ॥ अमर्षते ॥ च ० पाशु-कायिका-
 शर्करादिषु ॥ रूच्यगुणम् ॥ दृष्टम् ॥ तथा ०
 परमाणुषु ॥ अपि ० स्निग्ध-रूच्यगुणयोर्भ्रूवृत्तिम् ॥
 प्रकर्ष-अमकर्षणम् ॥ अनुमीयते ॥ स्निग्धरूच्यत्व
 गुणनिमित्तो बन्धो ॥ अविशेषेण ॥ प्रसक्ते ॥
 अनिष्ट-गुण-निवृत्ति अर्थम् ॥ ॥ आह ॥

स्वैरी (= वया) रूच्यगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच
 षट् इत्यादि संख्याव, असंख्यात और अनन्त रूच्यगुण तक होसकते हैं

वर्षकयित (= तद्) विकल्पे रूच्यगुणवाली परमाणु है । जैसे मूत्र (= तोय) शर्करा (= अना)
 मूत्र (= गो) भस्म (= भरिषि) शटनी (= वृष्टी) के रूप थी विषै सचिकरणगुण

अकर्षक और परतीकरि प्रवर्तता है । और (= च) श्रुति (= पाणु) मालु (= कणिका)
 रूच्यगुणके रूच्यगुण (बहता घटता क्रमसे) देला जाता है । जैसे

परमाणुओंमें भी विकल्पे बले दोनों गुणोंकी स्थिति (= वृत्ति)

बहता घटता घटतासे अनुमान की जाती है । सचिकनवा और रूसापन
 गुणनिमित्तक बन्धमें अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर

अनिष्ट फलके निवारण के लिये करते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे विकनार
 रूसापनके हेतुसे पन्थ होता है इससे यह प्रसंग आता है कि यदि सचिकणवा

और रूसापन परमाणुओंमें सर्वमान वा विषयमान है तो षड् सर्व प्रकार अमेदरूपसे त्रियोपता
 रहित होती जावोगा इस अनिश्चित अनुमानके दूर करने के लिये अग्रिम सूत्रमें कर्तव्य है कि

(१) सूत्रम् — न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥ = न जघन्यगुणानाम् (परमाणूनां बन्ध भवति) ॥ ३४ ॥

स्निग्धरूच्यत्वात् ॥ न मकर-गुणानाम् ॥ षड् ॥ भवति = स्निग्धरूच्यत्वात् ॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥
 इस सूत्रका पाठ और अर्थ भी वानो आम्नायोमें एकता है । हमारे यहाँ कहीं कहीं पर 'जघन्यगुणानाम्' पाठ है यह कानिप्ररूपमाला द्वाकारके
 आतिरिक्त मगुय है (म० १ १० ५४१) इस सूत्रमें परमाणुनां और 'भवति' शब्दों का सम्बन्ध है और 'जघन्यगुणानाम्' अनुवृत्ति ३३वां सूत्रसाथ है ।

जत्रन्यो निकृष्ट गुणो भाग । जवन्यो गुणो येषा ते जघन्यगुणा । तेषा जघन्यगुणाना नास्ति
 प्रथ । तद्यथा-एकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन द्वयादिसख्येयासख्येयानन्तगुणस्निग्धेन च नास्ति
 न्य तस्यैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेणद्वयादिसख्येयासख्येयानन्तगुणरूक्षेण वा नास्ति
 न्य । तथा एकगुणरूक्षस्यापि योज्यमिति ॥ एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूक्षौ वर्जयित्वा अन्येषा
 स्निग्धाना रूक्षाना च परस्परेण बन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेध-

रूक्षत्वात् वा सचिह्णत्वा का एक अविभाग परिच्छेद(=वन्यगुण) रश्चाय सो बधको प्राप्त नही होता है
 न्यपय वा घटिसे घटि है सो निकृष्ट है । गुण है सो गुणका अविभाग परिच्छेद है
 =घटिस घटि है अविभाग परिच्छेद जिनके वे जघन्यगुण हैं
 =तिन निरुद्धगुणों(बली परमाणुओं)के बंध नहीं हैं । जैसे
 एकगुणस्निग्धस्य एकगुणस्निग्धस्य एकगुण स्निग्धकारि और(=च)द्वो आधिक संख्यात
 अगुण अन्तगुण स्निग्धस्यैकगुण स्निग्धकारि यंत्रण
 =अस स्यात् अनन्तगुण स्निग्धकारि यंत्रण नहीं है । विस
 एव एकगुण स्निग्धस्यैकगुण स्निग्धकारि यंत्रण दो आधिक
 गत्यय मसंख्यय अनन्तगुणरूक्षेणद्वयादिसख्येयासख्येयानन्तगुणरूक्षकारि यंत्रण नहीं है
 तया एकगुणरूक्षस्यैकगुणरूक्षकारि यंत्रण भी लगाना चारिये अथात् एकगुणरूक्षका एकगुण
 रूक्षकारि और दो तीन चार पाँच आधिक संख्यात, असंख्यात, और अनन्तगुणरूक्षकारि
 बन्ध नहीं होता है तैसेही एकगुणरूक्षका एकगुण स्निग्धकारि अथवा दो, तीन,
 चार, पाँच आदि संख्यात असंख्यात अनन्तगुण स्निग्धकारि अथवा दो, तीन,
 चार, पाँच आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध रूक्षोंको बोझकर अन्य
 न्ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली स्निग्ध रूक्षोंको बोझकर अन्य
 स्निग्धाना च परस्परेण बंधो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेध-
 न्ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली परमाणुओंके परस्पर बन्ध होता है । ऐसे
 अविभागोंके परस्पर बंधो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेध-

रूपपदान्-नपन्यः निकृष्टः गुणः भागः
 नपन्यः गुणः यथाप्यः तद्विजघन्यगुणाः
 तर्हि जघन्यगुणानाम् नान् अस्ति न यथाप्यः तद्यथाप्यः
 एकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धस्यैकगुण स्निग्धकारि
 अगुण अन्तगुण स्निग्धस्यैकगुण स्निग्धकारि यंत्रण
 एव एकगुण स्निग्धस्यैकगुण स्निग्धकारि यंत्रण दो आधिक
 गत्यय मसंख्यय अनन्तगुणरूक्षेणद्वयादिसख्येयासख्येयानन्तगुणरूक्षकारि यंत्रण नहीं है
 तया एकगुणरूक्षस्यैकगुणरूक्षकारि यंत्रण भी लगाना चारिये अथात् एकगुणरूक्षका एकगुण
 रूक्षकारि और दो तीन चार पाँच आधिक संख्यात, असंख्यात, और अनन्तगुणरूक्षकारि
 बन्ध नहीं होता है तैसेही एकगुणरूक्षका एकगुण स्निग्धकारि अथवा दो, तीन,
 चार, पाँच आदि संख्यात असंख्यात अनन्तगुण स्निग्धकारि अथवा दो, तीन,
 चार, पाँच आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध रूक्षोंको बोझकर अन्य
 न्ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली स्निग्ध रूक्षोंको बोझकर अन्य
 स्निग्धाना च परस्परेण बंधो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेध-
 न्ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली परमाणुओंके परस्पर बन्ध होता है । ऐसे
 अविभागोंके परस्पर बंधो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेध-

और यह कुछ देवक परमपुत्रोंके संकषण रूक्षका है क्योंकि अन्तगुण परमाणुवैरी पावाजाता है जोक रूक्षमसं और अविशेषेण बंधो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेध-

विषयख्यापनार्थमाह— ॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥

विषय-स्थापन अर्थम् ॥ आह ।

अकारणके करनेके लिये (आश्रय स्वरूप) करते हैं अर्थात् ऊपरके उपायिक या उपधा भाष्यसे ऐसा अनुमान निकलवा है कि अयम्यगुणोंको छोड़कर अन्य सब गुणवत्की परमाणुओंका स्निग्धरूपासे षष्प रोमाता होगा सो इस प्रसंगको दूर करनेके लिये आचार्य बन्धके नियेषका निम्नलिखित अन्वयस्वरूप करते हैं कि

(१) सूत्रम्—गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥ = (न) गुणसाम्ये (स्निग्धरूचत्वानाम्) सदृशानाम्
(परमाणूनाम् बन्धः भवति) ॥ ३५ ॥

= गुणसाम्ये अदृशानाम् सदृशानाम् परमाणूनाम् बन्धः न भवति ॥ ३५ ॥

परमाणुमें बन्ध नहीं होसकता है तब वह परमाणु किना बन्धके गुणधरो रहीनी स्वरूपमें नहीं होसकती (अतःक ऊपरय गुण उसमें विद्यमान है) ॥ स्मोद्वानि ३ पुं० ५११ राजवार्तिक तथा अयमर्थयज्ञोकी वक्तविकपुं० ५१२ ५१३ सेमतद्वेदि वहसुत्र केतव परमाणुभीसेही रुकेयकठानैकिरूपोसे। (१) वह सूत्र ओ एवं चौतीसवां सूत्रका अपवाद विशेष समर्थनके लिये है परमाणुभीसे सारबन्ध रकता है स्वरूपोस नहीं क्योंकि चौतीसवां सूत्र से परमाणुनाम् ऊपरकी ओ अनुवृत्ति इस समयमें आती है। समस्त तैत्तिरीयान् सूत्रकी पदा अनुवर्तना है। स्निग्धरूचत्वानाम् बंधो अदृशानाम् एवां परमाणुनाम् बंधो है अतः "स्निग्धरूचत्वानाम्" के स्थानमें "अदृशानाम्" वाच्यका आदेश करदिया है। वहकि "स्निग्धरूचत्वानाम्" की अनुवृत्ति आती है इसके समर्थनमें स्मोद्वानि ३ स निम्न वाच्य देते हैं। अयं विदृशानां गुणसाम्ये अयमप्रतिषेधो न स्वादिनि न मतस्य सदृशमव बन्ध विदृशतस्य च्छेदावभावात् सदृशानामेवैस्यपारकानामप्यभात् ॥ गुणसाम्येवेति स नीलेश्वरि सदृशानां गुणैर्गम्यैऽपि अयमप्रतिषेधो न स्वादिनि न मतस्य सदृशमव बन्ध विदृशतस्य सदृशमवकृतं तत्र स्निग्धरूचत्वानाम् साम्यपि गुणवैषम्येवमप्यसिद्धिः ॥ तत्पार्थ स्मोद्वानि ३ सूत्र ३५ पुं० ५१७ ॥ न मतस्य सदृशमव बन्ध विदृशतस्य च्छेदावभावात् ॥

- = (अतः—येसा) मानता हीक नहीं है। क्योंकि सदृशके अर्थका नियेय नहीं होता होगा
- = अयमर्थयज्ञः (= अयमर्थयज्ञः) अभाव ही अर्थात् विदृशत ऊपरकी अनुवृत्ति अभाव अकारकी है तब (अनुवृत्तिमें अर्थपर रूपावत नहीं हुए हैं)
- = (बोध) सदृशों काही (= वंश) येसा निश्चयामकपर (सूत्रमें) दिया नहीं है अर्थात् गुण साम्ये सदृशानामेव" येसा सूत्र नहीं है नहीं तो मानकेत कि अदृशतोंकी अनुवृत्ति नहीं आरवी है और गुणोंकी गङ्गामें समाजता होनेपर केवल सदृशोंकाही बन्ध नहीं होता है अदृशतोंका गुणोंकी समाजता होने पर होजाता है येसा मानकेत ॥ अतएव तद्वेदि येसी अयमर्थयज्ञः स्वेताम्बराया विषयम्बरआत्मानोर्भवेत् इत्यर्थात्सूत्रोका पाठभौतिकार्थ एवहीजाता ॥

जत्रयो निरुद्ध गुणो माग । जघन्यो गुणो येषा ते जघन्यगुणा । तेषां जघन्यगुणाना नास्ति
 ग्रथ । तद्यथा-एकगुणस्निग्धघनेन ह्यथादिसख्येयासख्येयानन्तगुणस्निग्धेन च नास्ति
 वन्य तस्यैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूचेण ह्यथादिसख्येयासख्येयानन्तगुणरूचेण वा नास्ति
 ग्रथ । तथा एकगुणरूचस्यापि योज्यमिति ॥ एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूचौ वर्जयित्वा अन्येषा
 स्निग्धाना रूचाणा च परस्परैण वन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेध-

रुचत्वा का वा सविःश्रुता का एक भविभाग परिच्छेद(=जनन्यगुण) ररत्राय सो वयको प्राप्त नही होता हे
 रूपनुत्तर- नयन्यदःनिकृष्टगुण १ भाग २।
 नयन्यदःगुण २ भाग ३। ४। जघन्यगुणाः १।
 नयाः नयन्यगुणानाम् १। न २। अस्ति नयन्यः १। तद्यथा- १। तद्यथा- १। तद्यथा- १।
 एगुणस्निग्धस्य १। एकगुणस्निग्धस्य १। एकगुणस्निग्धस्य १। एकगुणस्निग्धस्य १।
 अगंनय-अनंतगुण १। अगंनय-अनंतगुण १। अगंनय-अनंतगुण १। अगंनय-अनंतगुण १।
 ए० एकगुणस्निग्धस्य १। एकगुणस्निग्धस्य १। एकगुणस्निग्धस्य १। एकगुणस्निग्धस्य १।
 मंथया मंतंनय-अनंतगुण १। मंथया मंतंनय-अनंतगुण १। मंथया मंतंनय-अनंतगुण १। मंथया मंतंनय-अनंतगुण १।
 तथा १। एकगुणस्निग्धस्य १। एकगुणस्निग्धस्य १। एकगुणस्निग्धस्य १। एकगुणस्निग्धस्य १।

रुचकरि और दो तीन चार पाँच आदिक संख्यात, असंख्यात, और अनंतगुणरूचकरि
 वन्य नहीं होता है तैसी एकगुणरूचका एकगुण स्निग्धकरि अथवा दो, तीन,
 चार, पाँच आदि संख्यात असंख्यात अनंतगुण स्निग्धकरि बंध नहीं होता है
 एगुण-नयन्यगुण-स्निग्ध-रूच-वर्जयित्वा-अन्येषाम् १। =ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली स्निग्ध रूचको छोड़कर अन्य
 स्निग्धानाम् १। रुचानाम् १। परस्परैण १। वंधो-भवति-इति=स्निग्ध और(=च)रूचगुणवाली पर्याप्तुंनिके परस्पर बन्ध होता है । ऐसे
 अस्तिगुणानाम् १। मंथयाम् १। अस्ति-इति-
 और यह १३ केवल परमाणुकोसे संकरण रूचका है क्योंकि अकारणपरमाणु अकारणपरमाणु

मुषाय - गुणसाध्यम् ॥ अस्वस्थानाम् ॥ गच्छानाम् ॥ गुणोक्ती संख्यामै समानता होनेपर विजातीय और सजातीय (= रज्जु रज्जु, स्निग्ध स्निग्ध)
 परमाणुनाम् ॥ पृथग् ॥ न ० भवति ॥

अर्थो (= गुणों) की गणना दूसरी परमाणुके अविभागपरिच्छेदरूप अर्थोकी संख्याके
 यदि घराबर हो तो उन दोनों परमाणुओंका आपसमें चारै रज्जुस्निग्ध (विजातीय) (क्रमसे) हो चारै स्निग्धरज्जु=
 (विजातीय) (क्रमसे) हो चारै स्निग्धस्निग्ध = (सजातीय) (क्रमसे) हो चारै रज्जु रज्जु = (सजातीय) (क्रमसे) हो चारै स्निग्धरज्जु =
 नैस रज्जुपरमाणुके दो अविभागपरिच्छेदरूप अर्थोका घच स्निग्धपरमाणुके दो गुणोंके साथ नहीं होगा और दो
 स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका घच्य दो रज्जुगुणवाली परमाणुओंके साथ नहीं होसकता है इसी प्रकार तीन
 चार-पान-धर-सात आदि संख्यात असंख्यात अनतगुणवाली रज्जुपरमाणुओंका घच तीन-चार-पाँच-धर-सात
 आदि संख्यात असंख्यात-अनतगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके साथ नहीं होगा और तीन-चार पाँच-धर-सात

गुणनाम्ये वा इति सूत्र उपरोक्त विवरणानां गुणैः पर्यवस्यति ॥ गुणसाध्यै वा' यह दिसा सूत्र करते ता गुणोकी विषयता हमेंपर भी सदर्योंके

- अक्षरघचक प्रसंग काजाता अर्थोत् सदर्योंका भी कथ्य न होता । (इसलिये)
- विसदर्योंके समान (= तदुक्तत्) सदर्योंका घच (= तदुक्तु) सिद्ध करनेके लिये सदर्योंका
- मरुच (इसलिये) किया है । किसकरि अर्थोत् स्निग्ध रज्जु ज्ञानीयसे
- समान होने पर भी मावार्थ रज्जु रज्जु वा स्निग्ध स्निग्ध भोजेपर भी
- गुणोकी विषयता होने पर घचकी सिद्धि है । घच्य होजाता है न

इस कथ्यका पाठ शब्दो सेतावर तथा रिगावर आम्नायोमै अलपट्ट विहने पर मो अर्थोमै मेरु है ॥ इवेतावर आम्नायके आचार्यो ने । स्निग्ध
 रज्जुकाच - देवीचर्चा पृथक् अमुद्वि नहीं ली है के करने है कि ततोसर्वा घचसे उपयुक्त अनुमुक्ति नहीं लेता बाहिये नहीं ता स्पष्ट अमुद्वि होजायेगा
 यो कारण है कि गुणके साथ मे मेरु पङ्कगया है उनके अतदुक्तु गुण कायेसदर्यानाम् ॥ = "गुणसाध्यै सति सदर्यानां कथ्यो न गयति" = गुणकी समता
 अर्थ पर सदर्योंका घच नहीं होता पर असदर्योंका घच अर्थोत् रज्जुविषयक घच गुणोकी बराबरी होनेपर भी होजाता है उनका मावार्थ यह है कि
 गुणोकी विषयता होने पर सदर्योंका (रज्जुका रज्जुक साथ और स्निग्ध वा स्निग्धके साथ घच होजाता है और यह गुणोकी विषयता उनक द्वि
 अधिच्छिन्नगुणानां गुण (= द्विअधिच्छिन्नगुणानां गुण सदर्यानां कथ्यो गच्छति" सूत्रक अनुुकार केवल हो गय एकलपट्टयत्न दूसरे सदर्योंमें अधिचक होना
 बाहिये वस कथ्य होजायेगा परणु उनक मतानुसार इससे यह कथ्य निकला कि असदर्योंके परस्पर (रज्जुका स्निग्धके साथ अथवा यो कहिये कि
 स्निग्धक) रज्जुक साथ) कथ्य हाँकि किये गुणोकी अधिच्छिन्नता को भी साक्षरपकता नहीं है वा असदर्योंके गुणोकी लक्ष्यता सावधान होने पर भी कथ्य
 होजाता है । (एत रिणकी का हमने इवेतावर आम्नायके अर्थोत् अर्थोके विचारकर साक्षरपानी स लियो है ॥)

व्यवस्थितप्य प्रसक्तो
 नदु. १५. तदु. सिद्धये एवरा.
 प्रदयम् इतन्म किं स्निग्धरज्जुकायया
 साधेऽपि
 पुत्र वेनाये वपतिस्त्रि ।

सदशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैपम्ये (सदशानामपि) बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदशग्रहणं क्रियते ॥

परमाणुओंकी वध होता है जब सदृश विसदृश दोनोंरीका वध नहीं होता तब सूत्रमें
 =सदृश(शब्द)का ग्रहण किसखिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्यं' और 'न' की
 अनुबुधि'ननयन्यगुणानाम्' सूत्रसे आकर'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होजाता
 कि'(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरीसे बराबर होनेपर वध नहीं होता'
 =(उपर)गुणोंकी विषयता होनेपर { सनातीय(परमाणु)निकै भी(=अपि) } वध
 =नबलानेके लिये (सूत्रमें) सदृश(शब्द) ग्रहण किया गया है वा लायागया है ॥शिव्यके

प्रथम और आचार्यके उचरका सारांश यह है कि शिव्यने 'न नयन्यगुणानाम्' सूत्रका
 अर्थ समझकर कि जयन्यगुणोंकी परमाणुओंका वध है सदृश ही वा विसदृश ही वध नहीं होता है अथन्यगुणोंवाली पर
 माणुओंका वध हावा है परवात् 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका
 वधरता है और न असदृशोंका वध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें वध है सदृश ही वध है विसदृश ही वध होजाता है
 प्रथमकरदिया कि जब 'न नयन्यगुणानाम्' सूत्रमें सदृश विसदृशका वध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका वध है तब
 सूत्रमी उसी संघपर बनाना या अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर वध नहीं होता(न सदृशोंका न
 असदृशोंका फिर इस सूत्रमें'सदृशानां'काना व्यर्थ है आचार्यके उचरका भावार्थ यही है कि सदृशोंका वध विषयगुणोंके होनेपरभी

सदृश-ग्रहणम् ॥ किम् ॥ अर्थम् ॥ १ ?

गुण-वैपम्यम् ॥ (सदृशानाम्) अपि च वध
 प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ सदृश-ग्रहणम्-क्रियते ।

(१) अचपीनद्विती प्रवाम्बुधिमं गद्येयस्ये वध्य प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है द्वितीयावृत्तिमें 'गुणवैपम्ये सदृशानामपि वध्य प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है । नील
 एतन्निष्ठिन नराय सिद्धिद्वितीयोका पाठमी प्रवाम्बुधिस मिलता है ॥ वही पाठ स्वाकथार्थिक मुद्रित तथा दूरनद्विखितमें और नील वार प्रतियो
 एवशांतिवको वार्तिक पाठका है तद्वानं'पञ्जाति'कमें इस वार्तिककी वृत्ति देखे है कि 'गुणवैपम्ये सदृशानां वधो मपलीयेतस्यार्थस्य प्रतिपत्त्यर्थं'
 एवदि वली व वृत्ति वार्तिकी द्वितीयावृत्तसे मिल रही है ॥ 'गुणवैपम्ये वधो भवति इति परिधानार्थं सवाय'सिद्धिकी प्रवाम्बुधिस
 निष्ठता वदन हुआ पाठ धृतमागरी टीकामें है ॥ इत्यादिपर आभास्यक समाप्य०में दो स्थानोंपर दोको(पृष्ठ १३०) तथा माप्यनूनास्त्रीतत्त्वाय टीका
 वृत्तमें वार्त्तव सदृश वनाकोने भी अर्थिक है उसके पृष्ठ ४६३ वर दो स्थानोंपर गुणवैपम्ये सदृशानां वधो भवति पाठ है जो सवाय सिद्धिकी द्वितीया
 वृत्तिस मिलता प्रकता हुआ है ॥ 'गुणकी विषयता हो तो वध्य होय है ऐसे अनालके अर्थ है' पं० जयचन्द्रजीने ऐसाग्रहण किया है ॥ 'गुणकी विषयता
 हीम अन्वेषी वध्य होय है त्वावर्तिताकारकी अत्यवहित रावकारिक अभावपर पृष्ठ १४३में है ॥ पं० पञ्चाङ्गाक वृत्तीकी अनुशासित राजकारिक अभावपर ५ पर्व
 १०० पर 'गुणिकी विषयतामें सदृशानां वध्य है' ऐसा अर्थ प्राप्त है अत्यवहित देवनेपर इन सबका परिष्कार यह है कि वधाप में सवाय सिद्धि
 का पाठ ना गुणवैपम्ये वध्यप्रतिपत्त्यर्थं' है ॥ 'सदृशानां' वाक्य देखे है अर्थात् वध उच्य किया हुआ है वधमें द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए
 'नसदृशानामपि को बोधकमें करदिया है क्योंकि 'सदृशानां' अर्थमें उक्ता अर्थ' और व्याख्या समझने समझनेमें उचरका-हावाती है ॥

अतो विपमगुणाना तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां च अनियमेन बन्धप्रसक्तौ विशिष्टार्थसंप्रत्य-
यार्थमिदमुच्यते— ॥ द्व्यधिकदिगुणाना तु ॥ ३६ ॥

नही होता यदि सूत्रमें सरथाना'न खाते तो घर इस प्रकार छूटाता कि वेतीसवां सूत्रसंक्षिप्यरूपत्वानाम्'की अनुवृत्ति तो इस सूत्रमें आनाती और अथ यह होता कि गुणोंकी समानता होनेपर क्षिप्यरूपत्वोंका बन्ध नहीं होता है इस अनवृत्तिसे इस वाक्यकी प्राप्ति हुई कि गुणोंकी विपमता होनेपर असरथोंका बन्ध होगा अथ सूत्रमें 'सरथानां'शब्द तो होताही नहीं अतएव सरथानां का क्यनही विपमगुणोंकी अवस्थामें नहीं कर सकवेये इसी श्रुतिमें 'सरथानां'के साथ 'अधि'(=भी) शब्द खाये है कि गुणोंकी विपमतामें सरथोंका भी बन्ध भगद होजाय ; अपि श्रुत्यसे यह भास होता है कि ३३वां सूत्रकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आनेसे असरथोंका बन्ध तो विपमगुणोंके होनेपर होहीजाता है सूत्रमें सरथानां'खानेसे विपमगुणोंमें सरथोंक बन्धकीभी प्राप्ति होगई अतः सूत्रमें सरथानां' शब्द व्यर्थ नहीं है। स्मरण रहे कि 'गुणसाम्ये सरथानां' सूत्रका अर्थ करानमें हमारे यहाँ साम्ये' शब्द पर बल देकर यह अर्थ किया है कि सरथों(सजातीय परमाणुओं)का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर नहीं होता गुणोंकी विपमता होने पर सरथोंका भी बन्ध होता है इसलिये सूत्रमें सरथानां' शब्दका अर्थ है कि गुणकी विपमता होनेपर सजातियोंका भी बन्ध होता है। श्वेतान्ध्र आन्धानाम्' शब्द पर बलदेकर यह अर्थ किया है कि सरथोंका बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर नहीं होता है विसरथों का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर भी होजाता है जैसे चार गुणवाली स्निग्ध परमाणुका बन्ध चार गुणवाली चूच परमाणु के साथ होजायेगा इसीलिये श्वेतान्ध्र तथा दिग्ग्वर आन्धानाम्'में इस सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है ।

अतः विपमगुणानाम्'तुल्यजातीयानाम्' च ० = वृत्तिलिये विपमगुणवाले सरथोंका और (=च)
अतुल्यजातीयानाम्' अनियमेनै' बन्ध = विसरथों(=असरथों)का नियमरहित वा अविशेषरूपसे बन्धका
प्रसक्तौ' विशिष्ट अर्थ-समत्प-अथम्' ॥ = वसंत आनेपर विशेष तालयं वा अभिप्राय नवावनेके लिये
इत्म्' ॥ उच्यते । = च(अभिप्राय सूत्रमें) कडाजावा है कि

(१) सूत्रम्-द्व्यधिकदिगुणाना तु ३६। = द्वि अधिक-आदिगुणानाम् (सदृशानाम् विसदृशानाम्
परमाणूना परस्परेण बन्ध) तु (भवति) ॥ ३६ ॥

गुणार्थं हि अपि इ-गुणानाम्' ॥ = किन्तु (पर-परंतु) दोगुण भाविस(=आदिकरि)अधिकगुणवाले
(१) यह सूत्रभी परम गुणगत सरथक रकवा है क्योंकि 'य अथयमुखात्म' गुणसाम्ये सदृशानाम्' इस सूत्रोस अनुवृत्तिसे एव सूत्रमें बन्ध कीगई है

सदृशग्रहणं किमथ ? गुणवैषम्यं(सदृशानामपि)बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

परमाणुओंकी बंध होता है जब सदृश विसदृश दोनोंहीका बन्ध नहीं होता तब सूत्रमें
 =सदृश(शब्द)का प्रारण किसविधे है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्य' और 'न' की
 अनुबन्धि नगन्यगुणानाम् सूत्रसे आकर 'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होजाता
 कि '(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर बंध नहीं होता'
 =उपरगुणोंकी विषयता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निके मी. =अपि } बंध
 =जलानके लिये (सूत्रमें)सदृश(शब्द) प्रारण किया गया है वा लायागया है॥शिव्यके
 प्रश्न और आचार्यके उत्तरका सारांश यह है कि शिव्यने 'न नगन्यगुणानाम्' सूत्रका

अर्थ समझकर कि नगन्यगुणोंकी परमाणुओंका चारै सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नहीं होता है अगन्यगुणोंवाली पर
 माणुओंका बंध हावारे परचात् 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका
 बंध होता है और न असदृशोंका बन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चारै सदृश हों चारै विसदृश हों बंध होजाता है
 नभ करदिया कि जब "न नगन्यगुणानाम्" सूत्रमें सदृश विसदृशका बंध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका बन्ध है तब
 सूत्रमी जसी उचैपर बनाना वा अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर बन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न
 असदृशोंका फिर इस सूत्रमें सदृशानां)वाना व्यर्थ है आचार्यके उत्तरका भावार्थ यहैकि सदृशोंका बन्ध विषयगुणोंके होनेपरभी

सदृश-ग्रहणम्॥ किम्॥ अर्थवद्॥ १

गुण-वैषम्यम्॥ (सदृशानामपि) अपि च बंध
 प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ सदृश-ग्रहणम्-क्रियते ।

(1) नचाप्येविकी प्रथमावृत्तिमें गणवैषम्ये बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है द्वितीयावृत्तिमें "गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है । नीच
 इतन्निचिन मनांग सिद्धिकीमतियोंका पाठकी प्रथमावृत्तिसे मिलता है । यही पाठ इको कथार्थिक मुद्रित तथा इकतन्निचिनमें और तीस चार प्रतियों
 राजवार्तिककी बार्थिक पौषका है तस्यारे राजवार्तिकमें इस बार्थिककी वृत्ति ऐसे है कि "गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतत्स्यार्थस्य प्रतिपत्त्यर्थं"
 इत्यादि शब्दों पर वृत्ति शर्तीय सिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मेल रकती है । गुणवैषम्ये बन्धो भवति इति परिभाषाये' सबाय सिद्धिकी प्रथमावृत्तिसे
 निचत सुदृग हुना पाठ धृतमागरी टीकामें है । इत्येताश्चर आम्नायक समाध्यायमें यो स्थानोपर देखा(पृष्ठ 130)तथा भाष्यानुसारिणीतस्यार्थ टीका
 त्रिसमें चारैस उदाहरणोंसे जो बार्थिक है उसके पत्र 48 & 49 हो स्थानोपर गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति पाठ है आ सर्वाय सिद्धिकी द्वितीया
 वृत्तिमें मिलता जतना हुआ है । "गुणका विषयता हो तो बन्ध होय है ऐसे जनावनर्क काय हूँ" पं० जयशङ्करजीने ऐसाकाय किया है। गुणकी विषयता
 होत जत्येमी बन्ध हाय है न्यायविचारकी अनुवादित राजवार्तिक अनुवाक्य पत्र 124 & 125 पं० पद्मनाभ जीने भी ऐसाकाय किया है। गुणकी विषयता
 त्रिसमें चारैस उदाहरणोंसे जो बार्थिक है उसके पत्र 48 & 49 हो स्थानोपर गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति पाठ है आ सर्वाय सिद्धिकी द्वितीया
 वृत्तिमें मिलता जतना हुआ है । "गुणका विषयता हो तो बन्ध होय है ऐसे जनावनर्क काय हूँ" पं० जयशङ्करजीने ऐसाकाय किया है। गुणकी विषयता
 होत जत्येमी बन्ध हाय है न्यायविचारकी अनुवादित राजवार्तिक अनुवाक्य पत्र 124 & 125 पं० पद्मनाभ जीने भी ऐसाकाय किया है। गुणकी विषयता
 त्रिसमें चारैस उदाहरणोंसे जो बार्थिक है उसके पत्र 48 & 49 हो स्थानोपर गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति पाठ है आ सर्वाय सिद्धिकी द्वितीया
 वृत्तिमें मिलता जतना हुआ है । "गुणका विषयता हो तो बन्ध होय है ऐसे जनावनर्क काय हूँ" पं० जयशङ्करजीने ऐसाकाय किया है। गुणकी विषयता
 होत जत्येमी बन्ध हाय है न्यायविचारकी अनुवादित राजवार्तिक अनुवाक्य पत्र 124 & 125 पं० पद्मनाभ जीने भी ऐसाकाय किया है। गुणकी विषयता

अतो विषमगुणाना तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां च अनियमेन बन्धप्रसक्तौ विशिष्टार्थप्रत्य-
यार्थमिदमुच्यते— ॥ द्व्यधिकदिगुणाना तु ॥ ३६ ॥

नहीं होता यदि सूत्रमें 'सदशानां' न खाते तो यह इस प्रकार बूझाया कि वेतीसवां सूत्रमें 'किम्यरुद्धत्वानाम्' की अनुवृत्ति तो इस सूत्रमें आनाती और अब यह होगा कि गुणोंकी समानता होनेपर किम्यरुद्धत्वोका बन्ध नहीं होगाई इसअननुचितसे इस बातकी भाँति हुई कि गुणोंकी विषमता होनेपर असदश्योंका बन्ध होगा अब सूत्रमें 'सदशानां' शब्दको होताही नहीं अतएव सदशानां का रूपनहीं विषमगुणोंकी अवस्थामें नहीं करसकदेये इसी रहस्ये पूर्विकमें 'सदशानां'के साथ 'अपि' (=मी) शब्द लाये हैं कि गुणोंकी विषमतामें सदश्योंका भी बन्ध प्रगट होआय ; अपि शब्दस यह भास होगा है कि ३३वां सूत्रकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आनेसे असदश्योंका बन्धतो विषमगुणोंके होनेपर होरीजाता है। सूत्रमें 'सदशानां' खानेसे विषमगुणोंमें सदश्योंके बन्धकीभी भाँति होगई अतः सूत्रमें 'सदशानां' शब्द ब्यर्थ नहीं है। स्वरुख रहे कि 'गुणसाम्ये सदशानां' सूत्रका अर्थ करनेमें हमारे यहाँ साम्ये शब्द पर कुछ देकर यह अर्थ किया है कि सदश्यों(सजातीय परमाणुओं)का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर नहीं होता गुणोंकी विषमता होने पर सदश्योंका भी बन्ध होगा है इसलिये सूत्रमें 'सदशानां' शब्दका अर्थ है कि गुणकी विषमता होनेपर सजातियोंकाभी बंध होता है। यद्येवान्तर आम्न्यायमें 'सदशानां' शब्दका अर्थ है कि गुणकी विषमता होनेपर सजातियोंकाभी बंध होता है विसदश्यों का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर भी होता है जैसे चार गुणवाली स्तम्भ परमाणुका बन्ध चार गुणवाली ३३ परमाणु के साथ होनेवेगा इसीलिये यद्येवान्तर तथा दिग्गपरआम्न्यायोंमें इस सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है।

अतः विषमगुणानाम्, तुल्यजातीयानाम्, ॥ ३६ ॥
 अनुन्यजातीयानाम्, अनियमेन है। बन्ध
 प्रसक्तौ ॥ विशिष्ट अर्थ-संस्त्य अर्थम् ॥
 इदम् ॥ उच्यते ॥
 = इसलिये विषमगुणवाले सदश्योंका और (=व)
 = विसदश्यों(=असदश्यों)का नियमरहित वा अविशेषरूपसे बन्धका
 = अंतग आनपर विशेष तात्पर्य वा अर्थिमाय जतावनेके लिये
 = व(आश्रय सूत्रमें) कथानाता है कि

(१) सूत्रम्—द्व्यधिकदिगुणाना तु ॥ ३६ ॥ = द्वि अधिक-आदिगुणानाम् (सदशानाम् विसदशानाम्
 परमाणाना परस्परेश बन्ध) तु (भवति) ॥ ३६ ॥

एतार्थं हि अपि क-गुणानाम्, = किन्तु (पर-परंतु) वेगुण भाँति स(=आधिकरि) अधिकगुणवाले

(१) यह सूत्रना परम तु भाव समकथ उच्यते है क्योंकि य अण्यणुनाम, गुणसाम्य सदशानाम् इत लकोत अनुन्यत्विना इत सूत्रमें प्रकथ को गरी है

सदृशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैषम्ये(सदृशानामपि)बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

परमाणुओंकी षष होताहै अब सदृश विसदृश दोनोंकीका बन्ध नहीं होता तब सूत्रमें
 =सदृश(शुद्ध)का प्ररण किसलिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्ये' और 'न' की
 अनुबुधि'नअन्यगुणानाम्' सूत्रसे आकर'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होभाता
 कि'(परमाणुओंमें)गुणोंकी सख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर षष नहीं होता'
 =(उपर)गुणोंकी विषमता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निके भी. =अपि) } षष
 =अतलानिके लिये (सूत्रमें) सदृश(शुद्ध) ग्रहण किया गया है वा स्थायागया है॥शिय्यके
 प्रश्न और आचार्यके उचरकर सारांश यह है कि शिष्यने 'न जयन्यगुणानाम्' सूत्रका

सदृश-अरणम्॥॥ किम्॥॥ अर्थवद्॥॥ ?

गुण-नैपत्यम्॥॥(सदृशानाम्)अपि(ः) षष-
 नविषि-अर्थम्॥॥सदृश-ग्रहणम्-क्रियते ।

अर्थ समझकर कि अन्यगुणोंकी परमाणुओंकी षष सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नहीं होता है अजयन्यगुणोंवाली पर
 माणुओंका षष हावार्ह परचात 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी सख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका
 बंध होता है और न असदृशोंका बन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चाहे सदृश हों चाहे विसदृश हों बंध होजाता है
 प्रश्न करदिया कि जब "न जयन्यगुणानाम्" सूत्रमें सदृश विसदृशका बंध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका बन्ध है तब
 सूत्रभी वसी शर्चपर बनाना या अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर बन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न
 असदृशोंका फिर इस सूत्रमें'सदृशानां'वाना व्यर्थ है आचार्यके उचरकरा भावार्थ यहैकि सदृशोंका बन्ध विषमगुणोंके होनेपरभी

(1) नकारो(निक)के मरणपूर्वत्तिमें'गणवैषम्ये षष प्रतिपत्त्यर्थं' वाठ है द्वितीयावृत्तिमें गुणवैषम्ये सदृशानामपि षष प्रतिपत्त्यर्थं वाठ है । मोन
 इसद्विदिग्न पचांग सिद्धिप्रतिषेधिका पाठकी प्रणयवृत्तिसे मिळता है । यही वाठ इसीकवार्तिकमुद्रित तथा हस्तलिखितमें और तीन बार प्रतियों
 राजवार्तिकको वार्तिक पोरका है तस्यार'राजवार्तिकमें इस वार्तिककी वृत्ति ऐसे है कि "गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतद्व्यर्थस्य प्रतिपत्त्यर्थं"
 इत्यदि बन्धो बंध वृत्ति अर्थात् सिद्धिही द्वितीयावृत्तिले मेल लवती है । 'गुणवैषम्ये बन्धो भवति इति परिधानार्थं सवाय'सिद्धि'की प्रथमावृत्तिसे
 सिद्धता बटन हुआ पाठ प्रथमावृत्ती दीकामें है । इतनाकर आम्नायके समाप्त्यमें तो स्थानोपर देवा(पुष्ट १३८)क्या माप्यगुसारिणीतत्वाय दीका
 विसमें बार्स सदृश उभाकोसे भी अर्थिक है इसके पत्र ५१४ पर तो स्थानोपर'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति' वाठ है आ सर्वांग'सिद्धि'की द्वितीया
 वृत्तिसे मिलना मुळता हुआ है । 'गुणका विक्रमता हो तो बन्ध होय है ऐसे अनावनेके अर्थ है" पं० अणकम्पनीने ऐसाअर्थ किया है। गुणकी विषमता
 होते बन्धनी षष हाव है न्यावरिवाकरजी अनुबादित राजवार्तिक अण्यवृत्त पत्र १५३में है। पं०पद्मनाभक दूनीजी अनुनादित राजवार्तिक अण्यवृत्त प ५ पत्र
 १०० पर "गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति" वाठ है । 'सदृशानां' बाबब घोष है अर्थात् बंध उन्म किया हुआ है इसने द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए
 का पाठ ना गुणवैषम्ये बन्धप्रतिपत्त्यर्थं है । 'सदृशानां' बाबब घोष है अर्थात् बंध उन्म किया हुआ है इसने द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए
 सदृशानामपि को बोधकमें करदिया है क्योंकि "सदृशानां" अर्थिक समझने समझने का उपाय है करदिया हुआको है ।

सदृशानाम्, विसदृशानाम्, परमाणुनाम्, परस्परैः च चन्द्र-भक्तिः ।

-समातीय अथवा विजातीय परमाणुओंका

-आपसमें बन्ध होता है ॥ द्वि अधिक आदिगुण बाध्यमें आदि शब्द प्रकार वा जातिवाची है । दोगुणकरि अधिक सो दृषधिकगुण है अर्थात् चष होनेयोग्य नो परमाणु दोगुण करि अधिक सो दृषधिकगुण(परमाणु) है, जयन्तगुणको छोड़कर व प होने योग्य दो अधिक

गुणवाली परमाणु है । अतः दृषधिक गुण परमाणु का अभिप्राय चार गुण संयुक्त परमाणु है ॥ "दृषधिकारिचन्द्रमन्वति" अर्थात् दृषधिक प्रकारसे बन्ध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुसे जिसमें चारगुण हैं सो दो अधिक गुणवाली परमाणु है, आदि शब्दक हेतुसे तीन गुण वाली परमाणुसे पाँच गुण वाली परमाणु दो गुण अधिक है, चार गुण वाली से द्वादश गुण वाली दो गुण अधिक है, पाँच गुण वाली से सात गुण वाली दो गुण अधिक है, छह गुण वालीसे आठ गुण वाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीति से (आदि शब्द में) पूर्वोक्त से उपरोक्त दो गुणअधिकवाली क्रमसे सर्व (सख्यात असख्यात अनन्तगुणवाली परमाणुयें अभिहित हैं और इन्हीं प्रकार की परमाणुओंके चष होता है ॥

(क) समातीय परमाणुओं के आपस में चष के लघाहरण -दो गुणवाली स्निग्ध परमाणु चार गुणवाली स्निग्ध परमाणु के साथ चषको प्राप्त होती है तीन गुणवाली स्निग्ध पाँच गुणवाली स्निग्ध के साथ, चार गुणवाली स्निग्ध छह गुणवाली स्निग्ध के साथ पाँच गुणवाली स्निग्ध आठ गुणवाली के साथ और द्वादश गुणवाली स्निग्ध के साथ चषको प्राप्त होती है इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश, आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुयें, असख्यात गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें और अनन्त गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ दश ग्यारह चारद आदि, संख्यात गुणवाली

अथ हरेताम्बर आभायके आचार्योंके 'गुणनाम्ने सदृशानां' शब्दका यह अर्थ किया है कि पर्योकी समाप्त सबबा दोगेपर सदृशोका अर्थ नहीं होगा परन्तु विसदृशोका अर्थ पर्योकी संख्याके तुल्य दोगेपर भी होजायेगा तब यह परिणाम निकला कि सदृश परमाणुओंके ही अर्थके लिये एकसदृश परमाणुयें हीगुणोंके अधिक होनेकी आवश्यकता हुई क्योंकि एक आन्तायके निष्पत्तके अत्युत्कृष्ट विसदृश परमाणुओंके आपसमें अथ द्वात्रैक लिये एकसे दूसरमें अधिकताको प्राप्तिको कार्य आवश्यक नहीं है परन्तु हमारे यहाँ 'गणनाम्ने सदृशानां' अस्तिपरलुप्तवानाम् कीमी अनुभूतिमहणकोई इसलिये देसा अर्थ जाता है कि परमाणुकीमें पर्योकी संख्या यदि बराबर हो तो चाहे वे परमाणु सजातीय हों अथवा विजातीय हों अर्थ नहीं होता है और परमाणु, सदृशानां विसदृशानां दोनोंकी अनुभूति कि अधिकारि गुणान्ति सुबन्ने प्रबल अर्थके येना तापर्यं निकला है कि द्विगुण आदिसे आधिक्य रक्तवाली सदृश परमाणुओंका परस्पर कारण विसदृश परमाणुओं का आपसमें अर्थ जाता है अर्थ प्रकारसे नहीं अथगुणवाली परमाणुओंका दोगेदोही सम्प्रदायवाचीमें अर्थचक्षु भक्ति रक्तवा है ॥

गर्ह है । अर्थात् नररथानां विमरुथानां वीनी-न-वो स्रजसे परमात्मानो वीनीमयां स्रजसे कथ्य तेतोमीयवो स्रजसे अनुभवतीनं है परन्तुएव सोर-अभयति श्रवणीका वराणशान् एव स्रजसे दियोगवासा है । नरनाथ एतदकार्थिकमे एव स्रजको प्रभवतीकि-को वृत्तिसे किन्तुनही उपाहरक दिये हैं व स मसल परमात्मानो स्रजसे एतने नै एत उर । एव बाल एतक है कि कथ्य दोनेके परकाय, एकाय हो जावे ग अजाति प्रथमवार्तिककी वृत्तिके अन्तके वाक्यसे प्रगट् है कि परात्पुत्रन विविधा कथ्ये व एव नै दि मन्त्रु उपादाननामन प्रदेठारवाणम-उपचार्यासिद्धिलक्षणा एतप्रकार अणिल विधिद्वारा कथ्य वातापर मन्त्रुको के दि मन्त्रुसादि अनामनामन प्रदेठ पर्याप्त उरुवचोको उभाति आत्मना कश्चित् समर्थनमे देको इस्कापू० १६ । असमे येना-क्यान्त्यायकेसंकायमे कुकुउत्तान्प्रहै

(२) एव मन्त्रका वाठ इतेनामनर सोर विगम्बर आत्म्यावोमे एक है तो भी कश्चित् यह भेद है कि उभाको केवल सरठानाम् की मालमुचि-गव्यमास्ये सरठानाम् स्रजसे लेका इस प्रकार सूत्र किया है किदि प्रविधारियुक्तानां नु सरठानां कथ्यो अमनीति।माथम् - प्रास्यं गुणुविठोवास्यामव्ययकान् विधायः परमात्पु व कारिचर्येन गुणानां दि कश्चि-कारियुक्ताः एव उभापुत्रगुणिकथन गुणुवतागुणा परमात्पुत्र इत्यर्थं नयां दि कश्चि-कारि गुणानामव्यक्तो सरठानां कथा भवति । मरठानामि-तिरिभंगव्याप्त्यास्यं उपाहृत्य ध्याकथ्येयं । भासि-उत्तेनसरि विरचिता माप्यामसारिकीं वृत्ती वा सायाम्साखीं नन्वावेदीका एवं ३१६-इतेनामनर वास्यायमे यह प्राय तत्प्राय स्रजपर महात्मका है इसमे बारीस सरठानां क्साकसे कार्थिक कुकुवेद है कि मरिचि-कारि गुणानां नु मरठानाम् कथ्य भवति इति

भास्यम् - प्रायस्सायं गुणुविठोवास्याम् कश्चि- कार्यादि स्तित्यवद्योतो योग्यकश्चि-स्तित्यपरदि श्रीर उरुवठोतो योग्य कश्चि-कस्तककारि गुणुवता कथ्य गुणुविठवचन -
 गुणुवचन गुणा परमात्पुत्र इत्यर्थः
 नेनाम् दि कश्चि-कारियुक्तानाम् मन्त्रुनामनुसरठानाम् बंधाभयसि संकायस्य च कार्थिय मरठानां रति संकेतानामर्थं उरुवनामस्य च कार्थिय प्रास्यम्-दि प्रायस्करियुक्तानां नु सरठानां कथना मरुति विठोवतागुणा

नेनाम् दि कश्चि-कारियुक्तानाम् मन्त्रुनामनुसरठानाम् बंधाभयसि संकायस्य च कार्थिय मरठानां रति संकेतानामर्थं उरुवनामस्य च कार्थिय प्रास्यम्-दि प्रायस्करियुक्तानां नु सरठानां कथना मरुति विठोवतागुणा

मरठानां रति संकेतानामर्थं उरुवनामस्य च कार्थिय प्रास्यम्-दि प्रायस्करियुक्तानां नु सरठानां कथना मरुति विठोवतागुणा

मरठानां रति संकेतानामर्थं उरुवनामस्य च कार्थिय प्रास्यम्-दि प्रायस्करियुक्तानां नु सरठानां कथना मरुति विठोवतागुणा

सदशानाम्बु' विसदशानाम्बु' परमाणुनाम्बु'
परस्परैश्च बंधनैः भवति ।

समातीय अथवा विजातीय परमाणुआका

= आपसमें बन्ध होता है ॥ द्वि अधिक आदिगुण वाक्यमें आदि शब्द प्रकार वा आविधाधी है । दोनूनाकरि अधिक सो दृषधिकगुण है अर्थात् बंध हीनेयोग्य जो परमाणु दोगुण करि अधिक है सो दृषधिकगुण(परमाणु) है, अथन्यगुणको छोड़कर व व होने योग्य दो अधिक गुणवाली परमाणु है । अतः दृषधिक गुण परमाणु का अभिमात्र चार गुण संयुक्त परमाणु हुई ॥ "दृषधिकारिन्वन्वम्भवति" अर्थात् दृषधिक प्रकारस बन्ध होता है भाषार्थ दोगुण परमाणुसे जिस में चारगुण हैं सो दो अधिक गुणवाली परमाणु है, आदि शब्दके हेतुसे तीन गुण वाली परमाणुसे पाँच गुण वाली परमाणु दो गुण अधिक है, चार गुण वाली से दस गुण वाली दो गुण अधिक है, पाँच गुण वाली से सात गुण वाली दो गुण अधिक है, छह गुण वालीसे आठ गुण वाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीति से (आदि शब्द में) पूर्वोक्त से चतुरोक्त, दो गुणअधिकवाली क्रमसे सर्व (संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली परमाणुयें) गमित है और इन्ही प्रकार की परमाणुओके बंध होता है ॥

(क) समातीय परमाणुओं के आपस में बंध के उदाहरणः—दा गुणवाली स्निग्ध परमाणु चार गुणवाली स्निग्ध परमाणु के साथ बंधनो माप्त होती है तीन गुणवाली स्निग्ध पाँच गुणवाली स्निग्ध के साथ, चार गुणवाली स्निग्ध छह गुणवाली स्निग्ध के साथ पाँच गुणवाली स्निग्ध सात गुणवाली के साथ छह गुणवाली स्निग्ध आठ गुणवाली स्निग्ध के साथ बंधनो माप्त होती है इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दस, आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध अतः संख्यात गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें और अनंत गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ दस ग्यारह चारह आदि, संख्यात गुणवाली

अथ इत्येताम्बर आम्नापक आचार्योंमें "गुणनाम्बे सददाली" शब्दका यह अर्थ किया है कि गणोंकी समाप्त सबका दोनैगर सदहोका बन्ध नहीं होगा परन्तु जिसदहोका बन्ध गुणोंकी संख्याके ह्रस्व शोभेपर भी होजावेगा तब यह परिचाम निकला कि सदहय परमाणुओके ही बन्धके किये एकल ह्रस्वमें दोगुणोंके अधिक होनेको भावक्यकला हुई क्योंकि उक्त आम्नापके निबन्धके अणुकूल विसदहय परमाणुओके आपसमें बन्ध दोनैक किये एकसे दूसरेमें अधिकगणको होनेको कार्य भावक्यकला नहीं है परन्तु हमारे यहां गणनाम्बे सदहयानोंमें स्निग्धपरमाणुनाम्बु कीसो अनुसुविप्रबन्धकोही इसलिये ऐसा अर्थ होता है कि परमाणुओमें गुणोंकी संख्या यदि बराबर हो तो चाहे वे परमाणु सजातीय ही अथवा विजातीय ही बन्ध नहीं होता है और पक्षान्त 'सदहयानों विसदहयानोंकी अनुसुविप्र किये अधिकारि गुणानांतु' शब्दमें प्रबन्ध करके ऐसा तात्पर्य निकला है कि द्विगुण आदिसे कांश्चिक एक वाली सदहय परमाणुओका परस्पर अणुना विसदहय परमाणुओ का आपसमें बन्ध होता है अन्य प्रकारस नहीं उच्यपणुणुवाली परमाणुओका दोनोंही सम्यदावकाशोने कथस वक्षित एकता है ॥

स्निग्ध परमाणुओंके साथ, असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ पूर्वोक्त से उपरोक्त दो दो गुण अधिक, अधिक स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंके साथ बंधकरे प्राप्त होती है ॥

(१) दो गुणवाली रूच परमाणु चार गुणवाली रूच परमाणु के साथ, तीन गुणवाली रूच पांच गुणवाली रूचके साथ, चार गुणवाली रूच छह गुण वाली रूच क साथ पांच गुणवाली, रूच सात गुणवाली रूचके साथ, छह गुण वाली रूच आठ गुणवाली रूचके साथ बंधकरे प्राप्त होती है ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यात गुणवाली रूच परमाणु असंख्यात गुण वाली रूच परमाणुये और अनंत गुण वाली रूच पर लणये यथासंख्य नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यातगुणवाली रूचपरमाणुओंके साथ, असंख्यातगुणवाली रूचपरमाणुओंके साथ और अनंतगुणवाली रूचपरमाणु के साथ पूर्वोक्त उक्तोके दोनोगुण अधिक अधिक रूचगुणवाली परमाणुओंके साथ बंधकरे प्राप्त होती है ॥

(स्वविजातीय परमाणुओंके परस्पर बंधके दृष्टान्त—दो रूच गुणवाली परमाणुओंका बंध चार स्निग्धवाली परमाणुओंके साथ होता है । तीनरूच गुणवालीका पांच स्निग्धगुणवालीके साथ, चाररूचगुणवालीका छह स्निग्ध गुणवालीकेसाथ, पांचरूच गुणवालीका सात स्निग्धवालीके साथ, छह रूचगुणवालीका आठ स्निग्धगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इस प्रकारही साथ, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली रूच परमाणुये, असंख्यात गुणयुक्त रूच परमाणुये और अनंत गुणयुक्त रूच परमाणुये क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ बंधकरे प्राप्त होती है यदि पूर्वोक्त रूचगुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ बंधकरे प्राप्त होती है यदि पूर्वोक्त रूचगुणवाली परमाणुओंसे उक्तोके स्निग्धगुणवाली परमाणुओंसे दो दो गुण अधिक अधिक स्निग्धताके हो तो ॥

(०) दोस्निग्धगुणवाली परमाणुओंका द्वय चाररूचगुणवाली परमाणुओंके साथ होता है; तीन स्निग्धगुणवालीका पांच रूचगुणवालीके साथ, चारस्निग्धगुणवालीका छह रूचगुणवालीके साथ, पांच स्निग्धगुणवालीका सात रूचगुणवालीके साथ, छहस्निग्धगुणवालीका आठरूचगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली स्निग्धपरमाणुये असंख्यातगुणयुक्त स्निग्धपरमाणुये, और अनंतगुणवाली स्निग्ध परमाणुये क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह, आदि संख्यातगुणवाली रूचपरमाणुओंके साथ असंख्यातगुणवाली रूचपरमाणुओंके साथ और अनंतगुणवाली रूचपरमाणुओंके साथ बन्ध हो गति होती है यदि पूर्वोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंसे उक्तोके रूचगुणवाली परमाणुओंसे दो अधिक रूचताके हो ॥

एयनिवासी आरूपसाय बकीकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः हिन्दीभ्रानुवाद अन्वय ४ सूत्र २६

द्वाभ्यां गुणभ्यामधिको द्वयधिकः । क पुनरसौ ? चतुर्गुणः ॥ आदिशब्द प्रकारार्थ । क पुनरसौ प्रकार ? द्वयधिकता । तेन पंचगुणादीनां सम्प्रत्ययो न भवति । तेन द्वयधिकादिगुणानां तुल्यजातीयानां मतुल्यजातीयानां च बन्ध उक्तो भवति । नेतरेषाम् ॥ तद्यथा-द्विगुणस्निग्धस्य परमाणुरेकगुणस्निग्धेन, द्विगुणस्निग्धेन, त्रिगुणस्निग्धेन वा नास्ति बन्धः ॥ चतुर्गुणस्निग्धेन पुनरस्तिबन्ध

पुनरुपादान्—द्राभ्याम्; गुणाभ्याम्; अधिकः—द्वि अधिकः;—एक परमाणु दूसरेसे) दो गुणकरि अधिक परमाणु से द्वयधिक (गुण) है
कः; पुनः; असौ; ? चतुर्गुणः; म

आदि-शब्द; प्रकार अर्थ ?
को छोड़कर एकपरमाणुसे दोगुण जिस परमाणुसे अधिक हो सो चतुर्गुण वाली है ।
= (इस समय) आदि शब्द प्रकार अथवा आधिके स्थिरे है अर्थात् द्वयधिक प्रकार से बंध होता है यावार्थ दोगुण परमाणुसे जिसमें चारगुण हैं सो दो अधिकगुण

वाला परमाणु है 'आदि' शब्दक निमित्त से तीनगुणवाली परमाणुसे पांचगुणवाली परमाणु दोगुण अधिक है चार गुणवालीसे छहगुणवाली दोगुण अधिक है पांचगुणवालीसे सातगुणवाली दोगुण अधिक है, छह गुणवालीसे आठ गुणवाली दोगुण अधिक है इस्यादि इसी रीतिसे 'आदि' शब्दसे पूर्वक्त से उत्परोक्त दोगुण अधिक अधिक वाली क्रमसे सर्व सख्यात्मकसंख्यात्मक-अनन्तगुणवाली परमाणुयें गर्भित हैं और इसी प्रकारकी परमाणुओंके बंध होते हैं

कः; पुनः; असौ; प्रकार ? ? द्वि अधिकता; ?
तेनै; पंचगुण-मातीनाम्; संप्रत्ययः; तेन; यथादि; ?
तेनै; द्वि अधिक-आदि-गुणानां; तुल्य जातीयानां; च
अतुल्य जातीयानाम्; बन्धः; उक्तः; यथादि; । न; इतरेषाम्; न; विस्तरगुणो; एकगुण
वपया; द्विगुण-स्निग्धस्य; परमाणो; एकगुण
स्निग्धेन; द्विगुण-स्निग्धेन; या भ्रिगुणस्निग्धेन;
न; अस्ति; बन्धः; । चतुर्गुण-स्निग्धेन; पुनः; अस्ति; बन्धः; न; बन्ध नहीं है । यद्वुरि चारगुण स्निग्ध (परमाणु) करि बन्ध है ।
= (यस) यद्वुरि बंध प्रकार क्या है ? (एकपरमाणुमें दूसरीसे) दोगुण) की अधिकता है
= जिस (द्वयधिक) से पांच गुणाधिकोंका मानना अथवा ज्ञान नहीं होता है
= जिस (द्वयधिक) से दो अधिकादिगुणवाली सहायोंका और (=च)
= जिस (द्वयधिक) का बन्ध कदागया (=उक्त) है (=यवति) अन्यपरमाणुके (बन्ध) नहीं है
= जैसे दोगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके एकगुण
स्निग्ध (परमाणु) करि दोगुण स्निग्ध (परमाणु) करि या तीनगुण स्निग्ध करि
न = अस्ति; बन्धः; । यद्वुरि चारगुण स्निग्ध (परमाणु) करि बन्ध है ।

स्निग्ध परमाणुओंके साथ, असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ प्रबोक्त से उपायुक्त दो दो गुण अधिक, अधिक स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती है ॥

() दो गुणवाली रूच परमाणु चार गुणवाली रूच परमाणु के साथ, तीन गुणवाली रूच पांच गुणवाली रूचके साथ, चार गुणवाली रूच छह गुणवाली रूच के साथ पांच गुणवाली, रूच सात गुणवाली रूचके साथ, छह गुणवाली रूच आठ गुणवाली रूचके साथ बंधको प्राप्त होती है ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यात गुणवाली रूच परमाणुय असंख्यात गुणवाली रूच परमाणुये और अनंत गुणवाली रूच परमाणुये यथासंख्य नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यातगुणवाली रूचपरमाणुओंके साथ, अठसंख्यातगुणवाली रूचपरमाणुओंके साथ और अनंतगुणवाली रूचपरमाणुके साथ पूर्वाकस उक्तोक्त दोनोगुण अधिक अधिक रूचगुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती है ॥

(स्व)त्रिजातीय परमाणुओंके परस्पर बंधके दृष्टान्त—दो रूच गुणवाली परमाणुओंका बंध चार स्निग्धवाली परमाणुओंके साथ होता है ॥ तीन रूच गुणवालीका पांच स्निग्धगुणवालीके साथ, चार रूचगुणवालीका छह स्निग्ध गुणवालीके साथ, पांच रूच गुणवालीका सात स्निग्धवालीके साथ, छह रूचगुणवालीका आठ स्निग्धगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इस प्रकार ही सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली रूच परमाणुये, असंख्यात गुणरूच रूच परमाणुये और अनंत गुणरूच रूच परमाणुये क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती है यदि प्रबोक्त रूचगुणवाली परमाणुओंस उक्तोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंमें दो दो गुण अधिक अधिक स्निग्धताके हों तो ॥

0) दो स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका अन्य चार रूचगुणवाली परमाणुओंके साथ होता है; तीन स्निग्धगुणवालीका पांच रूचगुणवालीके साथ, चार स्निग्धगुणवालीका छह रूचगुणवालीके साथ, पांच स्निग्धगुणवालीका सात रूचगुणवालीके साथ, छह स्निग्धगुणवालीका आठ रूचगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली स्निग्धपरमाणुये असंख्यातगुणरूच स्निग्धपरमाणुये, और अनंतगुणवाली स्निग्ध परमाणुये क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह, आदि संख्यातगुणवाली रूचपरमाणुओंके साथ असंख्यातगुणवाली रूचपरमाणुओंके साथ और अनंतगुणवाली रूचपरमाणुओंके साथ बंध को प्राप्त होती है यदि प्रबोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंमें उक्तोक्त रूचगुणवाली परमाणुओंमें दो अधिक रूचताके हों ॥

तस्य न पुनः द्विगुणस्निग्धस्य पंचगुणस्निग्धस्य घटसप्ताष्टसख्येयासख्येयान्तगुणस्निग्धेन वा नास्ति । एव त्रिगुणस्निग्धस्य पंचगुणस्निग्धेन बन्धोऽस्ति ॥ शेषे पूर्वोत्तरेन भवति ॥ चतुर्गुणस्निग्धस्य षड्गुणस्निग्धेनास्ति बन्ध । शेषे पूर्वोत्तरेनास्ति । एव शेषेष्वपि योज्य ॥ तथा-द्विगुणरूत्वस्य एकद्वित्रिगुणरूत्वेनास्ति बन्ध । चतुर्गुणरूत्वेणत्वस्ति बन्ध ॥ तरयैव

वस्यः १४ पुनः ० द्वि-गुण-स्निग्धस्य १ १/५ वाणुस्निग्धेन १ १/५
 १/५-सप्त-अष्ट-संख्येय असंख्येय अनन्तगुण-स्निग्धेन १ १/५ वा
 बन्धः १ १/५ अस्ति । एवम् ० त्रिगुणस्निग्धस्य १ १/५ वाणु-
 (स्निग्धेन १ १/५ अस्ति । शेषे १ १/५ पुत्र
 ४ परे १ १/५

न ० अस्ति । ॥
 = तथा (= पुनः) विसरी दोगुण स्निग्ध (परमाणु) का पंचगुण स्निग्ध करि
 = अष्ट, सात, आठ (आदि ऐसे) संख्यात, असंख्यात वा अनन्तस्निग्ध (परमाणु) करि
 = षप नही है । ऐसे तीनगुणस्निग्ध (परमाणु) के पांचगुणवाली
 = स्निग्ध करि षप है (वाचस) यम षपि दुर् (संख्या एक-दो-तीन चार स्निग्ध) निकरि
 = (तीनस्निग्ध गुणवाली परमाणु का बन्ध) तथा अत्रिम
 (संख्यातस्निग्धगुणवाली, असंख्यात स्निग्धगुणवाली अनन्तस्निग्धगुणवाली) निकरि
 = (तीनस्निग्धवाली परमाणुओं का षप) नही होगा है अर्थात् तीनगुणवाली
 स्निग्धपरमाणु का षप एक-दो-तीन-चार स्निग्ध परमाणुओं के साथ जो षप स्निग्ध
 संख्यामें पूव है तथा छ-सात-आठ-नौ आदि संख्यात असंख्यात अनन्त पर्यन्त
 स्निग्धगुणवाली परमाणुओं के साथ जो षप स्निग्ध गुणवाली परमाणुओं के साथ वा अगली है अन्य नही
 होगा है केवल पांचगुणवाली स्निग्ध परमाणुओं के साथ ही तीनस्निग्धगुणवाली परमाणु षप को प्राप्त होशी है
 पूर्ण स्निग्धस्य १ १/५ गुण स्निग्धेन १ १/५ अस्ति । बन्धः १ १/५
 शर्तः १ १/५
 चरतः १ १/५

= चारगुण स्निग्ध (परमाणु) का छहगुणस्निग्ध (परमाणु करि) षप है
 (= अष्टगुणस्निग्धपरमाणुसे) षपि हुई षपली (एकसे पांच तक स्निग्धपरमाणु, निकरि
 = तथा षड्गुणस्निग्धपरमाणुसे) अगली (सात आठ-नौ-दश आदिक संख्यातगुण
 स्निग्ध परमाणु असंख्यातगुण स्निग्धपरमाणु अनन्तगुण स्निग्धपरमाणु) निकरि
 = षप नही होगा है । इस प्रकार (योग्य अर्थिक) अर्थेय विप्रेयी भोक्ते । तसी प्रकार
 = दोगुणरूत्व (परमाणु) के एक दो तीन गुणवाली रूत्व (परमाणु) करि बन्ध मही है
 = द्विगुण (बन्ध) चारगुण वाकी रूत्व परमाणु करि बन्ध है । विसरी

गिद्धस्स गिद्धण दुराधिपणः (=स्निग्धस्वर्गः स्निग्धेनैः दि अधिकेनैः)
 लुपस्स लुख्लेण दुराधिपणः (=कचस्वर्गः कचेणैः दि अधिकेनैः)
 गिद्धस्स लुख्लेण वन्धोः = उवदि। वन्धोः। (=स्निग्धस्वर्गः कचेणैः उवदि। प्रपथः)
 जहरणवज्जो विसमे समे दा ॥ (=अपत्यस्वर्गः विपमेपैः समे दा ॥)

स्निग्धस्वर्ग स्निग्धद्वारा दो अधिक(गुणों)करि
 = कचका कचद्वारा दो अधिक(गुणों)करि(और)
 =स्निग्धस्वर्ग कचद्वारा(दो अधिकगुणोंकरि)प्रपथ होता है
 =अपत्य(गुणवाली परमाणु) के छोड़वियेभनेपर परमाणुमें
 समभार(दो-चार-छह-आठ दश इत्यादि गुणों)में हो अथवा
 विपमभार (तीन-पांच-सात-नौ-ग्यारह इत्यादि गुणों)में हो (बंध होजाता)है

रसाकारिक धनसागरि टीका इत्यादिमें तथा गोमूत्रसार (बीचकोट)में दिया हुआ है यहाँतक कि श्वेताम्बर आम्नायके अधिदृश्यसेसत्तर रखा
 भाष्यामवापरी गणार्थवृत्ति ओ उमास्माहित तत्पार्थिवम्पर है जो श्वेताम्बर आम्नायमें महावका प्रथम है जिसमें बाईसगुणस्वस्वाधियाता स्तोकोई
 त्तममें जो यह गाथा ऐसे पायाजाता है कि-विदस्स कियेयं दुमाधिएव ॥ लुख्लस्स लुख्लयं दुमाधियेव ॥ विदस्स लुख्लयं व्वेति कथ्था उहएवयका
 विपने लसेका परगु उक्त सम्प्रदायके अनुसूलन इस यह है कि स्निग्धपरमाणुका स्निग्ध भागव भाषिङकरि (बाघ होता है)। उहपरमाणुका
 भागवदुगुणव अधिककरि (बाघ होता है)। स्निग्ध का उहकरि(अर्थात् असह्यौका विजातीयका)बाघ होता है (यहाँपर दोगुण अधिककी बाघारप
 बना गयी है) विजातीय परमाणुओंका समागत्य भागवली बाघ होजाता है। उहपरमाणुकी परमाणुको छोड़ कर सममें और विद्यमान (दोनो)में बंध
 होता है। यह उह यह है कि यह गाथा युद्ध सर्काय मिश्रित्वि तत्पार्थिवम्परि तथा श्वेताम्बर आम्नायके प्रथममें कहांसे आया।
 (उपर) यह गाथा किसी ऐसे प्राचीन ग्रन्थ कीर्ग है जो तत्पार्थिवम्परि कहे उहपर दानो श्वेताम्बर तथा विग्धम्बर आम्नायोमें मामनीय या पत्नीकि
 पार्थिव दानो आम्नायकालीके यहां उहका पाठ अपमान परकता है विग्धम्बर आम्नायमें सबसे प्रथम उहातिक तत्पार्थिवम्परि इसको सवपर है ध्यापुव
 पार्थिव दानो द्रव्यका शिवा कर्वाचि इतका अन्त सवपर ३०० उह मुरी दथमीका पट्टाभियोसे प्रतीत होताहै इस विक्रमयुक्त शालिवाहन प्रया
 उह पंचम कालोकाहै राजाके समियाय है वह प्रतापी विक्रमाशिर्यके संकलन १३५ बर्ष पीछे कता है। इसक पञ्चांग श्रीमश्टाककंठकेवरो तत्पार्थिव
 पार्थिव दानो इतका उहेके किया इसकेमी पञ्चांग श्रीमश्टाककंठके स्वामीने इसका तत्पार्थिव श्लोकवाचि कर्में प्रहव किया फिर श्रीमश्टाककंठकेवरो तत्पार्थिव
 गोमूत्रसर्गमें इनके रणान किया कर्वाचि उहका समय इतिहास कथ्येयियोने प्यापुवली शलाकीके शारम्भमें बाघका उलसे उह पूर्व खिय किा है
 यत्पार्थिव दानो उहातिक संकल्प है इसको श्रीयुनसागरिस्त्रित्ते अतसागरी टीकामें सवपर १५० में रणान किया। इसका अधिदृश्येन
 गविध समत बाग गही है इससे कथ नही सन्दे कि उन्हीने किस समयमें इसका प्रपनी माष्याजान्मरिवी तत्पार्थिवदृशिमैं रणान किया। कही कही
 उह उहका उचि श्वेदि दुराधिपण दुराधिपण इत्येक पाठ मिलता है सा आचार्योंकी प्रपनी महाभारतका जो उहपर पाठका और अधिक जान
 उह उहका उचि श्वेदि दुराधिपण दुराधिपण इत्येक पाठ मिलता है सा आचार्योंकी प्रपनी महाभारतका जो उहपर पाठका और अधिक जान
 उह उहका उचि श्वेदि दुराधिपण दुराधिपण इत्येक पाठ मिलता है सा आचार्योंकी प्रपनी महाभारतका जो उहपर पाठका और अधिक जान

(१) एक आचार्यवर्य यह श्वेताम्बर आम्नायकमें लिखता है जो-
 उह उहका उचि श्वेदि दुराधिपण दुराधिपण इत्येक पाठ मिलता है सा आचार्योंकी प्रपनी महाभारतका जो उहपर पाठका और अधिक जान
 उह उहका उचि श्वेदि दुराधिपण दुराधिपण इत्येक पाठ मिलता है सा आचार्योंकी प्रपनी महाभारतका जो उहपर पाठका और अधिक जान

॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥

अन्धेऽधिकी पारिणामिकी च = बन्धे अधिकी गुणी पुद्गलौ (परमाणु वा स्कन्धौ) पारिणामिकौ च भवत ॥

सर्वाय — प०५०॥ सति० अधिकाः गुणौः।

पुनरुद्भिः। (= परमाणु वा स्कन्धौ)।

पारिणामिकाः। ब० भवतः।

= और बंध होनेपर दो अधिक गुणवाला

अपुद्गल (= परमाणु) वा स्वरूप (हीन गुणवाले परमाणु) वा स्वरूपको अपने रूपमें)

= परिणामावनवाला होता है अर्थात् दो गुण आदि स्मित्य वा स्रष्ट पुद्गलके बहुगुण आदि

स्मित्य वा स्रष्ट गुणपुद्गलस्वरूप पारिणामिकता होती है। या धार्य जैसे एक परमाणु वा स्वरूप

चें दोगुण स्मित्यताके हीय और दूसरे परमाणु वा स्वरूपमें चारगुण रूच्यताके हीय ती दोनोंके बंध होनेपर

अधिकगुणरूप को स्रष्टपुद्गल (= परमाणु वा स्वरूप) तिसरय हीनगुणरूप को स्मित्यपरमाणु वा स्वरूप हैं सो

हो जाता है। इसी प्रकार रूच्यसे स्मित्यमें बंध होय तो, रूच्यसे स्रष्ट मिले तो, और स्मित्यसे स्मित्यमें बन्ध होय

तो दो अधिकगुण भिस परमाणु अथवा स्वरूपमें हीय तिसरय हीनगुणवाला परमाणु वा स्वरूप परिणामि जाता

है और इस परिणामन अथवा पलटनेकी आवश्यकता प्रथम और दूसरी आवश्यकताका अभाव होकर एक हीसरी

विश्व आवश्यकता प्रगट हो जाती है। इस प्रकार अधिकगुणके और हीनगुणके एक स्वरूपपना होता है ॥

पारक करके जगत्तु निकल संतो ॥ येना हो तत्त्वत्वाय पात्रावार्तिक, समापत्तत्त्वार्थाविगमसूत्र और भाष्यानुसारिणी, तत्त्वाय वृष्टि (दो श्लेठाऽधरीय भाष्ये) में भी कहा है तैसादि निम्न उद्धृत भाष्यो से प्रगट है।

“तुष्टया व्याप्तुत्तित्तिप्रतिपत्तयर्थं = सूत्रमें तुष्टय् (मित्येयके) इतानेको और दूर करकेके तथा बंधकी विधिको विशेष आवश्यकतामें अतलागेके लिये है ॥

इतना तात्वाच पात्रवार्तिक, वार्तिक इत्सरी ॥

“तुष्टयः त्रिवलाकः प्रतिपेय एतौवर्तयति-बन्धं च विष्टोचवति = (सूत्रमें) तुष्टय् (‘अ आवश्यकतामाम्’ गुणसाध्ये स्रष्टाजगत्तम्’ इत दो सूत्रोंमें) लिये हुए

‘बन्ध तुष्टया व्याप्तुत्तित्तिप्रवलाय प्रतिपेय एतौवर्तयति-बन्धं च विष्टोचवति’ इतना है दूर करता है और बन्धका विशेष आवश्यकतामें गुणसाध्ये स्रष्टाजगत्तम्’ इत दो सूत्रोंमें) लिये हुए

त्रि-विष्टोचवति तथा प्रतिपेय एतौवर्तयति-बन्धं च विष्टोचवति (समाप्य० पृ० १३३ भाष्यानुसारिणी) तत्त्वाय वृष्टि एतौ ४७०) “इत लक्षमें

प्रतिपेयके ता व्याप्तुत्तित्तिप्रवलाय प्रतिपेय एतौवर्तयति-बन्धं च विष्टोचवति करता है (‘अभाव्यतात्पार्थाविगमसूत्रं च पृष्ठ १३३ से उद्धृत)

(१) मुद्रित तत्त्वाय प्रवेष्टोचवति-कर्म ‘बन्धं’ वरी है परन्तु इतल्लिखितमें है ॥ बहुधा प्रतिपेयमें उच्युत करी पाठ है ॥ इतनाकरे सामान्य० पृ० १३३में

तथा भाष्यानुसारिणी) तात्त्वाय वृष्टि पृ० ४७०में ‘अपत्तयत्तित्तिप्रवलाय प्रतिपेय एतौवर्तयति-बन्धं च विष्टोचवति’ इत लक्षमें उच्युत करी पाठ है ॥ इत लक्षमें

बन्ध इतौवर्तयति-बन्धं च विष्टोचवति इत लक्षमें उच्युत करी पाठ है ॥ इत लक्षमें उच्युत करी पाठ है ॥ इत लक्षमें उच्युत करी पाठ है ॥ इत लक्षमें उच्युत करी पाठ है ॥

उक्तेन विधिना बंधे पुन सति ज्ञानावरणादीनां कर्मणां त्रिशत्सागारोपमकोटीकोट्यादित्यतिरूपपञ्चा
भवति उत्पादव्ययश्रीव्ययुक्तं सदिति द्रव्यलक्षणमुक्त पुनरपरेण प्रकारेण द्रव्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह-

॥ गुणपर्यायवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

पनाः उक्तनैः। विरिनाः। इत्यपि सतिः।

ज्ञानावरण सादीनाम् ॥ कर्मणांम् ॥ विद्यते
सागरोपम-कोटी-कोट्यादि-स्थितिः। उपपत्ताः।। मवतिगु
दत्ता-न्यय-वीच्ययुक्तम् ॥ सत् ॥ इति उक्तव्यलक्षणम् ॥
उक्तम् ॥ पुनः अपरेणैव प्रकारेण द्रव्य-लक्षण मतिपादन प्रयत्नाह- (सूत्र ३० वेदकः गणः) अन्यमकारकणि द्रव्यका लक्षणमतत्त्वानेक विषयकवर्तकैः

सूत्रम्- "गुणपर्यायवद्द्रव्यम्" (१/३) ॥ ३८ ॥ = गुणपर्यायवत्-द्रव्यम् अस्ति ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः-गुण-पर्यायवद्द्रव्यम् ॥ अस्ति ॥

द्रव्यम्, गुण और पर्यायोंकरि युक्त (सहित) द्रव्य है अर्थात् गुण और पर्याय जिसके हैं
या जिसमें हैं वही द्रव्य है । याबाध द्रव्यकी अनक परिणति होनेपर भी जो द्रव्यस भिन्न न हो द्रव्यके साथ निस्य रहे सो जो
गुण है । और लयवर्ती होय सो पर्याय है । द्रव्यके भिन्ने गुण हैं वे द्रव्यसे रूपी भिन्न नहीं होते हैं ॥ सपस्त
गुणोंका समूह (=समुदाय) ही द्रव्य है । द्रव्यकी अनेक पर्यायें (अवस्थायें) पण्डते हुए भी गुण कभी नहीं पण्डतत । द्रव्यके नित्य
साथ वा अविनाभाची हैं । इसी कारण गुणोंको मान्यपी कहते हैं और पर्यायोंको व्यतिरेकी (व्योक्ति पर्यायें) क्रयवर्ती होती हैं।

= बहुरि इवित रीतिकरि बन्धनानपरमर्थात् अन्यमविकरः एकमेकरूपभोजेद्रुप
इय होनेपर तीसरी अवस्थाका उपादान करनेपर

= ज्ञानावरणादिक कर्मोंकी वीस

= कोइकोइी आधिक सागरमयाय स्थिति उत्पन्न होती है

= उक्तव्य-विनाया स्थिरतास्वरूपसहित = एक) सत् है ऐसा द्रव्यका लक्षण

= (सूत्र ३० वेदकः गणः) अन्यमकारकणि द्रव्यका लक्षणमतत्त्वानेक विषयकवर्तकैः

(१) गुणपर्यायवत् द्रव्यम् = गुणवर्ते सति पर्यायवत्त्वद्रव्यम् । (समाज्य० सूत्र १५०) गुणवत्त्वात् हाते सपसे जिसमें कोर न कोई पर्याय वा वह द्रव्यही
(२) जन्तु = वाजा नशिन युक्त सर्वयुक्त = जैसे दूधवत् गुणवाना गुणसहित, गुणयुक्त गुणसमयुक्त (३) उच्यते सूत्रमें दोबारा द्रव्यका अणुय
कहा जब उच्यते सूत्रमें अतद्रव्यलक्षणम् कहा है ? (उत्तर) वहिले सत्त्व लयक कहा सा ता द्रव्यका लक्षण है सो (सत्त्व) एकही सा सामान्य है,
अनेकरूपही इसका मन्वात् द्रव्यमो कहिये । आते सर्ववस्तु हैं सो सत्त्वको उल्लेख नहीं वर्ते । अनर्थद्रव्य सर्वपर्याय सत्त्वोके विशेषवर्तते जिससे अणुको वर
तगा लयवर्तकपर कहिये सा सर्व सत्त्वामती है । बहुरि द्रव्य अनेक हैं तिनका भिन्न व्यवहार करलैका यह गुणपर्याय सतिरपणा दुनरा लक्षण कहा सा
यह लक्षण न कहिये सो द्रव्योके गुणपर्याय स्वारे हैं, ते द्रव्य न ठहरे तब सर्वथा सपुत्री द्रव्य उच्यते । अतएव अनेकम अति द्रव्योका जोय होय तब
संसार भोज आदि व्यवहारका सो जाय होय तिससे दूध लयक का रूपन एक है ।

भावान्तरोपादान परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नो गुडोऽत्रिकमधुररस परीताना रोएवादीना स्वगुणोत्पादनात् परिणामिकः । तथाऽन्योऽप्यधिकगुण अल्पीयस परिणामिक इति कृत्वा द्विगुणाद्विस्निग्धरुक्षस्य चतुर्गुणाद्विस्निग्धरुक्ष परिणामको भवति । तत पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तर प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपधत्ते ॥ इतरथा हि शुक्लकृष्यात्तुवत् सयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत् ॥

१) आत अन्तर उपादानम् ॥ परिणामकत्वं ॥ क्रिद्भ्रगुदवत् ॥ अय अवस्था प्रकृतिको परिणामकता अर्थात् प्लवदाव गन्धि गुड के साथ रे यगाऽक्रिद्भ्रगुदः ॥ गुडः ॥ अरिः क्रमधुररसः ॥ परीतानाम् ॥ = जैसा बहुत भीठे रसवाला गीला गुड गिरेदुये गुणुमादीनाम् ॥ स्वगुण उत्पादनादः ॥ परिणामिकः ॥ तथा = रेतभादिकके अपना मधुररस) गुणके उपभावनेसे परिणामावनेवाला होता है तैसे अन्यो ॥ अपि ॥ अत्रिकगुणः ॥ अल्पीयसः ॥ परिणामिकः ॥ = अन्य भी अधिकगुणवाला अन्यगुणवाला का अपनेरूपमें परिणामावनेवाला होता है इति ॥ इत्या + द्विगुण भादि-स्निग्धरुक्षस्य ॥ चतुर्गुण = एतें करि (या एतें करके) दो गुणभादिक स्निग्धरुक्षका चार गुण भादि-ऽन्यवत् ॥ १) परिणामिकः ॥ भवति ॥ तत ॥ अतः अतस्या तप्यवन-युद्धम् ॥ तार्तीयिकम् ॥ = तार्तीयिकगुणवाला अपने स्वरूपमें परिवर्तनकरनेवाला वा पलटनेवाला होता है अग्यानाम् ॥ ॥ यामुर्भूति ॥ इति एकत्वम् ॥ ॥ उपपद्यते ॥ = अन्य अवस्था भगट होती है । एतें एकता वा एकपना अर्थात् एकस्वरूपपना उपजताई इतरगाऽऽऽ ॥

गुण-कृष्या-न्तरोपयोगः ॥ सर्वाभिः परिणामकत्वात् ॥ त्वेव काले तदुक्ते सद्यः सयोगेणैव नैरन्तरिके सद्यःसप्लवदाव नरोनेसे सवम् ॥ ॥ विविक्त-रूपम् ॥ ॥ अन्वतिष्ठेत् ॥ = सप्लव पृथक् पृथक् रूपकरि ही तिष्ठै, दीसै ॥ (अवतिष्ठेत् है नकि अनविष्ठेत्)

(१) यन्त्रेभ्यस्त्रिभिर्दो दानो कापुत्रिको हे षड युवायजस्रको अत्रमार मन्त्रगापान पविदायकर्वं क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्रिप्रयोगोऽपि स मधुर रसः परीतानां तेषां त्रीणां स्वगुणायास्मान् परिणामिकः सतागायोव्यधिक- मगः ॥ अल्पीयस परिणामिक इति इत्याः द्विगुणादि स्निग्धरुक्षस्य चतुर्गुणाद्विस्निग्धरुक्षः परिणामिका भवति । ततः तयोर्भारवा पक्षस्यपुत्रके तार्तीयिकमवस्थान्तर प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपधत्ते ॥ इतरथा हि शुक्लकृष्य मधुररसः अन्वतिष्ठेत् ॥ अन्वतिष्ठेत् ॥ इति विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत् ॥

तस्यैव यजस्रकार्तिकका शुकपाठः आचार्योव्यमलिको विभाकरनिकायाः ॥ आचार्यस्यैव यजस्रकार्तिके क्रिष्ण-रुक्ष- ॥ ३४ यथा क्रिप्रयोगोऽपि मधुर रसः परीतानां तेषां त्रीणां स्वगुणायास्मान् परिणामिक तथा ऽकोऽपि व्यधिक- गुणः ॥ अल्पीयस- परिणामिक इति इत्याः द्विगुणादि स्निग्धरुक्षस्य चतुर्गुणाद्विस्निग्धरुक्षस्य परिणामिको भवति । ततः पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तर प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपधत्ते ॥ इतरथा हि शुक्लकृष्य मधुररसः अन्वतिष्ठेत् ॥ अन्वतिष्ठेत् ॥ इति विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत् ॥

गुणाश्च पर्यायाश्च गुणपर्याया तेऽस्य सतीतिगुणपर्यायवद्द्रव्यम्॥ अत्र मतोऽस्त्यत्तावुक्त एव समाधिः। कथ-
चित् भेदोऽपत्तेरिति। केगुणा केपर्याया। अन्वयिनो गुणा व्यतिरेकिय पर्याया। उभयैरुपेतं द्रव्यमिति। उक्तच

ब्रह्मनुवादाः—गुणाः ३। ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।
 ३। ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।

ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।
 ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।

ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।
 ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।

ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।
 ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।

ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।
 ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।

ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।
 ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।

ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।
 ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।

ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।
 ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।

ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।
 ब्रह्मसमीपाः ३। ब्रह्मगुण-वर्षायाः ३। ब्रह्मपर्यायाः ३।

तत सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पुद्गलादीना च रूपादय ॥ तेषा विकारा
 विशेषात्मना मिथ्यमाना पर्याया ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णस्तीवो मंद इत्येव-
 मादय । तेभ्योऽन्यत्व कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशमाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायो-
 ऽन्वयितरभूत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

एक दूसरेसे विभक्ति न जाने जायें तौ पुद्गलद्रव्य भीवद्रव्यमें पलटआय वा एक होजाय और
 भीवद्रव्य पुद्गलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्र याका दूसरेद्रव्यमें पलटाव होजाये, पूर्वोक्त विशेष
 गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गलमें पलटजावे और पुद्गलद्रव्य पुद्गलही रहे तो एकता होवे और
 पुद्गलद्रव्य भीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य भीवही रहे तो दोनों द्रव्योंमें एकता बढे ।
 =वहाँ सामान्य अपेक्षासे नित्यसाधारनेवाले वा सदैवधाररनेवाले(=अन्वयिन)ज्ञान
 =आदिक भीवके गण हैं और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी)
 =रूपविक्र(गुण) हैं, तिन(जीव पुद्गलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न

बोद्धकर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिवर्तन
 विशेष आत्मना है विषयाना न पर्याया न ॥ यद्विद्यमानम् ॥ ॥ यद्विद्यमानम् ॥ ॥ यद्विद्यमानम् ॥ ॥
 पदमानम् ॥ ॥ अत्रेव ॥ ॥ मानम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥
 पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥ पदम् ॥ ॥
 तस्य न ॥ अन्यत्वम् ॥ ॥ कथंचित् ॥ ॥ आपद्यमानम् ॥ ॥
 समुदाय ॥ ॥ द्रव्य व्यपदेश-माक् ॥ ॥
 पदि ॥ ॥ रि ॥ ॥ सर्वथा ॥ ॥ समुदायम् ॥ ॥ अनयान्तरम् ॥ ॥
 एव ॥ स्यात् ॥ ॥ सर्व-भाव-पद-व्याप्त् ॥ ॥

कथंचित् मंद माननेसे कथंचित् अत्रेव माननेसे द्रव्यनापकी सिद्धि होती है (संस्कृतप्रवृत्ति सिद्धि २६२)
 नही- वा तो सर्वथा अभाव होजाय अर्थात् यदि समुदायमें और गुणपर्याय (समुदायी) में
 एकात् से ही तो सबलकी अविच्छिन्नता बढे किन्तु न ही अविच्छिन्न न बढे

तद्यथा-परस्परविलक्षणाना समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥ यद्विद रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । तत समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥ यश्च रसादिस्योऽर्थान्तरभूताब्रूपादनर्थान्तरभूतः समुदाय स कथं रसादिस्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

वयवाऽपरस्पर विषयज्ञानानाम् ॥

समुदायेऽसतिः समुदायस्यैऽप्यज्ञानान्तर

भावात् ॥

सर्वं अभावः ॥

परस्परतः अर्थान्तरभूतत्वात् ॥ १ ॥ भवेत् ॥ इदं ॥ ॥

रूपम् ॥ तस्मात् ॥ अर्थान्तरभूताभिरस-आदायः ॥

वतः ० समुदायः अर्थान्तरभूतः ॥ यः ॥ १ ॥ ०

रसादिस्यः अर्थान्तरभूतात् ॥ अर्थात् ॥

अर्थान्तरभूतः समुदायः सः ॥ कथं अरसादिस्यः ॥

अर्थान्तरभूतः न अप्येवं ॥ ततः ० ० ० रूपमात्रम् ॥ ॥

(१)

=वैसे (=वपवा) (किसीद्वय के) परस्पर भिन्न भिन्न खण्णवाले (गुण पर्याय) निकल

=समुदाय होनेपर (=सर्व) उस समुदायके गुण-पर्यायोंसे अनर्थान्तर

=भाव (मानने) प्रत्येकवा अर्थदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुण पर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पर्याय न माननेसे)

=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पर्यायका अस्तित्व नहीं रहता है क्योंकि

=बि गूण-पर्याय) अपस में भिन्नभिन्न रूप हैं (दृष्टान्त देते हैं) जो (पुद्गल का) अथ

=रूप(गुण) है तिस (कण्ठ) जैसे (वही पुद्गल) द्वय के रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं

=तिस (कण्ठ) से समुदाय अर्थरूप है और जो (=यः) अर्थात् वह समुदाय)

=रसादिक से अर्थ रूप होने से, रूपसे

=समुदाय अर्थरूप आ सो (समुदाय) जैसे रसादिकसे

=युक्त न होय अर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्न होय और तिस (इदं) से (=त) रूपमात्र

गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रवेकत्व गुणका विकार

व्यंजन व्यंजन पर्याय अर्थात्

बिना इव निमित्तके जो व्यंजन

पर्याय हो जैसे जीवकी विद्यपर्याय

तिरिच कारक, ईव पर्याय

जीव पुद्गल द्वयोंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, पर्यं अर्थमें काकार-कारक द्वयोंके अगुण अणुयुक्तमें बह्मगुणी इति

अथ पर्याय अर्थात् प्रवेकत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार

स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात्

बिना दूसरे निमित्तके जो

अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका

केवल भाव

विमान अर्थपर्याय अर्थात्

पर निमित्तके जो अर्थ

पर्याय हो जैसे अर्थरूप

राग, द्वेष जोय गानादिक

इति बुद्धिरूप अथ पर्यायही होती है

तद्यथा-परस्परविलक्षणाना समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरभूत्वात् ॥ यद्विद रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादय । ततः समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्द्रु पादनर्थान्तरभूतः समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

वययाऽपरस्पर विलक्षणानाम् ॥

समुदायेऽसतिः समुदायस्पर्शकानयान्तर

भावात् ॥

सर्वं अभावः ॥

परस्परताऽनर्थान्तरभूत्वात् ॥ अर्थः ॥ अर्थः ॥

रूपः ॥ तस्मात् ॥ अर्थान्तरभूताऽपरस्परतादयः ॥

वता ० समुदायऽनर्थान्तरभूताऽनर्थः ॥

रसादिभ्यः अर्थान्तरभूताऽः ॥

अनर्थान्तरभूताऽसमुदायऽनर्थः ॥

अर्थान्तरभूताऽनर्थः ॥

=वैसे (=वयया) (किसीद्वय के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ('गुणपर्याय)निका

=समुदाय होनेपर (=सति) इस समुदायके (गुण-पर्यायोंसे) अनर्थान्तर

व्याप (मानने) से अथवा अर्थपूर्ण मानने से (=अर्थात् वस समुदायको उसके भिन्न भिन्न

गुणपर्यायोंसे फर्दाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)

=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं करता है क्योंकि

=वि गुण-पर्याय) अभाव में भिन्नभिन्न रूप हैं (छान्द वेतै) जो (पुद्गल का) अ

=रूप (गुण) है तिस (रूप) से (जसी पुद्गलद्रव्य के) रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं

=तिस (रूप) से समुदाय अर्थरूप है और जो (=यः अर्थात् वह समुदाय)

=रसादिक से अर्थरूप होने से वा भिन्न होने से, रूपसे

=समुदाय अर्थरूपद्रुमां सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे

=पुण्य न होय अर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्न होय और तिस (दृ) से (=वतः) रूपमात्र

(1)

गुणके विचारको पर्याय कहते हैं

व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रवेष्टवत् गुणका विचार

एवमात्र व्यंजन पर्याय अर्थात्

विना इय निमित्तके वा व्यंजन

पर्याय हो जैसे जीवकी विज्ञपर्याय

तिर्यक् नारक ईव पर्याय

और पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, परंतु अर्थनं का कटक-काक द्रव्योंके अपुत्र व जपुर्कमें वरगुकी

अथ पर्याय अर्थात् प्रवेष्टवत् गुणके कठिनिक संख्य सब गुणोंके विचार

स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात्

विना दूसरे निमित्तके जो

अथ पर्याय हो जैसे जीवका

केवल ज्ञान

विमान अर्थपर्याय अर्थात्

पर निमित्तके से या अथ

पर्याय वा जैसे अर्थरूप

राग ऐव लोप मंगानादि

इति वृत्तिकर अथ पर्यायकी दोती है

तत सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पृद्गुगलादीनां च रूपादय ॥ तेषा विकारा
 त्रिगोपालमना भिद्यमाना पर्याया ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णस्तीवो मंद इत्येव
 मादय । तेभ्योऽन्यत्वं कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशमाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायो-
 ऽनर्थांतरभूत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

एक दूसरेसे भिन्न भिन्न न जाने जायें तो पुद्गुगलद्रव्य जीवद्रव्यमें पलटजाय वा एक होजाय और
 जीवद्रव्य पुद्गुगलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्र यका दूसरेद्रव्यमें पलटाय होजावे, पूर्वोक्त त्रिगोप
 गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गुगलमें पलटजावे और पुद्गुगलद्रव्य पुद्गुगली रहे तो एकता होवे और
 पुद्गुगलद्रव्य जीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य जीवघरी रहे तो दोनों द्रव्योंमें एकता ठहरे ।
 =वहाँ सामान्य अपेक्षास नित्यसाधारणबालो वा सर्वव्यापारणबालो(=अन्वयिनः)ज्ञान
 =आदिक नीचेके गुण है और पुद्गुगलविकोष्ठे(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी)
 =रूपादिक(गुण) है, तिन(जीव पुद्गुगलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न
 छोड़कर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थायें परिवर्तन

विद्यत-आत्मनोऽपि यमानाने पर्यायाने ॥ पटज्ञानम् ॥ विद्योप स्वरूपकारिके भेदरूप रुप ते पर्याय है (जैसे) पट्टेका ज्ञान
 पञ्चानम् ॥ अरेषुऽपि पानाऽपि गच्छेत् ॥ यत्र ॥
 मदी ॥ त्वेव ॥ आदयन् ॥
 क्रोप(रित), अर्थात् इत्यादि जीवके पर्याय है और गण-अप-नीत्र-यद इत्यादिक पुद्गुगलके पर्याय है
 =तिन(गुण पर्यायों)से कथचित् अव्ययनाको प्राप्त होता हुआ
 =समुदाय द्रव्यनामका प्राप्त करनेवाला(=याच्) है अर्थात् गुण और पर्यायों द्रव्यसे अवेद
 रूप है द्रव्यसे भिन्न नहीं है (अपर्यवर्तिका) पृष्ठ ३४४) गुण-पर्यायोंमें और समुदायमें
 कथचित् वेद माननेसे कथचित् अवेद माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होती है (संस्कृतसर्वाभिसिद्धि २६२)
 यदि ० हि ० सर्वाभा ० समुदायः । अनयान्तरपर्ययः ।
 पर ० इत्यन्तः । अय-अप-नीत्र-यद इत्यादि

१ ।
 अन्वयिना सर्वव्यापार स हो तो सर्वव्यपकी अपेक्षायमानता ठहरे वा विकीर्णता भी अन्वयिना ठहरे

तद्यथा-परस्परविलक्षणानां सद्बुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तर-
 र्भूतत्वात् ॥ यदिदं रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । तत समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥ यश्च रसादिभ्यो-
 ऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूत समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

वययाऽपरस्पर विलक्षणानाम् ॥

समुदायः सतिः समुदायस्वर्गपञ्चनयान्तर
 यावावर् ॥

सर्वं अपावर् ॥

परस्परतः अर्थान्तरभूतत्वात् ॥ अतः ॥ अतः ॥ अतः ॥

रसादिभ्योः अर्थान्तरभूतत्वात् ॥ अतः ॥ अतः ॥ अतः ॥

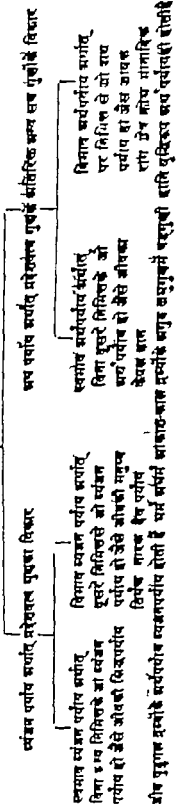
अनर्थान्तरभूतः समुदायः सः कथं रसादिभ्यः ॥

अर्थान्तरभूतः न अभवेत् ॥ अतः ॥ अतः ॥ अतः ॥

(1)

= बौते (= वयया) (किंसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ('गुण पर्वतीय) निष्पन्न
 = समुदाय होनेपर (= सति) (उस) समुदायके (गुण-पर्वतीयसे) अनर्थान्तर
 = याच (यानने) से अपवा अमेदपनीं यानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न
 गुणपर्वतीयसे कर्वाचित् भिन्न पर्वार्थ न याननेसे)
 = सर्वकथ अपाव होता है अथवा किसी भी पर्वार्थका अस्तित्व नहीं रहता है क्योंकि
 = (वि गुण-पर्वतीय) अपाव में भिन्नभिन्न रूप हैं (एकान्त वेदो) जो (पुद्गल का) यथ
 = रूप (गुण) है तिस (रूपगुण) से तिसी पुद्गलद्रव्य के रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
 = तिस (रूपगुण) से समुदाय अमेदकप ही और जो (= वः अर्थात् वह समुदाय)
 = रसादिक से वेदकप होने से वा भिन्न होने से, इससे
 = समुदाय अमेदकपगुणों से (समुदाय) कैसे रसादिकसे
 = गुणक न होय अर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय और तिस (वेद) से (= वः) रूपमात्र

गुणके विचारको पर्वाय कहते हैं



तत सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पुद्गुगलादीना च रूपादय ॥ तेषा विकारा
 विशेषात्मना भिद्यमाना पर्याया ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गर्धो वर्णस्तीवो मद इत्येव-
 मादय । तेभ्योज्ज्वल्व कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायो-
 ऽनर्थातरमृत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

एक दूसरेसे विभ विभ न जले जायै तो पुद्गुगलद्रव्य भीषद्रव्यमें पलटजाय ना एक होजाय और
 भीषद्रव्य पुद्गुगलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्र यका दूसरेद्रव्योंमें पलटाय होजायै, पूर्वोक्त विशेष
 गुणोंके अभाव होनेपर भीष पुद्गुगलमें पलटजायै और पुद्गुगलद्रव्य पुद्गुगलादी है तो एकता होने और
 पुद्गुगलद्रव्य भीषद्रव्यमें परिवर्तित होजायै और भीषद्रव्य भीषही रहै तो दोनों द्रव्योंमें एकता रहै ।

तत्र सामान्य-अपेक्षया ॥ अन्वयिनः ज्ञान
 आदयः ॥ नीवस्य गुणाः ॥ पुद्गल-आदीनाम् ॥ च ॥
 कथ-आदयः ॥ ज्ञेयस्य विकाराः ॥

=वही सामान्य अपेक्षासे नित्यसाधारणनेवाले वा सर्वैयल्लारहनेवाले(=अन्वयिनः)ज्ञान
 =आदिक भीषके गण है और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी)
 =रूपादिक(गुण)है, तिन(भीष पुद्गुगलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न
 छोड़कर एक अत्रस्यासे दूसरी अत्रस्यामें परिवर्तन

विशय आत्मता ॥ विषयानाम् ॥ पर्यायाः ॥ ॥ पटज्ञानयः ॥ ॥ ॥ विशेष स्वकृत्तिके भेदरूप रूप ते पर्याय है (जैसे) रूपाका ज्ञान
 पटज्ञानम् ॥ क्रोधः ॥ मानः ॥ गर्भः ॥ वीर्यम् ॥
 मदः ॥ इत्येष ॥ आदयः ॥
 क्रोध(रिस), अहंकार इत्यादि नीषके पर्याय है और गप-रूप-वीर्य-मद इत्यादिक पुद्गुगलके पर्याय है
 =पुद्गुगलद्रव्य द्रव्यनामका मात करनेवाला(=माक्) है अर्थात् गुण और पर्यायें द्रव्यसे अनेक
 रूप हैं द्रव्यसे विभ नहीं है (अर्थात् अणुका गुण पुद्गुगलद्रव्यनामकी सिद्धि होती है (सिद्धतसर्वावसिद्धि २६२)
 कथंचित् भेद माननेसे कथंचित् अनेक माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होती है (सिद्धतसर्वावसिद्धि २६२)
 यदि ० रि ० सर्वथा ० समुदायम् ॥ अन्वयान्तरमृतम् ॥
 पृथ ० स्यात् ॥ मद-अभावश्च ॥ स्यात् ॥

यदि ० रि ० सर्वथा ० समुदायम् ॥ अन्वयान्तरमृतम् ॥
 पृथ ० स्यात् ॥ मद-अभावश्च ॥ स्यात् ॥

यत् ॥ अन्वयान्तरमृतमर्थव्यपहार से ही तो सामान्यकी अविद्यमानता रहै का किन्तीका भी अन्वयान्तरमृतम् ॥

तथा-परस्परविलक्षणाना समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरमत्वात् ॥ यदिदं रूपं तस्मादर्थान्तरमूता रसादयः । तत समुदायोऽनर्थान्तरमूत ॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरमूताद्रूपानर्थान्तरमूत समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरमूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

वपणापरस्पर विलक्षणानाम् ॥
 समुदायः सति समुदायस्य सर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरमूत ॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरमूताद्रूपानर्थान्तरमूत समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरमूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

वपणापरस्पर विलक्षणानाम् ॥
 समुदायः सति समुदायस्य सर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरमूत ॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरमूताद्रूपानर्थान्तरमूत समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरमूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

वपणापरस्पर विलक्षणानाम् ॥
 समुदायः सति समुदायस्य सर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरमूत ॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरमूताद्रूपानर्थान्तरमूत समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरमूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

मनुदाय प्रसक्त ॥ नचैकं रूपं समुदायो भवितुमर्हति । तत समुदायाभाव । समुदायाभावश्च तदनर्थान्तर-
भूताना समुदायिनामप्यभाव इति सर्वाभाव एव सादिद्विषयि योज्यम् ॥ तस्मात्समुदायमिच्छताकथंचिद्

अर्थात् रसादिक से समुदाय विभक्तिके कारणसे

- =समुदाय प्राप्त हुआ ॥ और न
- =एक रूप(भाष) समुदाय हो सकता है, वा होनेके योग्य है अर्थात् समुदायवो
- बहुतोंको कहते है और स्पणुण एकरीदुता स्थितिये केपक्ष रूपको समुदाय नहीं कहसकते
- =विस कारणसे समुदायका अभाव हुआ और (=)समुदायकी अविद्यमानतासे
- =वत्सा(समुदाय)के अमेवकप समुदायियोंका भी (अर्थात् वह जिस में समुदाय रहेउनकाभी)
- =अभाव हुआ इस प्रकार समस्त का अभाव हुआ (कुछभी न रहा)

- समुदाय(प्रसक्त) नचैकं
- एकम् ॥ रूपम् ॥ समुदायो भवितुम् ॥ अर्थात्
- तत समुदाय अभावः समुदाय अभावात् ॥ च ०
- तद्व्यनयागतरयुवानाम् ॥ समुदायिनाम् ॥ अपि ०
- अभावः ॥ प्रति ० सर्वे अभावम् ॥
- एवम् ० रसादिषु ॥ अपि ० योज्यम् ॥ ॥

=स प्रकार(द्रव्य के गुण) रसादिकमें भी जागना चाहिये भावाय जैसे यह रस गुण
है विस(रस) से भिन्न भिन्न रूप-गुण-स्पर्श आदिक है और रस गुण
को-समुदाय से अमेवकप माना है । इस खिये समुदाय रूप-गुण-स्पर्श आदिकमें न्यारा न्यारा
(मेवकप) हुआ, तब एकसांभाष गुण) समुदाय उद्भव सो समुदाय नहीं हो सक्ता क्यों कि समुदाय
वो बहुतोंका होता है । रसतो एकरी है । उसको समुदाय क्यों कहना चाहिये इसकार समुदायका
अभाव आया और समुदाय (अपने) समुदायियों से भिन्न नहीं हो सके है । तिन समुदायियोंका
भी अभाव हुआ इस प्रकार समुदाय-समुदायी दोनों के अभाव होने से समस्तका अभाव हुआ ॥

तस्मात् समुदायम् ॥ १ इच्छताः २ रूपयित् ०

(1) इच्छन् एव शब्द इत्यत्र वृत्तिय विभक्ति वृत्ते वा जागते से बनती है ॥ जैसे गच्छन् की गच्छता, तैसे इच्छन् की इच्छता ॥
(2) नैव मूलिका नाम प्रत्यय है ॥ को मूलिकाके बाद प्रत्ययिकके कर्त्तव्य संज्ञा वा नामकारि मेव है ॥ काङ् मूलिका
कहिये ॥ काङ् परत कहिये ॥ अत संज्ञा करि मेव है मूलिका का विद एव वा ताके परत पक्ष बहिये नाते सक्या करि कमी मेव है ॥ बहुति मूलिका
का लक्षण तो विज्ञादिक रस लक्षण है ॥ अत अतका लक्षण सुव मीका साध्यादिपक्ष मित्र ही बहुति मूलिकाका प्रयोगम तां ज्ञेयम इत्य चोपनादिक
प्रत्यय है और परत का अत्र आरण्यादि प्रयोगम प्रत्यय है ॥ जैसे प्रत्ययके नीचे प्रयोगके नीचे संज्ञा, सक्या लक्षण प्रयोगनादि करि कर्त्तव्यत् मेव होते मी
परतपत्ना करि भव नहीं है वही एव कर्त्तव्यता है ॥ ॥ ऐको अर्थकर्मलक्षिका ॥

ऽर्थान्तरभाव एषितव्य ॥ उक्तानां द्रव्याणां लक्षणनिर्देशात्तद्विषय एव द्रव्याध्यवसाये प्रसक्ते अनुक्त-
द्रव्यसंसूचनार्थमिदमाह—

॥ कालश्च ॥ ३९ ॥

किम् ? द्रव्यमिति वाक्यशेष ॥ कुत ? तल्लक्षणोपेतत्वात् ॥ द्विविधं लक्षणमुक्तम् । “उत्पादव्ययधौ-
व्ययुक्तं सत्” “गुणपर्यायवद्द्रव्यमिति” च ॥ तदुभयं लक्षणं कालस्य विद्यते । तथा—ध्रौव्यं तावत्का-
लस्य स्वप्रत्ययं स्वभावव्यवस्थानात् ॥

अर्थांतर-
भाषार्थः—एषितव्य इति उक्तानाम् ॥ द्रव्याणां ॥ लक्षण—वदार्थ (आश) मानना योग्य है । कथित द्रव्योंके लक्षण
निर्देशार्थं—लघु-विषय-पर-द्रव्य-अध्यवसाय-
यसक्ते—अनुक्त-द्रव्य-संसूचन-अर्थ-पर-इत्यर्थः ॥ आह—व्यसंग होनेपर अक्षयित वा अगणित द्रव्यक सूचनाके लिये (अभिप्रेत्यमे) कहते हैं कि
‘सूत्रम्— कालश्च ॥ ३९ ॥ = काल च (द्रव्यम्) अस्ति ॥ ३९ ॥
सुभाषः—काल-पर-द्रव्यम् ॥ अस्ति ॥
गुणानुवाद — किम् ॥ द्रव्यम् ॥ प्रति-वाक्य शेषः ॥ अस्या (काल) ‘द्रव्यम्’ एता(शब्द)स सूत्रोच्चारणशेष है अर्थात् पर वाक्य अस्त चिना
इति-शब्द(लघु)-नपेवत्तावत् ॥ ॥
द्विविधम् ॥ लक्षणम् ॥ द्रव्यम् ॥ उक्तम् ॥ उत्पाद-व्यय-
धौव्य-युक्तम् ॥ सत् ॥ गुण-पर्यायवद्द्रव्यम् ॥ प्रति-व-स्थिरता युक्तं सत् है । और—(च) गुणानु-पर्यायवात् द्रव्य है ॥
तदु-भयम् ॥ लक्षणं कालस्य ॥ विषयवत्पदाध्रौव्यम् ॥ = (ऊपर सूत्रोंमें कहे हुये) सो दोनों लक्षण कालके विषयमान हैं जैसे स्थिर रहना ।
वाच्यत्व-संज्ञ-स्व-व्यवस्थानात् ॥ स्वभाव-व्यवस्थानात् ॥ = जो (कालवत्) कालके स्वभावपरि-भ्यवस्थित होने (केनिमित्त) से स्वकारणकृत है अर्थात्

(1) इसी की व्याख्या इस सूत्रका पाठ और अर्थ पढ़ है । ऐतान्तर-काल्यायके ‘समाप्त्यनन्तानि विगमसूत्र’ में और मात्पान्त्वपरिष्णितत्वात्
पुनरिति ‘कालपर्यवे के’ सूत्र है । काल-व इति एके = काल ही (च-क), (द्रव्य) है ऐसा शब्द के मत में है अर्थात् कोई वाक्यार्थ कहते हैं कि काल ही
द्रव्य है । इस सूत्रके पाठसे जो ऐतान्तर-काल्यायमें है और उनके यह कि विद्याहीसर्वा, वेदाहीसर्वा और क्वाहीसर्वा सूत्रोंसे जो समाप्त्यत्तत्वा

व्ययोदयो परप्रत्ययो । अगुरुलघुगुणवृद्धिहान्यपेक्षया स्वप्रत्ययो च ॥ तथा गुणा अपि कालस्य साधारणसाधारणरूपा सन्ति ॥ तत्रासाधारणो वर्तनाहेतुत्व, साधारणाश्चाचेतनत्वामूर्तत्वसूक्ष्मत्वामुरुलघुत्वादय ॥ पर्यायाश्च व्ययोत्पादलक्षणा योज्या ॥ तस्माद्द्विप्रकारलक्षणोपेतत्वादाकाशादिवकालस्य द्रव्यत्वं सिद्धम् ॥ तस्यास्तित्वलिङ्गधर्मादिवह्यारख्यातं, वर्तनालक्षण काल इति,

लोककायाके एक एक मदेशमें एक एक काहाणु जो अमूर्ध अचेतन-निक्रिय, स्पर्श-रसन-श्रवण गुण रहित और जो विखनेकी शक्ति रहित(=अकार्य)है रत्नकी राशिके सद्य स्वभावसे ही स्थिरता खियेदुये विष्ठी हुई है ॥

व्यय उदयोऽपरमत्ययोः । =व्यय-वत्पाद (पर द्रव्यके परमाणुकी अपेक्षा) पर(निमिष) कृत है ।

अगुरुलघुगुणवृद्धिहानिअपचयाः । =और (=च)अगुरुलघुगुणकी वृद्धि हानिकी अपेक्षाकरि स्व कारणकृत है ॥

वयागुणाः । =अपि • कालस्पर्शसाधारण

असाधारणरूपाः सन्ति । =तत्र असाधारणः ।

वर्तना-

हेतुत्वः । साधारणाः च अचेतनत्व अमूर्तत्व

सूक्ष्मत्व-अगुरुत्व-लघुत्व-आदयोः । पर्यायाः च • व्यय

वत्पाद-लक्षणः पर्यायः ।

तस्मात् । हि नकार

लक्षण इत्यन्तत् । आकाश-आदिवत् अकार्यः ।

द्रव्यत्वं । सिद्धं । अस्पर्श-अस्तित्व-शिरः । परमादि-वत्-द्रव्यत्वा सिद्धः । तिस (काष्ठ)कीपियमानवा का चिन्त पर्यायिक द्रव्यके समान

व्यारूपानम् । वर्तना-लक्षणः । अकार्यः ।

पर्यायिक द्रव्यके समान व्यापकत्वमे तथा 'माप्यादुसादिषु तस्याप टीका में दिये हैं (वैधीम सूत्र इत्येते यदा नही हैं) किन मन्त्रोका कथन इत्य अकार्यके अकार्यके विषयकपसे करने उगत प्राप्त है कि उनके बर्तना का को द्रव्य नही माना है केको। इस अकार्यके सूक्त १५८ १९० ३ (१) उक्त एक पर्याय शीघ्र करणके और नव द्रव्याधिक पर्यायिक दो हैं मुक्तानि-अप्य शीघ्रता नयो नही बहामाया । (अप्य) जो पर्याय शीघ्रता है एक सादरकी दूसरी अमचरनी नही सादरनीनी गुण है सो सादरनी नयोपमे पुन आनलके ताते गुणार्थिकनवदिकनवदिकगुणपर्यायकाव ही द्रव्यका विषयकप है ।

किमर्थमयं काल पृथगुच्यते? यत्रैव धर्मादय उक्तास्तत्रैवायमपि वक्तव्य । अजीवकाया धर्मा-
धर्माकारकालपुत्रला इति॥ नैवं शक्यम् । तत्रोपदेशे सति कायत्वमस्य स्यात् । नेष्यते च सुख्योप-
चारप्रदेशप्रचयकल्पनाभावात् ॥ धर्मादीना तावन्मुख्यप्रदेशप्रचय उक्त असंख्येया प्रदेशा
इत्येवमादिना ॥ अणोरप्येकप्रदेशस्य पूर्वोत्तरप्रज्ञापननयापेक्षयोपचारकल्पनयाप्रदेशप्रचय उक्त ।

किम्?॥ अयम्!॥ अयम्!॥ कालः? पूयक् • उच्यते । = मरुत/द्विसखिये यककाल न्यारा, स्थानमें, कुरागया है ।

यम • एव • पर्य • आदय • उक्ता • तत्र • एव • = जहाँ ही धर्मादिक (द्रव्य) कहेगये ये वहाँ ही

अयम्!॥ अपि • वक्तव्यम्!॥ अजीवकायाः!॥ पर्य • = यहाँ (काल) भी कुराजाना योग्य था । 'अजीवकाया-पर्य-

अपर्य • आकाश-काल-गुह्यता-इति • एवम् • = अपर्य आकाश-काल-गुह्यताः इस प्रकार (इसअध्यायका प्रथम सूत्र) होला तो (उपर) ऐसे

न • शक्यम्!॥ तत्र • उपदेशे!॥ सति • कायत्वम्!॥ = स शय वा विकर्त नही होनी चाहिए, तहाँ (इसअध्यायके प्रथम सूत्रमें) उपदेश होनेपर

कायत्वम्!॥ अस्य!॥ स्यात् । = कायपना अर्थात् बहुत प्रदेशों का मिलन रूप शक्तिपना (काल) के होजाला

च • मुख्य उपचार-मदश - = और मुख्यपना तथा उपचारसे प्रदेशोंकी

मदश-कल्पना अभावात्!॥ न • इत्येताः • = सपुत्र कल्पनाके अभावासे (कालके कायपना) नहीं देला गया था जाना गया है ॥

धर्मादीनाम्!॥ वाचत • मुख्य-मदेश-मचयः!॥ = धर्मादिक (द्रव्यों) के तो मुख्य प्रदेशोंका प्रचय

असंख्येयाः!॥ प्रदेशाः!॥ इत्येव!॥ अदितो!॥ इसअध्यायके सूत्र ८, ९, १०) एवोंकरि कुरागया

अणोर्!॥ अपि • एक प्रदेशात्कारै!॥ इतो!॥ सूत्र १? पूर्व उपचार भावनावनेवाली = यत्रापन

नय अपेक्षया!॥ उपचार-कल्पनया!॥ = नयके अपेक्षासे उपचार वा कल्पनाकरि अर्थात् पूर्व भाव यह कि पूयक् पूयक् अणु है

उपर भाव यह कि तौमी जन्में भविष्यत् कालमें मिलन शक्ति है इन दोनों भावोंकी प्रकाशक

वा अभावने वाली नयकी अपेक्षा करि, उपचार वा कल्पना से

अदेश समूहवाली कहीजाती है भावार्थ परमाणु (संघात से)

रूपरूप होजाती है । जिससे प्रदेशमचय कही गई है ।

व्ययोदयो परप्रत्ययी । अगुरुलघुगुणवृद्धिहान्यपेक्षया स्वप्रत्ययी च ॥ तथा गुणा अपि कालस्य साधारणासाधारणरूपा सन्ति ॥ तत्रासाधारणो वर्तनाहेतुत्वं, साधारणाश्चाचेतनत्वामूर्तत्वसूक्ष्मत्वागुरुलघुत्वादय ॥ "पर्यायाश्च व्ययोत्पादलक्षणो योज्या ॥ तस्माद्द्विप्रकारलक्षणोपेतत्वादाकाशादिवत्कालस्य द्रव्यत्वं सिद्धम् ॥ तस्यास्तित्वलिङ्गं धर्मादिवहधारख्यातं, वर्तनालक्षण काल इति,

श्लोकाकार्यके एक एक मयेयमे एक एक कालाणु नो अमूर्ध्व अपेतेन-निक्रिय, स्यो-र-स-न-न बर्ण गुण रचित और जो स्थितनेकी शक्ति रचित(=अकार्य)रै रलकी राशिके सशय स्वभावसे ही स्थिरता खियेइये विष्ठीइई है ॥

व्यय उदयोपरमस्योदो । =व्यय उत्साव (पर द्रव्यके परणमनिकी अपेक्षा) पर(निमित्त) कृत है ।

अगुरुगुणवृद्धिशानिअपक्षयोः । =और (=च)अगुरुकणुगुणकी वृद्धि शानिकी अपेक्षाकरि स्व कारणकृत है ॥

वयोभुगुणा । =अपि • कालस्यसाधारण

अभाषारणक्यानेमन्दि । =तत्रअसाधारणम् ।

वर्तना-

वृत्तयोः । =साधारणानुपेक्षअपेतेनत्व अमूर्तत्व

सूक्ष्मत्व-अगुरुखुस्तु मादयम् । (= पर्यायाद्) च • व्यय-

उत्पाद-लक्षणानुपेक्षानु-

तस्मादेदि यन्त्र

लक्षण उपनत्वम् । =आकाश-आदिवत्अकालस्यम् ।

इत्यन्तम् । =सिद्धम् । =अस्यम् । =अस्तित्व-विद्म् । =परमादि-सर्व-द्रव्यतासिद्धरै । तिस (काल)की विपमानता का विन्द परमादिकद्रव्योंके समान

प्राप्त्यावत्तम् । =वर्तना-लक्षणानुपेक्षालानुपेक्षिते •,

वैधियम मन्त्रमे तथा 'मात्पुनस्यारिणी तन्वाच' टीका में विवे है (यतीम सब इनामे पदा गही है) जिस मन्त्रोका कथन हय इस अन्वयापके अन्वयमे (विश्वकपसे करते उनसे प्रगत है कि उनक पदा'काज' को द्रव्य नहीं माना है केको। इस अन्वयापके पृष्ठ १५२ ३५० ॥

(१) द्रव्य गुण पदोंके तीन चरणके और तत्र द्रव्यादिक पर्यायदिक दोरे हैं शुकादिकअप हीनता बयो नहीं उदाहरण है (अन्तर) जो पर्याय हीम काग है एक सादरनी हुनए अन्वयनी तयो लक्षणहीना गुण है जो लक्षणनी पर्वानसे गुण आनलसेही साते गुणवि अन्वयदिकअन्वयीदगुण पदोंकेसाए ही द्रव्यकाअन्वियेकअन्वय है ।

कालस्य पुनर्ह्येतापि प्रदेशप्रचयकल्पना नास्तीत्यकायत्वम् ॥ अपि च तत्र पाठे निष्क्रियाणि चेत्यत्र धर्मदीनामाकाशान्तानां निष्क्रियत्वे प्रतिपादिते हतरेषा जीवपुद्गलादीनां सक्रियत्वप्राप्तिवत्कालस्यापि सक्रियत्वं स्यात् ॥ अथाकाशात्प्राक्काल उद्दिश्येत । तन्न । आ आकाशादेकद्रव्याणीति,

कालस्यैपुन उद्देश्येऽपि • प्रवेशेऽपि

कल्पनाऽनऽप्रतिग इतिऽप्रकापत्वम् • अतिऽथऽतपऽकल्पना नरी हे । इत प्रकार (काल द्रव्य के)अकापपना हे । बहुदि तरा भी

पाठेऽनिष्क्रियाणिः ॥ एऽतिऽअवः

इसी आधाय के । इत सातवा सूत्र में

यथादीनारुः आकाशः

अन्वनामः निष्क्रियन्ती ॥ प्रतिपादितेऽम

पुणरामः जीवपुद्गलादीनाम् ॥ सक्रियत्व-नातिवत्ः

कालस्यैऽपि • सक्रियन्ती ॥ स्यात्

(1) अयः आकाशादेः शक्तः

कालेऽपि ॥ गतिरयम्

तद्मः ॥ नः आकाशाशादीः

एकद्रव्याणिः ॥ इति •

=बहुदि कालके दोनो प्रकार (मुख्यपनास तथा उपारपनासे भी प्रवेश स्पृष्टी

(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें भी अजीविकाया धर्मार्थमाकाशाशुद्धगुणालागतेसे)

=वचनमें भी (काल के कायपना उद्देशके उपरान्त) " निष्क्रियाणि च " यथा

इसी आधाय के । इत सातवा सूत्र में

=धर्मार्थिक / द्रव्यों से आकाश

=पर्यत्विकके (अर्थात् धर्म-अपर्म-आकाश-के)इलानचखनक्रियासेरहितपनाकेकयनकरनेमें

=अन्यथेप जीव पुद्गल (द्रव्य)निके क्रिया सरित पनाकी गति के समान

=कालकेभी सक्रियपना होमाता(परलुकाखनिष्क्रिय हे ही) ॥

=यदि (अजीविकाया धर्मार्थमाकाशाशुद्धगुणालागतेसे)

=काल उपदेश कियगया होता तो अर्थात् इस का प्रथम सूत्र अजीविकाया धर्मार्थमा

काशाशुद्धगुणालागते स्थानमें अजीविकाया धर्मार्थमाकाशाशुद्धगुणालागते ही

=(उत्तर)मोनरी यथोक्ति छटा स्पृष्टिसमिध्यायकेप्रथमसूत्रके)आकाश(शब्द,पर्यात(आ)

=एक एक द्रव्य हे अर्थात्-धर्म-अपर्म आकाश एक एक द्रव्य हे ऐसे

(1) का शब्द के सात कर्मोंसे अतिवत्तवे पर ही यथा 'यदि' के अर्थ में हे (दो) दोष संस्कारोंपर काठ पुठ (२) किसी किसी इतमिज्जिन

प्रतिमें 'अपि'का वाट हे इसारी लगत में 'अपि'परत शब्द जोड हे यथोक्ति रिता' तुषदि कठवा गणक धातुमें उक्त' अथय आ किका के साथ आनेपर

उपसर्ग व दधाना हे जोडमें में 'अपि' बनता हे इत में कर्मणि प्रकार का व विभक्त जोडकरि 'अपि' बना इतमें 'अ' अथय पुठय पर वकन आसने

परी वतमान एतक किक अन्वते से 'अपि'के उपदेश किय गया हे यह हुआ इत प्रथम पुठय (अथ वृत्तय) एक वकन आसने यही विधिक

किनाथ 'अपि'क' छटाके से अपि'के बना उद्देशेन बना उद्देशेन किय यथा होता इतमें अप में गवां'पर हे अर्थात् यदि काल प्रथम

पुठके अन्वते 'अपि'का'अथ' के अन्वते उपदेश किय गया हीना ही एक इतपरत काकने हाता परलुकाखके अलंकारसे अर्थ हे ॥

एकद्रव्यत्वमस्य स्यात् । तस्मात्पृथग्निह कालोद्देश क्रियते ॥ अनेकद्रव्यत्वे सति किमस्य प्रमाणा ? ।
 लोकाकाशस्य यावन्त प्रदेशा

एकद्रव्यत्वम् ॥१॥ (१) अस्य स्यात् ।
 तस्यात् ॥ १ ॥ पृथक् इह काल-उद्देशः क्रियते ।
 अनेकद्रव्यत्वम् ॥ सति ॥ किमु ? ॥ अस्य प्रमाणा यः ॥
 अर्थात् काल को अनेक द्रव्य कदा है सो इसका क्या प्रमाण है ॥
 अर्थात् अनेक द्रव्य कदा है सो इसका क्या प्रमाण है ॥
 अर्थात् अनेक द्रव्य कदा है सो इसका क्या प्रमाण है ॥

(१) एक ही यदि पूर्वोक्तकारणोंस प्रथम सूत्रसे कहा जाय तो इतने अन्तरसे क्यों कहा इस अर्थसायका तोसरा सूत्रसेसा उक्तके "आलोकोवाप्य वा जीवाः आकाश एव शोभो विद्यते" एक "वा" अर्थ मी होजाता है क्योंकि जीवाप्य तीसरा शीट आकाश उक्तानीसवाँ सूत्रमें दो आकार हैं यदि तोसरा सूत्र "जीवाप्य" ही उक्तमा या तो आलोपरि एवको एव "जीवाप्य" तीसरे सूत्रकी वार्तिक मान लेते अथवा "जीवाप्य सूत्रके परभाव" "आलोपरि" देसा स्थिर सूत्र करते तो आर सूत्रों में "द्रव्यस्वरूपरेषमकरण" मी समाप्त होजाता क्योंकि प्रथम सूत्रमें आरद्रव्य कहे दूसरे सूत्रमें प्रथम आकाश-पुनरुक्तकोसका स्थापित को तीसरे में जीवों को मी द्रव्य नाम दिया है चौथेमें वा "जीवाप्य" ही सूत्रमें लिखाकर काल कहयना योग्य था कि द्रव्य नामा विषय आर वा तीन सूत्रोंमें समाप्ति होजाता ॥ एव बातों के उपरान्त चौथे सूत्रमें और सावर्ण्य (अर्थात् नित्यवस्थिततायकतापि ४४ आकाशादेशक प्रस्थापि ॥ १४ निमित्त-वापि च ४७४) सूत्रोंके अर्थ करनेमें कि काल द्रव्य सद्धित नित्य है अवस्थित है अरुपी है प्रथम अर्थमें आकाश ये तीन एक एक द्रव्य है और जीव पुनरुक्त-काल अनेक द्रव्य है । प्रथम अर्थमें आकाश नित्य है अवस्थित है काल मी भिन्निक्य है वैशामानी न करपी पड़तो और मुगमतासे (काल को जीव के समीप द्रव्य कहते तो) इन सबों के अर्थ हो जात है सातवाँ सूत्र "भित्तिकापि च" का अर्थ मेरी समझ में आकारको समुच्चय अर्थमें लेतेसे यह अर्थ हो सका है कि प्रथम अर्थमें आकाश भिन्निक्य है आकार से काल मी (च) (भित्तिका है) है कुछ भाष्य सूत्रों के ल्यों देते हैं जो ४७७ २२० सूत्रोंके अर्थ कर नेमें २० अक्षरप्रकारकी ने "सर्वापि सिद्धि ब्रह्मिका में पं० सारोसुखजीने "अप्यं प्रकाशिता" में तथा "तत्प्राप्य" सूत्र लखदीबा में "काल" को द्रव्य ३३ वाँ सूत्र के अन्तुक्त मानकर अर्थ किया है (क) "जीव है तो मी द्रव्य है ऐसे व आगे कहेंगे जो काल द्रव्यको ताकरि साहित कथयेंगे । प्रथम अर्थमें आकाश जीव पुनरुक्त काल एव सुदृष्टि के द्रव्य नाम कहिये हैं ॥ जीवाप्य ४३४ के अर्थमें ये वाक्य हैं पु० ४००० (सुदृष्टि) (क) ताँ अन्वक्षित कहे अर्थविक्रम द्रव्य है ॥ पु० ४११ (भित्तिवस्थिततायकतापि एव सूत्र के अर्थ में) यह वाक्य है (ग) "बहुरि भाग्ये कदियेसा काल द्रव्य सो मी किजा रहित है" यह भाष्य भिन्निक्यापि च" के अर्थमें पु० ४१९ परब्रह्मनिक्यार्थमें (घ) "आग बहेंगे जो काल व जाको अजीव द्रव्य है" ॥ "अर वहाँ अजीव द्रव्यकालकरि साहित व आर द्रव्य जानने" ये वाक्य जीवाप्य सूत्रके अर्थमें कहे हैं अर्थ प्रकाशिका पु० २२७ (क) "य धर्मीयिक द्रव्य है अरुपी अरुपी सक्या अर्थात् सोते हैं पाँच अर्थों होय सात नहीं होय ताँ अन्वक्षित है ॥ "आर काल के एक अर्थोपयोग्य है ली अर्थने अर्थेति को सक्याको नहीं छोड़े है ताँ अन्वक्षित है" ये भाष्य भित्तिवस्थिततायकतापि एव चौथे सूत्र के अर्थ में आये हैं (देखी अर्थ प्रकाशिका पु० २००) (क) "प्रथम अर्थमें आकाश एव तीन द्रव्यमि को एक एक कहे लें ही जीव पुनरुक्त काल एव तीन द्रव्यमि के अनेक पना आबा काल द्रव्य अन्वक्षित है" । ये वाक्य सुवर्ण सूत्र के अर्थमें हैं, येजा

गिया हू एकके ॥ रथखणं रासीविव ते कालाणु असखदब्ध्याणि ॥ १ ॥ रूपादिगुणविरहादमूर्त्ता ॥ वर्तना-
 लक्षणस्य मुख्यस्य कालस्य प्रमाणमुक्तम् । परिणामादिगम्यस्य व्यवहारकालस्य किंप्रमाणमित्यत इह दमुच्यते -

(१) द्विधाः (२) इ० (३) एकैकेः । (स्वित्वाद्) वि० एकैकेः । = एक एक (आलायु) निषय करको (= दुन्दुभिरिस्वि

रपणायुः ॥ रासीः । ४ वि० (रत्नानां) ॥ राशिः भूवः ॥ = व काखक अण असंख्यात द्रव्य है अर्थात् एक एक खोकाकाशके प्रवेशमें जो एक एक
 (५) नः । काख-अणुः । असंख-दब्ध्याणि ॥ काखके अणु रत्नोंकी राशिक समान निरूपणकारक स्थित हैं, वे असंख्यात द्रव्य हैं ॥
 नः । काख-अणुः । असंख-दब्ध्याणि ॥ भाषार्थ एक एकके क्रमसे खोकाकाशके भित्तने प्रवेश हैं वतनेही प्रवेशोंमें निषय

काखके असस्य अणु रत्नोंकी राशिके समान परे हुए हैं । रत्नोंके हेरका उदाहरण देनका अभिप्राय यह है
 कि मिनका हर एकत्र भोजन भी उसमें प्रत्येक रत्न भिन्नभिन्न है वसी प्रकारसे काखके अणु पृथक् पृथक्
 एकके पयाव पर क्रमसे भरे हुए हैं । इसीखिये मिनत खोकाकाशके प्रदेश हैं वतनेही काखद्रव्य गणनामें है ॥

रूप-भादि-गुण-विरहात् । अमूर्त्ताः । = रूपादि गुणोंसे रहित (काशाणव) अमूर्त्तके है
 वर्तना-खलणस्य । गुरुपस्यः । काखस्यः । प्रमाणम् ॥ । = (यस) वर्तना साखणबाहा मुख्य काखका प्रमाण
 उक्तम् ॥ । परिणाम-भादि-गम्यस्यः । उपवहार = काखका तथा प्रमाण (वा निमपकरण) है इसखिय यह (अप्रिम सूत्र) कहाजाता है कि
 काखस्यः । किम् ॥ प्रमाणात् ॥ ग । इति अतः ० इदं ॥ । अच्यते = काखका तथा प्रमाण (वा निमपकरण) है इसखिय यह (अप्रिम सूत्र) कहाजाता है कि

(१) द्विधा-भिधत्ता प्राकृतमे विसर्तं नदी है और मित्र यर्गीय वयोका (आचरीका) सभोग नहीं होता मित्र बर्तक पचम अखरका कही २ सयोग
 होता है । इत्थित्ये द्विधा द्विधा ऐसे पाठ है क्यों कि ट ठ मित्र बर्तक अखर नहीं है (२) इ (सस्कृत) द्वि=ही निरूपण करते । (३) पचको
 यह शब्द यो स्थानमें आया है ऊपर जिस प्रकार यह गाथा लिखी है उसमें इसका सर्व भाग माना है इसखिये सर्वशब्दके सङ्घट्ट एकै करि मत्त पुत्रिय
 लक्ष्मी विभक्ति एक बचन पहिले शब्द 'पचको' को सस्कृत क्षया भिन्नी है और द्वितीय पचको की 'सर्व' शब्दके सङ्घट्ट सर्वनाम सङ्गा मानकर
 'पचके' पुत्रिय प्रथमा विभक्ति बहु वचनमें संकट्ट क्षया यी ही अर्थात् 'पचका' पाठ है वहां सर्वनाम नहीं माना है वहां प्रथमा है पचका 'संस्कृत क्षया है
 वाको- (३) यह शब्द प्राकृत शब्द 'पति' का पुर्विभय परबचन प्रथमा विभक्ति है, जैसे-प्राकृत 'इत्ति' से इत्ती संस्कृत क्षया राशिः (४) मित्र मित्र, मित्र,
 एव तीन प्रकारके पाठ है मित्र-मित्र मित्र, एव एवार्थे वार २=वेदमन्त्र आचार्यकेत प्राकृत व्याकरणमें मित्रा न शौरसेय आष्य मकरखमें मिलाकि म्मुद्रप्रथमप्रह की २४वीं पायामें
 क स्थानमें कोही पाठे है एव न तो हमअन्त्र आचार्यकेत प्राकृत व्याकरणमें मित्रा न शौरसेय आष्य मकरखमें मिलाकि म्मुद्रप्रथमप्रह की २४वीं पायामें
 'क्षया एव बहुपरा' इस वाक्य में क्षया है इसका भाग जाता है कि प्राकृत में 'एव' जो कही २ काममें आते हैं (५) 'ते बाह्याश्च असख दब्ध्याणि पांच
 प्रथिवो में येसा पाठ है ये० मनोहरराज जी और प० खलवन्त्र जी द्वारा संपादित गोमन्तराम में 'असख दब्ध्याणि के स्थानमें' 'मुख्येयथा है जिस
 की संकट्ट क्षया मन्त्रथा' है प्यान रचना आदिसे मुख्येयन्त्र अर्थात्से पहिले हुए है किन्तने गोमन्तराम, प्रथमसमह इत्यादि एवे ही

॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥

साप्रतिकस्यैकसमयिकत्वोऽपि अतीता अनागताश्च समयाअनन्ता इति कृत्वा अनन्तसमय इत्युच्यते
अथवा मुख्यस्यैव कालस्य प्रमाणावधारणार्थमिदमुच्यते ॥ अनन्तपर्यायवर्तना हेतुत्वादेकोऽपि
(१) सूत्रम् (१) सोऽनन्त समय ॥४०॥ = स^(१) काल अनन्तसमय अस्ति ॥४०॥

सूत्रप-सः १। काल २। अनन्तसमयः ३। अस्ति ४।

पूरणवादाः— साम्यविकल्पः १। एकसमयिकत्वः २॥

अधिकप्रतीतिः ३। अनागता ४। वःसमयाः ५। अनन्ताः ६।

गिः कृता + अनन्तसमयः ७। अतिकल्प्यते ८॥

अपरा १०। पुनस्तु ११। एकः कालस्य १२। (३) मयाण

अवधारण अर्थम् १३॥ इत्यम् १४॥ उच्यते १५॥

अनन्त-पर्यायवर्तना-हेतुत्वात् १॥ एकः २। अपि ३।

= वह काल अनन्त समयवाला है । अथवा वह काल अनन्त समयक्य है ॥ अर्थात्
वर्तमान काल तो एक समय मात्र है किन्तु अतीत (भूत) और अनागत (भविष्यत्)
काल के समय अनन्त हैं ॥

= वर्तमान (काल) का एक समय होने पर

= भी भूत और भविष्यत् समय अनन्त हैं ।

= ऐसा करके अनन्त समय (= अनन्त समयवाला) ऐसा (सूत्र) कहा गया है ॥

= अथवा मुख्य ही काल का परिमाण (पर्याय-व्यय)।

= निश्चय करने के लिये यह (सूत्र) कहा गया है (कि मुख्य काल का परिमाण-सीमा
पर्याय-व्यय-अनन्त समय है)

= अनन्त पर्यायक वर्तन (पर्यायों के परणवति में बाध सहकरिता) के निषिद्धपनासे एक भी

अनन्त-पर्यायवर्तना-हेतुत्वात् १॥ एकः २। अपि ३।

(१) अनागत और विपश्चर होने आन्तव्योमे इव सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥

(२) 'तद्' का पुल्लिङ्ग एक लक्षण प्रथमा विभक्ति'का है और इसके परभाव स्वोक्ति स्व'का अन्त शब्दका सूत्रमे आवे है इससे विचरन एका ओर
अथवा उच्चर शाब्द अ + उ निष्कर्ष'मो' इत्य होगया पुनः सो और ए के परभाव 'य' 'ए' अथवा 'वा' में गमित होजाताहै । और अ के स्थानमे उ येसा
विग्रह निष्पन्न ले कर देवई अब विग्रह सूत्रमे देवो निरुपमान है (अर्थात् प्रथम पुच्छ २०) ॥ अर्थात् के परभाव 'काल' शब्दका आ स्थानसे आरम्भ होना है
साए नव (अनुगयायी सूत्र १ १ १३२) से विभक्ति प्रत्यय 'म्' अर्थात् विचरन आता एता और ऊपर 'स' काला येना निष्कागया है ॥ (अर्थात् १ पुच्छ ४२)

(३) 'प्रमाणवित्' अर्थात् शब्दकालावधानात् इत्यन्तरकोश नाकार्यवत् २३ स्तोत्र ४४ का प्रयोजार्थ है ॥ प्रमाणात् कार्य (क) हेतु कारक (क) मर्यादा सीमा
(ग) उच्च परवर्तन (घ) इच्छा प्रमाद्य भाव परिष्केत्र (= विप्रकर्ष के इच्छाकारक) (ङ) प्रमाणा काला पर मुख्य कालका परिमाण भाव के
अर्थ मे है कि मुख्य काल कितना है ॥

प्रतिपाठी नमस्तस्यसायकीकृत पदच्छन्द और निमस्त्यर्धसहित धर्माभिहितका लक्ष्यः हिरी शत्रुवाद । अथवा १ पृष्ठ ८ ।

पञ्च चत्वारो द्वौ चतुर्दशभागा वा देशाना । ।

वा चतुर्दशभावाः ॥ पञ्च ५ ।

= ५ [लोकप्रधानादिके] चौरश्च राज्यं है ।

(सा प्राणवैदिक समुद्रवात अपेक्षसे) कुछ घाटि पांश

चत्वार ५ देशाना ॥ दो ५ ।

= कुछ हीन चार कुछ न्यून दो राज्य् रूपे चाते है अर्थात्

मासादन शुद्धराशरर्षीका साधनें नरकमें वरय नहीं होता है अथः प्राणान्तरक समुद्रवात भी उसके साधनें नरकमें नहीं हो सका है परपण कृष्णलेखनेसे युक्त छठवां नरकमें मरख करे और पणलोकेमें अथ सेवे धर्म प्राणवैदिक समुद्रवात करे वन प्राणवैदिक समुद्रवातकी अपेक्षाने कुछ हीन पांश राज्य् सधे है क्योंकि छठवा नरकसे मध्यलोक तक पांश राज्यकी ऊर्ध्वसे है, इसीप्रकार पांशवां नरकसे उक्त छठ नील सेवपक्षाना सासाउन गुणस्थानधर्मा मकर प्राणवैदिक समुद्रवात करे और मध्यलोकमें वन सेवे हो मारवैदिक समुद्रवातकी अपेक्षा कुछ न्यून प्राणवात् केव्य छटा है क्योंकि पांशवा नरकसे मध्यलोक चार राज्य् ऊचा है, ऐसे ही तीनरे नरकसे प्राणवैदिक समुद्रवातकी अपेक्षा उक्त छठ कायोलेखनवाले सावा वन गुणस्थानधर्मा कुछ घाटि दो राज्य् छते है क्योंकि तीसरे नरकसे मध्यलोक दो राज्य् ऊचा है ।

(१) एक वि द्वि त्रि चतुर पञ्चश्च षष् सप्तद अष्टद नवस्य दशस्य एकदशस्य द्वादशस्य त्रयोदशस्य चतुर्दशस्य पञ्चदशस्य षोडशस्य सप्तदशस्य अष्टदशस्य नवदशस्य दशस्यैव समासे प्रासक्तो है उनके बचन और विमलिक परी होती है वा साहाय्यी होती है जिसके साथ व धाती है और एक द्वि त्रि चतुरका क्रिया भी संज्ञाके समान होता है शेष संज्ञा तीनों सिद्धांतों माननी का सक्तो है अतः एक निर्दिष्टो भी हो सका है ।

(१) अक, बाक, काक, खीका यीका य यीख क्रियावा य । त्रिका य परामिकावा सेसा पञ्चमिपुत्रवीथे ॥ गोमस्सारे कर्मकण्डकेरुपानान्-
वापानिय पावा ५-२२ द्यवते ॥ असा मापया कायः क्यते—ययमायां युधिष्यां नारकावा । अथवा कयोतेषा भवति, द्वितीयायां मथवा ।
द्वीयापानकेन्द्रेणु क्कया । सेव अयेनके क्कया सेव केगीवाकारकावा । अथवा शीकतेभ्या भवति । चतुर्थी वसां मथयमा नीका । पंचम्यां
युधिष्यां ययामेयु चतुर्विन्दकेयु क्कया अथ । अयेनकेयु क्कया शीकतेषा अथवा क्क्यतेषा य भवति ॥ पणुषी मथया क्क्यतेषा ।
सप्तम्यां युधिष्यां क्कया क्क्यतेषा । अतः पणुषिषीकाः मारवैदिकं कुशाखान् क्क्यतेषा सासादनमथि पञ्चचतुर्दशभागा कथिताः ॥

प्रायश्चित्तस्य समस्तसाधारणसंज्ञकत्वं प्रत्येकं चौरं विप्रत्यर्पयति चैव सर्वार्थसिद्धिं च सुखं च विप्रैः अनुभवं । मत्प्रपाप १ सूत्र २ ।

सिद्धिः

कारणं चक्रं गंग (= कायनेत्रा गंग कायनेत्रा गंग)

= (पचासवचन वा अनुक्रमधे) कायोत्तरेखा कायोत्तरेखा,

चक्रं गंग श्रीका गंग श्रीका गंग य (= कायनेत्रा गंग श्रीका गंग = कायोत्तं श्रीकाश्रीका चौरं (= य = च)

श्रीका गंग च) = श्रीकाश्रीका

श्रीकाश्रीका गंग च, श्रीका गंग य (= श्रीकाश्रीका गंग च = चौरं (= य) श्रीकाश्रीकाश्रीका चौरं (= य) श्रृङ्खलेखा

कृष्णा गंग च)

पचासवचन गंग लेखा गंग (= पचासवचन गंग लेखा गंग = (पचा) श्रृङ्खल श्रृङ्खलेखा

पचासवचन-श्रृङ्खलेखा गंग (= पचासवचन गंग) = पादिके, सुसरे, तीसरे चौर्ये पांचवें, कुठे सातवें चरकधी (प्रायश्चित्त) है प्रार्थित

यथापर सातदिकेयेंके माह श्रेय्याकी चयोत्राये कथना है यन्मा प्रथम नारकमें कायोत्तरेखा

का श्रवण्य धंश है धंश सुसरे चरकमें कायोत्तरेखाका मध्यम धंश है । धंशा नीसरी

प्रायश्चित्त कायोत्तरेखाका श्रृङ्खल धंश चौर श्रीकाश्रीकाका श्रवण्य धंश है, अन्तमा चौर्य

चरकमें श्रीकाका मध्यम माग है पांचवरी प्रायश्चित्त चरिकामें नश्रिकेय्याका श्रृङ्खल धंश

चौर श्रृङ्खलेखाका श्रवण्य धंश है । कुठरा चरक मत्प्रधीमें श्रृङ्खलेखाका मध्यम अंश

है माचवी सातवें चरकमें श्रृङ्खलाका श्रृङ्खल धंश है । प्राकृत मागमें देवाचान्त श्रीकाश्रीका

श्रृङ्खलीकरी प्रतीया विनाशिकेके लेकर अक्षमी विनाशिके लकके सर्वकार शक्ति श्रवण्यके

कथिके सख्या है चौर शक्ति श्रवण्यकी प्रायश्चित्त श्रृङ्खलचक्रन " सर्वं " है अन्तः

प्रायश्चित्त प्रायश्चित्त श्रृङ्खलचक्रन श्रृङ्खला मया है प्राकृत श्रृङ्खलचक्रनचौर्ये पृष्ठ १७३-१७८

= गोमहसात चरककाचक्रन लेखामार्गका (मकरच) में

= पाह गाथा ५२६ वी देखी जाती है ।

= इस अन्तर्मा श्रृङ्खलाका अर्थ कहा जाता है-पादिके

= चरक (= प्रायश्चित्त) में चारदिकेयेंके श्रवण्य कायोत्तं लेखना होती है ।

गोमहसात श्री चक्रकाचक्रन श्री श्रेय्यामाग्याचक्रन श्री
 श्रवण्य गंग गाथा गंग ५२६ चरकके
 मन्सा गंग पायाचक्र गंग अर्थः गंग चरकके मत्प्रमाचक्र गंग
 प्रायश्चित्त गंग चारकाचक्र श्री श्रवण्य गंग कायोत्तरेखा गंग

एतानिशासी भगवत्पदात्तापवकीलकठ पदच्छेद चौर नियन्त्रयंमरिठ सर्वाथसिद्धि का कथय द्विती अत्रुणाद । अथ्याप १ सुत्र ८ ।

नृकस्यानात् मत्प्रार्थितकं कृतंमिं सावप्रैवैवत्वात्प्राप्तुंश्रुतानां स्रुयाः । १११ । एतौपृथ्वीवर्तमेदृकात्प्रथोत्तरयोःकृत्प्रस्थानात्प्राथितकं
कृत्वाँ द्वौ चदुर्धमसार्थौ स्रुयो, ११ । वैतोःकथं भोगमृमिषु परिष्कारप्रकारात् ।

समानगुणितरीपरिष्काराः ११ कृता *

एति चैत् *

प ० समानगुण्य (= य समस्तगोत्रस्य)

परिष्कारा (= परिष्काराः ११)

च * मत्ति १ (= म सिक्कते १)

एति वचनेन ११ा नवसः ०

सावात्प्रकारात् ११ मत्प्र-मसावात् ११

मत्प्र-जगते ११ एति मत्प्रार्थितक-भगवत्प्रार्थिते

कथम् ० एति ० चैत् *

चदुर्धम ११ भागाः ११ कृत्प्रभेदेना-अपेक्षया ११ा

पन्च ११ एति-

एवम-अत्रया-

अनुपसंज्ञा ११ा

पञ्चमगुणितरीवत्तम + एत्प्रकारात् ११ा

धीवक्षेप्या + एत्प्रकारात् ११ा साक्षात्तैः ११

मत्प्रार्थितकं ११ कृत्प्रभेदे ११

अत्रात् ११ अनुपपद्य * भागाः ११ स्रुयाः ११

= सातर्वा नरकका शोडशा (सासादयोकारि) क्योकार शो

= ऐसे सरीर पर (च्छते है)

= शौर (= य) मदात्म प्रमा युक्तिनी (= सातर्वा मत्प्र) के (सम्प्रकार) गुण्य

= वन्ते "सावात्प्र-सिद्ध-अस्त्यत् नरात्की" (पुस्तरे-तीसरे-चौथे-गुणस्थानोके)

= यद्मिं मत्ते है सात्प्रार्थ कि सातर्वा नरकके सम्प्रकारसाहित शीघ्र मत्ता गद्मी है

= ऐसे (योग्यप्रकार कर्मकारणके ५१ के प्राणान्ते अन्ते) शाक्याकारि पार्श्वान्ते

= पुस्तरे गुणस्थानवर्तीनका मनुष्यके व शोभते (सातर्वा नरकका परिष्कारा किवा है)

= शोभते न शोभे पर सी मत्प्रार्थितक समुद्रवातके व शोभिका विष्वास्य वा समाधान

= कैसै १ इसप्रकार सरीर शोभेपर (च्छदा जाता है)

= क्योकि (लोक भवसातर्वाके) चौथर भाग है सो कृत्प्रभेदेयाकी विषयवाच्यरि

= पौष (एतद् मत्प्रार्थितक अत्रेस्ताने वृत्ते आते) है एत

= शाक्यपदी पुस्तरे मत्प्रकार (अर्थात् मत्प्रकारके असाव शोभेपर मत्प्रार्थितकका असाव न

= शोभा दो) अर्थात्ता व कर्त्वी

= पौषानी मत्प्रकारे अत्रेतेके एत्प्रकारविक्षेपे

= शीघ्रशेदयानके एत्प्रकारस्थानसे पुस्तरे गुणस्थानवर्तीसरे

= मत्प्रार्थितक समुद्रवातकटोकरि

= (लोक असावसाके) चौथरएतद् है सो वार एतद् स्थाने आते है

“द्वादशभागा. कुर्वो न लभ्यन्ते इति चेत् तत्रावस्थितलेइयापेक्षया पञ्चैव । अथवा येषां मते सासा-
दन एकैन्द्रियेण नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादशभागा न दत्ता. ।”

द्वादशभागा ॥ कुर्वन् न च सभ्यन्ते ७ इति चेत् ७
 लभ्यन्ते ७ अथपि पञ्च-लेइया-पेक्षया ॥
 पञ्च ॥ पृथक् ॥

अथपि च येषाम् ॥ मते ॥ सासादनः ॥ एकैन्द्रियेण ॥
 न च उत्पद्यते ७ अथ-मते-पेक्षया ॥
 द्वादशभागाः ॥ न दत्ताः ॥

१४

पृथीयपृथीयत्वा + एतद्वत्. ॥
 अथपि पृथीयत्वात् ॥
 मते ॥ अथपि ॥
 सासादनः ॥
 एकैन्द्रियेण ॥
 नोत्पद्यते ॥
 मते ॥
 सासादनः ॥

- = पारराष्ट्र यथोक्त भूमी त्रिये गये हैं ऐसी शक [= चैव] पर कहते हैं कि
- = वरा [नक्षत्र] त्रियथिव (= अथपि पञ्च) लेइया (इति) की विवक्षाते
- = (चौदहवाय अथनाचमसे) पञ्च ही राष्ट्र [ऊठे नरकवाडे सासादन शुद्ध
- स्थानवर्षी कीव इत्थ न्नील क्षायोव लेइयायोके पारकोसे] सुदे वाते हैं ॥
- = नही उपनावा है उनकी सम्पत्तिकी विवक्षासे
- = पारराष्ट्र (= भागाः) नही त्रिये गये हैं अर्थात् जो आचार्य मानते हैं
- कि सासादन शुद्धस्थानवर्षी एकैन्द्रियोर्म अन्य लेता है उनकी अथसासे कुछ
- हीन पारराष्ट्र भी स्थर्य हो सकवा है और विनका मत है कि एकैन्द्रिय
- में अन्य नहि लेता है उनके पताशुसार केवल कुछ नून पायराष्ट्र यथर्य हैं
- = समस्त लोकके पारराष्ट्र लंके, पारराष्ट्र कोडे एकपञ्च ऊचे अथ त्रिये अथ ही
- हीमती लेताकीस बनाकार भाग होति येते चौथव बनाकार राशुयोकी समनावा है
- उसके बाद बनाकार पाञ्च त्रिये है अथा बाद बडे हुये हीमती लेताकिस है ।
- = हीमते भरकडे अन्तरे इत्यन्वितेके अथत लेइयाने
- = ऊठेव स्थानसे (दूसरे शुद्धस्थानवर्षीमते) मातृवाथिक स्थुपुपातकरभेवावर्षीकरि
- = (कोकबसवकाडे) चौदहवाञ्च है (वा) दो राष्ट्र स्थर्य आते है
- = हीमती लेताकिस बनाकार राशुयोकीसे (बसवावकी) दो बनाकार पञ्च त्रिये है ।
- = सोमसुतियोके मन्त्रिषि (कोसे) में स्थर्य न होतसे
- = ऊठे स्थुपुपात (पञ्च बाद अथ दो बनाकार पञ्च लेइयाने) है

एवातिवासी वागलसवरापायकीडकृत पदच्छद और विमलसमर्पणदिवि सार्धसिद्धिका अर्घ्य' गिरी बहुवार । एतयाप १ एत ८ ।
सप्तसृमियादृष्ट्यसयतसम्पद्दिविभिर्लोकस्यासंख्येयमाग । 1

सम्पद्विगाष्टि-

सप्तपदसप्तदशदिविभिः ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयमागः ॥ = (कृष्ण-सील-कपोतक्षेत्रपाके वागः) असपद सप्तपाष्टिर्गोकरि लोका
असंख्यताया अथ [स्यस्यां साता है]

(१) यद्युत्पीरपुष्करिस्थानाम्युत्पीरशेषपसंपदसम्पद्दृष्टीनां मन्त्रमस्ति । अथा लोकस्यसंख्येयमागः कथमिति चेत्-तेषां मनुष्यैर्द्वे पयोराशि
सप्तपावत् एकस्यसृष्टिभवेत् सर्वत्र स्वर्गसाधारिणि स्यात् । अत्रिचदमन्कीर्तकवर्तिनामपि स्वकीयत्वदीपपुरिष्माणेय एतन्नस्यसंख्येय ईदंसायास्य पुन
कथार्थमावाधानेय सम्पत्त्या लोकासंख्येयकथयानुपपत्तेः ॥

(१) यद्युत्पीरयन्तस्तिस्थानाम् ॥ अमुन-

अथा असंपदसंख्येयसम्पद्दृष्टीनाम् ॥ मन्त्रम् ॥ गः अस्ति

अथा * लोकस्य ॥ असंख्येयमागः ॥ कथम् *

शक्ति ० अथ *

शिवम् ॥ मनुष्यशेषे गः पाप + शरान्तिसूत्रमात्रेण ॥

एकस्यसृष्टिभवेत् ॥ असंख्येयस्य-अमागम् ॥

इति स्यात् ॥

अथीरवपत्नीसंख्येयमागः ॥ अथि *

अथीरवपत्नीसृष्टिभवेत् ॥ अथ एकस्यसृष्टिभवेत् ॥ गः

शिवम् * अथान्य पुनः अथीरवमागम् ॥ गः अथान् ॥ पादः ॥

अथपाप * वागः + असंख्येयस्यपाप + मनुष्यपत्तेः ॥ गः

= (कृष्ण-सील-कपोतक्षेत्रपाके) मिथगुणस्यानर्थी और

= (कृष्ण-सील-कपोतक्षेत्रपाके वागः) असपद सप्तपाष्टिर्गोकरि लोका

असंख्यताया अथ [स्यस्यां साता है]

= अन्तर्बा मन्त्रकथके पदतोषादि कृष्ण-सील कपोत (= अमुन)

= क्षेत्रपापीं यद्युत्पीरस्यस्यमन्त्रवर्तिनादी यद्युत्ते ।

= एवातिशये लोकस्य असंख्यतायां अत्र केचि (स्यस्यां साता है)

= अथे संख्येयता (कथते है निः)

= शिव (असंपदसंख्येयस्यपाष्टिर्गो) का इतिशिवार्थि (= मनुष्यसंख्ये) ही अन्त्य शेषेये

= एकस्यसृष्टिभवेत् सावधान् इत्यर्थेनात्रे अ इतिशे (असंख्यताया माग है)

= एसप्रकार इम कथते है (वर्तमानकाल अस्ममुत्पन्न बहुजन परस्मैपाद अथीरवियजनसे

स्य पापुका स्या इतिना है)

= अथीरवपत्नीसंख्येय (तथा) प्रकृतिरु विविक्ति पयोनावावकिन्ती

= अथवी अथनी (स्वकीय) पुरिषवीरिचं ही इत्युक्तशिव (= मन्त्रका शिव) एत

= तिच्छे वाक्य शिव कथयत्ता नाम्ना अथीरवे अतना ही (असंख्यताया माग है)

= पुंसरे प्रकार असंख्यताया का इतिना सम्पन्त्र (प्रसप) एतिर है अथार्थे पुंसरे अ-

थारसे अर्थकथयतायां मागाका स्यार्थे अर्ही अत्र सत्का है

तेजोलेश्येर्षिर्ष्यादृष्टिसासादनसम्पन्नदृष्टिभिलोकस्यासंख्येयभागः । केषु चतुर्दशभागा वा
 देशानां । सप्तमिष्य्यादृष्ट्यसयत्सम्पन्नदृष्टिभिलोकस्यासंख्येयभागः केषु चतुर्दशभागा वा देशानाः ।

तेजोलेश्येर्षिर्ष्यादृष्टिसासादनसम्पन्नदृष्टिभिलोकस्यासंख्येयभागः । केषु चतुर्दशभागा वा देशानां । सप्तमिष्य्यादृष्ट्यसयत्सम्पन्नदृष्टिभिलोकस्यासंख्येयभागः केषु चतुर्दशभागा वा देशानाः ।

पीथ क्षेत्रवाले सिष्यादृष्टि (पीथलेखावाले) सादादन सम्पन्नदृष्टिर्षोसे
 षोऽस्य । सप्तमेष्येयभागः । । श चतुर्दश भागाः । । = लोकका प्रसंख्यावाचं ब्रह्म है वा [लोक प्रसनाल्लोक] चौदर राखू है (सो)
 प्रद्वे ॥ नव ॥ देशाना ॥
 सप्तमिष्य्यादृष्ट्यसयत्सम्पन्नदृष्टिभिलोकस्यासंख्येयभागः ।
 सोऽस्य । सप्तमेष्येयभागः ।
 वा चतुर्दश भागाः ।
 अर्थाः । देशानाः । (स्पृष्ट ॥)

- = पीथ क्षेत्रवाले सिष्यादृष्टि (पीथलेखावाले) सादादन सम्पन्नदृष्टिर्षोसे
- = लोकका प्रसंख्यावाचं ब्रह्म है वा [लोक प्रसनाल्लोक] चौदर राखू है (सो)
- = कुछ धादि श्राव [वा] कुछ हीन नो (राखू) हुए जाते हैं
- = (पीथ लेखावाले) सिष्य शुभस्थानवर्ती और अर्धय शुभस्थानवर्तीनदृष्टि
- = लोकका प्रसंख्यावाचं ब्रह्म (कुछ भा जावा) है
- = अथवा (लोक प्रसनाल्लोक) चौदर राखू है (सो)
- = कुछ धादि श्राव राखू हुए जाते हैं

(१) विद्यादत्तस्यसाधनोपदेशा प्रद्वे चतुर्दशभागाः । १११ । विद्यादत्तस्यलोकोक्षेप्यामिष्यादृष्टिरेषास्वतीपुत्रिणीतोऽप्यपुत्रिणीयादपुत्रिणीया
 विकसनेनेष्यस्य सादादृष्टिक दृष्टिर्षि वदयेत्सया नव चतुर्दशभागाः १११ ।

विद्यादत्तः *

सस्यान + षोऽसया । ११ चतुर्दश भागाः । प्रद्वे ।

१११

विद्यादत्तः । तेजोलेश्येयसिष्यादृष्टिरेषा ।

पुत्रिणीपुत्रिणीः * सादादृष्टिर्षि -

सादादृष्टिर्षिर्ष्यादृष्टिरेषेय । ११ चतुर्दश भागाः ।

सादादृष्टिर्ष्यादृष्टिर्षिर्ष्यादृष्टिरेषेय । ११ चतुर्दश भागाः ।

सादादृष्टिर्ष्यादृष्टिर्षिर्ष्यादृष्टिरेषेय । ११ चतुर्दश भागाः ।

सादादृष्टिर्ष्यादृष्टिर्षिर्ष्यादृष्टिरेषेय । ११ चतुर्दश भागाः ।

सादादृष्टिर्ष्यादृष्टिर्षिर्ष्यादृष्टिरेषेय । ११ चतुर्दश भागाः ।

१११

(१) विद्यादत्तस्यसाधनोपदेशा १११, १११

- = (तेज क्षेत्रवालाके सिष्यादृष्टि और सासादृष्ट शुभस्थानवर्तीयो दृष्टि) विद्यादत्त
- = सस्यान षोऽसया (सस्याल्लोक) चौदर राखू है अथवा श्राव राखू स्थल जाते हैं
- = लोकका प्रसंख्यावाचं ब्रह्म (कुछ भा जावा) है
- = विद्यादत्तस्यसाधनोपदेशा (सादादृष्टि) सिष्यादृष्टि शुभस्थानवर्ती है
- = पीथलेखावाले सादादृष्टिरेषेय वा सादादृष्टिरेषेय (अथवा पुत्रिणी) में
- = अथवा पुत्रिणी काशिकामें कामके सिष्ये
- = सादादृष्टिक सम्पुद्धान् करते हैं जिस (सादादृष्टिक सम्पुद्धान्वाचकी) सिष्यादृष्टि
- = (लोकप्रसन्न वाचके) चौदर राखू है (सो) नो (राखू स्थल जाते) है
- = पीथलेखावाले सादादृष्टिरेषेय वा सादादृष्टिरेषेय (अथवा पुत्रिणी) में
- = अथवा पुत्रिणी काशिकामें कामके सिष्ये
- = सादादृष्टिक सम्पुद्धान् करते हैं जिस (सादादृष्टिक सम्पुद्धान्वाचकी) सिष्यादृष्टि
- = (लोकप्रसन्न वाचके) चौदर राखू है (सो) नो (राखू स्थल जाते) है
- = पीथलेखावाले सादादृष्टिरेषेय वा सादादृष्टिरेषेय (अथवा पुत्रिणी) में
- = अथवा पुत्रिणी काशिकामें कामके सिष्ये

पटातिवासी भाग्यसहायपरकीचक्र परचक्र और विषमस्वयंसाहित्य सर्वाधिकारका वृषरक्ष सिद्धी मनुवाद । अथवाय १ पृष्ठ ८ ।

सयतासयतौलोकस्यासकुरपेयभाग. अर्थाथवतुद्राभागा वा देशोना. ॥

संघातं परै १। वो हस्य १। असस्येयमाग १।
वा अवि-मर्थं वतुद्रंशमागा १। देशोना १।

- = (पीठ उदरबाछे) देव संघमिर्षोदरि सोकका असस्पाठशं संद है
- = वा [अथ नाटक] वोदर रावू है (सो पाणवितिक सगुद्रपाठकी अथेला प्रथम स्वर्ग) कुछ घाटि देह रावू [छुया आता] है [अर्थाथ=अथिन+ अर्थ=आधिक अर्थ यथ वदुमीहि सवाध है अर्थात् कोई वस्तु जो अपने भाषिके साथ ही रहते अनिमाय है)

विगायस्यस्यानोपयथा १, १, १ पर वही टिप्पणी है जो पाठ १५२ में दीकी संख्या पर लिखी है ।
(सिद्धो कंदरायावासे निप्र शुभस्थानवर्षी श्रीर शिन्नो कंदरायावासे अक्षयत सत्यव्यदिके)
= विचार करने योग्य क्षेत्र लोकके सीमसी केनाहीत यनाकार पदुमीसे भाठ रावू ' (प्रभाव) है ।

(१) नेत्रकोरवा—ईशसेवो कियमात्रमारवातिव कसमुद्रपाठानेसपाऽपर्यं बहुश्रयमाणः वदुद्रयागोकिर्मिंमोक्तिव्यम् १११ ॥ सत्यकुमार महाभयपण्ड वेमोत्रेयासत्रावाविति वोदतावां यद्विहसे गोभटछारे जोबकारह केदयामार्गोयावां श्रयांविहारे "एव तु सगुन्नारे यत्र वोदस मायायं च किंपूष्यम् । यथादे परमपर दिग्दृढ वाद स च किंपूष्यं १ । ' इति भावावास्तुदीपयाश्रयाक्या वदुद्र धाररा कर्तव्यं वा ॥ वेमोत्रेयावाश्रयसेवोः ॥

क्रियायावामारवातिवकसमुद्रपाठ + अथेयवा १।
अथार्थवतुद्रंशमागा १।
सत्यकुमारवादेअथार्थसं १।
शैवम् + क्षेत्र्या सारुभागात् १।

१११
वतुद्रंशमागोः १। निनिः १। अथिवव्यम् १।
१०

- = पीठकोरवा (बाछे) सत्यमासंमिर्षो करि
- = क्रिये आनेवाले मारवातिक समुद्रपाठकी शिवसाथे
- = (लोक अस्तमात्रके) वोदर (रावू) है (सी) देह रावू (माया) स्वर्गी वाता है
- = (पररावू वद) सत्यकुमार (सीसरे सजा) माकेन्द्र (जोये स्वर्ग) वक
- = पीठ क्षेत्र्याके क्रियमाण होनेसे
- = पीठसी वेताकीस यनाकार रावू सत्र लोकके क्षेत्र कजमेसे सीम यनाकार रावू
- = (वा वाक अस्तमात्रके) वोदर वतुद्रंमिसे सीम (रावू) भावा वादिसे

एटा निवासी ब्राह्मणसाधक उक्त पदच्छेद और विषयसर्पसाहित सर्पासिद्धिका अर्थ 'दिदी ब्रह्मणः । मन्थाप १ सुत्र ८ ।

प्रपञ्चप्रपञ्चैर्लोकस्यासहयेयभागः ॥

प्रपञ्च-प्रपञ्चः ॥
 लोहस्य एव महत्त्ववैयथाग ॥

एतिष्ठ ब्रह्मतायां ॥ मासमट्टादे ॥ जीयन्वाहरे ॥
 ब्रह्मणामर्गवायां गण स्यात्-कथित्यदे ॥
 एतित्वा ११-४ यत् ७ (= एवमत् ७)

तु समुत्पात १। वीरस- (तु समुत्पातं १। ब्रह्मण-)
 मात्प १। मा कथ १। किन्तु १। (मात् १। नव १। किन्तु १।
 एव वयवादे १। (= एव वयवादे १।)
 एवम-एवं १। (= एवम-एवं १।)
 विष्णुसहस्र १, १ वटी (= वीरसंवायुस्य १, १ वट
 किन्तु १। (= किन्तु १ वट १।) ११ ।

== (पीठलेखाभावे) प्रपञ्च शुद्धस्थानवर्ती और अन्तर्गत शुद्धस्थानवर्तीसमे
 == (स्वभाव विचार अयोग्यते) लोकका ब्रह्मस्थापनवर्तीमाग पुत्रभा भवता है

== ऐसी धर्मशास्त्र (= वायव्यायां) गीसमस्तथात प्रपञ्च जीवके कथयके अन्वयार्थ
 = क्षेत्रागार्थका (के अर्थ) में स्वर्गके प्रकार विधि (नीचेके मायार्थ)
 = असाधारण है कि- 'एव प्रकार ही है (= एव) कथार्थ केव्योक्तेश्चकि विद्यारजस
 सत्यताकी भाँति 'पुत्रभा समुत्पात भर कथायसमुत्पात भर वैकृतिक समुत्पात
 विधि स्वर्ग किन्तु पाति वीरस मागोंमें अह माग प्रत्याह है'

== और (= तु) मात्पार्थिक समुत्पातार्थ (= समुत्पात) वीरस
 = (मात्पार्थिक) माग (ब्रह्मणसमाह्वये) है (सो) वी एव (= मात्प) पुत्र हीन है
 = और (= एव-वैवा) वा एवम-एवं एवम-एवं अथवा (अथवा) में
 = (एवम-एवं) एवम (= एवम) एवम (= एव = एव)
 = (ब्रह्मणसमाह्वये एव) वीरसंवे वेद (एव) भी (= एव)
 = पुत्र पाति होता है १ १ १ एव व एव वीरसंवे समुत्पातके लिये है कि किरीक
 भाषायार्थिक मठागुणार केव्योक्तेश्चकि अस्तिव्य सन्न-कुमार मोक्ष एवमार्थक (वा
 मन्थ कोहसे हीन एव है) वीरसंवे हेतुसे केव्योक्तेश्चकि एवमार्थक पुत्र हीन एव
 हीन एव अथवाकी कथयवासे है । भाषायार अथवे मठागुणार कहते हैं कि
 एवमार्थक अह एवम एवम (= एवमार्थ) वेदव्यवसे पुत्र पाति है एवमार्थक
 एवमार्थक एवमार्थक एवमार्थक एवमार्थक एवमार्थक एवमार्थक एवमार्थक एवमार्थक

देवत्ववैयथाग विद्यारजसस्थान भर वैरता समुत्पात भर कथाय समुत्पात भर वैकृतिक समुत्पातविधि स्वर्ग किन्तु पाति वीरस मागोंमें
 ब्राह्मण समाज है । ब्राह्मण १ सा कथिये है—

जीव जीवद एवम् ज्ञेया । इत्यत्रात्मी अथेवा एक एवम् अंत जीवा एते तदा जीवद पशुविर्यं समस्तुभार माहेंद्रदेवा सी कल्पे शैवोद्येभ्यः-
 पाने श्वे जगति वायुव सावाहो एवम् पर्यंत गमन करे है एव जीवै तीसरी मरुत पुण्यीपर्यंत ममन करे है एते वायुव स्वर्गों तीसरा मरुत
 एत एवम् है तों जीवद मागमें एत माग करे एव सिसमें तिस तीसरा मरुतकी पृथिवीकी मंड्याविर्यं अर्था पटल न पाएय अेवा इवार
 पात्रन वटाबने गावं विविद जग करे है । एतां से जीवद एतका रायुनिकी एक अवाका इव ती एत एतका रायुनिकी देवी अवाका हीव ?
 शैव वैरागिक जीवै एत जीवदों माग एव है । अथवा मवतवि न श्वे जगति वा जीवै स्वयमेव ती सीधर्म ईशान स्वयंपर्यंत वा तीसरा मरुत
 पर्यंत गमन करे है एव अन्य शैवके देवत्व एतेकाहो एवागर्पंत विहार करे है तों मी पूर्वोक्त ममान स्वयं समवे है एवुति शैवोद्येभ्योका मरुतर्था
 तिकसगुणपरतविर्यं स्वय जीवद मागमें एव माग किन्तु एति समवे है । काहेतें ? मवतनिक देव वा सीधर्मनिके एवति स्वगनिकेवासी देव
 तीसरे एतक गव एत तदा ही मरुत सगुद्वयात जीवा एवुति से जीव एतकी मुक्ति पुण्यीविर्यं पावदपुण्यीक्यायके जीव एतकी है तों तदा
 पर्यंत मरुत सगुद्वयातका मध्येनिका विस्तारकरि वृंश कीया । तिस अठारं पुण्यों तीसरा मरुत एव एवम् है एव तदा पटलरहित पृथिवीकी
 मोंदरें पटलवती तों विविद जग नव जीवदों माग समवे है । एवुति शैवत सगुद्वयात एव एतारुत सगुद्वयातविर्यं संख्यात वर्गानुगत ममान
 स्वयं ज्ञानता आठें ए मनुष्य वाकाविर्यं ही ही है एवुति केवकिसगुद्वयात एत शैवयावातेके दोता जाती । एवुति अथवाविर्यं स्वयं जीवद मागनि
 विर्यं किन्तु एति अरुमागन न ज्ञानता सा मयको करे शैवोद्येभ्योर् मरुकरि सीधर्म ईशानका अंत पटलविर्यं एतमें हीव अथेवा संमवे । एतां
 कोक अरे कि तत्राशेवाके अथवाविर्यं सारकुभार माहेंद्रपुपयत देवका स्वय पाएय है सो जीव एवम् ज्ञेया तों जीवद मागनविर्यं विविद जग
 शैव माग एते न कीव ? एका समाधान-सीधर्म ईशानतों जगति संख्यात योत्रव आर सारकुभार माहेंद्रका प्राप्ता एते है तदा प्रथम पटल है
 एव शैव एवम् आर अतिम पटल है सो एत पटलविर्यं शैवोद्येभ्यो मागी है येसा अर्धे वावायनिका अथेवा है तों अथवा विभ्रासुमिधिरं तिय
 वा विर्यं मनुष्यनिस अथवाय ईशान पर्यंत ही संमवे है तों विविद जग देव मागमात्र ही स्वयं कया है । एवुति गावाविर्यं एका कया है तों
 शैवोद्येभ्योका अरुत अथवा मरे तिनके सारकुभार माहेंद्र स्वर्गका अंतका एक भाग एवम् अथवा शैवोद्येभ्योका मरुतविर्यं अरुत अका है तों
 अरे है तिनिका अस्मिमावकरि एवातसमवे तीन मागमात्र मी स्वयं समवे है किन्तु नियम वती । एत ही वास्ते सूत्रविर्यं एका कया । गमाहसारा
 एते शैव जीवकाव एवुति एव १७१—१७२

एतन्निर्वासी नगरप्रसादापकाकठ पदभेद और निम्नस्थसहित सर्वासिद्धिदा शब्दयुक्ती अनुवाद । प्रथम १ पृष्ठ ८ ।

पदसंज्ञैर्मिथ्यादृष्ट्यायसयतसम्पदृष्ट्या तैर्लोकस्यासहयेयभागा अंशदौ चतुर्दशभागा वा देशाना

सयतासयतैर्लोकस्यासहयेयभागा पदत्रयं चतुर्दशभागा वा देशाना ॥ प्रपत्ताप्रपत्तैर्लोकस्यासहयेयभागाः

पदलये १। मिथ्यादृष्टि-भादि-प्रसंयवसम्पददृष्टि = एयभेदप्राप्तले मिथ्यादृष्टीसे प्रसपथ चौथे शुद्धस्थानवर्तीसौ

द्वयं १। लोकस्य १। प्रसंययेयभागा १। = सकृदि लोकका प्रसस्यपथ सं अंश (स्वस्थान अयेप्राप्ते) छुमा जाग है

१। चतुर्दश १। यभागा १। अंशौ १। देशाना १। = या लोकप्रसनात्मके चौदहावू है (सो) छुळ हीन प्राठ (रावू छुए जात) है

सयतासयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। = (प्राप्तैरप्राप्तौ) सयशासपनीपैसलोकका प्रसस्यपथ सं अंश (छु १। जावा) है

१। चतुर्दश १। यभागा १। पदत्रयं १। देशाना १। = प्रपत्ता (लोकप्रसनात्मक) चौदहावू है (सो) छुळ हीन पांश (रावू

प्रपत्ता + यप्रसंय १। लोकस्य १। प्रसंययेयभागा १। = प्रपत्त प्रपत्तय गुणस्थानराशिों करि लोकका प्रसस्यपथसंप्रापय अंश (छुमा

(१) मिथ्यादृष्ट्यासहयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १। = मिथ्यादृष्ट्यासहयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १।

मिथ्यादृष्ट्यासहयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १। = मिथ्यादृष्ट्यासहयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १।

शक्तिरिक्तसमुद्रप्रातःप्रपत्तया १। प्रपत्तयगुणस्थानराशिों करि लोकका प्रसस्यपथसंप्रापय अंश (छुमा

यभागाः १। पदत्रयं १। = मिथ्यादृष्ट्यासहयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १।

- (२) पदलयेयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १। = पदलयेयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १।
- पदलयेयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १। = पदलयेयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १।
- प्रपत्तया १। चतुर्दश १। यभागा १। पदत्रयं १। = प्रपत्तया १। चतुर्दश १। यभागा १। पदत्रयं १।
- मिथ्यादृष्ट्यासहयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १। = मिथ्यादृष्ट्यासहयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १।
- शक्तिरिक्तसमुद्रप्रातःप्रपत्तया १। प्रपत्तयगुणस्थानराशिों करि लोकका प्रसस्यपथसंप्रापय अंश (छुमा
- यभागाः १। पदत्रयं १। = मिथ्यादृष्ट्यासहयतैर्लोकस्यासहयेयभागाः १। पदत्रयं १।

पदानिवासी ब्राह्मणसहायकीकृतिर परब्रह्म और विमलसर्वगतित सर्वाथसिद्धका स्रष्टाः द्विती ब्रह्मवाद् । अथवाप १ सूत्र ८ ।

देवसं ॥११॥ मारुद्गीतिर-उपवाद्-अपेक्षया ॥१॥

वद्-बहुवचनमात्र-अन्वयम्, ॥११॥

एति च न मन्वन्त्यम् ॥११॥ सम्पत्तिनिष्पत्तौ ॥१॥

वद्-अन्वयात् ॥१॥

मिस्साहारस्त्वथवा अथवा अन्वयात्पुनश्च ॥११॥ य ॥ परब्रह्मसम्पत्तिः (परब्रह्मसम्पत्तिः) एव मरुतिः ॥

मिस्साहारस्यथवा अथवा अन्वयात्पुनश्च ॥११॥ य ॥ परब्रह्मसम्पत्तिः (परब्रह्मसम्पत्तिः) एव मरुतिः ॥

मिस्सा ॥११॥ (मिस्साः ॥११॥)

आहारस्त्वथवा ॥११॥ (आहार-अन्वयात् ॥११॥)

अथवा ॥११॥ (अथवाः ॥११॥)

य एव अन्वयम्—(य एव अन्वयम्)

यत्परब्रह्मसम्पत्तिः ॥११॥ (यत्परब्रह्मसम्पत्तिः ॥११॥)

{ परब्रह्मसम्पत्तिः (= परब्रह्मसम्पत्तिः)
(परब्रह्मसम्पत्तिः ॥११॥ (= परब्रह्मसम्पत्तिः ॥११॥)

य एव अन्वयम् (= य एव अन्वयम्)

परिवहत्या (= परिवहत्याः ॥११॥)

य एव मरुतिः १ (= य मरुतिः)

= (अथवा) अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी वीर्य उपाद् (य उपाद्) की अपेक्षाये
= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥

= य एव मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥

= अथ (मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम्) का अन्वयम् ॥ (अथवा कि
मिस्सादिति च आहारस्यथवा अन्वयम् ॥)

मिस्सादिति च आहारस्यथवा अन्वयम् ॥

मिस्सादिति च आहारस्यथवा अन्वयम् ॥

= "मिस्सादिति च आहारस्यथवा अन्वयम् ॥

= आहारस्यथवा अन्वयम् ॥ (= मिस्सा ॥११॥) वा मिस्सादिति च आहारस्यथवा अन्वयम् ॥

= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥ (= अथवा मरुतिः १)

मिस्सा—वैकल्पिकमिस्सा—आहारस्यथवा अन्वयम् ॥

= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥ (= अथवा मरुतिः १)

= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥ (= अथवा मरुतिः १)

= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥ (= अथवा मरुतिः १)

= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥ (= अथवा मरुतिः १)

= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥ (= अथवा मरुतिः १)

= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥ (= अथवा मरुतिः १)

= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥ (= अथवा मरुतिः १)

= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥ (= अथवा मरुतिः १)

= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥ (= अथवा मरुतिः १)

= अथवा मरुतिरिति च समुद्रवातकी अन्वयम् ॥ (= अथवा मरुतिः १)

एति ० धयनेन १।ग ध्व

ए मर्यातासमुत्पादो १। (= ए मारुताधिकसमुत्पाता १।

एि ० ए ० निस्सस्मि १।ग (एति ० न ० निदि १।

एति ० वधनेन १।ग वद् — प्रथमा १।

मयवद् — एतद् १। वयवद् १।

एव्यवृत्तमाणाः १। एति न एव शास्त्रकार-वचनं १।ग

एति ० ए० म० धातुपूर्वीयम् १।ग

धर्मिषामर्थव्यतिरेकव्यवर्तितानि १। एति ०

धैर्या — एतिरेकरे १। एया ० एव ० एवत्त्ववद् १।ग

सुखस्य य विदुषां वृत्तवत्त्वात्सा धैर्या ३ एपरि स्मृत्यवर्तिन्य ए संख्यातीना इति भासा वा । सुभा वा बहु ज्ञानो फलतो दौषिष्ठि विरिद्धा ५५०
 श्रुतस्य ए विदुषां नयः 'एव्यवृत्तवर्तिन' ३ एपरि समुत्पादो ए संख्यातीना भवति माणा वा । सर्वो वा बहु लोकः स्वर्गो भवतीति निर्दिष्ट
 पुरुषस्य १। ए० (एव्यवृत्त १। ए०)

ति- (= ति)

द्वय १।ग एवमा १। (स्वाने १।ग प्रथमा १।)

एव्यवृत्तसा १। धैर्या १। (एद् एव्यवृत्तवर्तिना १।)

= एत एव्यवृत्त (गाया) से और (= ए)

= पुन (= य) मारुताधिक समुत्पात

= मी (= ति एति) विमलसम्बन्धानं नदी इत्या है

= येते वाप्यसे अका ज्ञान (कि मिथ नीचरे गुणस्थानं मारुताधिक समुत्पात

और उपपादका समान है) होता है

(एतने उपर्युक्त प्रश्नका पुष्टि करने हुए कहता है कि तो)

= विरिद्धा वा निकले जातेकी यह शूक वा शूक है कि

(संसृष्ट सर्वाधिसिद्धि इतिने दोषस्थानसंश्लेषमाणा एत वाप्यके एव्यवृत्त)

= 'एद् एव्यवृत्त माणा येसा (वाप्य किञ्च रिवा) है न कि शास्त्रकारका वचन

= येसा है (एवत्) निद्वयसे (एव) यह पाठ धाराका योग्य नहीं है

एपरि लोककरी शूक नहीं है

= न्योक्ति ने निश्चयसे वैदिक चक्रवर्ती इत्या मी (शास्त्रकारके)

= हेतुवा एतिरेकरसे वसा (= एया) ही (निश्चयार्थां प्रथमं) कहा गया है

= एत एव्यवृत्तवर्तिना इति भासा वा । सुभा वा बहु ज्ञानो फलतो दौषिष्ठि विरिद्धा ५५०

= एत एव्यवृत्तवर्तिना भवति माणा वा । सर्वो वा बहु लोकः स्वर्गो भवतीति निर्दिष्ट

= एत एव्यवृत्तवर्तिना भवति माणा वा । सर्वो वा बहु लोकः स्वर्गो भवतीति निर्दिष्ट

= एत एव्यवृत्तवर्तिना भवति माणा वा । सर्वो वा बहु लोकः स्वर्गो भवतीति निर्दिष्ट

= एत एव्यवृत्तवर्तिना भवति माणा वा । सर्वो वा बहु लोकः स्वर्गो भवतीति निर्दिष्ट

= एत एव्यवृत्तवर्तिना भवति माणा वा । सर्वो वा बहु लोकः स्वर्गो भवतीति निर्दिष्ट

= एत एव्यवृत्तवर्तिना भवति माणा वा । सर्वो वा बहु लोकः स्वर्गो भवतीति निर्दिष्ट

= एत एव्यवृत्तवर्तिना भवति माणा वा । सर्वो वा बहु लोकः स्वर्गो भवतीति निर्दिष्ट

= एत एव्यवृत्तवर्तिना भवति माणा वा । सर्वो वा बहु लोकः स्वर्गो भवतीति निर्दिष्ट

= स्वानं वत्तव (= एवमो प्रथमा स्वरा)

= (लोक वसनावक) और भागो (एव्यवृत्त) मिस्र कुल एति कर माय है ।

एतानिवाची कामरूपमहापत्रकीलकत्र पदच्छेद और विषयसार्थसहित मर्णापसिद्धिका सुस्पष्टः द्विती अनुवाच १ प्रथम १ सूच ८ ।

य ० यपरि ० समुद्राधर्मि १ (४ ० केवलसमुद्रपारते १) - शीर केवल समुद्रपारतें अर्थात् सयोन केवलीके परत समुद्रपारतें सवालीस १ भाग १ वा * (= संज्ञ-अतीता १ भागः १ वा ०) = (लोकके) संख्याद्वित भाग अर्थात् अस्तस्यते भाग (सार्थमें) दवति १ वा सख्या १ काष्ठ ० (= मर्वात्त वा सर्वा १ काष्ठ) - दोते है अथवा (= वा) नियमते (= काष्ठ) सव योगे १ कावा १ दोरि १ (लोक १ स्याः १ भावति १) - वाक (वाकपूरव समुद्रपारतमें) दोता है

रवि (ददि) * विद्विडा १ (रति ० सिद्धि १)

= इसप्रकार कथन किया गया है ॥ (यपरि प्राकृतका अन्वय है अथ केवल है) प्रथम 'वा' पाठ पूरवके जिये है । इसने भावप्रकटा अनुसार प्रत्यया स्पष्ट अर्थ किया है ॥ विशेष अन्वये जिये इसी अनुपादका पृष्ठ ११६ से १२१ तक देखा ।

सिध्याद्वि प्रथम गुहस्थानसे सप्ततिसंवत्त पांचवा गुहस्थान तकके दुहकेस्यथाशाने कीबोकि (१) सप्तस्थानसप्तस्थानमें स्यात् (= अस्थान विहार कपोवासे स्या) (२) विहारवसन्नस्थानमें स्यात् (= परस्थान विहार अपेक्षासे स्या) (३) आशारक समुद्रपारतमें स्यात् (४) शिकत समुद्रपारत में स्यात् (५) केवल समुद्रपारतमें स्यात् (६) अथवा अथस्यते स्यात् (७) मात्स्यीतिक समुद्रपारतमें स्यात् (८) कथाय समुद्रपारतमें स्यात् (९) शैला समुद्रपारतमें स्यात् (१०) शैलिक समुद्रपारतमें स्यात्मेंसे कौन कौन किस किस पांचों गुहस्थानवर्तियोगमें दोते है इसका भाग विवर नीचे देते है—

दुहकेस्यथावाकके	भाहारक स	शिकत स	सप्तस्थान	विहारवसन्नस्थानके	शैला	अथवा
गुहस्थान	केवल समुद्रपारत		सप्तस्थान	कथाय-शैलिक समुद्रपारत	मात्स्यीतिक समुद्रपारत	अथवा
सिध्या दुह	कोपे मी कदी		वाकका अंतस्थावभागा	कथाय अथ पांचसे कुक्षीन	मात्स्यीतिक समुद्रपारत	अथवा
सासा दुह	" १	"	"	"	"	"
सिध ० दुह	" "	"	"	"	"	"
अंतंवार दुह	" "	"	"	"	"	"
शैलासपत गुह	" "	"	"	"	"	"

इसने पाठ महाविश्व "सुप्रकस व विद्विसे इत्यादि योगद्विसाकी ५५४ पायाके पानुसार बताया है । पाठकनाथ एक पायाके अर्थासे सिद्धांत " (देखा) शैरवसन्नकीकत्र योगद्विसार मुद्रिये पृष्ठ १०८-१०९ और अथवाश्वदी कत्र गाम्भद्विसार पाया ५४८-पृष्ठ ११० ।

समाज मार्गमें जिसके लक्षणसे आत्मिक प्रदीर्घता पाहिजे तियाँच शरीरके धाकट

रहना । इस कामका उद्वेग विप्राह गतिमें ही होता है और जसमय काठ एक समाज

मध्यम से समाज और बरकह हीन समाजमात्र होता है । यदि एक-समाजि धर्ममें है

— निर्धर आयु (बौद्ध) उद्योग (प्रकृतिवैका धर्म)

— होना है । तिन (शकार-संस्कार स्वर्गों)से (ऊपर) शतार

— चोक्करी (धर्मादि शतार गुणल ठक धर्मवैवादी चार निर्धरजाति निर्धरजात्यनु

पूर्वा निर्धर आयु और उद्योग नाम कामकी प्रकृतिमें)

— मर्णा होती है इस (सामदसारके कामकाठकी ११२ वीं माया) से

— उद्योग (शारवर्ष) स्वर्गसे ऊपर रहनेवाली देवोंके निर्धर

— आयु निर्धरजाति निर्धरसंस्थाउपूर्वा और उद्योग (प्रकृतिवैक) धर्म न होके

— उद्योगसे तिन (संस्कार शारवर्ष स्वर्गसे ऊपरजातों) का निर्धरधर्म

— उद्योगका समाज आना जाता है ० धर्मादि शारवर्ष स्वर्गसे ऊपरका देव धर्म ही

धर्म मनुष्य ही होता है । जिसके धर्मन करने पर कि उपायकरि पंच धानुवार ठक

कुछ पाहिजे साथ राज स्वर्गमें नाम कहना या उद्योग या कि-मर्णा, कर्मादि धर्म ही

(मनुष्य क्षेत्र)के मनुष्य ही सोच्छ स्वर्गसे ऊपर उदरमय होते है और सोच्छ स्वर्गसे

ऊपरके देव मनुष्य क्षेत्र हीमें आन होते है और समाज भी वेकरते मर्णा इससे उनका

स्यंजन कासंख्यात मार्गमें गतिमें ही गया । जिसमें यह सुलभकर कि सोच्छ स्वर्ग

से ऊपरके देव मनुष्य क्षेत्रमें उदरमय होते है मदन कर दिया कि धातु स्वर्गसे ऊपरके

सर्व देव ही मनुष्य क्षेत्रमें आन होते है वी १३ स्वर्गसे सोच्छदेव स्वर्ग चक्रके उपाय

विषयघाते और मार्गमेंसे सूत्र माग व उद्योग । धर उद्योगी धर्मादि कहते है कि—

विराजतं मां उद्योगो मां (= तियाँच मां उद्योग)

धर्मि T उद्योगे * संस्कार (धर्मि तदा उद्योग)

एक मां (= मनुष्य मां)

ध * धर्मि T (न ० धर्मि T)

संस्कारस्वभाव मां धर्मि तदा— देवता मां तिर्थ-ध-

मायुष्य— धर्मि— उद्योग— समाज—

उपायान् मां वेत्ता मां तिर्थ-धु मां

धर्मि— समाज मां उपायान्धर्मे T

अथा ७ •
मनुष्यम् ॥ एष ० स्वर्गो ॥ न अपि सार्धं प्रमाणात् -
परिस ०

परिं विद्याम् ॥ अत्युत्त-पर्यन्तम् ॥ न अयत्तिसाराणात्

अथापय •
सामान्य-स्वर्ग-कथन-अपसरं ॥
क्षेत्रस्य-अपसरं ॥
पर्यन्त-प्रधानात्-स्वयं अत्युत्तरा ॥ न
प्राग्विदस्यपरदि-देशस्यपरसत् ०
दीर्घ-भस्तेकस्यप्रधान-स्वयं-असङ्गात् ॥

य-आगत-प्राग्नि-
सत्युत्त-पर्यन्त-देशानां ॥

= उत्तरपर मी (- तथा ७) अर्थात् (सदाशारसे अथर्के देशोक्ता मनुष्यकेभ्रमं)
- मनुष्यमिं ही (७ एष) अन्त आगतपर मी सत्यप्रमाणात्पद्यते
= प्राग्नि

- एतन्नेत्रोत्तं विषयोंका अत्युत्त (सोमद्वयं स्वर्गं) एक अन्त हीना है अर्थात् आत्त
यं स्वर्गसे अथर आगत अर्थात्कें देशका मनुष्यमिं ही अन्त लेनेसे एव न समझना
कारिये कि मत्प्राणात्कका विषय मी आदरवा स्वर्गमे अथरका देश नहीं हा सजका
है एवर् मत्प्राणात्कका विषय सदाशारसे स्वर्गं एकका एष ही सजका है एव अर्थेवासे
उपपत्त अथरस्वर्गमें आदरवापूर्वसे अत्युत्तम् एयान अन्तता है न

= अदरा माननेमें (प्राग्नि आगने विषयोंका अन्त १३ से १६ तक न हा गो)
= सधैरसे (गुणस्थान अर्थेवासे कथित) स्थानके अथरके प्रसंगमें
= (देशो एत प्रतीका एव १३६ पठि २ से ८ तक) संवत्सास्यतकी अर्थेवासे
= श्रीरवरापूर्वसे अथर (एयुके स्वयं) का अर्थेवा न अन्तनेसे
= प्राग्नि सत्यपरदि देशसंयमितोके सदाश (आ इत्यर्थीय मनुष्य केभ्रमं है)
= (क्षेत्र) दोकने अथरस्वर्गसे मात के स्वयन्नेके अथरका प्रसंग आता है
(उपपत्त श्रीर मातर्भावित् अत्युत्तरात्की अर्थेवासे अथरवायुका स्थान जो गुण
स्थानके अथरमें स्यतास्यत गुणस्थानस्वर्गीका एव १३६ में कहा है एव नहीं उद
रता है जो स्यतास्यत गुणस्थानस्वर्गी विषय सत्यमूरमात् सत्युत्त एक न हीसे
किंस सत्यमूरमात्कका अथर सुमेकां शाना गुणा एवरापूर्वसे अत्युत्त अथर अन्तमें है
= श्रीर (= ए) आगत भेदवाही मात्तत औषधवां प्रात्तय एतन्नेत्रां स्वर्गं औत्त

= अत्युत्त स्यतास्यतां स्वर्गं एकके अत्युत्तरेभ्य आत्तक देशोके विद्यतास्यत् (स्वर्गं)
उदरता ही (मन्वन्तोदसे १३वां १४वां १५वां १६वां स्वर्गं कृतेनं एयुत्तं है अत्युत्त
वेदस्यतासे अर्थेवासे एव आ मत्प्राणात्कसे भीसे नहीं आते है परन्तुआत विद्यार अर्थेवा
अथ हीन अथरवायु स्वर्गसे है । देशोके प्रथमसे आत्त एक गुणस्थान हा एकके है)

एत्यनिवासी मगलस्यसहायकीकृतव परच्छेद और निपजस्यसंघटित सर्वांसिद्धिषा सुखद्वय विदी अनुवाह । अथवाच १ सूत्र ८ ।
 प्रथमादिसयोगकेवल्यन्तानां अत्रेभ्यानां च सामान्योक्त स्पर्शनम् ॥ (११) भव्यानुवादेन-भव्यानां
 मिय्याहृत्प्राथयोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्त स्पर्शनम् । अर्भव्ये, सर्वलोकः स्पृष्टः ॥ [१२] सम्यक्त्व ।
 नुवादेन-साथिकसम्भ्यहृष्ट्यानामसयतसम्भ्यहृष्ट्याथयोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तम् ।

ममव-आदि-सयोगकेरति-अन्तानाम् १ ।
 अत्रेभ्यानाम् १ । च स्पर्शनम् १ ॥ सामान्य-
 वकम् १ ॥

= (हृत्पक्षेरेषांशाले) ममव शुभस्वानावर्धीनिसे सयोगकेरतीं तर्पका
 = और सेरपारहित [= अयोगकेवल्यो] का स्पर्शन सामान्य (मकरज) में
 = कथित (गुणस्वानवत्) है [पृष्ठ १३६, ११६ स १२० तक रवी पुरस्क
 का देखो)

मवव-अनुवादेन १ । मव्यानाम् १ । मिय्याहृति-आदि-
 अयोगकेरति-अन्तानां १ । सामान्य उक्त १ ॥

= (११) मव्योके कथने अनुसारकरि पथ्य मिय्याहृतिसे सेकर
 = अयोगकेरतीं तर्पन्तोका संश्लेष [प्रसंग] में करा हुआ (गुणस्वानवत्)
 = स्पर्शन है । पृष्ठ ११६ से १२० तक, पृष्ठ १३२ से १३६ तक रसी मति का देखो ।

अपववै १ । सर्वलोक, १ । स्पृष्टः १ । सम्यक्त्व-अनुवादेन १ ।
 साथिकसमयवर्धीनाम् १ । अर्भव्येवसमभ्यहृति-आदि-
 अयोगकेरति-अन्तानाम् १ । सामान्य-वकम् १ ॥

= अपवव करि समरमलोक ह्युभाभावा है । [१२] सम्यक्त्वानकी अर्थकासे
 = साथिक सम्यक्स्पर्शनबाहे अर्थपर सम्यक्वहृति [बोधे शुभस्वानवत्से] निसे
 = अयोगकेरतीं तर्कोका (स्पर्शन) संश्लेष (मकरज) में करा हुआ (शुभ
 स्वानवत्) है । पृष्ठ ११६ से १२० तक, पृष्ठ १३६, १३६ रवी पुरस्क
 का देखो ।

अवव-अनीतानाम् १ । एका १ । कमा ५ । स * अरति

= (सोकाह) एका (= कमाः) से उपरके रहनेबाहेके पर नियम (= कमाः)
 रवी है अथवा अर्भव्येवकोमि-अव अनुविधोमि-वाचपानुवादेम मनुष्योव (रवी
 दीप) से मनुष्य ही कल्प सेते है अतः वाहसि अतः शकार अर्वावर्धीयमि मनुष्य ही
 बाते है । उक्त स्थानोसे विहात्क्य अन्तव है

एति लोक असंख्येय-भागाः १ । एव एति मयपानव्य १ ॥ - एतेसे लोकके असंख्यातर्पमाना (का स्या) ही (एतेके) अन्तवा चाहिये

पठानिवासी कालसप्तदशपरकीटकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वाथसिद्धि का शुद्धता हिंदी अनुवाद । भागपाप १ सूत्र ८ ।

कित्तु सयतासयतानां लोकस्यासख्येयभाग ।

किंतु क संयोगसंयमानं ॥ सोऽक्षय ॥

इसल्येयभाग ॥

= परंतु (प्राथिक सङ्घट्टि) देव संमिर्षोका (स्वर्ग) भोक्ता
= धर्मस्वभाव भाग है ।

(१) प्राक्समाप्त्यकथनापरसे देवासख्यस्य पद शत्रुत्वनामा द्रष्टुम् । इयानां प्राथिकसम्पत्तिदेश्येयत्वेयत्वेयत्वा लोकासंख्येयमना इति कथ्यते । साधुत इति शेष—साधुयोग्यत्वर्यंतर्वाहिवर्तितेषु सखय प्राथिकसम्पत्त्यपामत्वात् । यत्र तदभावत्वात् “दसख्यमोहकत्ववशात्पुत्रयो कम्म युनिजा मण्डना । त्रिष्यपरयाद्यून् केवळिसुदकेवलीयुत्ते ॥” इत्यागामत्त्वत्वात्पत्ते । प्राक्कद निर्दगायुर्ण पर्याद्यूदीतप्राथिकसम्पत्त्यपामपि क-
थनयोग्यनिरीषदशयथाशक्तान् प्राथिकसम्पत्त्यपामाह एव ‘ चकारे वि अकारि आशयसिधेय हीर सम्मल । शत्रुत्वमहत्त्वधार् ष काहृ देवाह संमानु ॥ इति वचनातिथयागुणरथेऽपि सम्पत्त्यप्रद्वयमस्तीत्याशयसम्पत्त्यम् ॥

प्राक्समाप्त्यकथना-अपरसे ॥ देयसंयतस्य ॥

पद १ साधुत्वा ॥ माणा ॥ इति कथ्यते ॥

इदानीम् * प्राथिकसम्पत्त्यपत्तिदेश्यत्वं + अथेयत्वा ॥ ग

कार-संयतसंयमानां ॥ इति कथ्यते १

शत्रु + क्तु * इति * शत्रु *

साधुत्वात्पर्यंतं—

वर्धितवितेषु ॥ अथय *

प्राथिकसम्पत्त्य + अमानात् ॥ गत्व *

पद प्र-भाषा १। ४ *

पदसम्बन्धप्रकाशनापरदूषणो दसयुनिषो मण्डुसो । त्रिष्यपरयाद्यून् केवलीसुदकेवलीयुत्ते ॥ इसकी संस्कृत प्रथा भीसे लिखते है—
इदानीम् प्राथिकसम्पत्त्यपामत्वा कम्मयुनिष मण्डु वीर्यत्वात्पदसुदकेवली-युत्केवलीयुत्ते ॥ इसका निम्न लिखित गुण्यका अनुवाद—
दसख्यमोह- (= दसमाह-)
= एषाह मोह (श्री सिध्दान्त प्रकृति-सम्पत्त्यपत्ति संम्यतिमत्त्वत्वात् प्रकृति) के
= एसा कि—भीषोकी प्रायसे प्रगत है ॥

पञ्चबा-वृत्तयो १ । (वृत्तबा-प्रस्थापक १ ।)

— पञ्चबाका या बाधाका प्रारम्भ करनेयावत ।

कर्मभूमिका १ । मण्डला १ । (कर्मभूमिका १ । मनुष्या १ ।) — कर्मभूमिका उत्पन्न हुआ मनुष्य या पुरुष

निष्पन्न पारसूते १ । (तीपकर—पारसूते १ ।) — तीर्थकरके चरवाँके समीपमें (— मूले १ ।) और

वचनित सुवद्वली मूले १ । (केन्द्रित सुवद्वलिमूले १ ।) — केन्द्री (स्यात्त केन्द्री) श्रुतकेपत्नीके भिन्टमें (— मूले १ ।) बाता है अर्थात्

ध्यान मोदनीय कर्मके रूप दानेश्वर का काम है उसका प्रारम्भ तीर्थकर, केन्द्री

अथवा श्रुतकेवलीके समीप ही होता है और उस धर्मम मोदका प्रारम्भक केन्द्र

कर्मभूमिका उत्पन्न हुआ मनुष्य ही होता है । यदि पूर्व्यं अथ दानेश्वे पदिने ही

प्रारम्भक मनुष्यका प्राप्त हो जाय वा उस पञ्चबाकी समाप्ति चारों गतिमेंसे किसी

भी गतिमें हो सकी है । गाममत्सारकीमें यह गाथा देखे है कि—

(गाथा) वसवमांशकस्यवापवृत्तयो कर्मभूमिभावे ह । मण्डला केन्द्रितमूले विद्वयता प्रादि सङ्ख्या १ ४८ ।

(व्याप) दशममहोत्सवप्राप्तस्यापका कर्मभूमिभावा हि मनुष्य केन्द्रितमूले निष्ठापयो भयति सवय १ ६४८ ।

(अथ) दशम माहमीय कर्मके गाथाका प्रारंभ करोगेवता कर्मभूमिका अन्ता पुरुष ही केन्द्री या श्रुतकेवलीके भिन्टमें बाता है । (यदि पञ्चबाकी

समाप्ति क प्रथम पद मनुष्य भर अथवा वा अथकी समाप्ति अथ गतिमें ही सकी है) अतः मोदक सवका "सिपाज दोसैं हतें भरख वा अथ वी

अर्थात् सपुत्र अथवा प्रादिके बाधाका काय होत निरै वहाँ वहाँ निष्ठापक कहिये वा निष्ठापक "व्यारो गतिपिसी वा है" गोममत्सारकी श्रुतिव पुरुष

१ ६८—(१०१६ वीपकाह २

वति • काममात् १ । अथगमने १ प्रसक्त-वद—

तिर्यग्-भागुत्वा १ । परवात् • पृथीठ—कारिक-

सम्पत्स्यनाम् १ । अति उत्कृष्टगामभूमि-तिर्यग् १ ।

पय • अरका १ । अथ • कारिक-

सम्पत्स्य-भमागा १ । पय •

- देसा शालसे जाना जाता है (प्राधिक सम्पत्स्य प्रारंभ दानिके) पदिने वकी पूर्व
- तिर्यग् अथके पीछे प्राप्त दृय कारिक
- सम्पत्स्यनाम्के भी उत्कृष्ट भागभूमिके तिर्यग्में
- वी अथ दाने (के हेतु) से वहाँ (मनुष्यावर पर्यवेके अहित) कारिक
- सम्पत्स्यनाम्के अन्ता ही है । किसी वीपने तिर्यग् अथ वकी वा पञ्चबात् कारिक
- सम्पत्स्य वा वी पर सम्पत्स्यके कारण उत्पन्न गोमभूमिमें (चार्ह वीपमें ही) अथ होता ।

वर्णादि वि क्षेत्राद् वातामनंवेद्य एव सम्पाद्ये । अणुवदमद्वयवार्द वा एवम् देवताया सोषं ३ गाम्मदासात्की कर्मकर ३१५, श्रीनकाव १५१ ।

वर्णादि कृति कर्मादि अणुवदमद्वयवार्द मयदि मयस्त्व । अणुवदमद्वयवार्दि न कर्मते देवाणुकं मुक्त्वा ३

वर्णादि १॥ म्बवार्द १॥ (= चत्वारि १॥ केशादि १॥) = चारु गतिशोको (= केशादि १॥)

अणुवदवेद्य १॥ वि० (= अणुवद-वेद्येण १॥ कृति ०) = अणुवद वंश वाचि मी (= कृति)

एव १ सम्पाद्य १॥ अणुवद- (= मयदि सम्पाद्य अणुवद) = सम्पाद्य (विस्तरे परवते विस्ती अणुवद वय हो सुका ही हो सक्का है । अणुवद

मद्वयवार्द १॥ एव १ (= मद्रासावति १॥ कर्मते १) = श्रीर मद्रासावती प्राप्त वा धारण

देव-आत्मा १॥ मणुवद- (= देव-अणुवदं १॥ मुक्त्वा-) = देव अणुवद वंशको प्रोक्तकर वा वंशकर मदी कर सक्का है कर्मात् आरो गतिमेंसे

विस्ती मी गतिमें एवनेवाको वीरके वार प्रकटरकी अणुवदके विस्ती मी अणुवदका

वय होनेपर भी सम्पाद्यकी कर्मादि हो सक्की है किन्तु सम्पाद्य मद्रा वीरके

कर्मपर एव सिद्ध हो तो अणुवद श्रीर मणुवद हो तो अणुवद वा मद्रावत

वस्ती वीरके हो सक्के है जिसके वार अणुवदमेंसे केवल देवाणुवद वंश एव

हो । अर्थात् विष्णुाणु मणुव अणुवका वय कर्मोपाते सम्पाद्यकी अणुवद वा

मद्रावत कर्मा कर्मोके वाही मद्राके कर्मात् मय विष्णुव परिष्णाम मदी होसके है ३

एति ० एववार्द १॥ विष्णु-अणुव-वय १॥ कृति ० = (आत्मादे) देवी (अणुव) वाक्सावे विरक्तकी अणुवके वंश आने पर मी

मयस्त्व-मद्वय १॥ कृति-वि-मयणावयवार्द १॥ = सम्पाद्यकेवाही कृति हीकी है एसाकार आत्मना कर्मादेव ।

(१) वर्णादि-वर्णादि । अणुव मद्राकी द्वितीया अणुववय वरते वरारो वरारि है (प्रा० सु० की १८०) क्षेत्रज्ञाकी द्वितीया अणुववय

अणुवद विष्णु क्षेत्रार्द है (प्रा० सु० पु० १७५) गाम्मदासात्की श्रीर परितोरे एव ही संस्कार कर्मा यो चत्वारि-द्वेवादि है । वेही कर्मने सिद्धी है अणुवद मी उपरान् द्वितीयमें विद्य है । किसी किसी प्रतिसे अणुवम, क्षेत्रणाम् पृथिविभक्ति-अणुववय अणुवद विष्णु वरारो वरारि क्षेत्रार्दकी संस्कार कर्मा मिकी है वर सगमके वही कर्मा । अणुवद पृथिविभक्तिमें मी वर कर्मा है कर्मादि द्विती अनुवाद प्रायः पद्ये-द्वितीया कीर्णोत्त वसना अक्का एसा है ३

एतानिवाणी व्याख्यास्यारथकोष्ठक परच्छेद और विपरत्यर्थसहित सर्वावसिद्धिका बन्धन द्विती अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८ ।
 श्रायोपशमिकसम्भ्यदृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥ औपशमिकसम्भ्यदृष्टीनां सामान्योक्तम् । श्रेयाणां

सामान्योक्तम् । श्रेयाणां

सायोपशमिक-सम्भ्यदृष्टीनां नृ
 साया-प-उक्तम् ॥११

= वेदकसम्भ्यदर्शनमन्त्राशोका (जो अंतर्वचसे अमपव गुणस्थानवक हैं)
 = संक्षेप [प्रस्ता] में कहा हुआ [गुणस्थानवद स्वर्येन] है अर्थात् (१) अंतर्वच सायाप
 शमिक सम्भ्यदृष्टिका (दशरथान विहार अयोसासे) शोकहा अंतर्कथावशां माग है अथवा शोक
 प्रगनालके चौदशभागोंमेंसे आठ माग कुछ हीन है जबकि अंतर्वच गुणस्थानवर्ती वेदक सम्भ्य
 पत्त्वका आकर देव अत्युत सोझद्वेषे स्वीये तीसरे नरक तक विहार करता है ॥ अत्युतस्वर्ग
 से अत्यलोक छहरावू है मन्वलोभसे तीसरा नरक दो रावू है ऐसे आठ रावू बुचे ॥ १३५
 पृष्ठानुपार [२] संक्षेपवच वेदक सम्भ्यदृष्टीनांसे दशरथान विहारकी अयोसासे शोकहा
 अंतर्वचवशां माग स्या क्रिया आशा है अथवा चौदहरावू लोकप्रसन्नलक्ष्मेंसे कुछ हीन छहरावू
 माग्याविक समुद्रवात अयोसासे स्वप्नमाचल पर्यंतके पाहिरके त्रिभंकोकी उत्पत्ति शोकद्वेषे
 अत्युत स्वीत्क दोनेके कारणसे छुए जाते हैं (३) मपवचवच वेदक सम्भ्यदृष्टीनांका
 और अमपव वेदक सम्भ्यदर्शनमन्त्राशोका प्यर्थेन पृष्ठ १३६ के अनुकूल शेषवच है जो पृष्ठ
 ११५ के अनुसार शोकहा अंतर्वचवशां माग [स्वर्येन] होता है ॥

श्रीपशमिकसम्भ्यदृष्टीनां नृ
 अंतर्वचसम्भ्यदृष्टीनां नृ
 सामान्य-उक्तम् ॥११

= अत्युत सम्भ्यदर्शनमन्त्र
 = अंतर्वच सम्भ्यदृष्टीनांका
 = संक्षेप मन्त्रार्थमें कथित (गुणस्थानवत् स्वप्न) है अर्थात् १३६ पृष्ठके अनुसार शोकके अ
 संक्षेपवशां माग स्वस्थान विहार अयोसासे है और पररथान विहार अयोसासे कुछ हीन आठरावू
 (जबकि अत्युत सोझद्वेषे स्वीर्का देव तीसरे नरक तक मगन करता है पृष्ठ १३५) दर्शन होता है ॥
 = (अत्युत सम्भ्यदर्शनके) श्रेय पंथवशां से आठवशां गुणस्थान वक का

श्रेयाणां नृ
 (१) श्रेयां कीकासंक्षेपमाग स्वप्नेन सम्भ्यदृष्टीनांसे संक्षेपवशांसे श्रेयाणांसे कीकासंक्षेपमागकथनाभ्युत्पत्त्येन श्रेयाणांसे सम्भ्यदृष्टीनां

वटानिवासी जगत्पत्न्यराजपत्नीकृत पदच्छेद और विमलस्पर्शवाहित सर्वांगसिद्धिका ब्रह्मस्य हिंसी ब्रह्मवाद । अथवाय १ सूत्र ८ ।

सासादनसम्पत्तदृष्टिसम्पत्तिमरथादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥

सासादनसम्पत्तदृष्टि—

सम्पत्तिमरथादृष्टि—

मिथ्यादृष्टीनां १।

सामान्य-उक्तम् ॥११॥

= सासादन सम्पत्स्पर्शमलानैविका,
= सिध [तीसरे] गुणस्थानबर्तीनिका
= और मिथ्यादृष्टियोंका [स्वर्शन]
= संश्लेषार्थे [पूर्ण] कथित [गुणस्थानवत्] है अर्थात् सासादन सम्पत्तदृष्टियोंकरि स्वस्थान विहार अ-
पेक्षते लोकका अस्तंभपातवर्षा माग स्पर्शन क्रिया जाता है । तीनसो वैवालीस मनाकार राज् लोकमें जो
दर राज् लोकप्रसन्ननाह है सो सासादन सम्पत्तदृष्टियोंकरि कुछ हीन जाठ राज् परस्थान विहार अपेक्षते
और पारभासिक समुद्रवातकी अपेक्षते कुछ हीन जाठ राज् हुए जाते हैं जैसे विहारवत् स्वस्थानकी
अपेक्षते सासादन गुणस्थानवर्ती देव तीसरे नरक तक विहार करते हैं सो मध्य लोकसे तीसरे नरक
तक दो राज् हुए और ऊपर सोलह स्वय मर विहार करते हैं वष कर राज् ये हुये इस प्रकार जाठराज्
पराधान विहार अपेक्षते स्वप्न हुये । कुछ माग छूट जाता है अतः कुछ हीन जाठराज् हुये । मारणां
सिद्ध समुद्रवातकी अपेक्षते सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छुटे नरक तकसे भर सका है [क्योंकि
सम्पत्तय गुण साहित किन्ही अक्षिका परण सातवें नरकसे नहीं हो सका है] यदि इस छुटे नरकसे मा
रणासिक समुद्रवात करे और बादर पृथिवी कायासिक लोकके अंत मागमें वरपण हो वो छुटे नरकसे-
मध्य लोक तक पंथ राज् हुये और मध्यलोकसे अंत तक स्वर्नममें साठ राज् ये हुये कुछ [किंचित्] माग
भूतेसे रह जाता है अतः कुछ हीन जाठ राज् हुये । पृष्ठ १३३, १३४ इसी ब्रह्मवादका (२) सिध
गुणस्थानवर्ती स्वस्थान विहार अपेक्षते सोडका अस्तंभपातवर्षा माग स्पर्शन करते हैं और परस्थान विहार
अपेक्षते जोक प्रसन्ननालके चौदर राज्भूमिसे कुछ हीन जाठ राज् जैसे सिध गुणस्थानवर्ती देव अरुण
सोडदश स्पर्शसे तीसरे नरक तक विहार करे वष कुछ नून जाठराज् स्पर्शते हैं पृष्ठ १३५ । (३)
मिथ्यादृष्टियोंकरि सर्वलोक मुग्धा जाता है । पृष्ठ १३२ ॥

पद्यानिवासी कानकप्रहासक्रीडकृत पदच्छेद और विपक्षपत्रमदित सर्वाधिकारिकका चरकरा द्विती मनुष्यात् । अथवाय १ सूत्र ८ ।

लोकस्यासक्त्येयभागः ।

लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥

मरुत्पक्षीगतं मारुत्पक्षिकामागेऽप्युक्त्यामर्थे । अथवा सप्तपेक्षया चत् चतुर्दशमाया एति कथयति । मनुष्यपक्षीस्यद्वितीयोपशयमसम्पन्नदृष्टिर्वा मरुत्पक्षिसि । मारुत्पक्षिर्दोऽदिति अतीत्यात्र नास्मात् सिद्धयः । अपरीशामावात् । यथसि तदपिबोक्त्यासक्त्येयमगोऽप्यसमीक । मनुष्यपक्षेण

प्रतिव्यावात् ।

शेषावात् ॥

वाङ्मसंख्येयभागः ॥ इति ० अनेन ॥

अथमसम्पन्नदृष्टि-क्षेत्रस्यत + अपेक्षया ॥ इति ०

वाङ्म-मसंख्येयमागत्पदात् ॥

मनुष्यपक्षेप्रवर्ति ० वृत्ति-अपशयसम्पन्नदृष्टीनाम् ॥

मरुत्पक्षीदृष्टीनाम् ॥ मारुत्पक्षिक-अमात्राः ॥ इति ०

अथवायति १ कथयथा ०

एव-अपेक्षया ॥

एव ॥ अतएव ॥ मागा ॥ इति ० कथयति १

मनुष्यपक्षेवृत्ति-द्वितीय-अपशयसम्पन्नदृष्टीनाम् ॥

मरुत्पक्षीना वृत्ति । मारुत्पक्षिकः १ इति व अतिव इति

अनेन व अतिव इति ० अथवायत् ॥

यदि अतिव-एव इति बोक्त-असंख्येयमगो ॥

मनुष्य-अपेक्षया ॥ इति ०

अथवायत् ॥ अथवायत् ॥

== (अथवा) लोकका असंख्यातयां अर्थ है

- (अथवा सम्पन्नदृष्टे) अर्थ है (गुणस्थानवासीनि) का (अर्थान)
- लोकका असंख्यातयां अर्थ है अथ (वाक्य) कति
- अथवा सम्पन्नदृष्टीवासे संयमास्यमीच्छी विषयवासे मी
- लोकके असंख्यातयां मायक व्याख्यातसे
- मनुष्य क्षेत्र (अर्थात् द्वीप) से बाह्य एतरेवासे अथवा सम्पन्नदृष्टीवासे
- मनुष्य वर्तितकाले मारुत्पक्षिक समुद्रवातका व इला मी
- अना वाता है । एतरे प्रकृत(यदि मारुत्पक्षिक समुद्रवातका होला माता जाय तो)
- अथ (मारुत्पक्षिक समुद्रवातकी) अथवासे
- (लोक प्रवसावके) एतरे एवम् है (अर्थ) अथ (एवम्) अर्थे अर्थे है अथवा अर्थे है एवम् १११ इति गुणकका देखो ।
- अर्थात् द्वीपमें रतमीवाजे द्वितीय अथवा सम्पन्नदृष्टीके वातकीही
- मनुष्य है । मारुत्पक्षिक समुद्रवात है (अथवा) मती है अर्थे
- अर्थाने (अथवा) सिद्धा (अर्थे अर्थे) व लोकके वातवासे इलाकी सिंधुय मती है ।
- अर्थे (मारुत्पक्षिक समुद्रवात) है ती मी लोकके असंख्यात अर्थ (के अर्थान) अर्थे
- अर्थात् द्वीपसे बाहर (द्वितीय अथवा सम्पन्नदृष्टी वा अर्थाने मारुत्पक्षिक समुद्र
- एवात) व लोकके हेतुसे-मार्तत है । (सिद्धा) मनुष्य और सिंधुय अर्थात्
- द्वीप वात है और सिंधुय अर्थात् द्वीपसे बाहिर मी है सिंधुलोक पर्यन्त गुणस्थान
- वात हो सत्या है और द्वितीय अथवा अर्थाने गुणस्थानमें वाता है इसीविधे सिद्ध-
- वातके मती हो सत्या है इस कारणसे मनुष्य क्षेत्रसे बाहिर द्वितीय अथवाय मती है

बनानवासी जगद्वसरायणकी छिद्र पदच्छेद और विमरस्यपंगवद्वि सर्वापसिद्धिका प्रपञ्च हिंसी जनुवाद । भव्याय १ सुत्र ८ ।

सासादनसम्पत्तद्विष्टिसम्पत्तिमर्यादद्विमिर्यादद्विनां सामान्योक्तम् ॥

सासादनसम्पत्तद्वि— = सासादन सम्पत्सर्वतन्त्रानिका,

सम्पत्तिमर्यादद्वि— = मिथ [वीसरे] गुणस्थानवर्तीनिका

मिर्यादद्विनां ॥ = और मिर्यादद्वियोका [रक्षेन]

सामान्य-उक्तम् ॥ = संशेषे[पूर्व] वद्वि [गुणस्थानवत्] है अर्थात् सासादन सम्पत्तद्वियोकरि स्वस्थान विहार प्र-

वेद्यासे लोकका अस्तव्यवर्वां भाग स्वर्धन क्रिया जाता है । वीमघो वेतालीस वनाकार राज् लोकमें यो दद राज् लोकप्रसन्नता है वो सासादन सम्पत्तद्वियोकरि कुछ हीन भाठ राज् परस्थान विहार अपेक्षासे और नारणातिक सम्पत्तयावकी अपेक्षासे कुछ हीन भाठ राज् हुए जाते हैं जैसे विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती देव वीमरे नरक तक विहार करते हैं सो मध्य लोकसे वीसरे नरक तक दो राज् हुए और ऊपर सोढव स्वर्ग तक विहार करते हैं वय छर राज् ये हुये इस प्रकार भाठराज् परस्थान विहार अपेक्षासे स्थान हुये । कुछ भाग पुत्र जाता है अतः कुछ हीन भाठराज् हुये । मारणां तिक सम्पत्तयावकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छठे नरक तकसे पर सका है [अर्थात्कि सम्पत्तय गुण सविव किसी कीमका परण सावर्धे नरकसे नहीं हो सका है] यदि इस छठे नरकसे मा रणातिक सम्पत्तयाव करे और बादर दृषियी जायातिक लोकके अद भागमें तराज हो यो छठे नरकसे- मध्य लोक तक पंच राज हुये और मध्यलोकसे अद तक दर्यानमें साव राज् ये हुये कुछ [किंचित्] भाग पुनेसे रद जाता है अद कुछ हीन भाठ राज् हुये । पृष्ठ १३३, १३४ इसी अनुवादका (२) मिस्र गुणस्थानवर्ती स्वरथान विहार अपेक्षासे लोकका अस्तव्यवर्वां भाग स्वर्धे करते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक प्रसन्नासके चोदर राज्भूमिसे कुछ हीन भाठ राज् जैसे मिथ गुणस्थानवर्ती देव अन्तुव सोलहवां स्वर्गसे वीसर नरक तक विहार करे वय कुछ न्यून भाठराज् स्वर्धते हैं पृष्ठ १३६ । (३) मिर्यादद्वियोकरि सर्वलोक प्रया जाता है । पृष्ठ १३२ ॥

पद्यानिवासी काल्पसद्यप्यवकीर्णव पदच्छेद और विपत्त्यपवहित सर्वाधीनिका करारध' सिद्धी मनुषाद । धप्याव १ एष ८ ।

लोकस्यासक्त्येयभाग' ।

लोकस्य ॥ असंक्षेपमाग' ॥

= (एषजन) लोकका असंख्यातवां अर्थ है

मनुष्यवर्तमानां मारुणाधिकमात्रोऽप्यवगम्यते । अथवा सर्वेषुपा पदं अमूर्तसमागा एति कथयन्ति । मनुष्यश्रेष्ठवर्तिवृत्तीयोपक्रमसद्यप्यवपीनां मय्यमसि । मारुणाधिक बोधसि धारणीयव्य भासाक निषयका । एवमेवमागमात् । एयसि वदपिबोकासक्त्येयमागोऽप्यवपीनाः । मनुष्यश्रेष्ठा-

ददित्यावाव ॥

शेषावाम् ॥

वाङ्-वासंक्षेपमागः ॥ एति० एतेन ॥

एवमागस्यप्यवदि-देशसंभव + अपेक्षया ॥ ग एति०

वाङ्-वासंक्षेपमागकपनात् ॥

मनुष्यश्रेष्ठवर्तिरं ० एति-उपक्रमसद्यप्यवपीनाम् ॥

मनुष्यवर्तमानम् ॥ मारुणाधिक-अमागः ॥ एति ०

एवगम्यते ॥ कथ्या ०

एव-अपेक्षया ॥

एत् ॥ एतदव ॥ मागः ॥ एति० कथयन्ति ॥

मनुष्यश्रेष्ठवर्तिर-द्वितीय-अप्यवसद्यप्यवपीनाम् ॥

मारुणम् ॥ ग एति । मारुणाधिकः ॥ एति व एति एति

एव ० व अभावात् ॥ निरवय ॥ उपदेश-अभावात् ॥

एति एति-एव एति लोक-वासंक्षेपमागः ॥

मनुष्य-श्रेष्ठाव् ॥ ग एति ०

अभावात् ॥ कथयन्ति ॥

- (एवमाग सत्यप्यवके) अर्थ है ये (गुणस्थानवातेनि) का (व्यर्थन)
- लोकका असंख्यातवां अर्थ है ऐसे एव (वाक्य) करि
- उपक्रम सत्यप्यवप्यवपीनां संयमास्यपीनकी निषकासे मी
- लोकके असंख्यातवां मागक व्याख्यातसे
- मनुष्य श्रेष्ठ (एवार्थ द्वीप) से एका एतनेवाते उपक्रम सत्यप्यवपीनावाते
- मनुष्य वर्तमानके मारुणाधिक ससुदुवातका न वना मी
- अना अना है । दूसरे प्रकार (एति मारुणाधिक ससुदुवातका हेमा मागः काय तो)
- एव (मारुणाधिक ससुदुवातकी) अपेक्षासे
- (लोक अतनावाके) बोधक एव है (तो) कर (एव् सुये जाते) है ऐसा अर्थ है एव १ १ १ एती गुणकका हैको ।
- एवार्थ द्वीपमें एवनेवाते द्वितीय उपक्रम सत्यप्यवपीनके एवार्थकी
- सुयु है । मारुणाधिक ससुदुवात है (भाषया) नहीं है ऐसे
- एवार्थ (एवम्) सिद्धा (एवमेव) न होनेके कारणसे हमको सिद्धय नहीं है ।
- जो (मारुणाधिक ससुदुवात) है तो मी लोकके असंख्यात कर (के कारण) में
- एवार्थ द्वीपके एव (द्वितीय अर्थान सत्यप्यव तथा असं मारुणाधिक ससुदु
- दुवात) न होनेके हेतुसे—गर्भव है । (सिध्यती) मनुष्य एते सिद्धे व एवार्थ
- द्वीप तक है एते सिद्धे व एवार्थ द्वीपके एति मी है सिद्धीके पक्षवां गुणस्थान
- तक ही सका है एते द्वितीय अर्थान काठके गुणस्थानमें हीना है एवद्विने सिद्ध-
- वानके नहीं हो सका है एव कारणसे मनुष्य श्रेष्ठ एति द्वितीय उपक्रम नहीं है

बटनिवासी का स्वसाराणकीबहुत परच्छेद और विभक्तस्वर्गवाहित सर्वाथसिद्धि का अर्थ 'दिशि जगुभाव । अन्वय १ घन ८ । सासादनसम्पन्नदृष्टिसम्पत्तिमय्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥

सासादनसम्पन्नदृष्टि—
सम्पत्तिमय्यादृष्टि—
मिथ्यादृष्टीनां १।
सामान्य-उक्तम् ॥१॥

= सासादन सम्पन्नमर्थमर्थानैतिक,
= मिथ [वीचरे] गुणस्थानवर्गीनिका
= और मिथ्यादृष्टियों का [स्वर्ग]
= संशय [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] है अर्थात् सासादन सम्पन्नदृष्टियों की स्वस्थान विहार ज-
पेयासे लोकका अंतर्भावनां माग स्वर्गन क्रिया जाता है । वीचरी वैवालीस घनाकार राज्य लोकमें जो
दर राज लोकप्रवनाल है वो सासादन सम्पन्नदृष्टियों की कुछ हीन जाठ राज्य परस्थान विहार प्रपेयासे
और सारणादिक सम्पन्नवातकी प्रपेयासे कुछ हीन वादर राज्य छुए जाते हैं जैसे विहारवत् स्वस्थानकी
प्रपेयासे सासादन गुणस्थानवर्गी देव वीचरे नरक तक विहार करते हैं सो मध्य लोकसे वीचरे नरक
तक दो राज्य छुए और ऊपर सोलर स्तन तक विहार करते हैं वर पर राज्य ये छुये इस प्रकार जाठराज
परधान विदर अपेयासे स्थान हुये । कुछ माम छुए जाता है अतः कुछ हीन जाठराज हुये । सारणां
दिक सम्पन्नवातकी प्रपेयासे सासादन गुणस्थानवर्गी जो केवल छठे नरक तकसे भर सका है [क्योंकि
सम्पन्नम गुण सारि क्विसी चीनका मरण साठवें नरकसे नहीं हो सका है] यदि इस छठे नरकसे मा
रणादिक सम्पन्नवात करे और वादर पृथिवी कायादिक लोकके अथ भागमें परभय हो वो छठे नरकसे-
पय लोक तक पाय शक्त हुये और मध्यलोकसे अथ तक स्वर्गनमें साठ राज्य ये छुये कुछ [किंचित] माग
छुनेसे रर जाता है मत कुछ हीन वादर राज्य हुये । पृष्ठ १२३, १२४ रसी मनुवादाका (२) मिथ
गुणस्थानवर्गी स्वस्थान विहार अपेयासे सोलका अंतर्भावनां माग स्वर्ग करते हैं और परस्थान विहार
प्रपेयासे लोक प्रसनासके वादर राज्यवर्गीसे कुछ हीन जाठ राज्य जैसे मिथ गुणस्थानवर्गी देव अष्टगुण
सोलरवां स्वर्गसे वीचरे नरक तक विहार करे वर कुछ न्यून जाठराज स्वर्गवे है पृष्ठ १२४ । (२)
मिथ्यादृष्टियों की सर्वाथोक्त छुया जाता है । पृष्ठ १२२ ॥

बटानिनासी बनासवादाबाकीकठव पदच्छेद और विमलस्यवर्गद्वि सार्धसिद्धिका प्रपद्य हिंदी प्रवृत्त । मध्याय १ सूत्र ८ ।

सासादनसम्पन्नदृष्टिसम्पत्तिमर्यादृष्टिभिद्यथादृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥

सासादनसम्पन्नदृष्टि—

सम्पत्तिमर्यादृष्टि—

मिद्यथादृष्टीनां १।

सामान्य-उक्तम् ॥॥

= सासादन सम्पत्तिमर्यादृष्टिना, १

= मिथ [तीसरे] गुणस्थानवर्गीनिका

= और मिद्यथादृष्टीनां [सर्वत्र]

= संक्षेपार्थ [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] है अर्थात् सासादन सम्पन्नदृष्टीकरि स्वस्थान विहार अ-
पेक्षासे लोकका प्रसङ्गपाठनां भाग स्थान किया जाता है । तीनवीं वेगलीय पनाकार तात् लोकमें नौ
दर तात् लोकप्रसन्नता है ही सासादन सम्पन्नदृष्टीकरि कुछ हीन जाठ तात् परस्थान विहार अपेक्षासे
और मारणादिक सम्पन्नताकी अपेक्षासे कुछ हीन जाठ तात् कुछ हीन जाठ तात् परस्थान विहार अपेक्षासे
अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्गी देव तीनरे नरक तक विहार करते हैं सो मध्य लोकसे तीसरे नरक
तक ही तात् कुछ और ऊपर लोक स्वयं तक विहार करते हैं वर छर तात् ये द्रुये इस प्रकार जाठतात्
परस्थान विहार अपेक्षासे स्थान द्रुये । कुछ पाप छूटा जाता है अर्थात् कुछ हीन जाठतात् द्रुये । मारणां
दिक सम्पन्नताकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्गी सो केवल छठे नरक तकसे मत सका है [क्योंकि
सम्पन्नता गुण सारिव किसी क्षीयका मरण साधनें नरकसे नहीं हो सका है] यदि इस छठे नरकसे म-
रणादिक सम्पन्नता करे और धारर युधिवी कायादिक लोकके अंद भागमें उत्तरण हो वो छठे नरकसे-
मध्य लोक तक पांच पांच द्रुये और मध्यलोकसे अंद तक उत्तरणमें साठ तात् ये द्रुये कुछ [किंचित्] पाप
छूनेसे रह जाता है अर्थात् कुछ हीन जाठ तात् द्रुये । पृष्ठ १२३, १२४ इसी अंत्यादाका (२) मिथ
गुणस्थानवर्गी स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका प्रसङ्गपाठनां भाग स्थान करते हैं और परस्थान विहार
अपेक्षासे लोक प्रसन्नताके चोदर राष्ट्रयोमेंसे कुछ हीन जाठ तात् अंत्ये मिथ गुणस्थानवर्गी देव प्रपद्य
सोदरशां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करते वर कुछ न्यून जाठतात् स्वर्गसे हैं पृष्ठ १२४ । (३)
मिद्यथादृष्टीनां करि सर्वलोक द्रुया जाता है । पृष्ठ १२४ ॥

पटानिवासी भयकरसायापकीलकृप परच्छेद और विपत्त्यर्थवादिन सर्वाथसिद्धिका अन्वयः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८ ।

१३ सज्ञानुवादेन सन्नानां चक्षुर्दर्शनिवत् ।

सञ्ज्ञा-अनुवादेन ॥ = सेनिके रूपानुवादा करि अर्थात् प्रमत्तचित्त जीवोकी अपेक्षसे

सन्नानां ॥ चक्षुर्दर्शनिवत् * = सेनी धामनमद्वित्त जीवोका [सर्वजन] चक्षुर्दर्शनवालोके मयात्त है अर्थात् चक्षुर्दर्शनवाले सिद्ध्यादृष्टिमेंसे

हेकर सीयकथापयालोका सर्वजन पक्ष इन्द्रिय जीवोके अदृश्य है [पृष्ठ १४६] और पक्षेन्द्रिय जीवोंमें

सिद्ध्यादृष्टिमेंकरि जोकका असंख्यात्वना अंश हुआ जाता है । जोकरजननालके चौदरानुवाच्यो

मेंसे परस्परान विद्यार अपेक्षासे कुछ घाटि भाठ राजू है और मातृणीतिक अपेक्षासे सर्वजनका सर्व

जोक है । [पृष्ठ १४०-१४१] साक्षात्तन गुणस्मानमें पक्षेन्द्रिय जीवोका सर्व स्वस्थान वि

द्यार अपेक्षसे जोकका असंख्यात्वना माल है । परस्परान विद्यार अपेक्षासे प्रसनालके चौदर राजू

ओमेंसे भाठ राजू कुछ हीन है और मातृणीतिक समुद्रवात अपेक्षासे चौदर राजूओमेंसे कुछ

अ्यून वातर राजू है (विद्येयके लिये पृष्ठ १३३ १३४) सम्यग्निपज्यादृष्टि और असंयत समुद्रदृष्टि

पक्षेन्द्रियोकरि स्वस्थानविद्यार अपेक्षासे जोकका असंख्य तनां माल हुआ जाता है परस्परान विद्यार

अपेक्षासे चौदर राजूओमेंसे कुछ घाटि भाठ राजू सर्वां जाता है [मिथसुब्रह्मस्थानकर्त्ता देव और

असंयत शुब्रस्थानकर्त्ता देव अच्युत सोल्लवा स्वर्गसे हीशरे नरक तक विचार करें सब कुछ न्यून

भाठ राजू सर्वथे है पृष्ठ १३६] संयतासंयत शुब्रस्थानमें पक्षेन्द्रियोकरि स्वस्थान विद्यार

अपेक्षासे जोकका असंख्यात्वनां माय स्वय क्रिया जाता है प्रथवा लोकप्रसनालके चौदर राजूओमेंसे

मातृणीतिक समुद्रवातकी अपेक्षासे अच्युत सोल्लवां स्नातक प्रत्यक्ष हीनके कालसे कुछ हीन

छर राजू सर्वां जाता है (पृष्ठ १३६) जैसे स्वपदप्रयाचनके पाहिरिका देखसंपत्ती तिर्यक प्रच्युत

सोल्लवे सर्वा पयंत अन्तम हेनेसे मातृणीतिक समुद्रवात अपेक्षासे कुछहीन छर राजू सर्वथे करता है

[पृष्ठ १४७] मपक्ष संयतसे जीयकथाप तक सर्व शुब्रस्थानोंमें पक्षेन्द्रिय जीवोका सर्वजन क्षेत्रवत् है (पृष्ठ १३६) क्षेत्रवत् सर्वजन मपक्षसंयत छरे शुब्रस्थानसे वातर तक जोकका असंख्यात्वनां माल है (पृष्ठ १३६) ॥

एयन्निवासी मालवसहायकीकृत परचंद और विमलस्यसंहित सर्वाथसिद्धि आरभ्यः द्विती अनुवाद । अथवा १ सूत्र ८ ।
 अर्थाच्चिभिः सर्वलोक, स्पृष्ट । तदुभयपददेशरहितानां नामान्योक्तम् । [१४] आहारानुवादेन-
 आहारकाणां मित्याहृष्ट्यादिसौणकथायान्तानां सामान्याक्तम् ॥

प्रथमश्लोकः ॥ सर्वलोकः ॥ स्पृष्टः ॥ = अर्थात् (अन्वहित) भिन्नरि समस्तलोक स्वर्गा जगतः ॥

सर्व-उपपत्त्यर्थ-रहितानां ॥ = इन दोनों [मनसहित मनसहित] नापसे बर्हित अर्थात् उपयोगकेबली उपयोगकेबलीनिहा स्वार्थन
 सामान्य-उक्तम् ॥ = संक्षेप [मन्त्रव्य] में कविश्व गुणस्वानवत् है अर्थात् एक समयमें दोनेवाले जगत्पट्ट ८२८०२

उपयोगकेबलीनिहा स्वस्थान रक्षस्थान और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षासे लोकका अर्थस्वावर्थाभागा स्वार्थ
 है । दरसहस्रवाच और जगत सहस्रवाचोंकी अपेक्षासे भी लोकका अर्थस्वावर्थाभागा स्वार्थ
 सहस्रवाचमें लोकके अर्थस्वावर्थाभागा स्वार्थसे एक भाग हीन [बाववत्पर्योके क्षेत्रके प्रथम पाटि]
 सर्वलोक है और लोक पूरुष सहस्रवाचोंकी अपेक्षासे सब ही लोकमें उपयोगकेबलीके प्रदेय न्याय ही
 जाते हैं । और उपयोगकेबलीनिहा स्वार्थन लोकका अर्थस्वावर्थाभागा स्वस्थान स्वस्थान अर्थस्वावर्थाभागा
 है शु १३३ अष्टि २, ३ शु ११८ से १२० ।

आहार-अनुवादेन ॥ आहारकायां = [१४] आहारके कर्तानुसारकरि आहारक
 मित्याहृष्टि-आदि-सीवद्वय- = मित्याहृष्टिमेंसे लेकर सीवद्वय (आहार) गुणस्थानवर्ग
 अन्तर्गत ॥ सामान्य-उक्तम् ॥ = एकलिका (स्थान) संक्षेप (प्रकारमें) कविश्व (गुणस्थानवत्) है ॥ अर्थात् आहारक

अथवा वीरकी प्रथमसे देरद गुणस्थान तक हो सकी है सो [१] मित्याहृष्टि प्रथम गुणस्थान-
 वर्गी आहारकोकरि सब लोक हुआ जाता है (शु १३२) (२) सासादन सत्यगृष्टि आहारक
 पाते स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका अर्थस्वावर्थाभागा स्वार्थन करते हैं, परस्वानविहार,
 अपेक्षासे लोक अन्तर्गतके चौदह शशुओंमेंसे पाठ राव् कृष् पाटि स्वार्थन करते हैं और पार
 यातिक सहस्रवाचकी अपेक्षासे लोक अन्तर्गतके चौदह शशुओंमेंसे बारह राव् कृष् न्यून कृते है
 (विद्युत् पृष्ठ १३३-१३४) ॥ [३-४] मित गुणस्थानवर्गी आहारक और अथवा प्रथम-
 अष्टि चौथे गुणस्थानवर्गी आहारक स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका अर्थस्वावर्थाभागा कृते है

प्रदानिवाची वास्तुसंस्थापकीयकृत पदच्छेद और विपरस्परसहित सर्वांसिद्धिका कथ्यः द्विती अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ ८ ।
 सयोगकेवलिनं लोकस्यासुर्येयभाग ॥ अनाशरकेषु मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोक मण्डुः ।

और परमाणु विहार भूषणसे लोक असनादीके चौदह भागोंमेंसे कुछ पाटि भाट भाग छूते हैं (विशेष पृष्ठ १३५) ॥ [५] सयमासवमी आहारक स्वस्थान स्वस्थान भूषणसे लोकका वास्तव्यताभाव छूते हैं और परस्थान विहार भूषणसे लोक असनादीके चौदह गण्डु भागोंमेंसे कुछ न्यून छह भाग छूते हैं ॥ [६-१२] प्रपद्य सर्वमी षडे शुभस्थानवाले आहारकोंसे केवल शोणकपाय आहारका शुभस्थानवर्ती आहारकी वकका स्थिति नैवभवत् है [पृष्ठ १३६] यह क्षेत्र सद्यः पर्वतन पृष्ठ ११६ के अटुकुर लोकका वास्तव्यताया अंश होता है ॥

== योगसहित कैशलीका (श्री) स्वस्थानविहार और परस्थानविहार द्वादश कपाट सद्युत्पादोंमें आहारक और प्रदत्त लोक पूर्ण सद्युत्पादोंमें अनाहारक होते हैं)

== लोकका अस्तंस्क्यावर्षा माग स्मर्यन है अर्थात् सयोगकेवली आहारक और अनाहारक दोनों अस्तंस्क्यावर्षों होते हैं इनका भी स्थिति नैवभवत् है [पृष्ठ १३६] यह क्षेत्र सयान स्थितिन आहारक अस्तंस्क्यावर्ष स्वस्थान विहार भूषणसे और परस्थान विहार भूषणसे द्वादशकपाट सद्युत्पादोंमें अस्तंस्क्यावर्षा भाग है (विशेष पृष्ठ ११५ से १२०) और अनाहारक सयोग केवली है प्रथम सद्युत्पादोंमें लोकके अस्तंस्क्यावर्ष भागोंमेंसे एक भाग न्यून (सीतोपाव नस्योके क्षेत्रके परावर न्यून) स्थितिन करते हैं / एक भाग घाटि सवरी लोक रम्यते हैं) और लोक पूर्ण सद्युत्पादोंमें अनाहारक सयोगकेवलीके आस्थाके प्रद्वेष सर्वत्र लोकमें कपात हो जाता है जब मर्शोके स्थितिन है ॥

== अनाहारक (सिन्धुगारुडि-सासाद्वलसम्पददृष्टि-अस्तंस्क्यावर्षगारुडि-सयोगकेवली-प्रयोग-कैशलीनिव)

अन+आहारकेषु १।
 सिन्धुगारुडिमा १। सर्वलोका १। स्युद = सिन्धुगारुडिमादि सप्तम लोका एतर्था जाता है

नरति ॥ अति वयसि * अन्ध्रासंकेतवशात् ॥
 अन्ध्रासः ॥ मनुष्याणां ॥ य एव शिष्येषु ॥ वयसि ॥ - अथ है तत्र मी लोकके अर्थक्यात् अंश (हे कपल) विदी

वदन्ते ॥ सान्द्राण्यवयव-अवयवैः ॥ सासायव अवयवा ॥ - अथ-संज्ञेय व्यत्यागके प्रसंगे वृत्तरे गृहस्थान्ध्रासीनिका विवृणोते

सासायव ॥ अथ ॥ अति * अर्थ *
 (लोकसत्तावके) शीघ्र एव है (सी) एतत् (एम्बुधा सर्वाथ है) देवा एता मया है

सासायवः ॥ अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥
 - अति (शीघ्र एव है) एतत् (एम्बुधा सर्वाथ है) एता एते है देते एतन्व (पर

नात्वातिन्वम्, १ एतन्-सिखाव्यपिनामेन ॥ सिपने
 - सासायवसम्भवटी मीश देव एता (= अथपुत्रिवीर्यकर्म)

अति * अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥ अथपुत्रवत् ॥
 - एतन्व (= एतन्) सासायव सत्यान्ध्रासीनिका सौम्यत्वात् अर्थे

अथपुत्रवत् ॥ अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥
 - अथपुत्रवत् (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म

अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥ अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥
 - अथपुत्रिवीर्यकर्म (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म

अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥ अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥
 - अथपुत्रिवीर्यकर्म (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म

अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥ अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥
 - अथपुत्रिवीर्यकर्म (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म

अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥ अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥
 - अथपुत्रिवीर्यकर्म (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म

अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥ अथपुत्रिवीर्यकर्म ॥
 - अथपुत्रिवीर्यकर्म (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म (= एतन्व) अथपुत्रिवीर्यकर्म

एतन्निवासी ब्राह्मणसाम्राज्यकी बहुर परम्परे और विमलसर्वसहित सभार्यसिद्धिका प्रत्यक्ष हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ ८ ।

असंगतसम्पन्नदृष्टिनां लोकस्य।संख्येयभाग । पद चतुर्दशभागावा देशोना ॥

अर्थात् अनाहारक सासत्रम सम्प्राप्य ' छटा पृथिवीतें पश्यजाकरें तपनें
जाके धाराद अपेक्षा तो पांव गन्नु कर प्रच्युततें पश्यजाकरें जाय वगैरे,
जाके उत्साह अपेक्षा छह परें ग्याह राजू करे । मारवातिके अपेक्षा धारद
राजू शेष है । परन्तु माण्वादिदमै अनाहारक नाहीं । शर्वें उत्साह अ
पेक्षा ग्याह है ॥" सर्वाभिसिद्धि पञ्चनिका शुद्धि पृष्ठ ८८ ॥

असंगतसम्पन्नदृष्टिनां ।। अनाहारक ।। असंख्येयभाग ।। (अनाहारक) अथवा गुणभयानरतीनिहा (स्वर्धन) कोकरा असंख्यासर्गा
अंग है ।

पद ।। चतुर्दशभागा ।। अ देशोना ।।

= अ (लोक असन्नादीके) चौबह राजू है (सो) छह हीन छह रूप जातें हैं

एतं वेद

= इसप्रकार स्थण (= वेद) (शरीर करतें है)

पूर्वम् ।। एकविंशत्यवस्थिते ।। एक एकम् ।। एक एव
सिध्दादिगुणसम्बन्धम् ।। एतं एतं अकल्पात् ।। एक एव ।।

= एतद्वि (देखा पृष्ठ १४० पीके ३) एक दृष्टिय विकल्प इत्यर्थे एक ही

सिध्दा-मनुष्यसासपत्न-अपेक्षाया ।।

= सिध्दात्म गुणस्थान है ऐसे कथन शरीरसे प्रथम (देखो पृष्ठ १३८ पकि ४)

एतं ।। चतुर्दश ।। भागाः ।। एतं अकल्पात् ।।

= (इससे गुणस्थानवती) तिर्यक तथा मनुष्यत्वकी अपेक्षासे

एव + अति

= (लोक असन्नादीके) चौबह पश्य है (सो) साव (पश्य स्वर्धे जाते) है परसे
करा गया है

एव एकम् ।।

= एतद्वि करा हुआ (= एव) सी (चौबह सम्पूर्णसे धारद सम्बन्धा स्पर्शन तथा)

मारवातिक-अपेक्षाया ।। एतं एतं

= एतद्वि करा हुआ (चौबह सम्पूर्णसे सासत्रव तिर्यक और परमपन्न साव
राजू स्वर्धेन)

एव एकम् ।।

= माण्वातिक सम्पन्नसम्पन्नकी विषयकारि है ऐसे—
= जानने योग्य है (चौबह सम्पूर्ण धारद पश्य उत्साह अपेक्षासे हैं धारद पश्य सा
र्याभितिक अपेक्षासे है परन्तु माण्वातिकमें अनाहारक नहीं है, अनाहारक ही है)

एतन्निवासी कालराजराजकीलडव परखेद और विमलसर्वाहिर सर्वापसिद्धिका वन्दव' हिरी अनुवाद । अथवाय १ एव न ।
 स द्विविधः । सामान्येन विशेषण च ॥ सामान्येन तावद्-मिथ्यादृष्टेर्नांनानां जीवापेक्षया सर्वः कालः । एक-
 जीवापेक्षया त्रयो मन्वाः । अनादिरपर्यावसाना' अनादिसंपर्पवसान . मादिमपर्यावसानश्चेति ॥

नः १। द्विविधः १। सामान्येन १। ता विशेषण १। च
 सामान्येन १। ता तावद् मिथ्यादृष्टे १।
 नानावीचन+अपेक्षया १। सर्व १। वाक्यः १।
 एक-वीचन+अपेक्षया १। त्रयोः १। मन्वाः १।
 अनादिः १। अपरि-अवसान १।

अनादि' १। सपरि+अवसानः १।
 स+आदि १। सर्वात्+अवसान' १। च इति

(१) अनादिरपर्यावसानो मिथ्यात्वकाकः कालश्चेत् । अनादिमिथ्यादृष्टिः कालेन प्रथमाप्यवसानसम्बन्धं यूहीत्यति तस्य प्राकल्पमिथ्यात्व
 एतत् अनादि सवर्षवसाना कश्चिच्छु यूहीतसम्बन्धो मिथ्यात्व प्रत्योति तस्य तस्मिन्प्रथम्य सादिसवर्षवसानम् ।
 अनादिः १। अपरि+अवसानः १। मिथ्यात्व काकः १।

अनादिमिथ्यादृष्टिः १। या १। कालेन १।
 प्रथम + अथवाप्रथमसम्बन्धम् १। ता यूहीत्यति १।
 तस्य १। प्राकल्प-
 मिथ्यात्वकाकः १। अनादिः १। सपरि + अवसान' १।

= इत् [काल] दो प्रकारका है संक्षेपसे और औरसे
 = संक्षेपकरि प्रथम मिथ्यादृष्टिका
 = एतेक वीचोकी अपेक्षासे समस्त काल है
 = एक आत्माकी विवक्षाकार तीन भंग है
 = (अथवाका) अनादि अन्व (= अवसान) रहित [= अपरि]
 = अर्थात् अनादि अन्व (काल) है
 = (सवर्षका) अनादि अन्व (= अवसान) रहित (= सपरि)
 अर्थात् अनादिसान्द्र (काल) है

= श्रुति [सवर्षका] आदिसहित अन्व [= अवसान] रहित [= सपरि]
 आदिसान्द्र [काल] है ऐसे तीन भंग हैं,

१। काल अनादि अवगत है
 = अनादि मिथ्यादृष्टी को (= याः) कोरि (= अन्व)
 = प्रथम अवगत सवर्षवर्षको अर्थक्य करैगा
 = तिस (प्रथम अवगत सम्बन्धवशात्) का पहिलिका (= प्राकल्प)
 = मिथ्यात्वका समय अनादि अवगत सहित (= सान्द्र) है

एतानिषाती भयस्यसत्तापथकीकृतव पदच्छेद और विषयस्वार्थसहित सर्वांशसिद्धिका वन्द्यः द्विती अनुवाद् । अथवाप १ सूत्र ८ ।
 सयोगकेवलिनो लोकस्यासत्स्येयभागः सर्वलोको वा । अयोगकेवलिनो लोकस्यासत्स्येयभागः ॥ स्वार्थान
 न्यास्यतम् । कालः प्रस्तूयते ।

सयोगकेवलिनो ऽ वा लोकास्य ऽ। अर्थस्येयभागः ऽ।

= सयोग केवलियोका [स्वयन्] लोकाका अर्थक्याववा भाग (आहारक
 अर्थस्यार्थे स्वस्यान विहार अर्थसासे परस्यान विहार अर्थसासे द्बद्ध सध
 द्वावा अर्थसासे और कपाट समुद्वावा अर्थसासे) शेषा है

= अथवा [अनाहारक अर्थस्यार्थे अतर समुद्वावात्थे एक भाग न्यून और]
 = (लोक पूर्ण समुद्वावात्थे) समस्तलोक है [देखो पुष्ठ ११५ से १२० तक]

= अयोगकेवलियोका [स्वर्जन] लोकका असत्भाववां भाग है ।

स्वयन् ऽ।। अ्यास्यतम् ऽ।।। काय ऽ। प्रस्तूयते । = स्वर्जन [परकपशाका] वर्णान क्रिया गया । कालका अर्थान क्रिया जाता है

(१) विस्मयपरिमावद्वला केवलिनो समुत्थवा अत्रोती य । सिद्ध्या य अथाहाता सेसा आहातया अथवा ४ गोमूटसार जीवकाह गाथा ११६

विषयवादिमायमाः केवलिनः समुत्थवाताः अयोगिनः च । सिद्ध्या च अनाहातया शेषा आहातका अथवा ४ मायाकी पद सस्कृत अथा है ।
 सिन्धुवादिमायवशा ऽ। (= विषयवादिमायवशाः ऽ।) = विषयवादि (= यथैव अथम धारण करनेके लिये धामन) को प्राप्त हुये जीव

केवलिनो ऽ। समुत्थवा ऽ। (= केवलिनः ऽ। समुत्थवाताः य।) = (अतर, और लोक पूर्य) समुत्थवाव प्राप्त सयानकेवली

अत्रोती ऽ। यथ सिद्ध्या ऽ। यथ (अयोगिनः ऽ। च सिद्ध्याः ऽ। य) = और (उप च) अयोगी जिन और (= य = च) सिद्ध्य महावात

अथाहाता ऽ। सेसा ऽ। (= अनाहातया ऽ। शेषाः य।) = अनाहातक (जीव) है अथशेष या यथे हुये
 आहातया ऽ। जीवा ऽ। (= आहातकाः ऽ। जीवाः ऽ।) = आहातक जीव है (देखो पुष्ठ १२ अथाहात और आहातकके लिये)

(२) प्रस्तूयते-स्तु अवादि द्वितीयगम्यका परस्मैपद और आत्मनेपदी पाठु प्रयोग अर्थमें आता है ४ कर्मादि प्रयोग अर्थानेमें यदि आठुके
 अर्थमें द अथवा च शेषे तो अत्रको शीघ्र करके य प्रत्यय आता देखे है यथात् अर्थानेपद प्रत्यय आता देखे है ४ स्तु आठुमें अर्थाने अथाहात अठुके
 च को शीघ्र करके य कर्मणि प्रत्यय जोड़कर प्रस्तूय बना लिया परन्तुत् ये अन्वयुक्त पठनअन आत्मनेपदी अत्रोती अथवा अथाहात प्रस्तूय अथवा तो
 प्रस्तूयते बन गया ४

इदमिवासी चालस्यसहायककाल परच्छेद और विभक्त्यर्थार्थद्वि सर्वार्थसिद्धिका अर्थः 'हिरी अनुवाद । अथवाय १ एव ८ ।
 स द्विवच । सामान्येन विशेषण च ॥ सामान्येन तावद-मिथ्यादृष्टीनां जीवापेक्षया सर्वः कालः । एक-
 जीवापेक्षया त्रयो भव्त्वा । अनादिरपर्यवसाना' अनादिसंपर्यवसान सादिमपर्यवसानमिति ॥

स ऽ हिचिषः ऽ सामान्येन ऽा विज्ञेयेण ऽ व = व [काल] दो प्रकारका है संश्लेष और भेदसे

सामान्येन ऽा तावत् सिद्ध्याद्युः ऽ = संश्लेषरि मध्यम सिद्ध्यादिका

मानाधीव+प्रपेक्षया ऽा सर्वे ऽा कालः ऽा = अनेक कीशेकी अपेक्षासे समस्त काल है

एक-वीर+ अर्थेक्षया ऽा त्रय ऽा भव्त्वा ऽा = एक आत्माकी विवक्षाकरि तीन भाग है

अनादि' ऽा अपरि-अवसान ऽा = अथवा अनादि अन्त (= अवसान) रहित [= अपरि]

अनादि' ऽा अपरि+अवसानः ऽा = (मध्यका) अनादि अन्त (= अवसान) रहित (= अपरि)

अर्थात् अनादिसात् (काल) है

स+अदिः ऽा सार्+अवसानः ऽा व इति = अदुरि [मध्यका] आदिसहित अन्त [= अवसान] अर्थात् [= अपरि]
 आदिसान्त [काल] है ऐसे तीन भाग हैं,

(१) अनादिरवच्छेदानो मित्यात्मकात्ता समर्थेयु । अनादिमिथ्यादृष्टिः कन्वन्त मध्यापयामसम्पत्त्व पृथीप्यति तस्य प्राकानमित्यात्म
 काल' अनादि' सपर्यवसानः कश्चित्तु पृथिवसम्पत्त्वो मित्यात्म प्राप्नोति तस्य तस्मिन्प्राप्तस्य सादिसप्राप्यवसात्त्व ।

अनादिः ऽा अपरि-अवसानः ऽा मित्यात्मकात्ताः ऽा = अनादि अन्तरहित मित्यात्मकात्ता अनाथ विदे है अर्थात् अनाथ मित्यादृष्टिओ
 का काल अनादि अनन्त है

अनादिमिथ्यादृष्टिः ऽा याः ऽा कालः ऽा = अनादि मित्यादृष्टी ओ (= यः) कोरि (= काल)

प्रथम + अथयामसम्पत्त्वम् ऽाा पृथीप्यति ऽा = प्रथम अथयाम सम्पत्त्व्यांको अथय करेगा

तस्य ऽा प्राकान- = तिस (प्रथम अथयाम सम्पत्त्व्यादयामको) का पहिलेका (= प्राकान)

मित्यात्मकात्ता ऽा अनादिः ऽा अपरि+अवसानः ऽा = मित्यात्मका समय अनादि अन्त सहित (= सम्पत्) है

पठानिपासी बह्व्यस्यपथकीलकठ पदश्चक्र और विभक्तपथसहित सर्वाथसिद्धिका शब्दश्च रिदी षडुच्चार । पद्यपथ १ सूत्र ८ ।

तत्र सादि, सपर्यवसानो जघन्योनान्तर्मुहूर्त्त । उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्त्तो देवोन ॥

वय स+भातरः, १ सपर+पथसान १।

वयन्योन, १ अन्तर्मुहूर्त्तः १।

उत्कर्षेण १। अर्धपुद्गलपरिवर्त्त १। देवोन १।

कश्चित् + तु पुरीतसम्पत्त्व १

नित्यात्सम्, १। प्राजाति १ तस्य १। तद् + नित्यात्सम्, १।

साधि '१ सपरि + भावसानम्, १।

(२) याः कश्चित् पुरीतवेत्कोपयामसम्पत्त्वा नित्यात्स्य प्राप्य संसारे परिस्रमति स नित्यमेवार्धपुद्गलपरिवर्त्तनकालपरिस्रमसो सद्यरे न विद्यति किन्तु मुक्ता भवति तदुक्तम्-पुद्गलपरिवर्त्तार्थं परितो श्यादीहवेत्कोपयामो । ससात् संसारात्परो साधिकारिर्भवेत्पुद्गलः ॥ इति सम्पत्त्व-प्राप्तम् । पुनः सर्वपुद्गलपरिवर्त्तनपरिस्रमत्तः प्रागेव भावति । सयथा तथा मुक्त्वनुपपत्तिस्तथा साधिपर्यवसानमित्याहकालस्यालकठस्य देशोनापुद्गलपरिवर्त्तव्यमुक्तमेव ।

या १। कश्चित् श्यादीहवेत्कोपयामसम्पत्त्वा न

नित्यात्सम्, १। प्राप्य +

संसारे न। परिस्रमति स १। नित्येव १।

सर्वपुद्गलपरिवर्त्तनकालपरिस्रमस्यो १। संसारे १।

न विद्यति किन्तु ० मुक्ता १। भवति न।

तद् + सम्पत् १।

श्यादीहवेत्कोप + उपयामो १।

पुद्गलपरिवर्त्त + कार्य १। प्रापि १। अस्तथा १। संसारे + सम्पत् १।

साधिकारिः १। सवर्षमुक्ता १।

= तथा भाविसहित मन्वसाहित अर्थात् साधिसान्य

= वयन्य [अवेसा] कश्चित् अर्धमुहूर्त्त है

= साधिसय कश्चित् मुक्ता ही न अर्धपुद्गलान परावर्त्तन है

= परतु (= तु) कोर् (जीव) सम्पत्प्राप्त प्राप्तकश्चित्

= नित्यात्स्यको प्राप्त करता है (प्राजाति) = तिस (जीवके) यह नित्यात्स्य

= भाविसहित (तथा) मन्वसाहित अर्थात् साधिसात्त है

= अर्थात् संसारे परिस्रमति स नित्यमेवार्धपुद्गलपरिवर्त्तनकालपरिस्रमसो सद्यरे न विद्यति किन्तु मुक्ता भवति तदुक्तम्-पुद्गलपरिवर्त्तार्थं परितो श्यादीहवेत्कोपयामो । ससात् संसारात्परो साधिकारिर्भवेत्पुद्गलः ॥ इति सम्पत्त्व-प्राप्तम् । पुनः सर्वपुद्गलपरिवर्त्तनपरिस्रमत्तः प्रागेव भावति । सयथा तथा मुक्त्वनुपपत्तिस्तथा साधिपर्यवसानमित्याहकालस्यालकठस्य देशोनापुद्गलपरिवर्त्तव्यमुक्तमेव ।

= सो कोर् जीव साधोपयामि कसम्पत्प्राप्तम् (= वेत्कोपयाम) उपयामसम्पत्प्राप्त प्राप्तकश्चित्

= (पञ्चात्) नित्यात्स्यको प्राप्त शोकर

= अनावर्त्तित परिस्रमस्य करता है वह नित्यात्स्य

= अर्थात्पुद्गलपरिवर्त्तन समस्य परिपूर्ण होनेपर संसारे

= नहीं पडता है परन्तु मुक्त हो जाता है

= सो (ही) नित्य साधिसहित अर्थात्प्राप्तम्) कहा गया है

= साधोपयामि क (जीव) उपयाम सम्पत्प्राप्त प्राप्त करते

= सर्वपुद्गलपरिवर्त्तन काल सर्वत्र संसारेण सपुद्गल संसारे है (जीव)

= साधिकसम्पत्प्राप्तको कश्चित् वात् अयम् (= सवर्ष) (प्राप्य किन्ते जाते) है

= अर्थात् वेत्को और उपयाम सम्पत्काल होनेके पश्चात् नित्यात्स्य प्राप्त होनेपर जीव

उत्कर्ष अर्धपुद्गल परावर्त्तन संसारेमे समस्य कर्त्तव्य होने मोक्ष प्राप्ति करता है और

साधिक सम्पत्प्राप्ती उत्कर्ष वात् सवर्षा प्राप्य करते मोक्ष प्राप्त करता है ।

एतन्निवासी वाग्लसाहृत्वाकाकृत्वात् अच्चेत् प्रौर निपत्यर्थमिति सर्वाधीसिद्धिका चन्द्रश्च हिंदी मनुष्यः । अथवाप १ सुब ८ ।

सासादनसम्पत्तयेनेनाजीवापेक्षया जघन्योनेकः समयः । उत्कर्षेण पर्योपमासम्बन्धेभागाः ॥ एक

सासाद्वयसम्पत्तये १। नानावीर्य+अपेक्षया ॥॥

नव-धेन १। एकः १। समयः १।

उत्कर्षेण १। पर्यन्तव्य+प्रसङ्गोपेक्षया १।

एककीर्णम् १। मतिः १।

- = सासादन [दृशरे गुणस्यान] वाक्केका अनेक कीरकी निवसासे
- = अथन्वकारि एव समय है
- = चन्द्रपृष्ठकति एवमेके अस्तस्यपाठवां भव्य वरावर [= अथम्] है
- = [सासादन सम्पत्तयेदृष्टि] एक कीरकी अपेक्षयासे [= मति]

एति सम्पत्कामप्रसङ्गम् १। ता गुता अर्थपुरवृत्त-
परिवर्तनपरिसमाप्ताः १। प्राक् * एव मवति
वाग्वया

वरा मुक्ति + अन् + अथपरि १। ता वरा *
सम्पत्तयेदृष्टि-अथसावधिप्राक्कावत्स्य १। अन्वयस्य १।

- = इस प्रकार सम्पत्कामप्रसङ्गका प्रवृत्त है फिर आधा पुरवृत्त
- = अथार्थार्थन परिपूर्य दोनेसे पाठिसे ही (अधिक सम्पत्कस्य) हो जाता है
- = दृष्टिसे प्रकार यदि अर्थ पुरवृत्तपर्यार्थार्थके पूरे दोनेसे पाठिसे सम्पत्कस्य न हो
- = ती (= वरा) मोक्षका (प्राप्तिका) प्रस्ता महीं बनता है तिससे
- = भावि संहित अन्व (= अथवसाधन) संहित (= परि) अथपरि सारिसाधन अन्व
निवसत्यका काव

हेयान्+अर्थपुरवृत्त-परिवर्तनस्य १। ता गुक्तम् १। ता एव

वाग्विद्धि का वासंभ्यात्समवसाधया भवति । गोमदुसारे जीवन्मवद सम्पत्कस्यभावाभावां तथा वोक्तम् । आराति अर्थवसाधनया संक्षेपवायविसम्पद

वदत्सता । सङ्गत्सता यथा सत्त्वत्यावा वयो मन्त्रियो २ ५, ७४ । आराति संव्यसमया संक्षेपवावृत्तिसम्पद ' अन्वयसाध' ' सौक'

सप्त स्तोकाः शब्दो मन्त्रितः ।

सप्त स्तोकाः शब्दो मन्त्रितः ।
सप्त+प्रसङ्गान्तसमयकवृत्त्या १। ता वायविका १। ता मवति तथा ७७ - वादुरि (= च) अस्तस्यात् समय अस्तनवादी एकभावादी दोती है दोसा कि

गोमदुसारे जीवन्मवदहे सम्पत्कस्यार्थान्वायां १। ता वक्तम्
= गोमदुसारे जीवन्मवद सम्पत्कस्य भागान्वाये कदा तथा है

आराति १। अर्थवसाधनया १। (= अथवसिद्धि १। अर्थवसाधनसमया १।) = अर्थवसाधन समयवादी (एक) भाववादी है

संक्षेपवायविसम्पद १। (= संक्षेप-वायविक-सम्पदः १।) = संक्षेपवायव्याधीके सम्पद रूप या संक्षेपवायव्याधियोंका समुदाय

वदत्सता १। सङ्गत्सता १। (= सङ्गत्सता १। सतो वदत्सतासो १।) = (एक) वदत्सता दोता है । सात् वदत्सतासवावा

यावो १। सत्त्वत्यावा १। (= स्तोका १। सत्त्वत्यावा १।) = (एक) स्तोका दोता है । सात् है स्तोका तिसनेके दोसा
तथा १। मन्त्रितः १। (कदा १। मन्त्रितः)
= (एक) शब्द दोता है

एयानिवासी माण्ड्यास्वायपफीलछद पदच्छेद श्रीर विमपत्यर्षसदिव सर्वायसिद्धि का कर्मणः विधी मनुवाद् । अथवाप १ सूत्र ८ ।
 जीव प्रति जघन्येनैकः समय । उत्कर्षेण षडार्वालिकाः ॥ सम्पत्स्मिप्यादृष्टेर्नाजीवापेक्षया जघन्येनान्त
 मुहूर्त । उत्कर्षेण पत्योपमासहयेयभाग' ॥ एकजीव प्रति जघन्यः उत्कृष्टधान्तमुहूर्त' ॥ असयतसम्यग्दृष्टे
 नानाजीवापेक्षया सर्व, काल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त' 'तिपिर्ध सहस्सा सत्त य सदाणि तेहचरि
 च तस्सासा ॥ एसो हवह मुहूर्तो सन्वोसि वैव मणुयाण ॥ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि

जघन्यत १ एक १ समय १ उत्कर्षेण १ पद + प्राथमिका १ ॥ = सधन्यकरि एरु समय है उत्कृष्टकरि छद्म भावही है
 सम्पत्स्मिप्यादृष्टेः १ नानास्वीय+अपेक्षया १ जघन्येनमाणा
 = सिधगुणभयानवालेका यनेक जीवोकी अपेक्षासे जघन्यकरि
 अन्तमुहूर्त १ उत्कर्षेण १ पश्य+तपस+प्रसंस्वयेययाथाग' १
 = अन्तमुहूर्त है उत्कृष्टकरि पत्यक प्रसक्यासवर्वा प्रसक्त भ्रातर है
 एरु जीवस १ प्रति १
 = (सिधगुणस्वानवर्तीका) एक एक (= मति) कीरका
 जघन्य १ प च उत्कृष्टः १ अन्तमुहूर्तः १
 = सधन्य तथा उत्कर्ष (काळ) अन्तमुहूर्त है
 प्रसंयवसमयगदह १
 = अंतयव सम्पदर्थन [चौथे गुणस्थान] बालेका
 नानास्वीय-अपेक्षयाणा १ सर्व १
 = अनेक आभायोकी विधवाकारि सपरम
 काल' १ एरुजीव १ प्रति १ अयनेन १ ॥ अन्तमुहूर्त १ ।
 = काळ है अत्येक जीवके अथ' नकरि अंतमुहूर्त है
 [विव सुहूर्तका प्रमाण निम्नलिखित अर्थां छद्मों कते है]

सयंसि १ पथ १ मणुयायं १ (सर्वेषां १ च एव मान्यानां १) = समस्त मनुष्योंके ही
 सि १ ॥ सस्सा १ सव १ प [श्रीवि १ ॥ सस्सावि १ ॥ सव १ प] = तीन सस्स श्रीर (= प) साव
 सस्सापि १ ॥ वेरचरि १ ॥ १ च तस्सासा [१ अशानि १ ॥ १ विपसीधः १ ॥ १ च अज्जवासाः १ ॥] = सो तथा वेरचरि वज्जवाध शेते
 एसा १ १ हृद सुहूर्तौ [= एय सुहूर्तः ययसि] १
 = यर सुहूर्त शेता है
 सत्कर्षेण १ प्रवर्तितवद १ ॥ सागरोमाणि १ ॥
 = उत्कृष्ट करि तेरीय सागरके भ्रातर [= तपस]
 स+अतिरेकाणि १ ॥
 = [छुछ] अधिक सतिव है अर्वात् तेरीय सागरसे अधिक है

(३) नीचि नाम सार्वनाथि नाम सार नामाति नाम

नि + प्राथिवकसत्कारि नाम एवमनासा नाम सुख नाम कथ्यते - विद्वानि एवमनासे द्वे (सी) सुख कसी पार् द्वे । १७१७ ।

(१) वा क्वरिवात्समी सम्मानवृत्तिः सर्वाथिसिद्धात्सुखकालस्य स्थितिर्वा नीतिना सुतो मनुष्यात्सुखकाला यावद्दुःखस्यम् सकलसंभव वा पुरासि तावत्सपिथक अवर्तितससायतोपकारालोपमसत्पणसम्पन्नदेहेच्छकालानोवेदितव्यः । ननु । "वेदान्तस्यपद्युतिर्वाहकसमातोपुद्गुलस्य ।

कासन्निधापवचना सिद्धिः मणुबदेवदेवे" । इति गणेश्वरिणात्मनिश्च द्वैतकसम्पत्स्यस्य कर्त्तव्ये पदपरिसागतोपमपर्येत स्थितिसंवेदयि वासाब येन साह वाक्यार्थं तस्याहसागतानामनावात् । मयो देव उच्यमानसकालस्ययसो प्रतिसम्प्रापिह तस्योत्कथनेनापहस्यम् । इह कल्पसयतसम्पन्न

विकाराः परादिशुभमुपकारानो म नु सम्पत्स्यकालः ।

वा नाम का + चित्तसंशयनी नाम सान्नासुति नाम

सर्वाथिसिद्धो नाम एवमना नाम

तत्र स्थितिविषय नाम

नीतिना सुतो नाम मनुष्यागतो नाम तस्याः नाम

पावत् * देवसयसो नाम वा सकलसंभव नाम पुरासि नाम

पावत् * स नाम प्राथिवक-वर्षासिद्धात्सवायत + एवमनाकाः नाम

अथत् नाम एवमनासम्पन्नदेवो नाम काला नाम

आत्मकालः नाम शेषितव्य नाम । ननु *

व्यवसम्पन्नवृत्तिर्वाहकस्यं कथोपुद्गुलस्यकलसः । कासन्निध्यायक्यमा सिद्धिः नामनुबदेव द्वे ।

वेदकसत्यवस्थितिविवाचनं मत्सुखोः सकलय । पदपरिसागतपणा भिविद्य मानवदेवः मथत् ।

वेदस्यमनाद्युतिर्वा (वेदकसम्पन्नवृत्तियति)

- श्री कोर्त संयम पारत्त कर्त्तव्यता मत्तय पाकत्

- सर्वाथिसिद्धिमामविधे ज्ञान्य पारत्त कर्ता द्वे (सा)

- यदासे अयते कालकी मथार्था मत्

(सो तेनीस सागत द्वे क्योकि सर्वाथिसिद्धिर्दे अथवा आनु पार्ती देवी द्वे)

- नीचिथ पदक मत्ता द्वे मनुष्यागतिं क्वम वेता द्वे (कोर्त)

- अत्र तत्र कालुमत वा मत्तान्त पारत्त कर्ता द्वे

- तत्रतत्र कुद्द प्राथिक तेदीय सागतके बत्तात् समत्त देता द्वे

- पाद (- भयम काला) एवसयत सम्पन्नवृत्तिसावाकोका

- सकल्प समाय आत्मना प्रादित्ये (प्रथम)

- वेदक वा सातोपयामिक सत्यवृत्तिसका ठ्वराय वा टिकाय

- वेदक वा सातोपयामिक सत्यवृत्तिसका ठ्वराय वा टिकाय

- वेदक वा सातोपयामिक सत्यवृत्तिसका ठ्वराय वा टिकाय

- वेदक वा सातोपयामिक सत्यवृत्तिसका ठ्वराय वा टिकाय

- प्राथिवकसे प्राथिवक (- सकलय) कासत

साधर-अथवा १। विहित्वा १। (साधर-अथवा १। विहित्वा, १।)

मनुष्य-देवदेव (= मानवः देव-सन्नेव १)

एति

साध + इदितप्रकारेण १। देवदत्तसम्पत्त्वस्य १।

एतदेव १। इदृषद्विरसाधर + इयमवर्धनस्य १।

विद्यतिस्मान्ने १। एति० अर्धपथतः १। साहज्यात् ०

काम्य १। ता एतस्य १। साधस्यान - एतस्मात् १।

मध्ये १। ईयात्ससाधकत्वस्यमया १।

प्रतिस्वस्मात् १। एव ० एतस्य १।

एतद्व्यतिरेक १। ता एतद्व्यत्यय १। ता एतद्व्य

अथपथसम्पत्त्वद्विकामा १। अस्तु ०

एव ० तु ० सम्पत्त्वत्वात् १।

एतिहेतुम्

अथकार १।

= साधर प्रमाण (= इयमा) इति तथा है

= (देवदत्त सम्पत्त्वकी व्यवस्थानें कीव) मनुष्य या देव हीना है

= देसा (प्रथम हीनेपर) कि अर्धपथ सम्पत्त्वकीके (मित्तका काम) हीनेस साधरसे

हुवा अथिक् इति है) देवदत्त सम्पत्त्व की हीना है तस्य देवदत्तका समस्त अर्क

अथेका इत्यासति साधर है सो अर्धपथ काकाम्य इत्यासति साधर क्यों न करे, एतद

= अर्थात् पूर्वसे कोई हुये प्रकारसे अर्थात्प्रथम सम्पत्त्वत्त्वका

= अकारणकरि इत्यासति साधर तद

= तिकाव हीनेपर भी अर्धपथ अथिक् हीने (इत्यासति साधर)

= समस्त तद्व्यतिरेक (अर्धपथसम्पत्त्वकी) की स्थिति व्यवस्थान प्रथमत्त्व है क्योंकि

= (अर्थात्पूर्व हीने हीनेस साधरके) हीनेस (अर्धपथसम्पत्त्वकीके) अस्तुअथवा

मनुष्यत्वात्

= प्रति एव जाती है । यद्यै (एत प्रकरार्थमें) तिस (अर्धपथ सम्पत्त्वद्विके)

= अस्तुअथे (इत्यासति साधर काकाम्य) प्रथम नहीं है किंतु यद्यै नियमसे (= अस्तु)

= अर्धपथीसम्पत्त्वार्थमिवासाका समस्त कथा जा रहा है

= (= तु) न (कि) सम्पत्त्वार्थमिवासा काव

= एतैका या निरूपण करनेके लिये (एतैकम्, देवदत्त करण है)

= अथपथ इत्या अथा है । एतत्काम्यासाथं यद्यै कि देवदत्त सम्पत्त्वकीके अस्तुअ

थियाति इत्यासति साधर है हीने अर्धपथ सम्पत्त्वद्विके देवदत्त सम्पत्त्व की हीना है

एतद्व्य अथपथ अथस्यानें हीने देवदत्त हीनेस साधरसे हुवा अथिक् ही अस्तुअथि

क् एव अस्तुअथ है एतद्व्य एतै हीने हीनेस या, अस्तुअथ हीनेस ही अस्तुअथि

प्रकरार्थके अनुसार अर्धपथ सम्पत्त्वद्विके का समस्त हुवा अथिक् हीनेस साधर इत्या है

सम्पत्त्वका समस्त नहीं करे न देसा समस्तका जाहिये ॥

एतानिवासी भ्रमरपराशरायक्रीलकूठ पदच्छेद और विभक्त्यर्थवहिन सर्वाधिसिद्धिका अन्वयः द्विती अतुषत् । अथवा १ इत्य ८ । सयतासयतस्य नानार्जिवापेक्षया सर्व, काल, । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुद्द्वयः । उत्कर्षण पूर्वकोटी देशोर्ना । प्रमत्ताप्रमत्तायोर्नानाजीवापेक्षया सर्व, कालः । एकजीव प्रति जघन्येनैक, समय, ॥ उत्कर्षणा न्तमुद्द्वयः । चतुर्णामप्रथमकानां नानार्जिवापेक्षया

संघर्षव्यवस्थया १। नानाजीव भ्रपेक्षया १।। सर्व १। = देशसंघमा (पांचवां गुणस्थानवर्षीनि) का अनेक वीरकी अपेक्षान्से सब कालः, १। एकजीव १। प्रति ० जघन्येन १।। = काल है एक वीरकी अपेक्षान्से जघन्य कारके अन्त्युद्द्वय है [पांचवां गुण अन्त्युद्द्वय १। उत्कर्षण १। पूर्वकोटी १।। देशोर्ना १।। = स्थानवर्षीका) उत्कृष्टकरि कूठ हीन करोह पूर्व है [एकपूर्व जोरासी काल पूर्वोका है और एक पूर्ण जोरासा ठाव वरसका होता है)

प्रथम भ्रमरपराशरो १। नानाजीव-भ्रपेक्षया १।। सर्वः १।। कालः १। = प्रमत्तसमयी (छटा) गुणस्थानवर्षी) अथमत्त समयी [सातवगुणस्थानवर्षी] का अनेक जीवकी विषयाकरि समस्त काल है

एकजीव १। प्रति जघन्येन १।। एकाः १।। समय १। = एक वीरकी भ्रपेक्षा अन्त्युद्द्वय है

उत्कर्षण १। अन्त्युद्द्वयः १। = (प्रथम तथा अथमत्तका समय) उत्कृष्टकरि अन्त्युद्द्वय है ॥

चतुर्णाम् १। = चार अपूर्वकरण अनिष्टादि करण सूत्रसामान्याय उपलब्ध और

उपलब्धकानाम् १। नानाजीव-भ्रपेक्षयाः १।। = समय (गुणस्थान वर्षीनिका अनेक जीवोंकी निवसाकरि

(१) प्रपांठक शैल्यमवर्षीस्य पृथिवीदेशसंघमाः पूर्वकोट्यागुणपूर्वो जीवाः सामान्यदेशसंघमं पालयति सदपेक्षया देशेभ्यःपूर्वकोटी देशसंघमकालः । अर्थ-आपठक १।।। शैल्यम १।।। अतीरस-+ पृथिवीदेशसंघमाः १।। = प्रायः बाल जघन्यकाको प्राप्य करके या पहुँच करके (अति हल्य) = अन्त्युद्द्वय कारण करने वाला (इत्य = प्राप्य, अति = कोषका)

पूर्व + कोटी-आसुः १।।। याः १।। जीवः १।। सामान्यत्वात् १।।। = एक करोड़ पूर्व आगुणका पाठक जो कारणमा अगुण होने तक (आ = तक) देशसंघमम् १।। पालयति १।। चतुर् अपेक्षया १।। = अन्त्युद्द्वयको पालन करता है उत्स (जीव) की निवसासे

देशेभ्यःपूर्वकोटी १।। देशसंघमकालः १।। = कूठ हीन करोड़ पूर्व समयमासंपत्ती का काल (होता) है

एयमिवासी मणुरासावकीउठव परच्छेव नीर विमलपर्वसहित सर्वाङ्गसिद्धिका मन्त्रः द्विती अनुवाद । अथान्न ? इव न
 एकजीवापेक्षया च जघन्योनेक भोग्य उत्कर्षणान्तर्मुहूर्तः ॥

एकजीव-अपेक्षया ॥ अ व जघन्येन ॥ एकः ॥ भोग्य ॥ = तथा (= व) ए क्वीवकी भोग्यासि जघन्यकरि एक समय है
 उत्कर्षेण ॥ जघन्यमुहूर्तः ॥ = उत्कृष्ट करने अंगमुहूर्त है

(१) शब्दों सिध्दाहृत्येकसमयः कस्यान्न समस्यदीस्यनुपपत्तम् । काऽप्यः ? सिध्दाहृतेरेकसमयः आका न घटते इत्यर्थः । कस्यान्न ? इति-
 पन्नसिध्दाहृत्यस्यानुहूर्तसमये मन्त्रासमसाहृत् ॥ अनुहृत्- "सिध्दान्तं इत्यनाद्योसि शस्यपन्नानुपपत्तिरामम् । यावदाकाशिका पाकान्मुहूर्तं सूर्योत्तं
 व ॥ १. सत्यस्मिन्साहृतेः परिनाम्नकाते तद्गुणस्वरूपानामपिकसमया समस्यदीति इतिवशात्संयतस्यपातंसंयतगुणऽप्यानुहूर्तसमये न सिध्दते ।
 अनाऽसंयतस्यपातंसंयतयोत्येकसमयो न भवति ।

एयमं सिध्दाहृत्यः ॥ इति एकसमयः ॥
 कस्यात् ॥ न सं समस्यति इति वदु
 अन् + उपपत्तम् ॥ ना

का ? अर्थः ?
 सिध्दाहृते ॥ एकसमयः ॥ आकाः ॥ न घटते ।
 इति सं ॥ कस्यात्, ॥ न

मिथुपपत्तिरप्यान्नस्य ॥ ना क्त्वमुहूर्तसमये ॥ ना
 मन्त्र-मसमसाहृत् ॥

तद् व कम् ॥ ना वृत्तान्त् ॥ ना
 सिध्दान्त ॥ ना इति ॥ ना कस्यान्नुपपत्तिरामम् ॥
 शास्त्रे वाकाशिका ॥ ना व इति
 यावत् पाक-अनुहूर्तं ॥ क्वीव ॥ ना न सं व

= उत्कृष्ट करने अंगमुहूर्त है

- येसे ही सिध्दाहृतीका एक समय
- किस कारणसे क्वी समसी है येसे मन्त्र (= अनु हृतेपट कहते है कि)
- (सिध्दाहृतीके जघन्य एक समयका काल) तथा क्वी आता है (= अनुपपत्त-
 पत्तकाल गुण ७०)
- (अनुपपत्त अथवा पाया क्वी आता है इस वाक्यका) क्या अभिप्राय है ।
- (इहत्) सिध्दाहृतीका एक समय काल क्वी आता है (= घटते)
- देसा अभिप्राय है किस हेतुसे (एक समय) क्वी (होना दे) ? (क्योंकि सम्य
 कालके पीछे)
- प्राप्त वा अन्व सिध्दाहृत्यवाले वा सिध्दाहृतीका कालमुहूर्तके भीतर
- अनुपपत्ति हो सक्ती है ।
- सी (सिद्धातिवित्त रत्नोक्तं) क्या पाया है । सम्यकत्वसे (सत्यवर्णनके पीछे)
- सिध्दाहृत्यकी प्राप्त होने पर कर्त्तव्यहृती (कोष-मान-माया-—लोभ) का
- अन्व एक असमय वा अन्वका अन्व (अन्विका) क्वी होना है
- (तब एक सिध्दाहृतिका अन्व) पाक वा अन्वके अन्वमुहूर्तमें मन्त्र सी (= व) क्वी

एटाजियासी अपकनसगापपकीलडव पक्खेद और विमपस्सर्मसहित सर्वावसिधिका अयस' तिदी भजुषात् अयाप १ एव न ।

विशेषण (१) गत्यनुवादेन-नरकगतौ नारकेषु सवसु पुयेवीषु मिय्याहट्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व. काल' । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षण ययासंरूप एक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश- द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागारोपमाणि । सासादनसम्प्रादट्टे. सम्प्राविमट्टयाहट्टेअ सामान्योक्तः कालः ।

विशेषण १। (१) पति+प्रजुषादेन १। = मेदकरि (१) गतिके कवनलुसारासे

नारकपथो १। नारकेषु १। = नारकगतिविषे नारकिनमें

समसु १।। पुयेवीषु १।। मिय्याहट्टे' १। नानाजीवापेक्षया १।। = सातो यूमिदं (= नारकमें) मिय्याहट्टिका अनेक बीषकी अपेक्षासे सर्व' १। कालः १। = समस काल है

एकजीव १। प्रति जघन्येन १।। अन्तर्मुहूर्त १। = एक बीषकी अपेक्षासे एकसंमुहूर्त है

उत्कर्षण १। ययासंरूपम् १।।। एक-त्रि-सप्त-दश = उत्कृष्टकरि ययाकम-ए-र-तीन-साव-दश

सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागार-उपमाणि = सप्तर्षासं वेदीस सागरकी १।। सागर (उपमाणि) काळ है

सासादनसम्प्रादट्टे' १। अ क सम्प्रादृतिव्याहट्टेः १। = सासादन सम्प्रादृक्षनवाशेका और मिश्रगुणस्वान्तवर्ती (नारकिन) का सामान्य+उक्तः १। काल १। = संक्षेप (प्रकार) में (पहिले) कहा हुआ (गुणस्वान्तवत्) काळ है अर्थात् सामान गुणस्वान्तवर्ती नारकिणका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट परमके अर्थस्वात्वात् यथा प्रमाण है । एक नारकीकी अपेक्षासे अथाप एक समय है उत्कर्ष अपेक्षासे अः प्रावली है ॥ मिश्रगुण

(१) एवर्थात्मव्याहट्टिशुब्रह्मसाकशापरसंनसात् १

एवमपि म्याहट्टिशुब्रह्मसाकशापरसंनसात् १।

= (अन्तर्मुहूर्त) जीवे मिय्याहट्टि गुणस्वान्तका औरना सम्भव होनेसे अथापकाल एक बीष अपेक्षासे अन्तर्मुहूर्त काल है ।

पटाभिवासी वागन्मसप्रापकीसकृद पदच्छेद और विपत्त्यर्थसहित सर्वाथसिद्धिका सङ्घट्टा हिंसी अनुवाद । अथाप १ सूत्र ८
 असपत्तसम्पददृष्ट्यानाजीवापेक्षया सर्वं काल । एकजीव प्राति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण
 उत्क पत्रोत्कृष्टो देशेन ॥

इवान्वासे नाकिर्योका मासावीर अपेक्षासे अथन्य अन्त्यर्मुहूर्त है उत्कृष्ट
 पत्न्योपपत्ते अतस्तन्मयात्तथा भाग है । एक प्राणीकी अपेक्षासे उत्कृष्ट और
 अथन्यकाल अन्त्यर्मुहूर्त है ॥

संपत्तसम्पदपदे ॥ नानावीर-अपेक्षया ॥ सवैभू ॥
 ॥ एकजीवम् ॥ प्रति अयमेन ॥ अन्त्यर्मुहूर्तः ॥ ॥
 उत्कर्षेण ॥ उत्क ॥ एर उत्कृष्ट ॥ देशेनः ॥

॥ नानावीर-अपेक्षया ॥ सवैभू ॥
 ॥ एकजीवम् ॥ प्रति अयमेन ॥ अन्त्यर्मुहूर्तः ॥ ॥
 उत्कर्षेण ॥ उत्क ॥ एर उत्कृष्ट ॥ देशेनः ॥

(१) प्राणपरिज्वालानि देशान्तरकथनात् एतदेतदेवकृत्वात्कसस्यकस्यशाशुलन्यायुमेवैतस्यमात्रेऽपगम्यते ॥

प्राणपरिज्वालानि ॥ प्राणि देशान्तर-कथनात् ॥
 एतदेतदेवकृत्वात्क-सस्यकस्यशाशुल-
 न्यायुमेवैतस्यमात्रेऽपगम्यते ॥

— एतदेतदेवकृत्वात्कसस्यकस्यशाशुलन्यायुमेवैतस्यमात्रेऽपगम्यते ॥
 — एतदेतदेवकृत्वात्कसस्यकस्यशाशुलन्यायुमेवैतस्यमात्रेऽपगम्यते ॥
 — एतदेतदेवकृत्वात्कसस्यकस्यशाशुलन्यायुमेवैतस्यमात्रेऽपगम्यते ॥

एयनिरासी कणरुपवहावपहीकुरुव पदच्छेद और विपस्वर्गवाहिय सर्वांशसिद्धका अर्थः द्विरी मनुवाद । अथाप १ ध्रुव ८ ।
 तिथंगतो तिरश्चां मिय्याहृष्टीनां नानाजीवपक्षपा सव काल । एकजीव प्राति जवन्येनान्तमुं
 हृतं । उरुर्षुणान्तः कालोऽसस्येया . पुद्गलपरिवर्ता ॥ सासादनसम्पवृष्टिसम्परिमय्याहाष्टिसयतासय
 तानां सामान्योक्त काट ॥

सिर्ष्यतो १। तिरश्चाप १। मिय्याहृष्टोनाम् १।
 नानाजीव-अपेया १। सर्व १। कालः एकजीव १।
 पक्षि-अपन्धेन १। अन्तःहृतं १। उरुर्षुण १।
 अन्तःकाळ १। अस्तस्येया १। पुद्गलपरिवर्ता १।
 सासादनसम्पवृष्टि-सम्पन्निय्याहृष्टि-सयता-
 ययतानां १। सामान्येन १।। काळ १।

= तिथंष षड्विधे तिथंष सिद्धाहृष्टियेका
 = अनेक जीवकी विवसासे समस्त काल है । एक जीव
 = केखिये कथ-पकरि अवर सुहृद है उरुहृष्टरि
 = अन्तः काल है सो (अन्तःकाळ) अस्तस्येयाते पुद्गलपरिवर्तनेन ६
 = सासादन सम्पन्नयानवाले मियगुहृष्टस्थानवर्ती (तथा) सयमा
 = ययमी [सिर्ष्य]निका संसेय [प्रकल्प] करि कथिय [गुणस्थानवर्त]
 काळ है अथात् सासादन सम्पवृष्टि तिथंषोका नाना सिर्ष्योकी अ
 पेयासे अथन्य एक ययय है उरुहृष्ट पत्सोपपके अस्तस्यथावती भाग है ॥
 एक तिथंष जीवकी अपेयासे कथन्य एक सयय है उरुहृष्ट अर्थात्साही है ॥
 मियगुणस्थानवर्ती नाना तिथंषोकी अपेयासे अथन्यकरि अन्तर्मुहृद है
 उरुहृष्टासे पत्सोपपके अस्तस्यथावती भाग है ॥ एक तिथंष मियगुणस्थान
 वर्तीकी अपेयासे अथन्य और उरुहृष्ट काळ अन्तर्मुहृद है ॥ सफासवर्तगुण
 स्थानवर्ती प्राति मासिके तिथंषोकी अपेयासे अथ काळ है एक तिथंष-
 सयमासंपमीके लिये अथन्य काळ अन्तर्मुहृद है और एक संयमासंपमी
 तिथंषके लिये उरुहृष्टकाळ कुछ हीन एक करोड पूर्ण है ॥

(१) अा कुरिअनामिभियाहृष्टिर्षोया अस्तस्येरे रिपताः सिर्ष्यन्ताते प्राविष्टः स तिर्ष्यन्तावुत्कर्मण्यनसककावमसंस्लेयसगुणस्थानपरिवर्तन विवदित
 तात अर्थ अथन्यत् प्राज्याति उरुहृष्टरपेया सिर्ष्यमिय्याहृष्टिकलाः कालः कालः अस्तस्येयां पुद्गलपरिवर्ता इत्युक्तम् ।
 १ अः १। कुरिअत् अनामिभियाहृष्टिः १।
 २ अः १। गति-अवते १। रिपताः १। तिर्ष्यन्ताते १।। प्राविष्टः १। अ जीव अथन्यमिदं रिपत होकर तिथंषयतिसे प्रवेश करता है

एतानिशापी अमर्यादापत्रकोकद्वय पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वापसिद्धिषा सुख्य हिही मनुष्याय । अथवा १ एव न
 एकजीव प्रति जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण पदावलिका । ॥ सम्प्रातोपस्थादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया
 एकजीवापेक्षया च जघन्यश्रोक्तृष्टान्तर्मुहूर्तः ॥ असंघतसम्भवेदृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वे काल । एक
 जीव प्रतिजघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण क्षीणि पत्योपमानि मातिरेकाणि ॥

एकजीवश्च १। प्रतिष्ठ दधानेन १।। पक्षः १। समय १।। (सासादन सम्भवेरष्टिका) एक बीके सिधे बधनकरि एक समय है
 उत्कर्षण १। पद प्राथमिका १। सम्भमित्याद्ये १। = उत्कृष्टकारि छर आबली है । मिथगुणस्थानसर्वाका
 नानाजीव-अपेक्षया १।। एकजीव-अपेक्षया १।। ५ = अनेकजीवकी विषयासे तथा एकजीवकी अपेक्षासे
 जघन्य १।। ५ उत्कर्षः १। ५ शान्तमुहूर्त १। = जघन्य और उत्कर्ष भी शान्तमुहूर्त (काल) है
 संस्यसमभ्याद्ये १। नानाजीव-अपेक्षया १।। सर्व = अंतर्गतसमभ्याद्येका अनेक बीवकी विषयासे सारस
 काल १।। पदबीधसुः । प्रसिद्धे सधन्येत्पु। अन्तर्मुहूर्तः १।। = काल है एक बीवके क्षिपे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (काल) है
 उत्कर्षेण १। शीघ्रि गुणा पदोपमानि ५। अतिरेकाणि १।। = उत्कृष्टकरि तीन पत्योपम कुछ क्षिपे है

(१) का कश्चित्प्रमाणो ब्रह्मसमुच्चयिका पश्चात् प्रकृतिसम्पत्स्य ब्रह्मसमीपमुद्गाद्युत्पादने सर्वेषुषया सातिरेक्याधि विषयव्योपमानि प्राकृत-
 मनुष्यसमसम्भितिका सत्यस्त्वपद्योत्तरकालधर्तिकाद्युगा कश्चित्कानि यथा विप्रदराठाकश्चि मनुष्यगणिकासकर्मोद्गाद्योत्पादनेषु मनुष्यस्त्वपरिस्वला
 स्त्वत् १ ।

- यः १। कश्चिदप्येक मनुष्या १। ब्रह्मसमुच्चय-आयुःका १।
 - पर्याय ० पुरीवसम्यक्त्वः १। उत्कृष्टममत्पूर्वी १।।
 - कलपते १। वदु कपोषया १। स- धतिरेकादि १।।
 - विषयसमभ्यासि १।। या कश्चित्प्रमाणोपमानसम्भितिका १।।
 - सम्भक्त्यपराह-उत्तरकालधर्तिका-अयुगा १।।
 - परिचयानि १।।
-
- वा कोर्षे मनुष्य जन्मायु क्षिपेकरि
 - पीठु सम्भक्त्यर्थेन प्राप्तकरि उत्कृष्ट मातापूर्विसिद्धे
 - अयम वेता है ब्रह्म विषयज्ञाने कुछ क्षिपिक
 - तीक्ष्णपदके शेषापर (= अयम) (काल) है पदिके नर अथसम्भक्त्ये
 - सम्भक्त्यर्थके प्राप्त करकेके पश्चात् समयवर्षी प्रायु
 - क्षिपिक है अथान् प्रीत्यर्थव है और सम्भक्त्यर्थके पश्चात्का काल और विप्रद
 - परिचय काल क्षिपेक है

प्रायःनिवासी ब्राह्मणवर्णपरकीर्णकृत परच्छेद और विभक्त्यर्थवर्षिच सर्वाधसिद्धिका प्रत्ययः द्विती अनुवाद । अथवाय १ पत्र ८ ।
 अथयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वं कालः । एकजीव प्राति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण त्रीणि
 पत्योपमानि ॥ मनुष्यगतो मनुष्येषु मित्याहृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीव प्राति जघन्ये
 नान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण त्रीणि पत्योपमानि पूर्वकोटियुक्तेरभ्यधिकानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजी
 वापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तं ।

प्रसंयसस्यारहेः १। नानाजीव-अपेक्षया ॥। सर्वं १। = प्रसयत सम्प्रसृष्टी सिद्धिर्बोका मनेक बोधकी विवसासे सव
 कालं १। एकजीव १। प्राति जघन्येन १। अन्तर्मुहूर्तः १। = काल है एक जीव विर्षेव ब्रह्मपमीके खिये नघन्यकरि अर्थमुहूर्त है
 परार्थेण १। अत्र त्रि १।। पत्योपमानि १।। मनुष्यगतो १।। = उत्कर्षकरि तीन पत्यके परापर है । मनुष्यगतिमें
 मनुष्येषु १। मित्याहृष्टेः १। नानाजीवपेक्षया १। सर्वं १। = मनुष्यनिर्मे मित्याहृष्टीका अनेक जीवकी विवसासे समस्त
 काल १। एकजीव १। प्राति जघन्येन १। अन्तर्मुहूर्तं १। = काल है एक जीवके खिये जघन्यकरि अर्थमुहूर्त है
 उत्कर्षेण १। त्रीणि १।। पत्योपमानि १।।।
 पूर्वकोटियुक्ते १।।। अन्वधिकानि १।।।
 सासादनसम्यग्दृष्टेः १। नानाजीव-अपेक्षया १।।।
 जघन्येन १। एक, १।। समय १।।।
 परार्थेण १। अन्तर्मुहूर्तः १।।।

स १। विव्यव्यो १।। अर्थेण १।।

अन्तर्मुहूर्तः १। अर्थेण १।।। पुनरात्मपरिकल्पनं १।।
 विव्यव्यो १। अन्तर्मुहूर्तः कति अन्तर्मुहूर्त १।।। प्रायःनिवासी १।।
 अन्तर्मुहूर्तः १। अर्थेण १।।। अर्थेण १।।। अर्थेण १।।।
 अर्थेण १।। अर्थेण १।।। अर्थेण १।।। अर्थेण १।।।
 अर्थेण १।। अर्थेण १।।। अर्थेण १।।। अर्थेण १।।।
 अर्थेण १।। अर्थेण १।।। अर्थेण १।।। अर्थेण १।।।

एतन्निवासीम्यरूपसहायकीलङ्कृत पदच्छेदं चौर नियमस्यर्षसहित सर्वांशसिद्धिं का धरन्मः द्विरी भद्रुवार । अथवा १ सुख ८
 असयतसम्पन्नदृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वं, काल ॥ एकजीव प्रीति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण
 प्रायश्चित्तसागरोपमाणि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन—एकोन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वं, कालः । एक
 जीव प्रीति जघन्येन क्षुद्रभवंप्रहाणम् ।

समय १ । उत्कृष्टकरि पदयोपमके अर्धस्थायार्थं प्राग है । एक बोधकी भोषाते सधन्य एक समय उत्कृष्ट
 छर भावकी है ॥ मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोका नामानाव भोषाते वधप्य भन्त्यर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि पदस्यका
 प्रसंसाधार्थं प्राग है । एक बोधका सधन्य चौर उत्कृष्ट काल भन्त्यर्मुहूर्त है ॥

जयंतपवसन्नवच्छे ॥ मानाजीव+भोषेत्प्राग ॥ प्रा सर्वः+ना = अर्धंभव [बोधेगुणस्थान] वर्ती [वि]का जनेक बोधकी विषयाते समयस्य
 कालः ॥ एकजीवम् ॥ प्रतिक्रमण्येन ॥ भन्त्यर्मुहूर्त ॥ ॥ = काल है एक बोधके लिये सधन्यकरि भन्त्यर्मुहूर्त [काल] है
 उत्कर्षेण ॥ प्रायश्चित्तसागरोपमाणि प्राग
 = उत्कृष्टकरि वेदीस साधरके सुख्य [धर्म] है

[२] इन्द्रिय+अनुवादेन ॥ एक+इन्द्रियाणाम् प्राग नानाबोध — [२] इन्द्रियके कथनानुसारकरि एक इन्द्रियनेक जनेक बोधकी
 भोषेत्प्राग प्राग सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवम्प्राग प्रतिक्रमण्येनः ॥ = भोषाते समयस्य काल है एकबोधके लिये सधन्यकरि
 सुखमभवत्प्रहाणम् प्राग
 = सुखमभरका (काल) लिये प्राग है

२. एतन्निवासीति च—उत्कृष्टपदमुहूर्तमप्ये तावदेकेन्द्रिये मूला कश्चिज्जीवः पदपठिसहस्रवाग्निश्रायश्चित्तकृष्टापरिमाणाधि ज्ञानमरत्नानुमुह
 भवति ॥११२॥ तथा स एव जीवः तस्यैव मुहूर्तस्य मध्ये द्विन्द्रियगुणान्धेन्द्रिये मूला यथासंज्ञामयीतिपरिहरत्वात्तज्जाद्यतिज्ञानमरत्नान्त्व
 नुभवति । सर्वेऽप्येते समुदितौ मुद्रमथा एतावत्स एव भवन्ति १११११ ॥ गोमहसार जीवकावह पर्यायशिकार गायत्रो १२१-१२४ तक च—
 किञ्चिदसया प्रजोसा क्वादिहसहस्रसगाधि मरणाधि । अंतोमुहुरकाको वागधिया चैव मुद्रमवा ॥ १२२ ॥
 संसृष्ट प्रया बोधि शतादि पदुभिश्यात् परपठिसहस्रकाधि मरत्याग्नि सत्यर्मुहूर्तकाले तावत्सम्येव मुद्रमवाभ
 सीदी सद्दी साव विपदा चरवीस दोगि वंचकसे । क्वाष्टि च सहससा सर्व च पवीसीमेपयन्ने ॥ १२४ ॥

संस्कृत क्षया-भ्याग्निः परिः अत्यारिप्याधिकते चतुर्दिवसिवादि वंचासे । पदपठिद्वय सहस्रकाधि शतं च द्वाग्निश्रायकासे ॥
 परा क्षेत्र मुहूर्तस्य मध्ये एतावन्ति ज्ञानमरत्नानि मयन्ति तर्ककिरतुल्यत्वासे क्षयापद्य कथामरत्नानि सम्पन्ने ॥ तत्रैकस्य मुद्रमवासना ॥
 मुद्रं प्राग किरत्यम् प्राग पठिवेत् ॥
 — (११२ मुद्रमव) कैसा है वेसा (= पठि) सदे (= वेत्) (कटनेपर करते हैं)

एयानिवासी धमलपसायापकीलकव फच्छेद और विषमरूपसंश्लिषि सधार्थसिद्धिका अन्वयः द्विती अनुवाद । अध्याय १ इत्येव
 शेषाणा भामान्योक्त काल ॥ देवगतौ देवेषु पिप्याहृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व, काल । एकजीव
 प्रति जयन्त्येनान्तमुहूर्त । तत्कषणिकत्रिंशत्सगरोपमाणि ॥ सासादनसम्पन्नहृष्टे सम्भारिमय्याहृष्टेभ्र
 सामान्योक्त काल ॥

शेषाणाम् १।

साधन्य-उक्त १। काल १।

= (मनुस्मृतिसिद्धे मनुःपुत्रस्ये) अनाथः [पाषासे यौहवां गुणस्थानवकनिका]
 = संक्षेपसे [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] काल है अर्थात्

संभारसंश्लिषिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है । एक जीवका अथवा अन्तर्मुहूर्त है तत्कष्ट कुछ न्यून एक
 काल पूर्व है । अथवा अथवा गुणस्थानस्ये नानाजीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है । एक जीवका अथवा एक
 समय है तत्कष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ वार (अपूर्वकराय, अनुहृष्टिकारय, संस्थापाराय, उपस्थांत कथाय) उपर्यम
 शेषाणोका नामाजीव अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे अथवा एक समय काल है तत्कष्ट अन्तर्मुहूर्त
 काल है ॥ वार [आठवा-नववा-दशवा-शतवा] अथवाकेषी अथवाकेषीका और अथवाकेषीनिका
 नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे अथवा और तत्कष्ट अन्तर्मुहूर्त है । अथवाकेषीनिका नाना
 जीवकी अपेक्षासे सब काल है एक जीवके लिये अथवा अन्तर्मुहूर्त, तत्कष्टकरि कुछ घाट एक करोड पूर्व है ॥
 = सुरागतिर्दिशे सुरतसं मिथ्या, वृष्टिका

देवगतौ १ देवेषु १। पिप्याहृष्टे १।

= नानाजीवकी विमथासे समस्त काल है

नानाजीव-अपेक्षया १। सर्वैः १। कालः १।
 एवकीयम् १। प्रति जयन्त्येन १। अन्तर्मुहूर्तः १। तत्कषणम् १। = एक जीवके लिये अथवा अन्तर्मुहूर्त है । तत्कष्टकरि
 एकत्रिंशत्सगरोपमाणि १। सासादनसम्पन्नहृष्टेः १। = इकीस सगरोपमाणि है सासादन सम्पन्नदर्शनशाले देवका

सम्पन्नहृष्टेः १। य साधन्य-उक्तः १। कालः १। = तथा सिधुगुणस्थानवर्ती [देवका] संक्षेपसे कथित (गुणस्थानवत्) काल
 है अर्थात् सासादनसम्पन्नहृष्टो देवका नाना जीवकी अपेक्षासे अथवा एक

एता ० विमथातो १। पा यथि ०

= कथोक्त (= एताः) विमथाति (वा अथागातेर यातय अन्तरेके लिये यमनस्ये) श्री
 मनुस्मृतिसामान्य-अथवा अन्तरेके १।

मनुस्मृत-अथविक्रमकालः १।

= मनुस्मृतिका (जीविका) अथवाकेके अथवा अन्तरेके
 = मनुस्मृतिका (जीविका) अथवा अन्तरेके

पयानिवासीभारुपसहायकीकठोर परच्छेद और निमग्नत्ववर्धित सर्वायसिद्धि का उदरस्यः हिरी अनुवार । भाष्याय १ सुत्र ८
 असयतसुभयवदष्टुर्नानाजीवापेक्षया सर्वं काल ॥ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उरकर्वेण
 त्रयास्त्रिशतसारापेमाणि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वं कालः । एक
 जीव प्रति जघन्येन सुदुर्भेदप्रदणम् ।

उपाय है । उक्तकारि परवोपमके अंतस्थानवर्धनां भाग है । एक बोधकी भेष्यासे जघन्य एक समय उक्त
 छह आवली है ॥ मिथगुणस्थानवर्धी देवोंका नानामात्र भेष्यासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उक्तकारि फलका
 प्रसक्तभावनां भाग है । एक बोधका जघन्य और उक्त काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

जघन्यसम्बन्धे ॥ नानाजीव+भेष्यभागा ॥ सर्वः ॥ = अंत्यत [बीधगुणस्थान] वर्धी [देव]का अनेक बोधकी विषयासे समय
 काठः ॥ एतन्वीच्यम् ॥ प्रतिक्रमवन्धेन ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥ = काठ है एक बोधके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त [काठ] है
 उरकर्वेण ॥ त्रयास्त्रिशतसारापेमाणि ॥ भागा
 = उक्तकारि देवीस सागत्के सुत्य [उपाय] है

[२] इन्द्रिय+अनुवादेन ॥ एक+इन्द्रियाणाम् ॥ नानाबोध — [२] इन्द्रियके कथनानुसारकरि एक इन्द्रियनके अनेक बोधकी
 भेष्यभागा ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एक बोधम् ॥ प्रतिक्रमवन्धेन ॥ = भेष्यासे समय काठ है एकजीवके लिये जघन्यकरि
 सुसमभवब्रह्मण्य ॥ भाग
 = सुसमायका (जघन्य) लिये भाग है

२. अन्तर्मुहूर्तमिति च—उक्तकार्यमुद्रासमये तावदेकेन्द्रियो मूत्रा कश्चिद्वीचः पर्याप्तिसहस्रवर्षिभ्यः शिकरावपरिमाणान्ति अणमनरत्नान्मुद्र
 मयति ६११२२ । तथा स एव बीचः तस्यैव मुद्रतस्य मातृ द्विनिलसुप्तकवेन्द्रियो मूत्रा यथासंख्यामयीतिपदितवत्यादिवाद्यदिअणमनरत्नान्
 अनुभवति । सर्वेऽप्येते स्सुसुप्तिराः सुद्रमसाः पदावन्त एव मयन्ति १११११ । गोमूत्रसारे बीचकायह वर्षास्वीचिकार भाषायो १२१-१२४ उक्तं च—
 निश्चिन्तया ज्वलीना जघान्दिसहस्रसंगानि मरणाणि । अंतोमुद्रकाको वागपिया वेव सुद्रमसा ॥ १२३ ॥

संरुद्ध ज्ञया बीचि योतानि पर्यन्तियाय पर्याप्तिसहस्रकाणि मरत्यानि अन्तर्मुहूर्तको वाच्यन्तर्देव सुद्रमसाभि
 सदी सद्दी ताव विपद्य चतवीच बोध एवस्ये । जघान्ति च सहससा सत्य च वधीसमेपकमे ॥ १२४ ॥

सत्कर ज्ञया-मयतीति । पर्या अत्याधिकको चतुर्दिगतिमयित पंभासे । पर्याप्तिय च सहससाये ० तर्किकस्य सुद्रमसवसंज्ञा ०
 पया दीप मुद्रतस्य मध्ये पदावन्ति अणमनरत्नानि मयन्ति तर्किकस्यनुकूलसे जघान्ति अणमनरत्नानि जघन्यासे ० तर्किकस्य सुद्रमसवसंज्ञा ०
 तद् भाग औराम् भाग इति ० वेद ०
 — (यव सुद्रमस्य) केसा है पना (= रीति) सर्वे (= वेद) (उरनेपर करी है)

एतानिवासी सपरस्वरापवकीलकव परच्छेद और विमलस्वर्गसदिव सर्वावसिदिका खल्लव दिवो प्रजुवह् बध्याय १ स्व ८ ।
उत्कर्षणानन्त' कालोऽसुरयो पुद्गलंपारिवर्ता ॥ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः
काल । एकजीव प्राति जघन्येन सुद्रभवमदणप् । उत्कर्षण सुरोपयानि वर्षसहस्राणि ॥ पञ्चेन्द्रियेषु मि
थ्याहृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल । एकजीव प्राति जघन्येनान्तमुद्गुर्न ।

वत्कर्षणं नृां जघन्यः नृां कालः । असुरस्येया नृां = उत्कृष्टवति (एकोन्द्रिय जीवका) अनवकाठ है (घो) जसुराव
पुद्गलपरावर्ताः नृां विकल-मिन्द्रियाणां नृां नानाजीव- = पुद्गल परावर्तन है विरल (दि-न्द्रिय-वत्) इन्द्रिय जीवनाका जनेक जीवकी
अपेक्षया नृां सर्वं नृां कालः नृां एकजीव नृां मति क = विश्वासे समर काल है एक जीवकेकिये
जघन्येन नृां सुद्रभवमदणप् नृां = जघन्यवति स्वरुप भव [का काल] किया गया है ।

उत्कर्षणं नृां संस्थेयानि नृां वर्षसांसाणि नृां = उत्कृष्टकरि सक्रमात् इमार परस है ॥
पञ्चेन्द्रियेषु नृां मिथ्याहृष्ट' नृां नानाजीव अपेक्षया नृां = शीघ्र इन्द्रियाण्डे जीवनेमें पिथ्याहृष्टीका जनेक जीवकी विषयासे
सर्वं नृां कालः नृां एकजीवस्य नृां मतिके जघन्येन नृां = सब काल है । एक जीवके लिये जघन्यवति
जघन्युद्गुर्नः नृां = भवमुद्गुर्न है

यथे वावहि नृां सवस्ता नृां सर्वं नृां (यथेन्युपयुक्तिः नृां सवस्तासि नृां शत नृां) = और उपासत सवस्त परकवो ज्योतः = व)
यथे वधीसांसाण्यपेक्षे नृां — = वधीसांसाण्यपेक्षे नृां एकादे नृां) = वधीसा (स्वरुपमय)रुद्रदियवादे (जगत्पर्याप्तको) में दोते है
यथे यथां यथां सुद्रवंस्य नृां मथे नृां एतामसि नृां = बुद्धि जय ही सुद्रवंतके बोधमें ही एतेन जयस्य भक्त्युद्गुर्नमें ही
जघन्यमदणप्ति नृां मयन्ति वरा परकिमन्त नृां वच्छुवासे नृां = सप्त मरुत दोते है सब एकही वच्छुवासेमें
जघन्यस्य नृां सा मरुतानि नृां जगन्मथे नृां = जगत्परु जग मरुता प्राप्त किये जाते है (गणित करनेसे १३११११ जगत् मरुत

नृां परस्य नृां सुद्रभवसवा नृां = जयस्येन परु सुद्रवंत १३८५१ स्तासोका है
(१) इत्यस्येन भवन्तकावाऽसंख्यातपुद्गलपरिवर्तसवस्यो निरन्तरमेकेन्द्रियान्तेन स्यात् पुनर्भवाद्यतो विकलेन्द्रिया पञ्चेन्द्रियो वा भवति ।
वत्कर्षणं नृां जघन्यकालः नृां वधीसांसाण्यपेक्षे — = उत्कृष्टकरि जगत्स काल ओ मधेज्जात पुद्गल

एतानिवासी नगरप्रवासापक्षीनकृत् पदच्छेद और निम्नत्पराधरि नराधीसिद्धिका करदः द्विरी अतुवाद । अथाप १ सूत्र ८ ।
 उत्कर्षेण सागरोपमसद्वसु पूर्वकोटीपुण्यत्वेन भयधिकम् ॥ शेषाणा सामान्योक्तः कालः ॥

उत्कर्षेण सागरोपम-सद्वसु ॥ १ ॥
 पूर्वकोटीपुण्यत्वे ॥ १ ॥ अन्वधिकम् ॥ १ ॥
 शेषाणां ॥ १ ॥
 सामान्य-उक्त ॥ १ ॥ काठ' ॥ १ ॥

== उत्कृष्टकरि द्वार सागर प्रमाण और
 == पुण्यत्त्व [तीनसे ऊपर नरसे नीचे] करोर पूर्व अधिक है
 == अर्थाष्ट (सासादनगुणस्थानसे लेकर अयोगकेवहीवक्त) नका
 == संक्षेपसे कहाहुआ [गुणस्थानवत्) काळ है अर्थात् सासादन सम्पन्नहीका
 नाना वीरकी अपेक्षासे अथनर एक समय है । उत्कृष्ट पत्यका अर्थस्मात्तना पाय प्रमाण है । एक
 वीरकी अपेक्षासे अथन्य एक समय है उत्कृष्ट छाःप्रावती काळ है ॥ सिधगुणस्थानधीनिका
 नानावीर अपेक्षासे अथन्य अन्त्युर्ध्व है उत्कृष्ट पत्यके अर्थस्मात्तना पाय है । एक वीरका अथन्य
 और उाकृष्टकाळ अन्त्युर्ध्व है ॥ असंपन्न सम्पन्नहीनिका नानावीर अपेक्षासे सर्वकाळ है एक
 वीरका अथन्यकाळ अन्त्युर्ध्व है ॥ उत्कृष्टकाळ वैवीर साधारसे कुछ अधिक है । संपन्नासंपन्नी
 निका नानावीर अपेक्षासे सर्वकाळ है एक वीरका अथन्यकाळ अन्त्युर्ध्व है । उत्कृष्टकाळ कुछ
 न्यून एक करोर पूर्व है ॥ सम्पन्नअसंपन्निका और अप्रपन्नअसंपन्निका नाना वीर अपेक्षासे सर्व
 काळ है । एक वीरका काळ अथन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्त्युर्ध्व है । आठवां गुणस्थानसम्पन्न
 व वक्तके उपस्थप श्रेणीवाओंका नानावीर अपेक्षासे और एक वीर अपेक्षासे अथन्य एक समय
 है उत्कृष्ट अन्त्युर्ध्व है न चार समय अथवा चन्द्रवाओंका और अयोगकेवहीनिका नानावीर अपे
 क्षासे और एक वीर अपेक्षासे अथन्य और उत्कृष्ट अन्त्युर्ध्व है । सयोगकेवहीनिका नानावीर
 अपेक्षासे सर्वकाळ है एक वीरका अथन्य अन्त्युर्ध्व है । उत्कृष्ट कुछ घाटि करोर पूर्व है ॥

परावर्तकसद्वसुः ॥ १ ॥ निरुक्तं ॥ १ ॥ एकैस्मिन्पत्तनेन ॥ १ ॥
 शृङ्गा + अतः ० पुनरु ० मयात् ० ॥
 विकल्पेन्द्रिया ॥ १ ॥ पश्चिन्द्रिया ॥ १ ॥ वा मयति ०
 -परावर्तक काळकाळा है अथनर वा अगात्तार एकैस्मिन्पत्तनेन (परब्रह्मत्)
 -मत्तकरि वही (एकैस्मिन्पत्तने) से सिद्ध (-उत्पन्न) अथन्य लेकरि
 -विकल्प (विवि-अणु) एस्मिन्पत्तने मयात्तने पश्चिन्द्रिय वस्तु है

एयानिरासी एगारुससायपडीसकृव पदक्येव मोर निवसयसंसतिव सर्वांसंसिदि का अस्वः। सिदी अगुशर अथाप १ सव ८।

(३) कायानुवादेन-पृथिव्यसेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्वं कालं । एकजीव प्रीति जघन्येन सुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षणासस्येय काल ॥ वनस्पतिकायिकानामेकन्द्रियवत् ॥ त्रसकायिकेषु पितृयादृष्टेर्नानांजीवापेक्षया सर्वं काल । एकजीव प्रीति जघन्येनानन्तर्मुहूर्त्तं । उत्कर्षणे द्वे सागरोपमसद्वर्त्तं पूर्वकोटीपृथक्त्वेरभ्यधिके । शेषाणां एकैवन्द्रियवत् ॥

= प्रायके कपानुवाहारकरि भूमि, अल, अश्व पवन

काप भद्र ॥दंत १। पृथिवी अद्र-नेम वायु

= कायिके कपानुवाहारकरि भूमि, अल, अश्व पवन

कायिकानाम् १। नानाजीव अपेक्षया १॥ सर्वे १। कालः १। = कायिकनका अनेक जीवकी विषयासे सपस्य काल है ।

एकजीवस्य १। प्रीति * जघन्येन १। सुद्रभवग्रहणस्य १॥ा = एक जीवके लिये जघन्यकरि सुद्रस्य भवका [काल] विषय गया है

वत्कर्षण १। अर्त्तस्येय १। काल १। = उत्कृष्टकरि अर्त्तस्याव [लोक परिमाण] काल है

वनस्पतिकायिकानाम् १। एकैन्द्रियवत्* = वनस्पति कायिकनिका (फाल) एकैन्द्रियके सदृश है अर्थात् एक जीव की प्राप्यासे जघन्यकरि सुद्र भर्त्ते जिवन्ता काल अये वतना (= प्राय के अत्राहवां माग) उत्कृष्टकरि अत्रव काल है वा अर्त्तस्याव सुद्रवत्-

प्रायानिके तुस्य है ॥

प्रसकायिकेषु १। सिव्यादृष्टेः १। नानासीव अपेक्षया १। = प्रसकायिकनिर्देशे सिव्यादृष्टोका अनेक जीवकी विषयासे

सर्वं १। काल १। एकजीवस्य १। प्रीति जघन्येन १। = सव काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि

प्रवर्त्तुर्द्वे १। उत्कर्षण १। द्वे १॥ा सागरोपमसत्से १॥ा = प्रवर्त्तुर्द्वे है । उत्कृष्टकरि दो हजार सागरके बराबर [और]

पूर्वकोटीपृथक्त्वे १॥ा अग्नि अधिके १॥ा = पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नरसे नीचे] अश्व पूर्वकरि अधिक है

शेषाणाम् १। एकैन्द्रियवत्* = अये सुये [शुद्धाथानोंके प्रसकायिकोंवा] पूर्वैन्द्रियके सदृश (काल) है

प्रवर्त्तुर्द्वे सागरोपमसत्से १॥ा नाना जीव अपेक्षयासे जघन्य एक इत्यादि

शेषाणाम् १। एकैन्द्रियवत्*

से कुछ धाटि करत पूर्व है ॥ यहाँ वद पाठ १९२ का छेद देली ॥

एतानिवासी मगकपसतापकालकठ पदच्छेद और विपत्त्यर्थसाहिग सर्वाथसिद्धिका चन्द्रशः द्विती अनुवाद । अथवाय १ सूत्र ८ ।
 उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रपूर्वकोटीपृथक्त्वेनभ्यधिकम् ॥ शेषाणां सामान्योक्तं कालं ॥

उत्कर्षेण १ सागरोपम—सहस्रम् १॥

पूर्वकोटीपृथक्त्वेन १॥ अन्वयसिद्धम् १॥

शेषाणाम् १॥

सामान्य-उक्तं १ कालं १ ।

= उत्कृष्टकरि इवार सागर प्रमाण और

= पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नवसे नीचे] करोड़ पूर्व अधिक है

= अर्थात् (सासादनगुणस्थानसे लेकर अयोगकबलीवक)नका

= संक्षेपसे कहाजुआ [गुणस्थानपद) काल है अर्थात् सासादन सम्पत्पट्टिका

नाना बीजकी अपेक्षासे अल्प एक समय है । उत्कृष्ट पत्थका अर्त्थख्यातवा पाय प्रमाण है । एक बीजकी अपेक्षासे अल्प एक समय है उत्कृष्ट उ भावनी काल है ॥ सिधगुणस्थानवर्तीनि का नानानीव अपेक्षासे अल्प अल्पपूर्व है उत्कृष्ट पत्थके अर्त्थख्यातवर्ष माण है । एक बीजका अल्प और उत्कृष्टकाल अल्पपूर्व है ॥ अर्त्थगत सत्यानृदीनिका नानाबीज अपेक्षासे सर्वकाल है एक बीजका अल्पकाल अल्पपूर्व है ॥ उत्कृष्टकाल सेवीस सागरोसे कुछ अधिक है । संयमासंयमी निहा नानाबीज अपेक्षासे सर्वकाल है एक बीजका अल्पकाल अल्पपूर्व है । उत्कृष्टकाल कुछ न्यून एक करोड़ पूर्व है ॥ प्रपचभयमिनिहा और अप्रपचसममीनिहा नाना बीज अपेक्षासे सर्व काल है । एक बीजका काल अल्प एक समय है उत्कृष्ट अल्प-पूर्व है । भाठर्था गुणस्थानसे ग्यारह वें चक्रक उपशय भेजोवर्षोका नानाबीज अपेक्षासे और एक बीज अपेक्षासे अल्प एक समय है उत्कृष्ट अल्पपूर्व है ॥ पाठ सप्त भेजो अर्त्थवर्षोका और अयोगकबलीनका नानाबीज अपे-
 खासे और एक बीज अपेक्षासे अल्प और उत्कृष्ट अल्पपूर्व है । संयोगकबलीनिका नानाबीज अपेक्षासे सर्वकाल है एक बीजका अल्प अल्पपूर्व है । उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड़ पूर्व है ॥

एतावत्सकलपथाः १ विरचत १॥ परंक्रिययात्वेन १॥

सूत्रा + उक्तः ० पुनरु० महाव ईर

विषयसिद्धया १ परंक्रिययाः १ वा नवति १

= एतावत्सकलपथावत्ता है अर्थात् वा सागादात् परंक्रियय इत्येकरि (एतच्चाय)

= परात्करि वार्ता (परंक्रियय) से फिर (= पुनरु) अल्प से अल्प

= विषय (सिद्धि-वापु) सिद्धय अथवा अर्थसिद्धय इत्यादि है

एतानिगती वयस्यसमाप्त्यधीनकथं पदच्छेदं चौर विमलसर्ववहिरि सर्वावसिद्धिका वयस्य' द्वितीं वदुषात् वयसाय १ वय ८ ।

(४) योगानुवादेन-चाक्ष्मानसयोगिषु मिथ्यादृष्ट्यसयतसम्पन्नदृष्टिसयतासयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोग केवलिनानानाजीवापेक्षया सर्व' काल. । एकजीवापेक्षया जघन्येनेक. समय' । उत्कर्षणान्तसुहृत्' ॥ सासादनसम्पन्नदृष्टे सासान्योक्तः काल ॥ सम्पन्नमिथ्यादृष्टेनानाजीवापेक्षया जघन्येनेकः समय' । उत्कर्षणं पल्पानपमासस्येयभाग । एकजीव प्रति जघन्येनेक समय । उत्कर्षणान्तसुहृत्' ॥ चतुर्णांमुपशाम काना क्षपकाणां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च ।

(४) योग-वदुषादेन ग

वदुषात्तसयोगिषु १। मिथ्यादृष्टि-असंभवसम्पन्नदृष्टि संपत्तासंपत्त-अप्रमत्त-

सयोगिषु-वहिरि १। नानामीव अपेक्षया ग। सर्वः ग। काळ १। एकसाव अपेक्षया १। जघन्येन १। एकः ग। समयः १। उत्कर्षण १। अन्तसुहृत् १। सासादन-सम्पन्नदृष्टे १। सासादन-वहः-काळ' १।

सम्पन्नमिथ्यादृष्टे नानामीव अपेक्षया १। अन्तस्येन १। एक' ग। समय १। उत्कर्षण १। प्रयोगप्रमत्तस्येय ग। १। एकसर्ववत् १। प्रसिद्धे जघन्येन १। एकः १। समय १। उत्कर्षण १। अन्तसुहृत् १। चतुर्णां १। उत्पत्तप्रकानात् १। उत्पत्तप्रकानात् १। व नानाकार अपेक्षया १। एकजीव-अपेक्षया १। व १।

योगकी विवक्षाकार

२ वयस मन योगानिर्दिष्टे मिथ्यादृष्टी वसंपत्त सम्पन्नसर्ववहिरिनिहा
२ संपत्तासंपत्ती प्रमत्त [छटे शुभस्थानवर्ती] प्रमत्त [शुभस्थानवर्ती]
२ (तथा) योगवहिरि केवलिनका जनेक वीवकी विवक्षासे समय
२ काळ १। एक वीवकी अपेक्षयासे जघन्यकारि एक
२ समय १। उत्कर्षण अन्तसुहृत् १। सासादन सम्पन्नदृष्टि (दूसरे शुभस्थानवर्ती)
२ का संश्लेषसे कशादुष्का (शुभस्थानवत्)
२ काळ १। अर्थात् सासादन सम्पन्नदृष्टीका नामावोधासे अपेक्षासे जघन्य
एक समय १। उत्कर्षण प्रत्योपमके अंतसुहृत्वावर्तां माग १। एक वीवकी
अपेक्षासे जघन्य एक समय १। उत्कर्षण का आरती १।

२ मिथ्य शुभस्थानवासिका जनेक वीवकी विवक्षासे जघन्यकारि
२ एक समय १। उत्कर्षणकरि प्रत्योपमके अंतसुहृत्वावर्तां
२ अर्थ १। एक वीवके किये (मिथ्यशुभस्थानवर्तीका) जघन्यकारि एक
२ समय १। उत्कर्षणकरि अन्तसुहृत् १। चार
२ उत्पत्त प्रयोगी (आठवां नववां द्वादश) आठवां शुभस्थान) वाकेनिहा
२ तथा उत्पत्त भेदी (आठवां नववां द्वादश) चौर आठवां शुभस्थान) वाकेनिहा
२ जनेक वीवकी विवक्षासे चौर [२ व] एक वीवकी अपेक्षासे

एतन्निशासी क्वाभ्यन्तरेणकीवकृतं पदच्छेदं चौर निम्नत्यर्थमस्तिव सर्वार्थसिद्धिका अर्थव्य' हिदी अनुवाच । अथाय १ सूत्र ८ ।

जघन्येनेक' समय । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥ काययोगिणु भिष्यादष्ट्येर्नाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एक जीव प्रति जघन्येनेक समयः । उत्कर्षेणानन्त. कालोऽसुरूपेया' पुद्गलपरिवर्ता ॥ शेषाणां मानसयोगी वत् ॥ अयोगानां सामान्यवत् ॥ (५) वेदानुवादेन—स्त्रीवेद्ये भिष्यादष्ट्येर्नाजीवापेक्षया सर्व' काल. । एकजीव प्रतिजघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पत्यापेयपृथक्त्वम् ॥

अवन्त्येन १। एका १। समयः १। उत्कर्षेण १। अन्तर्मुहूर्तं १। अथ-यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि अन्त्युहूर्त है ।

काययोगिणु १। भिष्यादष्टे' य' = काययोगीनिर्मै भिष्यादष्टीका

नानास्त्रीयन्-अपेक्षया ॥ सर्व १। काल १। = अनेक जीवकी विषयासे समय काल है ।

एकजीवत् १। प्रतिअवन्त्येन १। एका १। समय १। = एक जीवके लिये जब-यकरि एक समय है ।

उत्कर्षेण १। अन्त्यः १। काल १। अर्थस्येया १। = उत्कृष्टकरि अन्त काल है (सो) अंतस्थाय

शुद्धपरिवर्त १। शेषाणाम् १। = शुद्धपरिवर्त है । अथशेष (सुरसेसे वेदव्यां गुणस्थानकाले)निका काल

मानसम्योगिभ्यः = मन योगीनके [कालके] समय है [इच्छो पृष्ठ २००]

अयोगानाम् १। सामान्यवत् १। = अयोगकेसमीनिका संश्लेष [मकारस्ये कश्चिद शुभस्थान]वत् (काल)

है अर्थात् अयोग केवलनिका नानाजीव अपेक्षासे चौर एक जीव अपेक्षासे अल्प्य और उत्कृष्ट अन्त्युहूर्त काल है

(पृष्ठ १८७ देखो)

(५) वेद+प्रनुवादेन १ स्त्रीवेद्ये १। भिष्यादष्टे १।

नानास्त्रीयन्-अपेक्षया १।। सर्व १। कालः १।

एकजीवत् १।। प्रति १। अन्त्येन १।। अन्तर्मुहूर्तः १।।

उत्कर्षेण १।। अन्त्यः+उपपपृथक्त्वम् १।।।

= वेदके कयनाहुसारकरि स्त्री वेदके भिष्यादष्टी (स्त्री) का

= अनेक जीवकी विषयासे समय काल है

= एक जीवके लिये जब-यकरि अन्त्युहूर्त है ।

= उत्कृष्टकरि शुभस्थान (= तीनसे ऊपर नबसे नीचे) अन्त्येन कयनाहु है

हृदयनिवासी भगवाणसाक्षात्पञ्चकीर्णकण्ठ वरुणेंद्र और नियमस्वर्णधरिद सर्वाधिदिकिका धरुध हिंदी अट्टपाद । अन्त्याय १ अथ ८ ।
 सासादनसम्पन्नदृष्ट्याद्यनिवृत्तिवादान्तानां सामान्योक्त काल, किं तु असद्यतसम्पन्नदृष्टेर्नाना ।
 जीवापेक्षया सर्वं कालं ।

सासादनसम्पन्नदृष्टि-श्रादि = सासादनसम्पन्नस्यवादी [श्रीवेदी] से
 प्रनिवृत्तिवादात्-प्रत्यानां ॥ = प्रनिवृत्ति वादात् गुणस्थानवर्षा वक्रनिका
 साप्रान्त्य-रक्त ॥ काशः १ । = संक्षय [प्रकाश] मं (परिच्छे) कथित [गुणस्थानवत्] काळ है

अथवा सासादन सम्पन्नदृष्टी श्रावेदीनां अपेक्षासे अपन्य एक समय है, वस्तुतः
 पर्यक्त अर्थक्यावशां मग है । एक वीरका काल प्रथम एक समय है-उत्कट छाः प्रावती है ।।
 सिम्भगुणस्थानवर्षा श्री-वेदियोंका नानावीर अपेक्षासे अपन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कट पत्नोपम
 के अंतर्कथावशां मग है । एक वीरकी अपेक्षासे अपन्य और उत्कट अन्तर्मुहूर्त है ।। अंतर्पत्नी
 बोध गुणस्थानवर्षा श्रावेदियोंका इसके नीचे सर्वाधिदिकियें न्यागा करा है ।। सुंपपासंभवमी
 श्रावेदीनां नानावीर अपेक्षासे सर्वकाल है । एक वीरकी अपेक्षासे अपन्य अन्त
 मुहूर्त है, उत्कट कुछ घाटि करोट पूर्व है । प्रमथ छटे प्रमथ धावे गुणस्थानवाके श्रावेदि
 योंका नानावीरकी अपेक्षासे भर्ष काल है । एक जावकी अपेक्षासे अन्त एक समय है उत्कट
 अन्तर्मुहूर्त है ।। अन्त कदा उपशमभेणी श्री (माध) वेदीका और प्रनिवृत्तिकरत् उपशम
 अर्थां झा (माध) वेदीका नानावीर अपेक्षासे और एक वीर अपेक्षासे अथ वएक समय उत्कट
 अन्तर्मुहूर्त है । अन्त करण धाक भेणी झा (माध) वेदीका और प्रनिवृत्तदरत् धाक
 भेणी झा [माध] वेदीका नाना वायोकी अपेक्षासे और एक वीरकी अपेक्षासे अपन्य
 और उत्कट अन्तर्मुहूर्त है ।
 = परंतु अंतर्गत सम्पन्नदृष्टी (श्री वेदियों) का
 = अनेक वीरकी अपेक्षासे
 = समयत काळ है

किं अंतर्गत सम्पन्नदृष्टे ॥
 नानावीर+अपेक्षया ॥
 अथ ॥ काश १ ।

एवमिवासी कारणपरापणकीबहुत पदच्छेद और निभस्यसंगतिह वसार्थसिद्धिका उन्मूल्य हिंदी बहुवार । अथवा १ सूत्र ८ ।
 एकजीव मति जवन्योनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति देशोन्मानि ॥ पुत्रेदेवु मि
 व्याहृतेर्नानाजीवापेक्षया सर्व, काल ।

एवमीदं ॥ मतिः कपन्येन ॥॥ अन्तमुहूर्तं ।
 = एक बीजकी अथ एकदि अंतरमुहूर्त है ।

उत्कर्षेण ॥ पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति ॥॥ देशोन्मानि ॥॥ = उत्कर्षकरि कुछ हीन पञ्चपन पत्यके अथवा १ ।

पुत्रेदेवु ॥ मित्याह्ये ॥ नानाजीव अथवाया ॥॥ सर्वः कालः = सुख वेदविरि मित्याह्येकी का जनेक बीजकी निभस्यते सब काल है ।

(१) देशोन्मानि क्योमिति अथ स्त्रीदेशसंबन्धेकजीव मति उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति पृथीतसामयपरप स्त्रीदेशेन्यव्याप्याह्य पयार्थः

सामयपरप पृथीतकीदि पर्यासिसामयकालमुहूर्तव होमालादेशोन्मानि वाग्नि पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति स्त्रीवेदे वाक्यस्यसर्वे सप्तमवन्तीति वैश्विबभ्यव

देशोन्मानि ॥॥ क्योप्येन ॥॥ मतिः क
 स्त्रीवेदे अथवा पञ्चबीजम् ॥॥ मतिः क

उत्कर्षेण ॥ पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति ॥॥
 = उत्कर्षकरि पञ्चपन पत्यके तस्य है

पुत्रेदेवु ॥ मित्याह्ये ॥ नानाजीव अथवाया ॥॥ सर्वः कालः = सुख वेदविरि मित्याह्येकी का जनेक बीजकी निभस्यते सब काल है ।

(१) देशोन्मानि क्योमिति अथ स्त्रीदेशसंबन्धेकजीव मति उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति पृथीतसामयपरप स्त्रीदेशेन्यव्याप्याह्य पयार्थः

सामयपरप पृथीतकीदि पर्यासिसामयकालमुहूर्तव होमालादेशोन्मानि वाग्नि पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति स्त्रीवेदे वाक्यस्यसर्वे सप्तमवन्तीति वैश्विबभ्यव

देशोन्मानि ॥॥ क्योप्येन ॥॥ मतिः क
 स्त्रीवेदे अथवा पञ्चबीजम् ॥॥ मतिः क

उत्कर्षेण ॥ पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति ॥॥
 = उत्कर्षकरि पञ्चपन पत्यके तस्य है

पुत्रेदेवु ॥ मित्याह्ये ॥ नानाजीव अथवाया ॥॥ सर्वः कालः = सुख वेदविरि मित्याह्येकी का जनेक बीजकी निभस्यते सब काल है ।

(१) देशोन्मानि क्योमिति अथ स्त्रीदेशसंबन्धेकजीव मति उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति पृथीतसामयपरप स्त्रीदेशेन्यव्याप्याह्य पयार्थः

सामयपरप पृथीतकीदि पर्यासिसामयकालमुहूर्तव होमालादेशोन्मानि वाग्नि पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति स्त्रीवेदे वाक्यस्यसर्वे सप्तमवन्तीति वैश्विबभ्यव

देशोन्मानि ॥॥ क्योप्येन ॥॥ मतिः क
 स्त्रीवेदे अथवा पञ्चबीजम् ॥॥ मतिः क

उत्कर्षेण ॥ पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति ॥॥
 = उत्कर्षकरि पञ्चपन पत्यके तस्य है

पुत्रेदेवु ॥ मित्याह्ये ॥ नानाजीव अथवाया ॥॥ सर्वः कालः = सुख वेदविरि मित्याह्येकी का जनेक बीजकी निभस्यते सब काल है ।

(१) देशोन्मानि क्योमिति अथ स्त्रीदेशसंबन्धेकजीव मति उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति पृथीतसामयपरप स्त्रीदेशेन्यव्याप्याह्य पयार्थः

सामयपरप पृथीतकीदि पर्यासिसामयकालमुहूर्तव होमालादेशोन्मानि वाग्नि पञ्चपञ्चाशत्सत्योगमिति स्त्रीवेदे वाक्यस्यसर्वे सप्तमवन्तीति वैश्विबभ्यव

एतानिषासी जगत्प्रसाधपक्षीकण्ठ परच्छेर और विमलसर्पसहित सर्पांशसिद्धिका सम्पद्य' द्विती भजुवाद । अथाप १ सुव =
 एकजीव प्रति जघन्योनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥ सासादनसम्प्यहृष्टयाथानि
 श्रुत्वादरान्तानां सामान्योक्त कालः ॥ ननुसकवेदेषु पिथ्याहृष्टेनानाजीवपेक्षया सर्वः कालः । एक-
 जीव प्रति जघन्योनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणानन्त' कालोऽसम्पेया पुद्गालपरिवर्ताः ॥ सासादनसम्प्यहृष्ट्या-
 थानिश्रुत्वादारान्तानां सामान्यत्वं । किं त्वसयतसम्प्यहृष्टेनानाजीवपेक्षया सर्व' काल' । एकजीव
 प्रति जघन्योनान्तर्मुहूर्त' ।

एकजीवः १ । प्रतिष्ठ कथन्येन १ । अन्तमुहूर्त' ।
 उत्कर्षेण १ । सागर उम-श्च पुण्यभय १ ॥

सासादनसम्प्यहृष्टि आदि अनिश्रुत्वात् अन्तानां १ ।
 स पान्य उक्तः १ । कालः १ ।

ननुसकवेदेषु १ । सिद्ध्याहृष्टः १ । नानासौर अथेसया १ ॥
 सर्वः १ । काल' १ । एकरसो १ । प्रतिष्ठकथन्येन १ ।
 अन्तमुहूर्त' १ । उत्कर्षेण १ । अन्त' १ । काल' १ ।
 अर्थस्येवाः १ । पुद्गालपरिवर्ता' १ ।
 सासादनसम्प्यहृष्टि आदि—
 अनिश्रुत्वात् अन्तानां १ । सामान्यत्वं *
 किमुक्तं तुक्तं सम्पयतसम्प्यहृष्टः १ ।
 नानाजीव-पेक्षया १ ॥ सर्व' १ । कालः १ ।
 एकरसो १ । प्रति जघन्येन १ । अन्तमुहूर्त' १ ।

= एक जीवके द्विपे नदन्त्यकरि अन्तर्मुहूर्त' ।
 = उक्तकरि पुण्यस्य सौ सागरके तुल्य है अर्थात् तीनसौ सागरसे अधिक
 नवसौ सागरसे नीचे है ॥
 = [पुण्यस्य'दर्शने] सासादनसम्प्यहृष्टनवासेसे ले कर अनिश्रुत्वात् अन्तानां १ ।
 = संक्षेपसे कथित [पुण्यमान्यत्वं] काल है । यह काल बही है जो २०२
 पुण्यका है परंतु अर्थयमीका एक जीवकी अपेक्षासे उक्तकरि तैतीष सागर
 से कुछ अधिक है ॥
 = ननुसक वेदसिधे सिद्ध्याहृष्टी प्र अनेक जीवकी विवक्षासे
 = सपस्य काल है एक जीवके द्विपे अथवाएकरि
 = अन्तर्मुहूर्त' है उक्तकरि अन्त' काल है [सो]
 = अर्थस्येवाते पुद्गलय परावर्तन है
 = [ननुसक वेदसिधे] सापत्यनसम्प्यहृष्टनवासेसे लेकर
 = नवसौ पुद्गलान्तर्गती सकनिका अथेपसे (कथित पुण्यसाधन्यत्वं काल) है ॥
 = परंतु अर्थयत् सम्प्यहृष्टनवासेका
 = नानाजीवकी विवक्षासे सपस्य काल है
 = एक जीवके द्विपे अथवाएकरि अन्तर्मुहूर्त' है

प्रदानिवासी क्वाक्यसहायकलक्षण पर्यवेद और विषयस्यपरिचि सर्वोर्विदिका वरराख सिरी मनुशाह प्रप्राय १ सूत्र ८ ।
 उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ अपगतवेदानां सामान्यवत् ॥ (६) कथायानुवादेन
 चतुष्कथायाणां सिध्याद्व्याघ्रप्रमत्तान्तानां मनोयोगिवत् द्वयोरुपशमकयोर्द्वयोः क्षणकयोः केवललोभस्य
 च अकथायाणां च

उत्कर्षेण १। प्रथमेवसामतोपमाणि १।। देशोनानि
 अपगतवेदानाम् १।
 सामान्यवत् *

(६) कथाय अनुवादेन १।
 चतुष्कथायाणां १। सिध्याद्वि-आदि
 अप्रमत्त प्रत्यानां १। मनस्-योगिवत् *

द्वयो १। उपशमकयोः १। द्वयोः १।
 सयकयोः १। क्षणकयोस्तस्य १। च

भरुथायाः १। च

= चतुष्कथरि कुछ हीन वैदीसभाभारके बाराबर है

= धेवरद्वि [दसधा, ग्यारहधा, बारहधां वैरहवां चौदहधा गुणस्थानवर्धीन्] का
 = (काष्ठ) संक्षेप [प्रकरणमें ऋगुद्गा गुह्यरत्नावत्] है अर्थात् सूत्रसामान्यतः,
 उपशांकरपाप दोष उपशम श्रेणीबालिके नानावीथ और एक वीथकी व
 पेशासे कथन्य एक समय चतुष्टु प्रत्यर्गुर्वैकाश है । सत्यसामान्यतः सपक
 श्रेणीबालिका और सीखरुपाय उपयोगकेवलियोंका नानावीथकी अपेक्षा
 से और एक वीथकी अपेक्षासे कथन्य और चतुष्टु प्रत्यर्गुर्वै है । सयोग
 केरलियोंका नानावीथ अपेक्षासे सर्वकाष्ठ है एक सयोगकेरलीकी अपेक्षासे
 कथन्य काष्ठ प्रत्यर्गुर्वै है चतुष्टु काष्ठ कुछ पादि एक करोड पूर्व है ।

= (६) कथायके कथानुसार करि

= १। [क्रोच मान भाया सोम) कथाय धाते सिध्याद्विसे केकर

= कथन्य चकोका (काष्ठ) मनोयोगीके सदख है

[पृष्ठ २०० पक्षि सुमरीसे १३ पक्ष वही सुव्यञ्जं यथांका काष्ठ पदुखो)

= धा उपशमभेषां (आठधां नवधां गुणस्थान बालिनिका) दो

= अप्रमत्तभेषां नालिनिका और केवल सोमबालिका वखरे गुणस्थानवर्धीनका
 (चर्हां एक संकलन योग है अन्य कथाय कोई नहीं है)

= तथा कथायाद्वि [नयाहवां बारहधां वैरहवां चौदहधां गुणस्थानवर्धीनिका

ब्रह्मनिवासी ब्राह्मणसमाजकीवृत्त पदच्छेद और निमग्नसर्पसहित सर्वायसिद्धिका अर्थः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ अध्याय २ ।
 सामान्योक्त काल ॥ (७) ज्ञानानुवादेन—मत्प्रज्ञानिश्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टिमासादनमन्यवदृष्टयाः
 सामान्यवत् ॥

सामान्य-वक्तुः । ' काल ' ॥

== संक्षेपसे कथित [गुणस्थानवत्] काल है अर्थात् प्राणवक्रत्व और अनिष्टाधिकार्य उपपन्न
 भोक्षिताले रूपाय सहितोंका नानाजीव प्रपेक्षासे और एक जीव प्रपेक्षासे जन्म एक समय काल है
 उत्कण्ठ जन्मगुर्त है । अपूर्वदरत्व और अनिष्टाधिकार्य संपन्नभोक्षिताले कयायसहितोंकानानाजीव प्रपेक्षा
 से और एक जीव प्रपेक्षासे जन्मय और उत्कण्ठ काल जन्मगुर्त है ॥ धृष्टस्मान्मराय उपसमर्थोर्वाजीवोका
 एक जीव और नानाजीव प्रपेक्षासे जन्मय एक समय है उत्कण्ठ जन्मगुर्त है ॥ सूक्ष्मसाध्याय संपन्नका
 एकजीवकी और जनेर जीवकी प्रपेक्षासे जन्मय और उत्कण्ठ जन्मगुर्तकाल है उपप्रांत कयाय
 पालोका नानाजीव और एकजीव प्रपेक्षासे जन्मय एक समय है उत्कण्ठ जन्मगुर्त है ॥ शीघ्रकयाय
 शालोका नानाजीव और एक जीवकी प्रपेक्षासे जन्मय तथा उत्कण्ठकाल जन्मगुर्त है ॥ सयोगकेवलि
 यो । नानाजीव प्रपेक्षासे ममस्व काल है एकजीवका जन्मय काल अंतर्गुर्त है उत्कण्ठ काल कुछ घाटि
 एक कसोट पूर्व है ॥ अयोगकेवलयोका नानाजीव प्रपेक्षासे और एक जीव प्रपेक्षासे उत्कण्ठ काल और
 जन्मपदकाल अंतर्गुर्त है ॥

७ ज्ञान+भयउपदेन ॥

= ७ ज्ञानक कयानुशासकरी

मति+ब्रह्मनि+भुव+अर्थान्य ॥ = मतिप्रज्ञानी भुवब्रह्मानियोगे

मिथ्यादृष्टि+सावादतनसम्पन्नदृष्टयो = मिथ्यादृष्टि [तथा] सासादन सम्पन्नदत्तनालेका (काल)
 सामान्यवत् ७

= संक्षेप [मकरधर्म पहिले कहा हुआ गुणस्थानवत्] है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका

मतिप्रज्ञानी और भुवब्रह्मानीका जन्म जीव प्रपेक्षासे सर्व काल है । एक जीव प्रपेक्षासे तीन भेद
 है [१] अनादि अर्थात्सामान [२] अनादि सर्वायसान और सादिसर्पयसमान तथा सादिसर्पयसमान काल
 जन्मसकरी भयगुर्त है उत्कण्ठ काल हीन भयगुर्तकाल परावर्त है ॥ मतिप्रज्ञानी और भुवब्रह्मानी सासादन सम्पन्न-
 दृष्टियोंका जन्म जीव प्रपेक्षासे जन्मय एक समय है उत्कण्ठ जन्मके अंतर्गुर्तकाले माया है । एक जीवकी प्रपेक्षा
 से जन्मय एक अंतर्गुर्त है । उत्कण्ठ काल आशकी है ॥

प्राक्निवासी जगत्प्रसारात्प्रकीर्ण परस्पर और विभक्त्यर्थसाहित्य सदांर्षिसिद्धि का अर्थ 'पिरी जनुवार । धर्याय १ एव ८
 विभक्त्याज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व' काल एकजीव प्रति जन्मन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्क
 ष्णं प्रयत्नितशरसागारापमाणि देशीनांनि ॥ सासादनसम्पन्नदृष्टेः सामन्योक्तः काल' ॥ आभिनिबोधिक
 श्रुतावाधिगान पर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्योक्त काल. ॥

निमग्नसाधानिषु ॥ मिथ्यादृष्टे ॥ नानावीर्य+अपेक्षया ॥ = कुप्रवृत्ति क्रानियोगे सिद्ध्यादृष्टीका अनेक कालसाक्षी विषयसासे
 सर्व ॥ कालः ॥ ए. वीर ॥ प्रति बधन्येनया अन्तर्मुहूर्तः ॥ = समस्त काल है एक आत्माके विषये बधन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
 उत्कृष्टत्व ॥ प्रयत्नितशरसागारापेक्षया ॥ देशीनांनि ॥ = उत्कृष्टकरि वृद्ध हीन वेदीन सागरके धराधर है (प्रयत्नितशरको
 सासादनसम्पन्नदृष्टेः ॥
 साध्या + व + उक्त ॥ कालः ॥

आभिनिबोधिकपुरुष+प्रवृत्तिरान पर्यय
 केवलज्ञानिनाम् ॥ च सामान्य+उक्तः ॥ कालः ॥
 = कुप्रवृत्ति क्रानियोगे सिद्ध्यादृष्टीका अनेक कालसाक्षी विषयसासे
 = समस्त काल है एक आत्माके विषये बधन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
 = उत्कृष्टकरि वृद्ध हीन वेदीन सागरके धराधर है (प्रयत्नितशरको
 सासादनसम्पन्नदृष्टेः ॥
 = (कुप्रवृत्ति क्रानियोगे) सासादन सम्पन्नदर्शन शाले का
 संक्षेप(प्रकल्प)से कथित (गुणस्थानत्व) काल है अर्थात् नानावीर्यकी
 प्रपेक्षासे कथन एव समय है, उत्कृष्ट पक्षके अर्थव्यापारदी माय
 है । एक वीरकी अपेक्षासे बधन्य एक समय उत्कृष्ट छः प्राक्निवासी है ॥
 = यतिज्ञानी (= आभिनिबोधिक) मुक्तज्ञानी अवबिम्बिज्ञानी मनःप्रपुष्य
 = मोर कंकड घानीनका संक्षेपकरि कथित (गुणस्थानत्व) काल है
 अर्थात् यति-मुक्त-प्रवृत्ति ये तीन ज्ञान धारसे धारण गुणस्थान तक
 पोते है, मनःप्रपुष्यज्ञान छन्दसे धारण तक होता है अतः कालका

(१) देशीनांनि काल- विमग्नसाधानिष्यादृष्ट्यादृष्ट्यादृष्टीका प्रति उत्कृष्टत्व अर्थव्यापारि । पर्यायस्य विभक्त्याज्ञान प्रतिपद्यत इति
 पर्यायसमत्पराकारमुहूर्तदृष्टित्वयाद् देशीनांनि ।

देशीनांनि ॥ प्रति कालः ॥
 विमग्नसाधानिष्यादृष्ट्यादृष्ट्यादृष्टीका ॥ प्रति ॥
 उत्कृष्टत्व ॥ प्रयत्नितशरसागारापेक्षया ॥
 पर्यायः ॥ च विमग्न + ज्ञानम् ॥ प्रतिपद्यते ॥ इति ॥
 पर्यायसमत्पराकारमुहूर्तदृष्टित्वयाद् ॥ प्रति देशीनांनि ॥ प्रति पर्यायसंको पूरक अर्थव्यापारि अर्थव्यापारि । पर्यायस्य विभक्त्याज्ञान प्रतिपद्यत इति

-- कुप्र वीर (एव) केने
 -- कुप्रवृत्तिरानि सिद्ध्यादृष्टी एव केनेनके सिद्धये
 -- उत्कृष्टकरि वेदीन सागर (के) मुख्य (काल) है (विषयकी पृष्ठ १११)
 -- पर्याय वीर ही (= च) अर्थात् अर्थव्यापारि को प्रारम्भ करता है इस अर्थका
 -- पर्यायसंको पूरक अर्थव्यापारि अर्थव्यापारि । पर्यायस्य विभक्त्याज्ञान प्रतिपद्यत इति

एतन्निवासी जगत्स्यवहायकीच्छुच पदच्छेद और निरपत्यर्थसहित सर्वाधिसिद्धिका अर्थः। हिरी अनुवाद । अथवा १ एव ८
 ८ संघमानुवादेन—सांभायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसम्साम्भारायपाक्यातशुद्धिसयतानां
 सैयतासयतानाप्रसयतानां च

प्रमाण रस भक्ति है कि अर्थात् सम्प्रदर्शो मतिज्ञानियो अतुष्टानियो और अर्थात्ज्ञानियोका नाना वीरकी
 अर्थेसासे सर्व काल है एक वीरका काल समय अन्तर्भूत है, उत्कृष्ट वेदीस सागासे कुछ भाविक है ।
 संघपासंपत्ती मतिज्ञानियोका अतुष्टानियोका अर्थात्ज्ञानियोका नानावीर अर्थेसासे सर्व काल है
 एक वीरका नान्य अर्थेभूत है उत्कृष्ट कुछ पाठ एक क्रोध पूरक है । मयघ सयमी अर्थेसासंपत्ती
 मतिज्ञानियोका अतुष्टानियोका अर्थात्ज्ञानियोका और मनःपर्यव्याप्तियोका नानावीरकी अर्थेसासे सर्व
 काल है । एक वीरका अल्प एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्भूत है । एतत्कालमभेधीवाले मति-शुत-
 अर्थात्-मनःपर्यव्याप्तियोका नानावीरकी अर्थेसासे और एक वीरकी अर्थेसासे अल्प एक समय काल
 है और उत्कृष्ट अन्तर्भूत है । एतत्कालमभेधीवाले मति-शुत-अर्थात् मत्त पर्यव ज्ञानियोका और अर्थेसा
 केवलियोका नानावीरकी अर्थेसासे और एक वीरकी अर्थेसासे अल्प और उत्कृष्ट काल अन्तर्भूत है
 सयोग केवलियोका नानावीरकी अर्थेसासे सब काल है एक वीरकी अर्थेसासे अल्प अन्तर्भूत है
 उत्कृष्ट [काल] कुछ न्यून एक क्रोध पूर्व है ॥

[८] संघमन्त्रानुवादेन ॥ = (८) संघमन्त्रे अर्थात्नुवादेसे

सांभायिकच्छेदोपस्थापन- = सामाधिक और केदोपस्थान संघमी (अर्थात् साधनां जाठसं नभसं गुणस्थानवर्ती) निका

परिहारविशुद्धि- = परिहारविशुद्धि संघमी (उत्कृष्ट साधने गुणस्थानवासे) निका

अथसांभाय- = अथसांभाय संघमी (अर्थात् गुणस्थानवर्ती) निका

पदाङ्गपाठशुद्धिसयतानां = पदाङ्गपाठ शुद्धिसयमी [उग्राहर्षां वाररथां हेतुर्थां श्रीवृत्तां गुणस्थानवर्ते] निका

संघपासमवानाम् ॥ = संघपासमवानी (पाठसं गुणस्थानवर्ती) निका

असयतानाम् ॥ ७ = एता [= ए] असयमी (परसेसे वीर गुणस्थानवासे) निका

सामान्योक्तं वाच ॥ (९) दर्शनानुवादेन-चक्षुर्दानेषु मिथ्यादृष्टीर्नानाजीवापेक्षया सर्वं काच ॥
 एकजीवमिति जनन्यनान्तर्गुह्यं । उक्तयोगे द्वे मागरोपगपत्रये ॥ मामादनमप्यत्रष्टुर्गोरीनां श्लोणकयागन्तानां
 मामान्योक्तं काल ॥ अत्रचक्षुर्दानेषु मिथ्यादृष्ट्याग्निश्लोणकयागन्तानां मामान्योक्तं काच ॥

सामान्य-उक्तं ॥ काचः ॥

=संश्लेष (प्रकाश) द्वारा कश्चिद (गुणस्थानस्य) काल है (विशेष) पृष्ठ १७९ से १८८)

(९) दर्शनं अत्रुवादेन १, चक्षुर्दक्षिणित्वा ॥ मिथ्यादृष्टिः ॥ = (९) दशमो विधा कश्चिद्वद्वद्वतगात्रोर्धे मिथ्यादृष्टीका
 नाना-जीव-अपेक्षया १॥ सर्वं १, काचः ॥ एकजीवः ॥ एवै = अनेक जीवो विराशासे मय काच है । एक क्षेत्रमेक श्लेष

अनन्तेन १॥ अन्तर्गुह्यं ॥ उक्तयोगे १, द्वः ॥॥ मागरोपगम = अत्रयकश्चिद अत्रुद्वय है । उक्तुं कश्चिद सागरोपगमे

सर्वे ॥॥ मागारम उपगारिणं मादीनां १॥ श्लोणकयाग = वात्र है । मामादन उपगारिणित्वादिर्नाना श्लोणकयाग (पारक्षं गुणस्थानसर्वी)

अन्तानां ॥ सामान्य-उक्तं ॥ काचः ॥

=पर्योक्त संश्लेष (प्रकाश) से कश्चिद (गुणस्थानस्य) काल है अर्थात्

चक्षुर्दक्षिणित्वात् साधारण सप्यारिणित्वात् नाना जीव अपेक्षासे अत्रय एक समय है उक्तुं पर्यपके अद्वयवाचकं अद्य है । एक
 जीवस्य अपेक्षासे अत्रय एक समय है उक्तुं छ-भावात् है । मिथुगारशानात् चक्षुर्दक्षिण वाच्येनित्वात् नाना जीव अपेक्षासे
 अत्रय अत्रुद्वय है उक्तुं पर्यपका असंस्थानात् साग है एक जीवस्य अपेक्षासे अत्रय और उक्तुं अन्तर्गुह्यं है । असंयत
 सप्यारिणित्वात् चक्षुर्दक्षिण वाच्येनिकात् नाना जीवस्य अपेक्षासे अत्रय है । एक जीवस्य अपेक्षासे अत्रय अत्रुद्वय है उक्तुं
 वेदिस सागर से कुछ अधिक काच है । सप्यारंभसो चक्षुर्दक्षिण वाच्येनित्वात् नाना जीवस्य अपेक्षासे अत्रय का
 अपेक्षासे अत्रय अन्तर्गुह्यं है उक्तुं कुछ पर्यपक करोइ पर्य है । प्रमथ छुट्टे गुणस्थानसर्वी चक्षुर्दक्षिण वाच्येनिका और
 अत्रयव सावत्रा गुणस्थानसर्वी चक्षुर्दक्षिण वाच्येनिका नाना जीवस्य अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवस्य अपेक्षासे अत्रय एक समय
 है उक्तुं अन्तर्गुह्यं है । पार उक्तुं अत्रय चक्षुर्दक्षिण वाच्येनिका नाना जीवस्य अपेक्षासे और एक जीवस्य अपेक्षासे अत्रय एक
 समय है उक्तुं अत्रुद्वय है । पार अत्रय धर्मापेक्षे चक्षुर्दक्षिण वाच्येनिका नाना जीवस्य अपेक्षासे और एक जीव की
 अपेक्षासे अत्रय और उक्तुं काल अन्तर्गुह्यं है ॥

अथचक्षुर्दक्षिणित्वात् ॥ मिथ्यादृष्टिः प्रादि श्लोणकयाग-
 अन्तानां ॥ सामान्य-उक्तं ॥ काचः ॥

=अत्रचक्षुर्दक्षिणित्वात् नाना जीवस्य अपेक्षासे अत्रय एक समय है उक्तुं अत्रय धर्मापेक्षे चक्षुर्दक्षिण वाच्येनिका नाना जीवस्य अपेक्षासे और एक जीव की

अपेक्षासे अत्रय और उक्तुं काल अन्तर्गुह्यं है ॥

यद्य निरासता षण्णवमहाय पकीड कत पवकृष्ट कौर निमकलय सखिद सर्गवसिजिहा दाभया विधि अत्राण ॥ अगार १ सूत्र २ ।
 जगयतममपुष्टुर्नानाजीवापेक्षया नर्व, काल । एकजीव प्रति जयनेनान्तर्दुर्हित ॥ उक्तर्ण प्रपाक्षि
 -रामभनशमसमागतोपमाणि देशोनानि ॥ तेज पद्मन्त्र्यपोनिश्चानुष्टपपयतमपुष्टुष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया
 सर्व काल ।

असंप्रत-सापयष्टुः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥
 सर्व ॥ काल ॥ एकजीव ॥ प्रक्षि जयनेन ॥
 अन्त्युष्टुः ॥ उक्तर्ण ॥ वेद्योनानि ॥ अपाक्षिपद-
 सप्रस-सम-सागतोपमाणि ॥
 गवः-पुष्टुत्सयो ॥ सिध्यादि-असंप्रतसमपयष्टयो ॥
 नाना-जीव अपेक्षया ॥ सर्व ॥ कालः ॥
 = कुम्भ नील कपोल केशवाकसे असंप्रत समपयष्टिका नाना जीवको अपेक्षासे
 = सर्व काल है । एक वेतनके क्षिपे जयत्यकति
 = अन्त्युष्टुत्सु (काल) है । उक्तकति कुष्ठ हीन वेतिस
 = अथइ साव सागर पमात्र (काल) है ।
 = जीव १५ ले भयागो मे सिध्यादि और असंप्रत समपयष्टुत्सुनाशे का
 = अनेक वेतनकी विश्वासे समस्त काल है

धर्मो कालोका आहने से कुछ अधिक सेतीस कुछ अधिक समाइ या कुछ अधिक साठ मागए काठ उक्तकति स्थया है
 यद्यपि यह निवम धर्म है कि शक से ज्ञान लेने के पश्चात् उस जोहके कालको जेवया धारो ।
 १ उक्त सप्तपयुक्ता संवत सम्यारपयष्टकी प्रतिः अत्रैव नाटकायसया उक्त गये ॥ मागदोरावाचि । यथासिमाय काव्यमुष्टुद सप्तर्षी मारुष्वास्ति के
 य मम्यसशयागारेणामनि ॥
 उक्त-उत्तरा-पुष्टु-असंप्रत-सपयष्टि एकजीव ॥
 यति ० अर्कस ॥ साठ-अपेक्षया ॥ उक्तानि ॥
 यद ० सागतरावाचि ॥
 यथासिमायाण-अन्त्युष्टुर्न
 व सप्तपयु ॥ साठवाचिके ।

सप्तपयु १ अनाशय । देशोन्मनि ॥
 = कपिय (पूरा नील कापाल) ले भयागो मक्षिण असंप्रत समपयष्टिका एकजीवके
 = क्षिपे उक्तकति शककी जयेसासे कहे हुए
 = ही सागर प्रमत्य काठ है अथाद साठर्षी मरुद मे नेनेस और पोवगी मरुद मे
 सभइ और तीमरे मरुद मे साठ सागर काठ है (यत्सु) ।
 = यथासि अथयाका पूरि करने काली सागपुष्टुद (लियर पोवर्ष साठके मरुद मे)
 = और (= का) सातर्षी (यत्सु) मे सागुके साधिव मे (सो)
 जयति साठर्षी मरुद मे मरुते सपय अथय सिध्याण का ज्ञाया है ।
 = सपयष्टुत्सु के समाव धर्म से कुछ हीन (कैतोस समाव सभइ मागए साठसागर काठ
 कावे मरुद की पोवगी सोमरे मरुद मे) है । तीवर वाचइ साठके मरुदके मे यथोसि
 पूरि कालके तीजे सप्तपयुद देखा है ।

प्याजिवासी जगत्सर्वसहाय बलीक ह्ये पश्यन्नेव और भिगवषयं मण्डित सर्वायसिद्धिं वा कर्षयामः दिव्यी बहुराव । कर्षयाम १ एव २

सामादनमप्य दृष्टिसमाहृमिथ्यानृचि ये नामा योऽहं कालः ॥ संप्रतासंप्रतप्रप्रताप्रमताना नानाजिवापेक्षया सर्वं काल ॥ एकजीव प्रति जघन्येनः प्रमथः । उत्कर्षेणान्तर्भुवैतै ॥ शुक्लेश्याना मिथ्यादृष्टेर्नानाजिवापेक्षया सर्वं काल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्भुवैतै । उत्कर्षेणान्तर्भुवैतै । उत्कर्षेणान्तर्भुवैतै । उत्कर्षेणान्तर्भुवैतै । उत्कर्षेणान्तर्भुवैतै ॥

सासादनसम्पदसिन्धुमिथ्यादृष्टयोः ॥

= पीठपथसेस्यावालो (मै) सासादनसम्पददृष्टी और मिथ्युणस्थानावालो का

सामान्य-उक्तः ॥ कालः ।

= संतोषकरि (परिशे) कालिध (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन सम्पददि

पीठ-पथसेस्या वादकों का नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पर का असंस्थावता माग है एक जीव प्रति जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट छद्म जावर्त्त

है ॥ पीठ-पथसेस्या वादके मिथ्युणस्थान वादों का नाना जीवका जघन्य उत्कर्षुर्वै काल है उत्कृष्ट परस्का असंस्थावतां माग है । एक जीव की अपेक्षा-

से जघन्य और उत्कृष्ट अन्त्युर्ध्वैतै ॥

= पीठ-पथ-सेस्या वादों (मै) प्रथमभावनिता प्रमथ अममव वादों का अनेक

जीव-अपेक्षया ॥ सर्वं, काल, एकजीव ॥ प्रतिष्ठ-वीचकी अपेक्षासे सब काल है । एक जीव के लिये

जघन्यनः ॥ एकः ॥ समय ॥ उत्कर्षेणः ॥ अन्त्युर्ध्वैतै-जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि अन्त्युर्ध्वैतै है

शुक्लेश्याना ॥ मिथ्यादृष्टः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ ॥ शुक्लेश्याना वादके मिथ्यादृष्टि का अनेक जीवकी निवद्या से

सर्वं ॥ कालः ॥ एकजीव ॥ प्रति जघन्येनः ॥ ॥ सर्वं काल है । एक जीव के लिये जघन्यकरि

अन्त्युर्ध्वैतै ॥ उत्कर्षेणः ॥ स-अतिरिक्ताणि ॥ ॥ अन्त्युर्ध्वैतै है । उत्कृष्टकरि कुछ अधिक

एकजीवत् ॥ सागतोष्माणि ॥ ॥

= इकीस सागर प्रमाण है अर्थात् मिथ्यादृष्टि शुक्ल-स्थानका धारक

१. प्रियवज्रवैशेषसया केचं नामानि मन्त्राचारिकेभ्यःसाहाय्यस्वभावायानि शुद्धशेषासम्प्रादासनातिरेकादि ॥

प्रियवज्र-वैश्व कपोसया १६ केचं १ नामानि ॥ ॥

प्रारब्धादिभक्त

२. प्रियवज्रवैश्वस्वभावाय, १. नामानि शुद्धशेषास-

सम्प्रादाय १. स-अतिरिक्ताणि ॥ ॥

= पीठपथसेस्या वादकों का नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पर का असंस्थावता माग है एक जीव प्रति जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट छद्म जावर्त्त है ॥ पीठ-पथसेस्या वादके मिथ्युणस्थान वादों का नाना जीवका जघन्य उत्कर्षुर्वै काल है उत्कृष्ट परस्का असंस्थावतां माग है । एक जीव की अपेक्षा-से जघन्य और उत्कृष्ट अन्त्युर्ध्वैतै ॥

= पीठ-पथ-सेस्या वादों (मै) प्रथमभावनिता प्रमथ अममव वादों का अनेक जीव-अपेक्षया ॥ सर्वं, काल, एकजीव ॥ प्रतिष्ठ-वीचकी अपेक्षासे सब काल है । एक जीव के लिये जघन्यनः ॥ एकः ॥ समय ॥ उत्कर्षेणः ॥ अन्त्युर्ध्वैतै-जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि अन्त्युर्ध्वैतै है

यदा प्रियासी अक्षरसमाहाय पक्षीनां ह्ये पदच्छेदं योः विभक्त्यर्थं सञ्चित्वा वाक्यं सिद्धीं समुदाहर । अत्राप्यत्र १ सूत्र =
 नामादनसम्पन्नदृष्ट्यादिनयोगकेवल्यन्तानानलेश्यानां च सामान्योक्तं काल । किं तु सैयतासैयतम्य
 नानाजीवोक्षया भव कालः । एकजीवं प्रति जघन्येतेन तपय । उत्कर्षणान्तर्मुहूर्तं ॥

साधारणसम्पन्नदृष्टि आदि-सयोग-अत्र-अन्तानाम्
 च अलभ्यानां ॥ सामान्य
 उक्तः । कालः ॥

मरुत नन श्रेयैक तत्र उत्पन्न होसका है अहां उक्तद आद्य इक्षीषि
 सागर है मारुतानि न समुद्रावातके अन्तर्मुहूर्तं में और तप्यात् अत्रस्या के
 अन्तर्मुहूर्तं में भी शुद्ध क्षेत्रणा रहती है अतः उक्तकाल इक्षीषि सागरसे
 पूर्वप्रवचनान्तर्मुहूर्तं और उचरामवप्रथमान्तर्मुहूर्तं के वरावर अधिक है
 = (शुद्ध क्षेत्रणा वाले) सासादन सम्पन्नदृष्टिसे सेकर सयोग केवली तकनिका
 = और (च) क्षेत्रणा रहित (अयोगकेवलि) निका संश्लेष (प्रस्तम्भ) करि
 = (प्रथम) कथित (शुक्लस्थानवत्) काल है अर्थात्
 वही काल है जो एव १८१ से १८८ तक में लिखा है । इसमेंसे एव १८५ मेंसे
 "संपत्तासंपत्तस्य नानाजीवोक्षयासर्वे" कालः । एक जीव प्रति जघन्येन
 अन्तर्मुहूर्तः उत्कर्षण पूर्वकोटीतेशोना" अत्रेदो क्पौकि संपत्तासंपत्तिर्गोका
 काल नीचे लिखा जाया है

न्यरन्तु सपमासंयामिर्गोका अनेक जीवक्षी अयोषा से
 = सत्र काल है । एक जीवके लिये जघन कारि
 न्यएक समय है । उक्तदृष्टकारि अन्तर्मुहूर्तं है

किन्तु संयानासंयतस्य ॥ नाना-जीव-अयोषया ॥
 सर्वे ॥ कालः ॥ पक्षजीवम् ॥ प्रति अघन्येनः ॥
 एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षणः ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥

सिरी अनुवाद । अथवा १ वर २

एकविंशती आठवसाय वहीच वर परचेंद कोर सिनवपयें सहिच सर्वांसिधिवेदा एतत्त सिरी अनुवाद । अथवा १ वर २
११ भयानुवादेन-मन्त्रेषु मिथ्यादृष्टीर्नीवीपेक्षया सर्वं काल ॥ एत जीवापेक्षया द्वी भङ्गे । अनादि

सपयमान सादि सपयनानश्च । तत्र सादि सार्यमानो जयन्येनान्तर्भुवते । उत्कर्षणाद्वृत्त्यपरिवर्तो

दशोन ॥ सासादनमयणदृष्ट्याद्योगावेवत्यन्ताना सामान्यो क काल ॥

(११) मन्त्र-अनुवादेन १, मन्त्रेषु १ मिथ्यादृष्ट १, नाना
वीच-अपेक्षया, सव १ कालः ॥ एकवीच

पुष्टा ॥ द्वी १ भङ्गे १
१, सपरि-अवसानः १

अस-आदि १ सपरि-अवसान १

वववसादिः १ सपरि अवसान १ अथन्येन ॥॥

अन्यार्थः १ उत्कर्षण १ वैशोनः १
अनुपद्रवपरिवर्त १ सासादनसम्पन्वृष्टि-आदि

अयोगावलि-अन्तानाम १
सापत्य-वकाः १ कालः १

मन्त्रके अनुवादापरि मन्त्रवीचो म मिथ्यादृष्टिका अनेक
=वीचकी अपेक्षासे समस्तकाल है । एक वीचकी

=सिध्यासे दो मोह है
=आदिदृष्टि (=अनादि) अन्त (=अवसान) सहिच (=सपरि) अर्थात्

अनादि सप्त है
=श्रीर वसता) आदि सहिच (=सादि) अन्त (=अवसान) सहिच अर्थात्

सादि सप्त है
=वसां सादिसाव (काल) अवसन्नापरि

=अन्तर्भुवते है । उत्कृष्टापरि कुम्भनि
=अनुपद्रवपरिवर्तन (काल) है । सासादनसम्पन्वृष्टीसेउत्कर

=अयोगावली (वीचसे गुणस्वाननवर्ती) पर्यन्तोंका
=संश्लेष (प्रकरण) करि क्वाहुआ (गुणस्वाननवर्त) काल है

(वेदो पृष्ठ १८१ से १८८ तक एव सहिच पुस्तकका)

अशुभानामनाद्यपर्यवसान ॥ (१२) मयकत्वानुवादेन-स्मार्थिकसाधनद्वितीयास्यैतत्सम्यग्दृष्ट्याहृदयोना
 केवल्यन्ताना सामान्योक्त काल ॥ क्षीयोपशमिकसम्पन्नदृष्टिना चतुर्णां सामान्योक्त काल ॥ औपशमिव मय
 कत्वेपु असंयतसम्पन्नदृष्टिसंयतासंयतयोर्नानार्जावापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षण पर्योपमासंस्थयभागा ।
 एकजीवं प्रति जघन्यभोक्तृदृष्टिश्चान्तर्मुहूर्त ॥ प्रमाप्रमतयोश्चतुर्णामुपशमकाना च नानाजीवापेक्षया एकजीवा
 पेक्षया च जघन्येनेक समय । उत्कर्षणान्तर्मुहूर्त ॥ सासादनसम्पन्नदृष्टिसम्यह्मिभ्यथाहृष्टिमिथ्याहृष्टीना सामा
 न्योक्त काल ।

असम्भवात्स ॥ अनादि-अपरिभ्र अवसानः ॥

(११) सम्पन्न-अद्वयत्वेन, शक्ति-नाम्पन्नदृष्टीनां ।
 असंयक्तसम्पन्नदृष्टि-आदि-अयोग्येभ्यो-अन्तानां ।

सामान्य-उक्ताः । कालः ।

क्षीयोपशमिक-सम्पन्नदृष्टीनां । चतुर्णां ।

सामान्य-उक्ताः । कालः ।

औपशमिकसम्पन्नत्वेपु ॥ असंयतसम्पन्नदृष्टि-
 संयतासंयतयोः । नाना-जीव-अपेक्षया ।

जघन्येन, अन्तर्मुहूर्त । उत्कर्षणः । पत्न्योपम
 असंयक्तसंयतयोः । एकजीवं, पृथिक-अपत्न्यः । च
 उत्कृष्ट । च अन्तर्मुहूर्तः, च प्रमा-अप्रमासंयतोः ।
 च चतुर्णां ।

उपशमकत्वानां । नाना-जीव-अपेक्षया ॥ च
 एक-जीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन । एकः । समयः ।
 उत्कर्षणः । अन्तर्मुहूर्तः । सासादनसम्पन्नदृष्टि-
 सम्यह्मिभ्यथाहृष्टिमिथ्याहृष्टीनां । सामान्य-उक्ताःकालः।

असम्भवात्कालात् अनादि अन्त (- अक्षसान्) रहित (- अपरि) अर्थात् अनादि अक्षकाल है

(११) सम्पन्नत्वेन के कथनानुसारकरि शक्ति-सम्पन्नकालोका
 = असंयत (शोधे गुणस्थान) वर्धा से अयोग्येभ्यो पर्वान्तिका
 = शोधकरि (गतिसे) कथा हुआ (गुणस्थानसदृ) काल है (छु १८२ स १८८ तक)
 = शोधक सम्पन्नदृष्टेयसाधे चारों (चारोंसे सातवां गुणस्थानवर्धी) निका
 = संयक्तो कथित (गुणस्थानवर्ध) काल है (छु १८२ धकि ३ से १८५ धकि ३ तक)
 = उपशमसम्पन्नक्षतसं असंयक्तसम्पन्नदृष्टेयन चाले और
 = शोधसंयमीनिका अतः केवलकी अपेक्षया
 = ब्रह्मन्करि अन्तर्मुहूर्त (काल) है उत्कृष्टकरि पत्न्योपमके
 = असंयक्तवर्धभागा है और एक जीव के लिये जघन्य
 = और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (काल) है । और प्रमा (छंटे) अप्रमा (सात्के) गुणस्थानोका
 = और चार (अपूर्वकरण-अनिर्वाचिकरूप-धर्मसंस्तराय-उपशमोक्तसमाय गुणस्थानवर्धी)
 = उपशमभर्णावर्धो का नाना जीवकी अपेक्षयास और
 = एक जीवकी अपेक्षया से जघन्यकरि एक समय है
 = उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है । सासादन सम्पन्नदृष्टि
 और मिथ्यादृष्टियों का संश्लेष में कथित (गुणस्थानवर्ध) कालक है अर्थात्

पदाभिरावा) अणुव्यसस्य पक्षीक इव पक्षदेव और विनयार्थं सहित स्वर्णसिद्धिदा कान्त निर्दो अणुवार । अथवा १ सूत्र ८

११ भव्याणुवारेन-मन्त्रेषु विद्यादृष्टीर्जीवापेक्षया सर्वे काल ॥ एत जीवापेक्षया द्वी भङ्गे । अनादि सपर्यवमान सादि सपर्यवतानश्च । तत्र सादि सपर्यवमानो ज्वयेनान्तर्भूत । उत्कर्षेणादृष्ट्यपरिवर्तो देशेन ॥ स.सादनमभ्यवहृदथाद्ययोगने वल्यन्ताना सामान्योक्त काल ॥

(११) मध्य-अणुवारेन ॥ मन्त्रेषु म विद्यावहृदः ॥ नाना नीय-अपेक्षया, सपरः कालः ॥ एकवीम-अपेक्षया ॥ द्वी १ मन्त्री ॥

अनादिः ॥ सपरि-अवसानः ॥

सक्य प्रादिः ॥ सपरि-अवसानः ॥

सक्यप्रादिः ॥ सपरि अवसान ॥ अवन्त्येन ॥॥

अन्तमुहूर्त १ । उत्कर्षेण २ । देशेनः ३ ।

अदृष्ट्यपरिवर्त ॥ सावाहनसम्यवृष्टि-आदि

प्रयोगेऽपि-अन्तानाम् ॥

सामान्य-उक्तः ॥ प्राक्तः ॥

मन्त्रपक्षे अणुवारकरी मध्यवीमो मं विद्यावृष्टिका अनेक

व्यीक्री अपेक्षासे समस्तकाल है । एक वीक्री

विविधासे दो वेद है

=आदिरहित (=अनादि) अन्त (=अवसान) सहित (=सपरि) अर्थात् अनादि सांख है

=(और दूसरा) आदि सहित (=सादि) अन्त (=अवसान) सहित अर्थात् सादि सांख है

=दोनों प्रादिसांख (काल) अवन्त्यकरी

=अन्तर्भूत है । उत्कृष्टकरी कृष्यदिन

=अदृष्ट्यपरिवर्तन (काल) है । सावाहनसम्यवृष्टीसेलेकर

=अपेक्षाकेनसी (वौहर्षेण गुणस्थानवर्ती) पर्यन्तोका

=संशेष (प्रकृत्य) करि कदाचिदा (गुणस्थानवत्) काल है

(वेदो) षष्ठ १८१ से १८८ तक इस मुद्रित पुस्तकका)

एकान्तिकात् अकारसदस्यै वक्ष्यते एव परं लोकेन और विनकार्यं महित सर्वाथसिद्धि का शब्दः। विष्ठी अनुवाद । अत्राय १ सुर २

शेषाणा सामान्योक्तं काल ॥ असंज्ञिना मिथ्यादृष्टीना जीवोपेक्षया सर्व कालः । एकजीवं प्रति जवन्येन क्षुद्र भवप्रदण्डम् ॥ तिगिसया लतीसा जावट्टी सहस्सगाणि मरणाणि । अंतोमुहुत्तमेत्ते तावदिया केव इति सुह भवा ॥ ६६३३६ ॥ उत्कर्षेणान्त कात्तिससुर्येया.

का नाता जीव अपेक्षा से और एक जीव अपेक्षा से जवन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्गुह्य है । अपूर्व कारण और अनिष्टि कारण कारण भेणी पहले सिद्धियों का नाता जीवऔर एक जीव अपेक्षा से जवन्य और उत्कर्ष अन्तर्गुह्य काल है

शेषाणां ॥
सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥

= श्वेतद्वये (सैनी दशवर्ग-भारहर्वा-भारहर्वा गुण स्थानकर्त्ता) निका
= संक्षेप (अक्षर) में क्या हुआ (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् शेष उत्क्रम भेणीवासे दशवर्ग-भारहर्वा गुणस्थानकर्त्ता सिद्धियों का नाता जीवकी और एक जीवकी अपेक्षा से जवन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्गुह्य है और शेष क्षरक भेणीवासे दशवर्ग भारहर्वा गुणस्थानकर्त्ता सैनिर्वा का नाता जीव और एक जीवकी अपेक्षासे जवन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्गुह्य है ॥ संक्षी प्रथमसे भारह गुणस्थान क्त रोवे है ॥ असंज्ञी केवल मिथ्यात्व गुणस्थानमें होते हैं ॥

असंज्ञिना ॥ मिथ्यादृष्टः ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥
सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति जवन्येन ॥

= समस्त काल है एक जीव कालिये जवन्यकारि
= समस्त (का काल) तिगि गया है [सो अर्थस के अठारहवर्ग भाग होता है]

क्षुद्रभवन-प्रदण्डम् ॥
सिद्धि ॥॥ अथा ॥॥ लक्ष्मीसा ॥॥ (श्रीशिव शशानि पद केवल-द्वीन सौ कवीस
छानडी ॥॥ प्रससागाधि ॥॥ (न्यटपट्टि ॥॥ सहस्रकाणि)=छासठ सहस्र
स्यणाधि ॥॥ अंतोमुहुत्त-मरणाणि ॥॥ अन्तर्गुह्य-मरण अन्तर्गुह्य
मेवे ॥॥ तावदिया ॥॥ व (सात्रे ॥ तावन्ता ॥॥ व) =मात्र में और (= व)रत्नने (अर्थात् ६६३३६)
एव इति ॥ सुह भवा ॥ (= एव भवन्ति क्षुद्रभवाः) = ही वक्ष्य भव (एक लक्ष्य पर्याप्तक जीव के) होते हैं ॥
उत्कर्षेण ॥॥ अन्त्याः ॥॥ कालः ॥ असंक्षेपेणः ॥

= (एन रीति मिथ्यादृष्टी का) उत्कृष्ट करि अर्नव काल है । सो असंक्षेप

एकविंशत्यंती अणुकारसङ्ख्या ब्रह्मकेन्द्र इत्यत्र एव क्लृप्तं और विनाशपर्यं साठिठ सङ्घातसिद्धिका सम्भवात् विधी अतुषाय । अत्राप्य १ एव ८

(१३) सञ्ज्ञानुवादेन - संहिष्टु मिथ्यादृष्टयाद्य निवृत्तिवादान्तानां पुर्वेदवत् ॥

सासादनसम्पगृहीका अनेक जीवकी अपेक्षासे बचन्य एक समय काल है उत्कृष्ट पदार्थके अस्तंभ्यातवां माग है एक जीवकी अपेक्षा स बचन्य एक समय उत्कृष्ट छः आक्सी है । मिथ गुणस्थान-शालोंका नागा जीवों की प्रति बचन्य अन्तर्मुर्तु है । उत्कर्ष फल्यके अस्तंभ्यातवां माग है । एक जीवकी अपेक्षासे बचन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुर्तु है । मिथ्या दृष्टियोंका नागा जीव अपेक्षा से सर्व काल है । एक जीव प्रति तीन मेद हैं (१) अनादि अनंत काल (२) अनादि सान्त काल (३) सादि सान्त काल । सर्वा सादि सान्त काल बचन्य अन्तर्मुर्तु है । उत्कर्ष कुछ नून जाय पुद्गल परावर्त है ॥

(१३) सञ्ज्ञा-अनुवादेन ॥

संहिष्टु ॥ मिथ्यादृष्टि-
आदि अनिवादिवादा-
अन्तानां ॥ पुर्वेदवत्

=संज्ञी के कथनानुसार फरि

=(प्रथम गुणस्थानवर्ती) सैनियोसं मिथ्यादृष्टि-

=से लेकर (= आदि) अनिवादिवादासाम्प्रसाय नवमां गुणस्थानवर्ती

=पर्यन्तिका पुन्यवेद समान (काल) है ॥ इसलिये पुन्य वेद के अत्युत्कल मिथ्या

दृष्टि सैनियों का नानाजीव अपेक्षासे सब काल है । एक जीव की अपेक्षा से

बचन्य अन्तर्मुर्तु है उत्कर्ष तीन सौ सागर से ऊपर और नौ सौ सागर छ नीचे

काल है । सासादन सम्पगृही सैनियों का नागा जीव अपेक्षा से बचन्य एक

समय है । उत्कृष्ट फल्य के अस्तंभ्यातवां माग है । एक जीवकी अपेक्षासे बचन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आक्सी है ॥

मिथ गुणस्थानवर्ती सैनियोंका काल नागा जीव अपेक्षासे बचन्य अन्तर्मुर्तु है उत्कृष्ट परप के अस्तंभ्यातवां माग

ह एक जीव की अपेक्षा स बचन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुर्तु है ॥ अस्तंभ्या सम्पगृही सैनियों का काल नागा जीव अपेक्षा

से सब काल है एक जीव की अपेक्षा स बचन्य अन्तर्मुर्तु है उत्कृष्ट वेतीस सागर से कुछ अधिक है ॥ संवगातंपमी

सैनियों का काल नागा जीव अपेक्षासे सर्व है एक जीवकी अपेक्षासे बचन्य अन्तर्मुर्तु है उत्कृष्ट कुछ घाटि एक

क्रोड पर है ॥ प्रमत्तंपमी सैनियों का और अत्रमत्त संवमी सैनियों का नागा जीव अपेक्षा से सर्व काल है एक

जीव अपेक्षा स बचन्य एक समय उत्कर्ष अन्तर्मुर्तु है ॥ अर्ध्वकरव्य और अनिवादि करव्य वयस्रमवेगीनाके संहियों

शापण/ सामान्योक्त काल ॥ अनाहारकेषु पिथ्याट्टेर्नाजीवापेक्षया सर्व काल । एकजीवं प्रति जवन्त्येक समय । उत्कर्षेण त्रय' समयया ॥

शेषाणां १,

सामान्य उक्तः । काल १

= (आहारकनिर्म) अन्वष्टिड (इससे तेरहवें गुणस्थानवासे) निका न्दीशेषसे कथित (गुणस्थानक) काल है अर्थात् १८१ से १८८ छु तक देखो और छु १८७ मेंसे अयोगकेवलियों का काल जो नाना जीव की और एक जीवकी अपेक्षा से जवन्त्य उल्टिड अन्त्यर्धुर्व है मत पदो ॥

अनाहारकेषु १। पिथ्याट्टे' । नाना जीव अपेक्षया ॥

सर्वे , काल १। एकजीवं , प्रति ३ जवन्त्ये १।

एका' समय १। उत्कर्षेण १। त्रय' । समययाः ।

= अनाहारकनिर्म पिथ्याट्टीका अनेक चेतनकी अपेक्षा से =सब काल है । एक जीवके लिये जवन्त्यकरि =एक समय (सत्र) है । उत्कर्षकरि तीन समय (तक विप्रदृष्टि में) हैं अनाहारक अबस्था जीव की पहले-दूगार-नौय-चरहवे-चौदहवे गुणस्थाना में है

(२) अगुत्र अस्तकथय मागाः देहागुष्ट २२० यह शान्त्य सशर्षे सिद्धि के बाना "देहकर्म म अगुत्र (एव गया) है यह बानर इस प्रकार होता कारिय कि अगुत्र अस्तकथेय मागाः एतदि औ'अगुत्र वे देहगुत्र समयता च । रिगे कर्षो' कीरद दाहकर्मल को ठ' ग' म' द' सा' (को ग' या २७ इस प्रकार कि ' अगुत्र अस्तकथ मागा काला आहारपरस उक्तस्या (अगुत्रास्तकथयमागाः काका आहार कथयतकथय) ॥ जीव परव मदीयिका दीका में इन का अर्थ एव क्रिया दे कि आहार काला उक्तयः सूत्रगुलास्तकथयैकगतान् " मागा दाहकर्मल जी आहार का काल उल्टिड सूत्रगुल के अस्तकथयतव माग प्रमाण है ॥ सुत्रगुत्र का अस्तकथयतवी मागा के अने प्रवेश हीरे विगत समय प्रमाण आहारक का काल है ॥ आचन्त् रायजी ने जी अस्तकथयतवी माग अनुयाव क्रिया है म रि अस्तकथयतमागा उल्टिड अगुल के अस्तकथयतवी मागा है ना असंकलान्तसुशान्तरसर्तिगी अरमर्तिगी परिभाष है । अगु के क प्रवेश और इन के समय समाप्त है ॥ सर्वार्थे सिद्धि ब्रह्मणिका पुष्ट मुद्रित २७ ॥ इस का मागा'श यह है कि आहार की अवस्था से निर्याट्टी का एव जी' की निर्यासा म उल्टिड काय सुत्रगुल के अस्तकथयतवी माग है इस सुत्रगुल के अस्तकथयतवी माग के प्रवेश सम्बन्ध गणना में इतने ही कि विगतसे पूर्वोक्त दिग्गी में कथित अन्तर्निष्ठी आरमर्तिगी काय लक्षणी काय क समय गणना में होते है ॥ (सुत्रगुल कथा हे पुं० २३९ स २७६)

(१) एक प्रो बनि शान्तानाहारका इती य स्वान्पत्तावा ॥

एक १। प्रो १। जीव १। शक

आर' आहारका १।

इति ३ अशमन्त्रावध १॥

(मया मय कायन' आरम चारण करने क लिये गयेन में जीव)

= एक (समय तक) क लिये वा (समय एक) को अवस्था दीन (समय तक) को

= अनाहारक है अर्थात् ना कर्म वर्तमान का आहार या मद्दण नहीं करता है

= पूर्वोक्ति केन्द्र (अर्थगण २ सू ३० में) कहा जायगा ।

अन्तर निरूप्यते- विवाहितस्य शुणस्य शुणान्तरसकमेसाति पुनस्तथापि प्राहुमध्यमन्तरम् । तत् द्विविधं
 धम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत् मिय्याष्टयेर्नाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति
 जघन्येनात्सुर्ध्वर । उरकण इ पृथुषी देशोने सागरापमाणाम् भासादनसम्पदष्टरन्तर नाताजीवापेक्षया

अन्तरं॥ निरूप्यते॥ विवाहितस्य, गुणस्य॥

=अन्तर अर्थात् विरह वा किछोदकाल निरूप्य मित्या जाता है अर्थविरहशुणका

शुणान्तरसकमे॥ सर्ति॥ पुनः क वय-भाग ॥ प्राक्क =अन्त्युष्णमे फस्टन रोनेपर (=सावि)फिर उसी (शुणकी) प्राप्तिसे पहिले

धम्यम्॥ अन्तरम्॥

=धम्य वा पीच (रा काल) सो अन्तर है अर्थात् एक शुणको छोड़कर फिर उसी शुणके मध्य करने में बिलम्ब या देरी हो सो अन्तर है ॥

वत्॥ द्वि विधम्॥ सामान्येन॥ विशेषेण॥ एक =यह (अन्तर) दो प्रकार है संशयकारि और (=च) भेदकारि

सामान्येन तावदक मिय्याष्टे॥ नाताजीव-अपेक्षया॥ =संशयसे प्रथम (=साध) मिय्याष्टिका भनोक भीवकी अपेक्षा स

न-अस्ति अन्तरम्॥ एकजीवं, प्रसिद्ध जघन्येन॥

=अन्तर नहीं है । एक जीव के स्थिये जघन्यकरि

अन्त्युष्टरः॥ उरकणम्॥ देशोने॥ दे॥

=अत्युर्ध्वर (अन्तर) है । उरकणकरि कुछ न्यून शुणुणे

पृथुषी॥ सागरापमाणाम्॥

=छासासिद्धि (अर्थात् एकसो पचीस) सागरापमका (अन्तर) है

साधारतसम्पदष्टः॥ अन्तरः॥ नाताजीव अपेक्षया =साधारत साम्यदृष्टीन घालेप्रा (विगहकाल) अनेक भीवकी अपेक्षा से

(१) एकान्तविशति (अतीस) म यरव्यवति (विध्यान्तरे) ठइ भावभि आहोसो सख्यत की सख्यगामां को सखा माण सखन है ये मय आसो इ
 की सिद्ध म है । संका सिद्ध के साथ ये कार्य जाती है । बहु बजान सखा क साथ ये एक बचन में कार्य आ सखती है अिस पदव्याह ।
 देव-विदाः १ । पृथुषी ॥ आशानि ॥॥ छयासठ विरस साधयति स्तुतया ॥॥ १ विनाति ॥॥ प्राहाणा ॥ अथवा विनाति प्राहाणाः ॥॥ (कीस
 प्राहाण) दूसरी मीकाको के समाग ये द्वि पचन और बहु बजान में भी कार्य आ सखती है परंतु उस समय में संझाय सिद्ध क साथ ये कार्य
 जाती है पची विनाति २ इसी है अम प्राहाणां ॥॥ विधाती २० (रा कोपी वा की बीसी प्राहाणां) की प्राहाणां ॥॥ विधातय १६ बहुत कोपी
 प्राहाणां की ॥ इसी प्रकार इरुं पदव्याही १० सामान्येणया २ ॥॥ रा गुणे छायासिद्धि नाणर । ११ अस्ती सख्यगामां म ये किस्ती को भी एक
 बचनमें आनेपर भी सखापे अन्तरे साथ ये सखापे कार्य आरि पची विनातिमें भी का । आसकती है जेहे प्राहाणां ॥॥ विधातिः ॥॥ एकजीवी प्राहाण १

एतन्निवासी अन्तरसहस्र पक्षीस इत पक्षकेषु और विमलपथ मन्दित्र सर्वांसि सिद्धि वा उपभूताः द्विन्वी अमुखात् । अत्रापि १ पृष्ठ ६

सामादन १भयभट्टयसैयतसपयभट्टयर्नानाजीवापक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण, वलिकाया असस्येय
 भाग । एकजीव प्रति जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण द्वौ मय्यो ॥ सयोगकेवलिनो नानाजीवापक्षया जघन्येन
 त्रय समया । उत्कर्षेण सस्येया समया । एकजीव प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्च त्रय मयया ॥ अयोगकेवलिना
 मामान्योक्त फल ॥ फलानि वर्णित ॥

सादारनसपयभट्टि-असैयतसपयभट्टयो १ नाना
 जीव अयेव १ ॥ जघन्येन १, एक, १, समया १
 उत्कर्षेण, आर्वालिक्कायाः ॥ असस्येय भागाः ॥
 एक जीव, १, प्रतिक जघन्यत । एकः १, समया १।
 उत्कर्षेण, द्वौ, १, मय्यो, १, सयोग-केवलिनाः ॥
 नाना-जीव अयेवया, ॥ जघन्येन १, त्रयः, १।
 समया १, उत्कर्षेण, १, सस्येया १।
 पक्ष्येक जीव १, प्रतिक जघन्य १, उत्कृष्टः १, १
 त्रय, १, समया १।

सपय में प्रतर समुद्रयास करते हैं और चौथे समय में लोकेषु समुद्रयात को करते हैं, फिर इस लोकेषु समुद्रयात को
 पाकवी समय में संकोषत हैं तब इन तीसरे चौथे पाकवी समय में कामांज योग होता है और अनाहारक अपस्था होती
 है ॥ "ओराठंद्रपद दुगो" इत्यादि भाषा पृष्ठ १२५ से प्रतर समुद्रयात के संकोषते में छठी समय में भी कामांज योग
 होता है अतः चार समय अनाहारक हो जाते हैं ॥ क्रिकेक आचार्य तीन समय ही मानते हैं (११६ से १२६ तक)
 =सयोगकेवलीयका संस्रेय (प्रकृष्टण) में फलित (गुणस्थानकत्) फल है
 अर्थात् नाना जीवकी और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट
 अन्तर्भूत है (पृष्ठ १८७ क अमुखात्)

सामान्य-उक्तः १, फलानि वर्णित ॥
 =अनाहारक (असस्येय) अथवा अनाहारक फलानि वर्णित ॥
 =अनाहारक (असस्येय) अथवा अनाहारक फलानि वर्णित ॥

एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्गृहृतः । उत्कर्षात् पुद्गल परिवर्तो देशोन ॥ चतुर्णां क्षयकाणामयोगे
 देवादिना च नानाजीवापेक्षया जघन्येनेक समय । उत्कर्षेण पणामा । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥
 सयोगेकेवलीना नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ विशेषेण (१) गरपनुवादेन-नरकजातो
 नारकाणा सधु पृथीषु मिथाहृष्ट्यसंयतसम्प्राहृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति
 जघन्येनान्तर्गृहृतं । उत्कर्षेण एक-त्रिसप्त दश-सप्तदश-

एकजीवं ॥ प्रति+अन्त्येन ॥॥ अन्तर्गृहृतं ॥
 उत्कर्षेण ॥ देशेन ॥ अर्द्धपुद्गल-गारिवर्धे ॥
 पृथुणाम् ॥ षडकाम्याम् ॥
 चकृश्राणकेवलीना ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥॥
 एतः , समय ॥ उत्कर्षेण ॥ पणामाः ॥
 एकजीवं , प्रति * न * अस्ति ॥ अन्तरम् ॥॥
 यथागजजीनां ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ न * प *
 एक-जीव अपेक्षया ॥॥ न * अस्ति अन्तरम् ॥॥
 द्विगुणम् , [१] गति अनुवादेन ॥ नरक-जातो *
 नारकाणां ॥ सधु ॥ पृथीषु ॥ मिथाहृष्टि
 प्रसवसमयपर्यन्तयोः ॥ नाना जीव अपेक्षया ,
 न अस्ति अन्तरम् ॥॥ एक-जीवं ॥ प्रति * जघन्येन
 प्रपुंसोर्भे ॥ उत्कर्षेण ॥ एक-
 त्रि-सप्त-
 दश-सप्तदश-

न्धार उपशम भेदीवालेकानिका) एक जीवके लिये जघन्यकर्त्तृ अन्तर्गृहृतं है
 = उत्कटकरि कुछ घाटि अर्द्ध पुद्गल परावर्तन (विरह काल) है
 = चार(आठ) से ध्वरे तक-भारहवे गुणस्वानववर्ष)धक्क भेदीवालेनिका
 = श्रोत(=च) अदोग केशती निका अनेक जीवको मिरगाल जघन्यकर्त्तृ
 = एर सप्ता(विरहकाल) है । उत्कटकरि छद् मरीना अन्तर है
 = (उक्त क्षयक भेषियां का) एक जीव क लिये(कुछ) विरहकाल नहीं है
 = सयोगेकेवलीनिका अनेक जीवों की विनयगारे श्रात(=च)
 = एक जीव की अपेक्षासे (कुछभी) विरह काल नहीं है
 = येदकरि (१) गति के कथनावुसारकरि-नरक गति में
 = नारकिका साठवे नरकमें = दृष्टीषु ॥) मिथ्याघटि और
 अक्षयत सम्प्राहृष्टनमासेनिका नानाजीव की अपेक्षा से
 = (कुछ) विरह काल नहीं है । एकआठकेलिये जघन्यकर्त्तृ
 = अन्तर्गृहृतं (अन्तर) है । उत्कट करि (प्रथम नरक में कुछ हीन) एक
 = (दूसरे नरकमें कुछ नून) हीन (तीसरे नरकमें कुछ नून) साठ
 = (चौथे नरक में किसीघ घाटि) दण (पाचवां नरक में कुछ घाटि) सत्तर

जवन्येनेक समय । उत्कर्षेण पत्योपमासंख्येयभाग । ए.जीव प्रति जवन्येन पत्योपमासंख्येयभाग उत्तरणाद्धंपुद्रपरिवर्तो देशोन ॥ सम्पत्तिमय्याहरेन्तर नानाजीवपक्षया गामादनवत् । एकजीवं प्रति जवन्यनान्तमुर्ध्वत । उत्कर्षेणाद्धंपुद्रपरिवर्तो देशोन ॥ असयत म्यहृष्ट्याद्यप्रमतान्ताना नानाजीवपक्षया नास्त्यतरम् । ए.जीव प्रति जवन्येनान्तमुर्ध्वत । उत्कर्षेणाद्धंपुद्रपरिवर्तो देशोन ॥ चतुर्णामुपशमकानां ना । जीवापेक्षया जवन्येनेक समय । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्

जवन्येन ॥ एकः । समयः । उत्कर्षणः । पत्योपमा-

अंतमय-भागः । एकजीवः । प्रति जवन्येनः ।

पत्योपमा का असंख्यय भाग । उत्कर्षणः । देशोनः ।

अर्ध-मुद्र-परिवर्तः । सम्पत्तिमय्याहृष्टः ।

अन्तः । नाना जीव अपेक्षया । सासादनवत्

एकजीवं । प्रति जवन्येन । अन्तमुर्ध्वत । उत्कर्षेण ।

अर्ध-मुद्रल परावत् । देशोनः । असंघ-

सम्पत्ति-मयि अप्रपञ्च-अन्तानां । नानाजीव

अपेक्षया । नञ् अस्ति । अन्तरम् ।

एकजीवं । प्रति जवन्येन । अन्तमुर्ध्वतः । उत्कर्षेण ।

अर्ध-मुद्रगल परिकरः । देशोनः ।

श्रुत्याम् । उपशमकानाम् ।

नाना जीव अपेक्षया । जवन्येन । एकः । समयः ।

उत्कर्षेण । अप-मुद्रसंज्ञम् ।

-जवन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि पत्योपमके

-असंख्यात्वे भाग है । एक जीव के लिये जवन्यकरि

-पत्योपमा का असंख्यात्वात् छंद है । उत्कृष्ट करि कुछ न्यून

-अर्ध मुद्रल परावर्तन है ॥ मिथुणस्थान धर्मीनिका

-विरह काल अनेक वीधकी विवक्षा से सासादन (रूसरे गुणस्थान)सम है

अर्थात् जवन्य अरु एक समय है उत्कर्ष पत्य के असंख्यात्वात् भाग है

-एक जीव के लिये जवन्यकरि अन्तमुर्ध्वत है । उत्कर करि

-कुछ घाटि आय मुद्रल परावर्तन है । असंघमो

-सम्पत्तिकेन बाले से अप्रपञ्च गुणस्थानवकनिका अनेक जीव की

-विवक्षा से विभाग काल (कुछ) नहीं है ॥ (बीये से सावत् गुणस्थान बालोका)

-एक आत्मा के लिये जवन्य करि अन्तमुर्ध्वत है । उत्कृष्ट करि

-कुछ न्यून भाव मुद्रगल परावर्तन (अन्तर) है

-चार उपशम श्रुती (आठवें से ग्यारहवां गुणस्थान) बालनिका (अन्तर)

-अनेक जीव की विवक्षा स जवन्यकरि एक समय है

-उत्कृष्ट करि पुषस्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) धर्म है

प्राग्निवासी आत्मसहाय कवीन्द्र कुल परब्रह्म और विभवपव मण्डित सारीप्रेक्षिति का प्राणया। विधी अनुशास्त्र । अत्राण १ सूत्र :

अधिष्ठात् ॥। अग्नि ० कर्मणात् ॥ (कर्मणा ॥॥॥) ?

न ० अग्नि ० वेद ० धृषण्या आत्मनात्

वेदक गुणकत् ॥ तिर्यक्तु ०। कर्णात् अनात्वात् ॥।

उद्ग-गुण ॥। वि० क्षेत्रेणु ०। एव ० कर्त्तव्यते ॥

कारा ० सिद्ध्यात्पुत्रकाः ॥ विपत्त्यन्तम-मायुकाः ॥।

मौससुमित्तु ०। कर्त्तव्यते ॥ एव ० अ ० कर्त्तव्यता ॥।

तिर्यक्तु-समुत्थात्ता ॥। विधिवात् ० अत्यधिक काल-

कर्मणात्प्राय ॥। तिर्येणु ॥। सप्तमस्तत्र प्रथम-योग्यता ॥।

नवति नियमात् ॥। एतद्वत् ० तिर्येणु ०। सिद्ध्यात्

परिचयात् ॥। सप्तमत् ॥।। सूत्रवादि ॥। वि पत्त्योपमा

आयुः क्षेत्रे ॥। गुणसिद्ध्यात् ॥।। यद्विचरते ॥। एतत्

योग्यताहे ॥। विधिवात् ० अधिक कालकर्मणात्प्राय ॥।।

तिर्येणु ॥।

२ (सिद्ध्यात्पि तिर्यक्त्वा उक्तं अस्ति तीत्र एवमेत) अधिका रिस्त क्षेत्रे से

२ माही है ऐसी ही भाष्य (२-वेद-उक्तं है कि) क्षेत्रीका प्रात्मन करने वाले
क्षेत्री धर्ममोक्षक्षीरार्थकी हीमसिद्ध्यात् (२-कारण अत्राण/स्वपरकत्व सिद्ध्यात्
(विना कर्म प्रकृति के उदय से सिद्ध परिणाम ही) जिनको न तो सम्भवकत्व ही
और न सिद्ध्यात्कषारी कह सकते हैं) और सम्भवप्रकृतिसिद्ध्यात् (जिनके
उदय से स्वपरकत्व का सूक्ष्मता ही न ही परंतु बल मकारि क्षेत्री) के कारण
आत्मन करने वाला

२ स्वपापदाम सार त्सा इ संहित (बीच) का तिर्येता में अत्रका क्षयात् क्षेत्रीसे

२ बल क्षयक्यात्मनात् वेद ० स्वपरकत्व मण्डित बीच क्षेत्री म ही उच्यन्ता है

० इत्यधिके सिद्ध्यात्प्राय हीन एवमप्राय आयुःसहित

० योग्यतापूर्वको म अत्राण आत्मा करता है और (२-१) बहो उच्यन्ते बाल

२ तिर्येत्वा और मनुवाही की कुछ अधिक काल

२ आत्म न द्विपत्त में सम्भवपूर्वक प्राप्तिकी यत्नया वा यत्नार्थ

२ शरी है क्योंकि नियमते करने विना म सिद्ध्यात्

० शीघ्रक्षेप है और स्वपरकत्वका प्रथम करता है । हीन एवम प्रमाणा

० आयु क कुछ क्षेत्र रहने पर फिर सिद्ध्यात्प्राय प्रथम करता है एव प्रकार

० मार्ग (के रहने के) कालमें, कुछ अधिक अक्षयताकीस विलसणित (काल-मं)

२ क्षयात् अब योग्यताका मनुवाय तिर्येत्वा बाल आत्माया से लक्ष्यार्थ का पूर्वमे के

स्वपरकत्व के प्राप्त करने के योग्य होजाता है वह सम्भव

२

वर्षादिपानी प्राणव्यासहार पकील हल पयच्छेय और निराचयं सहित सर्वाणिसिद्धिदा वाच्यशा विरी भाउहाय ६ अथाय १ मन्त्र २

द्वाविंशतिन्यास्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशानानि ॥ मासादन सम्यग्दृष्टिसम्यङ्गिष्यधाट्टपोर्नीना धिषेक्षया जयन्त्येक समय उत्कर्षेण पत्न्योपमासंख्येयभाग । एकजीव प्रति जयन्त्येन पत्न्योपमामख्येयभागाइन्तमुद्दृतंश । उत्कर्षण एक त्रि सठ दश सष्टदश-द्वाविंशति त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशानानि ॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चा मिय्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जयन्त्येनान्तमुद्दृतः । उत्कर्षेण त्रीणिपत्न्योपमानि देशानानि ॥

दा-रिद्धति—प्रयच्छिद्यत-सागरोपमाणि ॥ १ ॥ देशानानि ॥ ॥ ॥ =छठे नारकमें कुछ न्यून) शारीस (सातवां में) कुछ न्यून वेतीस सागर प्रमाण है सासादन सम्यग्दृष्टि—सम्यद्दृषिय्यादृष्टयो ॥

नानाप्रैव—अपथाया॥ बचन्येन एक ॥ समय ॥ =आसादन सम्यग्दृष्टन्यासे और मिथ गुण स्थानान्वासे (नारकिनिका)

उत्कर्षण ॥ पत्न्योपम—असंख्येय—भाग १ एकजीव ॥ =उत्कृष्टकरि फल्यक असंख्यातवां भाग है । एक (नारक) नीक्क

प्रति बचन्येन ॥ १ फल्योपम—असंख्येय—भाग ॥ १ ॥ एक (नारक) नीक्क असंख्येय ॥ उत्कर्षण ॥ एक—त्रि—

सा-र-द- =अन्तमुद्दृत है उत्कृष्टकरि (प्रथम नारकमें कुछ घाटि) एक (दूसरे नारकमें कुछ न्यून) मीन

सा-र-द- =गीसरे नारकमें कुछ हीन) सात (चौथे नारकमें कुछ न्यून) पय

सा-र-द- =पाचवां नारकमें कुछ घाटि) सत्रह छठे (नारकमें कुछ न्यून) शारीस

प्रशस्त्रिंशत् सागर उपमाणि ॥ १ ॥ देशानानि ॥ ॥ ॥ =सातवां नारकमें) कुछ न्यून वेतीस सागर प्रमाण [तिरह काठ] है [नारकीयो

के प्रथम मिय्यात्वं से असंख्य चौथे गुणस्थान तक धराही हो गयते है]

सिच मात्रौ ॥ तिरश्चां ॥ मिय्यादृष्टिः ॥ नानाप्रैव—

अपथाया ॥ नरक अस्ति अन्तर्ग पृथकीर्ष ॥ प्रति बचन्येन—अपेक्षा स विरहकाठ नहीं है । एक (तिर्यच) जीव के छिये अचन्यकरि

अन्तमुद्दृत उत्कर्षण त्रीणि पत्न्योपमानि ॥ १ ॥ देशानानि ॥ ॥ ॥ =अन्तमुद्दृत है । उत्कृष्टकरि कुछहीन तीन पत्न्य प्रमाण है

(1) त्रिषि क्वापि इत्यप्येति चत् सागारसंख्येयक्युत्पत्त्ये सिद्धेश्चाराभावात् । तद्य कादि देशव्याप्यत्वात् । अन्तौ मिय्यात्वंशुक्कियत्पत्न्योपमागुहा

समायुमिदृश्यादेः । तत्र आसराज्ञानं सिद्धेननुपपत्त्यां सिद्धिद्वयमिच्छाकाठभाविरेवैव सतराशःसद्वर्णोपमा भवति । सिचारादेतापान्द्वेषु सिद्धान्त

परितोपमात् सप्तसप्त पञ्चवति । मिय्यत्वंपत्न्योपे शेषे तुनीमिच्छात्वं परिकल्पते । एति नरककीर्षिन्यदिच्छाकाठभाविरेवैवैरन्तरसातकाठे नारकस्य च

दशसप्तसागारानि कल्पयति ॥

यदा भगवती ब्रह्मसत्त्वात् बलीकं कृतं पश्यन्नेव श्रीरं ब्रह्मणं सति न सतीति विदित्वा पश्यन् गं द्वितीं मनुष्यात् । अथा ग १ अथ न

मनुष्यातो मनुष्याणा मिथ्यादृष्टोस्तिर्यग्वत् ॥ सासादनसम्पत्तदृष्टिमम्यमिथ्यादृष्ट्युचोर्नान्नाजीवारेक्षणा
सामान्यवत् ॥

समय है ॥ उत्कृष्टकरि फल के अंतक्यातवां माग है । एक जीवके लिये अबल्यकरि फलका अंतक्यातवां माग है उत्कृष्टकरि कुछ नून अर्द्ध गुरल्ल फावर्तन है । मिथ सीसरे गुणस्थान धर्तीय तिर्यचनिका विरहकाळ अनेक वीचकी अपेक्षा से अबल्य एक समय है । उत्कर्ष फलके अंतक्यातवां माग है । एक जीव के लिये अबल्यकरि अत्यूर्ध्व है उत्कृष्टकरि कुछ पाटि आवे गुरल्ल फावर्तन है । अंतक्या सम्पत्तर्धन वाले तिर्यचो का श्रीर संयमा संयमी पाचवं गुणस्थानकर्त्री तिर्यचोका अनेक वीचकी विवधा से विषोमफाल (कुछ) नहीं है । एक जीव के लिये अबल्यकरि अत्यूर्ध्व है । उत्कृष्टकरि कुछ नून आवे गुरल्ल फावर्तन (अंतर) है (तिर्यचों में पाच ही गुणस्थान रोधे हैं)

मनुष्यातोऽऽ मनुष्याणाः। तिर्यकत्वः ॥ तिर्यकत्वः ॥ =मनुष्यमात्रे मनुष्यमिथ्यादृष्टोका तिर्यच सद्य (अन्तर) है अर्थात् मिथ्यादृष्टि मनुष्योका गाना वीचकी अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है एक वीचके लिये अबल्यकरि अत्यूर्ध्व है । उत्कृष्टकरि कुछ हीन चीन फल है

(मनुष्य मोम वधि में रोधे ही उत्सव रोध है वेसे तिर्यच टिप्पणी २२७-२२८)

सासादन-सम्पत्तदृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टयोः।
नान्तर्धीन-अपेक्षणाः॥ सामान्यत्वः*
=सासादन गुणस्थानकर्त्री (मनुष्य) निका मिथ गुणस्थानकर्त्री (मनुष्य) निका
=अनेक वीचकी अपेक्षा से (अन्तर) संक्षेप (प्रकरण) में कथित (गुणस्थानवत्) है
अर्थात् दूसरे गुणस्थान शालोका अल्प एक समय है उत्कृष्ट फल का अंतक्यातवा
माग है ॥ तिर्यका मी (सासादनवत्) अबल्य एक समय उत्तरं फलके अंतक्यातवा
समय है ॥ (पृ. २२३, २२४ केसो)

एतद्विषयी अत्रोक्तत्वात् वहीह इत एवमेव और विमलचयं सहित सर्वांगसिद्धिका लक्षणां हिंदी अनुवाक । अन्वय १ ८०

सामादनमप्यारट्ट्यादीना चतुर्णां सामान्योक्तान्तरम् ॥

सामान्न सम्पराट्टि-आदिनाम् ॥ पशुणांम् ॥

सामान्य-उक्तम् ॥॥ अन्वयम् ॥॥॥

च २ अत्रसामान्ये १ शायम् ।

एतन्नाम् ॥॥ इत्यानाम् ॥॥

इत्यर्थम् ॥॥

—साधारण सम्पराट्टि आदिक पार (इससे पाँचवां गुणस्थान वाले) निका

—संश्लेष से कथित (गुणस्थानवत्) विरहकाल १, अर्थात् साधारण गुणस्थान

वाले विरचनिका (विरहकाल) अनेक बरिषों की अपेक्षा में ज्ञापन्यपरि एक

—और । — (च) अतिम । प्रत्येक काल में [आयुको] बचावृत्ता कुछ अवधिं यामभूमि

के मनुष्य वर्षवत् के मरने से पहिल आयु के बचे हुए काल में सम्पन्नत्व नहीं रहता

— [उक्त तीन प्रकारके कार्योंका उक्तव आयु धीनत्वना में से] पहिले से कुछ दिन

[विभवावश्यक अन्वयकाल] निदराव लक्षण सम्पन्नत्वका प्राप्तर फिर

निदराव में जानेका] जानवा चाहिये आयवा जानीं

एतद्विषयीह भाषार्थ निम्नरुक्ते मयम् एत यत्तका विजयीया अथित मयुग्मे है कि निदरावपी विरचनिका बली अन्तर है आ निदरावपी

मनुष्यां का मनुष्य यकी मनुष्यावा विदरावविस्तिर्भावत् पूव एत, के अनुकूल अत्र मयव एतकल्पनं होयवा कि निदराववि विरचनिका

मनुष्यां के निदरावका अन्तर क्या है अर्थात् पहिलमनुष्य का पहिल निदराव सहित या पश्चात् निदराव लक्षण सम्पन्नत्व पहिल किया और पुन

निदराव में आयवा या पविदीवार निदरावसे वृद्धीवाट निदराव पहिल करने में किन्ना काल वरीति वृद्धा बली अन्तर वा विरह काल निदराव

का है । उदाहरण के लिये तीन पत्र प्रकाश है सा दोसे १ (इतर), वरीं मारीवीरुद्धनं की तीन निदराव, मरकरकनिदराव, सम्पन्नत्व अकति

निदराव क संश्लेषा प्रत्येक वर्षकसामयसहित आयवा जान दोषों में ही होता है अतः निदरावकाले जीवका जान मोगाभूमिके विरचनिका या मनुष्य में

का मयव १ । संश्लेषा में प्रकृत आयु तीन व्यक्ती १। मयवी है जिसमें निदरावका अंतर होना है अर्थात् तीन पत्रवत्क सम्पन्नत्व रहता परन्तु उन

तीन पत्रों में से (१) यकीं पहले का काल (२) यामभूमिके मनुष्य पारिवर्धनमें आय होने से अत्रवर्द्धीय विरचनिका अथिह कुछ अथिह ममना वत्क निदराव उक्त

मनुष्य या विरचनिके सामयक मयव करने की योग्यता नहीं होती है (३) मयवसे पहिले कुछ कालक सम्पन्नत्व नहीं रहता पर ३ में तीन प्रकारका सम्पन्न

तीन पत्रवत्क पत्रक अन्तरकाल तीन पत्रवत् कुछ जादि ही रहता है इस विषये उक्त अन्तरकाल तीन पत्रवत् कुछ मयव ही नहीं ॥

उत्कर्षेण पूर्ववादी पृथक्त्वानि । शेषाणा मामान्यवत् ॥ देवगती देवानां मिथ्याहाट्टयमप्यतमम् इष्टया
 नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण एकत्रिंशत्तमगारोपमाणि देशानानि ॥
 सासादनसम्पन्नदृष्टिसम्भित्पथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनपत्यापसा/मस्येय
 भागोऽन्तर्मुहूर्तेश्च । उत्कर्षेण

उत्कर्षेण । पूर्वश्रेष्ठी पृथक्त्वानि ; गन्धेयानां ।

- उत्कृष्टद्विरी वीन से ऊपर नवसे नीचे (= पृथक्त्व) करोह पूर्व है अवशेष
 (चार अपूर्णकल्प आठवां-अनिर्वाहिककल्प नक्षत्रां-अनुसारांपरायदक्षत्रां सीधकल्पय
 पारावै गुणस्थानकर्त्री सयोग केवली और अयोग ववली) निका

सागान्यवत्क

(विरह काल) संश्लेष [वक्रत्व में पूर्व कश्चित् गुणस्थान] सद्य है अर्थात् चार क्षणभण्णीवासे और अयागनेवलियों का
 (अन्तर) नाना वीच की अपेक्षासे अचन्य एक समय है उत्कृष्टकारि छद् मास है । एकजीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं
 है । सयोगकेवलियों का नाना वीच अपेक्षा से और एक वीच अपेक्षा से अन्तर नहीं है [देखो पृष्ठ २२५]

देवगती १० देवानां । मिथ्यादृष्टि-अर्थवत् सम्पन्नदृष्टोः । - देवगति में सुरु मिथ्यादृष्टि और असंयमी सन्पदर्थनवाले (देव) निका

नानावीच-अपेक्षया १० न अस्ति अंतर ॥॥ एकजीव १ ।

प्रति अचन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥ उत्कर्षेण ॥

एकत्रिंशत् ॥ सागारोपमाणि ॥ देशेनानि ॥॥

सासादन सम्पन्नदृष्टि सम्भित्पथ्यादृष्टयोः । नाना-वीच

अपेक्षया ॥ सामान्यवत्क

- कुल ईन इकरीस सागर प्रमाण है
- सासादन [द्वितीय] गुणस्थानवर्ता [देव] मिथ [सीसरे] गुणस्थानत्वासे [देव] निका
- (विरह काल) नानावीच की अपेक्षा से संश्लेषधियय में पूर्वक्रियित गुणस्थानां
- सद्य है अर्थात् अचन्यकारि एक समय है । उत्कृष्टकारि पत्यनेके असंख्यावतां
- भाग है [देखो पृष्ठ २२३, २२४
- [सासादन मिथकर्त्तारिकेका] एकजीव की अपेक्षा से अचन्यकारि पत्योपम के
- असंख्यावतां भाग है और अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकारि

एकजीव ॥ प्रति अचन्येन ॥॥ पत्योपम-
 असंख्येय-भागः । अन्तर्मुहूर्त ॥ च-उत्कर्षेण ॥

एता निवासी आकाशतटा पर्वत उत पर्वतोर और विनकरयर्ष महि कर्षार्थं क्षिप्रिका वायुः। हिंरी अमुपाव । कस्याय १ सुख ८

एव जीव प्रति जघन्येन पर्योगमासत्येयभार्गोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण श्रीणि पर्योगानि पूर्वकोटीपृथ
कस्तरभ्यधिकानि ॥ असयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एव जीवापेक्षया जघन्यनान्तर्मुहूर्तः ।
उत्कर्षेण श्रीणि पर्योगमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वरैर्यधिकानि ॥ संयतासयत्प्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया
नास्त्यन्तरम् । एव जीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि ॥ चतुष्णामुपश्रामकाना
नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त ।

एक-वीर्यं । प्रविष्ट

अपन्येन ॥॥ पर्योगम-असास्येयसमा अन्तर्मुहूर्तः । व
उत्कर्षेण श्रीणि ॥ पर्योगमानि ; पृथक्कोटीपृथक्त्वरैः ॥॥
अभ्यधिकानि ॥॥ असंयतसम्यग्दृष्टं । नानाजीव-
अप्यथा ॥॥ नरु अरिता अन्तरम् ॥॥ एक-वीर्य-अपेक्षया ॥॥
अपन्येन ॥॥ अन्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण । श्रीणि ॥॥ पर्यो
कानि ॥॥ पूर्वकोटीपृथक्त्वरैः ॥॥ अभ्यधिकानि ॥॥
संयतासयत् अमव-अप्रमत्तानां । नानाजीव-
अपेक्षया ॥॥ न अरित अन्तरम् ॥॥ एक-वीर्यं । प्रविष्ट
अपन्येन ॥॥ अन्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण । पूर्वकोटी-
पृथक्त्वानि ॥॥ चतुष्णाम् ।
उपश्रामकानां । नाना-वीर्य-अपेक्षया ॥॥
सामान्यवत् ॥

एक-वीर्यं । प्रविष्ट अपन्येन ॥॥ अन्तर्मुहूर्तः ।

ए(सासादन और मिथ तीसरे शुभाशान्तरही मनुष्यानिका) एक-वीर्यके लिये

=अपन्येन प्रति पर्योगम के असंयत्तासयत्प्रमत्तानां और अन्तर्मुहूर्त है ॥
=उत्कर्षेण प्रति तीन परम प्रशया पृथक्त्व (दीनर दुर्ध्वे नीचे नीचे) बरोट् पूर्वकारि
=अधिक है असंयमी सम्यग्दृष्टनशासे (मनुष्य) निका अन्तर् वीर्यकी
=अपेक्षा से विरह काळ नहीं है एक वीर्य के कम्पनानुसार से
=अपन्येन प्रति अन्तर्मुहूर्त है । उत्कर्षेण प्रति तीन पर्यो
=प्रमाण और पृथक्त्व (तीन से उत्तर नौ स नीचे) बरोट् पूर्वकारि अधिक है ॥
=संयतासयमी, प्रमत्तसयमी, अप्रमत्तसयमी (मनुष्य) निका नानाजीव
=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्मा के लिये
=अपन्येन प्रति अन्तर्मुहूर्त है । उत्कर्षेण प्रति तीन बरोट् पूर्व के
=उपश्राम शयी चढ़ने कावेनिका नाना वीर्यो क कम्पनानुसार प्रति
=संश्लेष (प्रकरण में पूर्व कक्षित गुणस्थान) बर (विह काळ) है अर्थात् नाना
वीर्य अपेक्षा से अपन्य एक समय है । उत्कर्षेण प्रति तीन और नव दय क मध्य है
=चार उपश्राम शयी कावेनिका) एक वीर्य के लिये नव यद्वि अ-चसहर्त है

उत्कर्षेण पूर्वकंठी पृथक्त्वानि । शेषाणा मामान्यवत् ॥ देवगतौ देवाना मिथ्याहाट्टयमयतमम् उट्टया
 नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुद्धृतः । उत्कर्षेण एकत्रिंशत्तमगारोपमाणि देशानानि ॥
 सासादनसम्पन्निष्टिसम्भिमिपथाट्टयान्तर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पत्न्यापमापस्त्रिय
 भागोऽन्तर्मुद्धृतश्च । उत्कर्षेण

उत्कर्षेण ॥ पूर्वकंठी पृथक्त्वानि ॥ शेषाणां ॥

- उत्कृष्टकारि चीन से उत्तर नवसे नीचे (= पृथक्त्व) क्लोड पूर्व है अथवा
 (चार अर्धैकरूप आठवां-अनिर्दिष्टरूप नववां-सप्तसप्तपरापरशुशुभं शीघ्रकामाय
 वासहरे गुणस्थानवर्ती सयोग केवली और अयोग कवली) निका

सामान्यवत्

(विरह काल) श्लेष [पक्षराण मे पूर्व कक्षिण गुणस्थान] सद्य है अर्थात् चार धरुकेभणीवाले और अयोगकेवलियों का
 (अन्तर) नाना वक्ष की अपेक्षासे अदन्त एक समय है उत्कृष्टकारि छह मास है । एकजीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं
 है । सयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है [देखो पृष्ठ २२५]

देवगतौ १२ देवगतां ॥ विन्याहाट्टि-अश्वथ सन्पराट्टयोः ॥
 नानाजीव-अपेक्षया ॥ न अस्ति अंतरं ॥ एकजीव ॥
 प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुद्धृतं ॥ उत्कर्षेण ॥

एकत्रिंशत् ॥ सप्तरोपमाणि ॥ देवोपेतानि ॥

सासादन सम्पन्निष्टिसम्भिमिपथाट्टयो ॥ नाना-जीव
 अपेक्षया ॥ सामान्यवत्

एकजीव ॥ प्रति-जघन्येन ॥ पत्न्योपम
 अस्तस्येव-भागः ॥ अन्तर्मुद्धृतं ॥ च-उत्कर्षेण ॥

- देवगता में सुर मिथ्याहाट्टि और असंसमी सन्पन्दर्शनवाले (देव) निका
 - नानाजीव की अपेक्षा से विरह काल नहीं है । एक जीव के लिये
 - जघन्यकारि अन्तर्मुद्धृत है । उत्कृष्टकारि
 - कुछ हीन इकतीस सागर प्रमाण है
 - सासादन [द्वितीय] गुणस्थानवर्ती [दिव] मिथ [तीसरे] गुणस्थानवाले [दिव] निका
 - (विरह काल) नानाजीव की अपेक्षा से संशुभमिथय में पूर्वकाथित गुणस्थान]
 - सद्य है अर्थात् जघन्यकारि एक समय है । उत्कृष्टकारि पत्यक अस्तस्यवाचवां
 भाग है [देखो पृष्ठ २२३, २२४
 - [सासादन-मिथकसीवेका] एकजीव की अपेक्षा से जघन्यकारि पत्न्योपम के
 - अस्तस्यवाचवां भाग है और अन्तर्मुद्धृत है उत्कृष्टकारि

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देवोनानि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियाणां नानार्जीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवप्रदणम् । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसदस्ते पूर्वकोटीपृथक्त्वेरभ्याधिके ॥ विकलेन्द्रियाणां नानार्जीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवप्रदणम् । उत्कर्षेणानन्तं काले सहेषयां पुराण्यरिवर्ताः एवमिन्द्रियं प्रत्यन्तरसुक्तम् ।

एषानानि ॥ एकत्रिंशत् ॥ सागरोपमाणि ॥

(२) इन्द्रिय-अनुवादेन । एक-इन्द्रियाणां । नानार्जीव- (२) इन्द्रियों के कल्पनानुसारकरि एकेन्द्रियों के अनेक जीवकी अपेक्षा । न अस्ति अन्तरम् ॥ एक-जीव-अपेक्षया ॥ अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्माकी अपेक्षा से

जघन्येन ॥ क्षुद्रभव-प्रदणम् ॥

उत्कर्षेण ॥ द्वे सागरोपमसदस्ते ॥ पृथक्त्वेः ॥

एवं कोटी, अभ्याधिके ॥

=कुल तीन इकाईस सागर प्रमाण (अन्तर वा फिर काल) है

=एक हीन इकाईस सागर प्रमाण (अन्तर वा फिर काल) है

- अथान्तरं कालसमय (का काल-व्यापक के अठारहवां भागके बराबर) किमा गया है

- उत्कृष्टकरि दो हजार सागर प्रमाण और पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे)

- कोटि पूर्व अधिक है (वेसे एकजीव एकन्द्रिय वा, एकेन्द्रिय की अथस्या की

छोड़ कर अन्य इन्द्रिय धारण की वो जीव से शीघ्र की वीर फिर एकेन्द्रिय हो

वो अथास के अठारहवां भाग काल के पश्चात् एकेन्द्रिय होजायेगा और यदि देरी

से देरी करे वो देरी वीर दो हजार सागर, तीनसे ऊपर और नौसे नीचे कोटि

पूर्व काल तक अन्य इन्द्रियों बाडा होकर पश्चात् फिर एकेन्द्रियही हो जायेगा)

- विकलत्रय (इन्द्रिय-श्रीन्द्रिय-चतुसिन्द्रिय) तिका नाना वीर अपेक्षा से अंतर

- नहीं है । एक वीर की अपेक्षा से वर्धन्यकरि अस्मभय (१. अस्मत्काल)

- सिधा गया है । उत्कृष्टकरि अनन्तकाल है

- [सो अंतसंघाते पुरतत्परत्वेन [काल के उत्कर्ष] है ऐसे इन्द्रियों की

- [अर्थात् एकेन्द्रिय और विकलत्रय की] अपेक्षा से विरुद्धकाल क्या गया है

विच्छ-इन्द्रियाणां । नाना-जीव-अपेक्षया ॥ अन्तरे ॥ न अस्ति एक-जीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ क्षुद्रभव-प्रदणम् ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तरे ॥ कोटी ॥ अंतकर्मणा ॥ पुरतत्परिवर्ताः ॥ न परस्व इन्द्रियं ॥ पवित्रं अन्तरम् ॥ उत्कृष्टम् ॥

गुण प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम् ॥

गुणं । प्रथिक् उभयतश्च
अधिकं नञ् अस्ति ऽ अन्तरम् ॥१॥

-गुणस्थान की (-गुण) अपेक्षा से (-प्रथि) दोनों (एकैन्द्रिय-विमलवर्ष) का
-मी अंतर नहीं है (क्योंकि दोनों के मिथस्थान ही गुणस्थान होता है)

(१) पर्यैन्द्रियविकल्पात्प्रयत्नात् मीयथा । परतसे पर्यैन्द्रियविकल्पात् मिथस्थान पर । पर्यैन्द्रियविकल्पात्प्रयत्नात् अगुणो गुणस्थानान्तर-
सम्भवत् । पर्यैन्द्रियवर्णा तु क्तसम्भवत् । मिथस्थानः सारवर्णमित्येव अन्तरं प्रयत्नम् ॥

पर्यैन्द्रिय-विकल्पात्प्रयत्नात् अस्ति अस्ति अस्ति
अर्थः १। यथाः अस्ति १। एकैन्द्रिय विकल्पा-
द्विद्वयम् ॥ मिथस्थानः १। परतं चतुर्णां १ पर्यैन्द्रिय-
विकल्पात्प्रयत्नात् १। गुणस्थानान्तर-
जननात् १। तु पर्यैन्द्रियवर्णा १।
वत्सम्भवत् । अन्तरं नञ् आदि १।
स्यारस्य आदिना १। अन्तरम् ॥१॥

गुणस्थान ही रहता है अतः इन के भागा बीच के अपेक्षा से कमी विचार काल नहीं होता है । सदा उक्त बातों द्वन्द्वय शब्दों बीच
मिथस्थान गुणस्थान में होने ही रहते हैं । पर्यैन्द्रिय जीवों में मिथस्थान गुणस्थान ही होता है और स्थानावत भाग्य अपागकेवकी एक
क्षण संरक्ष गुणस्थान ही होते हैं । इन पर्यैन्द्रिय जीवों में मिथस्थान गुणस्थान नहीं जीवों के नामों बीच ही अपेक्षा से कुछ विच्छ
काळ (= अन्तर) नहीं है क्योंकि पर्यैन्द्रिय जीव ही सदा प्रथम मिथस्थान गुणस्थान में होने ही रहते हैं पर्यैन्द्रिय मिथस्थान शब्दों
एक जीव की अपेक्षा से अपाग अन्तर अन्तर्गुह्य है उक्तच कुछ यदि एकही वचन सागर है । साधारण भाषि भाग केव गुण
स्थानों का अन्तर आने क्योते हैं ॥

- (बुद्धि में 'उभयतीक्ष्ण' पाठ्यका) पर्यैन्द्रिय और विकल्पेन्द्रियकर भी प्रथम
- अर्थ ही । क्योंकि (-पर) वे पर्यैन्द्रिय जीव और विकल्प (दावीनन्तर)
- द्विद्वय वरुण जीव मिथस्थान ही हैं । क्योंकि आर पर्यैन्द्रिय जीव के और
- वा द्विद्वय जीव ही द्विद्वय जीव-चतुर्विन्द्वय जीवों के अन्व गुणस्थान
- नहीं वा सज्जा है । परंतु (- तु) पर्यैन्द्रिय जीवों के
- य (द्वितीयादि गुणस्थानान्तर) समान होने से मिथस्थान गिरे (गुणस्थानों) का
- = सारस्य आदि (शेष गुणस्थानों) से (अप्रिम पृथकों में) अन्तर प्रेक्षणा आदिसे । सारतीय
यह है कि द्विद्वयों का गुणस्थानों से संबंधित करने पर अन्तर वा विच्छ काळ येसे है
कि पर्यैन्द्रिय शब्दों जीवों से आर द्विद्वय आरुण जीवों के सदा ही मिथस्थान

यस्य विधासौ शमकपयस्वाम एकीकृतं पश्येत्तु चौरं विकल्पं महिदं स्वार्थं सिद्धिश्च सम्पदा हिंसी अदुःखार । अथवाय १ सूर्य =

एकत्रिंशत्साधारोपमाणि देवोनानि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन एकैन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवप्रदहणम् । उत्कर्षेण द्वे सागारोपमासहस्रे पूर्वकर्मदीपुपन्त्वरभ्याधिके ॥ विकल्पेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवप्रदहणम् । उत्कर्षेणानन्तः काले सहरया, पुद्गलात्परिवर्ती एवमिन्द्रिय प्रत्यन्तरमुक्तम् ।

देवोनानि ॥ एकैकैवद्व ॥ सागारभ्रमाणि ॥

(२) इन्द्रिय-यदुवादेन । एक-इन्द्रियाणां । नानाजीव- (२) इन्द्रियों के कल्पनाजुसारकरि एकैन्द्रियों के अनेक जीवकी अपेक्षा । न अथिच भन्तरम् ॥ एक-जीव-अपेक्षया ।) = अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्माकी अपेक्षा से

जघन्येन ॥ क्षुद्रभव-प्रदहणम् ॥
उत्कर्षेण ॥ २ ॥ सागारोपमासहस्रे ॥ उत्कर्षेण ॥
एवं द्वेष्टी, अभ्याधिके ॥

= क्षुद्र हीन इकीस सागर प्रमाथ (अन्तर वा फिर काल) है

= अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्माकी अपेक्षा से

= जघन-करि क्षुद्रभव (का काल-समाप्तके अठारहवां मार्गके धरात्) क्लिषा गया है

= उत्कृष्टकरि दो हजार सागर प्रमाथ और पुष्कन्त (हीन से ऊपर नौ से नीचे)

= उत्कर्षेण पूर्व अधिक है (जैसे एकजीव एकैन्द्रिय पा, एकैन्द्रिय की अवस्था को

छेद कर अन्य इन्द्रिय प्राण की वीं क्षीय से क्षीय बही जीव फिर एकैन्द्रिय हो

तो काल के अठारहवां मार्ग काल के पश्चात् एकैन्द्रिय होजावेगा और यदि वेरी

से वेरी बड़े तो बही जीव दो हजार सागर, हीनसे ऊपर और नौसे नीचे क्रम

पूर्व काल तक अन्य इन्द्रियों का जो अनेक पश्चात् फिर एकैन्द्रियही हो जावेगा)

- विकल्पेन्द्रिय (दीन्द्रिय-वीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय) तिका नाना जीव अपेक्षा से अंतर

- नहीं है । एक जीव की अपेक्षा से वर्धन्यकरि क्षुद्रभव (१- कालसत्काल)

- क्लिषा गया है । उत्कृष्टकरि अनन्तकाल है

- [सो अंतर्गतारे पुद्गलपार्ष्णन [काल के तुल्य] है ऐसे इन्द्रियों की

- [अर्थात् एकैन्द्रिय और विकल्पेन्द्रिय की] अपेक्षा से फिरकाल ज्यादा गया है

विकल्पेन्द्रियाणां । नाना जीव-अपेक्षया ।) अन्तर ॥ ॥ न अथिच एक-जीव-अपेक्षया ।) जघन्येन ।) क्षुद्रभव-
भ्रमाणम् ।) उत्कर्षेण ।) अनन्तः ।) कालः ।)
अंतर्गतारे ।) पुद्गलपार्ष्णन ।) एतत्त्वं इन्द्रियं ॥
परितः भन्तरम् ।) उत्कर्षम् ॥

पद्यानिर्वाची आचार्यसहाय शक्तिरुद्र ऋषिः कृतम् । विमलचर्यं साहित्यं स्वर्धाराधित्वि का शरणयाः हिल्ली ऋतुवाच । अथाय १ पृष्ठ =

एकजीव प्राति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कंषण सागरोपमसरसं पूवकेनपृथक्चैरभ्यधिकम् ॥ शेषाणा
सामान्योक्तम् ॥ (३) कायानुवागेन-पृथिव्येष्ठेजोवायुक्रियाधिकाना नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।
एकजीवं प्रति जघन्येन शुद्धभवप्रदणम् ॥ उत्कंषणानन्त कालोऽर्हस्येया पुद्गतपरिवर्त ॥ वनस्पतिक्रायिकाना
नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया

एक जीवं १; प्रच्छिन्नं चपत्येन ॥॥ अन्तर्मुहूर्तः १ ।
उत्कंषणं, सागरोपमसरसं ॥॥ एककेटी-
पुष्पससं ॥॥ अभ्यधिकम् ॥॥ अथायम् ॥

सामान्य-उक्तम् ॥॥

[३] काय अनुवागेन १, पृथिवी-अभ्यन्तरे

वायुक्रियाधिकानां १, नानाजीव-अपेक्षया १, अन्तरं १॥

न-अस्ति १ । एकजीवं १, प्रति * चपत्येन १॥ शुद्धभव-
प्रदणं ॥॥ उत्कंषणं १, अनन्तकालः १, अर्धस्येया १

उत्कंषणिकाः १, वनस्पतिक्रायिकानां १, नानाजीव-
पेक्षया ॥॥ अन्तरं १॥ न अस्ति एकजीवं १, अपेक्षयाः १

अपेक्षया ॥॥ अन्तरं १॥ न अस्ति एकजीवं १, अपेक्षयाः १

= [यार उपक्रमपेक्षी शालोका] एक जीवशी अपेक्षासे चपत्येनकरि अन्तर्मुहूर्तं है
= उत्कंषणकरि इत्यार सागर प्रमाण और सीनकरोरु पूर्व से ऊपर
= नोरोरु [पूर्वसे] नीचे अधिक है । [ध्वेन्द्रियो मं] बन्दुये निका अर्थात्
अर्धकृत्स्न रूपक अनिष्टिकरण रूपक, सप्तसप्तपारायणरूपक, सप्तिकस्तापणरूपक
अयोगकेवली और सयोगकेवलिनिका [विरहकाल]

= सामान्य [प्रकारके परिशि] कदा हुआ [गुणस्थान सदृश] है अर्थात् यार
रूपक श्रेणशालोका और अयोगकेवलियों का नाना जीवकी अपेक्षा से
अपत्यकरि एक समय है, उत्कृष्टकरि छद्म महीने है । एक जीवकी अपेक्षा
से अंतर नहीं है । सयोग केवलियोंका नानाजीव की अपेक्षा से और एक
जीवकी अपेक्षा से विरहकाल नहीं है ॥ [पृष्ठ २२५]

= (३) कायके कस्मानुसारकरि मूमिकाधिकके अलकाधिकके, अधिक्रायिकके
= वायुक्रियाधिकके नानाजीवकी अपेक्षा से अन्तर
= नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा से चपत्येनकरि सप्तसप्तप १, अथासका काल
= प्रदण क्रियागया है । उत्कृष्टकरि अनन्तकाल है सो अर्धकस्त्वाव
= पुद्गत परिवर्तन है । वनस्पति क्रियाकोके नानाजीवकी
= अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एकजीवकी अपेक्षा से

= [यार उपक्रमपेक्षी शालोका] एक जीवशी अपेक्षासे चपत्येनकरि अन्तर्मुहूर्तं है
= उत्कंषणकरि इत्यार सागर प्रमाण और सीनकरोरु पूर्व से ऊपर
= नोरोरु [पूर्वसे] नीचे अधिक है । [ध्वेन्द्रियो मं] बन्दुये निका अर्थात्
अर्धकृत्स्न रूपक अनिष्टिकरण रूपक, सप्तसप्तपारायणरूपक, सप्तिकस्तापणरूपक
अयोगकेवली और सयोगकेवलिनिका [विरहकाल]

पञ्चान्द्रियेषु पिप्या प्टं सामान्यवत् । सासादनमभ्यट्टिसम्पदमिप्याट्टाट्टानाना जीवापेक्षया सामान्यवत्
 एव नीव प्रति जघयेन परयोपामस्येयभागोन्तमुद्भूतश्च । उत्कयेग सागरोपामसस पूर्वकोटीपुत्रकत्वेरभ्य
 विवम् ॥ अमपतमभ्यट्टाट्टाश्वप्रमत्तानाना नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येना
 न्तमुद्भूतं । उत्कपण सागरोपामसस पूर्वकोटीपुत्रकत्वेरभ्य विवम् ॥ चतुर्णांमुद्राशमकना नानाजीवापेक्षया
 सामान्यवत् ।

एवन्निद्रियेषु पिप्याट्टुष्टः । सामान्यवत्

सासादनमभ्यट्टिसम्पमिप्याट्टुष्टो । नाना
 बीर-अपेक्षया । सामान्यवत्

एक बीर , प्रतिष्ठ जघन्येन , ॥ प्रस्योपम-असंख्येय
 याग , १ व अन्तर्मुहूर्तः । उत्कयेग , सागरोपामसस
 पूषकाटि पूषस्तः ॥ अभ्यविषकम् , ॥ अतंस-
 सामान्यद्वि-आदि अग्रमव-अन्तानां , नानाबीक-
 जघययाः ॥ न अस्ति ट अन्तरम् ॥ एकबीर , प्रति
 जघन्येन ॥ अन्तमुहूर्तः । उत्कयेग । सागरोपम-
 सस , ॥ पूष काटा पूषस्तः ॥ अभ्यविषकं , ॥ फलुर्णाः ।
 उपयमकानां नाना बीर-अपेक्षया , सामान्यवत्

एवंनिद्रिय बीरों में पिप्याट्टुष्टिका संश्लेष (विषय में कश्चित गुणस्थान) सम है अर्थात्
 पिप्याट्टुष्टिका नाना बीर अपेक्षासे कुछ अन्तर नहीं है एक बीर की अपेक्षासे जघन्य
 अन्तमुहूर्त है उत्कष्ट एकसौबचीस सागर से कुछ हीन है

नशासादन सम्पदाशनकासे और सिध हीनरे गुणस्थानसर्वात्मिका अनेक
 =बीरों की अपेक्षा से संश्लेष (प्रकरणमें परिधि कहा हुआ गुणस्थान) सम है अर्थात्
 जघन्यकारि एक समय है उत्कष्टकारि प्रत्यका असम्भ्यागर्वा याग है

=एक बीरकी अपेक्षासे जघन्यकारि प्रत्योपमके असंख्यवर्वा
 =याग और अन्तमुहूर्त है । उत्कष्टकारि एक सस सागर प्रमाण (और)
 =पुत्रकस्य (तीनसे कम नवसे नीचे) करोड़ पूर्वकारि अधिक है ॥ असमसी
 =सम्पदशनशालसे अग्रमव गुणस्थानमानेनितक अनेक बीरकी

=अपेक्षास अन्तर नहीं है । एक बीरकी अपेक्षास
 =जघन्यकारि अन्तमुहूर्त है । उत्कष्टकारि सागरोपम
 =सागर और पुत्रकस्य करोड़ पूष अधिक है । धार [अपुषकाणसे उपयवात्कनाय एक]

=उपयम भेगीवासेनिका [अन्तर] नाना बीरकी अपेक्षास संश्लेष [कल्पना] एव है
 अर्थात् जघन्य एक सस है उत्कष्ट संश्लेष उत्तर एव अनेके हीन है

सासादनसम्पददृष्टिसम्पद्विषयदृष्टयोनानाजीवपेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जवन्नेन पत्योपमा
 सह्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसद्वत्त्वे पूर्वकोटीपृथगन्तैरभ्याधिके ॥ अथयत्सम्पददृष्टयाद्य
 प्रपचान्ताना नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तरम् एकजीव प्रति जवन्नेनान्तरमुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसद्वत्त्वे
 पूर्वकोटीपृथगन्तैरभ्याधिके ॥ चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवपेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जवन्नेनान्त
 रमुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसद्वत्त्वे पूर्वकोटीपृथगन्तैरभ्याधिके ॥

सासादनसम्पददृष्टिसम्पद्विषयदृष्टयोनानाजीवपेक्षया सामान्यवत् ॥
 नानाजीव-अपेक्षया ॥ सामान्यतरम् ॥
 = (यद्य क्वचि की अपेक्षा से) सासादन सम्पददृष्टि का और मित्र गुणस्वान्त बाजोका
 = अनेक जीवों की अपेक्षा से संशय में (कश्चित् गुणस्वान्त) सम (अन्तर) है (दोनों
 गुणस्वान्तोंका नानाजीव प्रति जवन्त्य एक समय उत्कृष्ट क्लयका अर्थक्यावर्तमानता है)

एकजीविके । प्रति० जवन्नेन ॥॥ पत्योपम-अर्थसंशय
 मागः ॥ च अन्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण । द्वे ॥ सागर = माग और (= च) अ र्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि दो हजार सागर
 पमसद्वत्त्वं ॥ पूर्व कोटी-नृपकन्तं ॥॥ अभि-भ्याधिके ॥॥ = प्रमाद्य (अर्थ) तीन से ऊपर ना से नीचे (= नृपकन्त) करोड़ पूर्वकारि अधिक है ।
 अर्थपर-सम्पददृष्टि आदि प्रपचय अर्थानां ॥
 = अथपरी सम्पदार्थनवाजो स केकर अग्रमद्यसंपत्ती वकनिका
 नानावाह अर्थस्या ॥ न अरिउच्यते ॥॥ एकजीवः ॥ = अनेक जीवों की अपेक्षा से (उक्त) अंतर नहीं है एक जीव वे
 प्रति जवन्त्यना ॥ अ र्मुहूर्तः उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ = द्विवे अथ वकारि अर्थमुहूर्त है । उत्कृष्टकरि दो
 सागरोपमसद्वत्त्वं ॥॥ पूर्वकोटी-नृपकन्तं ॥॥ अभि-भ्याधिके ॥॥ हजार सागर प्रमाद्य (अर्थ) तीन नौ के बीच (= नृपकन्त) करोड़ पूर्व कारि अधिक है
 पत्युर्णां ॥
 = चार (अपूर्वकल्प-अनिशुचिकल्प-अहमसाधारण उपजातकलाय)

उपशमकानां । नाना जीव-स्येयया ॥ सामान्यवत् ॥
 जवन्नेन एक समय नाना जीव प्रति है उत्कृष्ट तीन से ऊपर नौ वर्ष से नीचे है
 = एक जीव की अपेक्षा से अनन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
 = उत्कृष्टकरि दो हजार सागर प्रमाद्य (अर्थ)
 = नृपकन्त (तीन से ऊपर नव से नीचे) करोड़ पूर्व अधिक है ॥

एकजीवः । प्रति० जवन्नेन ॥॥ अन्तर्मुहूर्तः ।
 उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ सागरोपमसद्वत्त्वं ॥॥
 पूर्वकोटीपृथगन्तैः ॥॥ अभि-भ्याधिके ॥॥
 = उत्कृष्टकरि दो हजार सागर प्रमाद्य (अर्थ)
 = नृपकन्त (तीन से ऊपर नव से नीचे) करोड़ पूर्व अधिक है ॥

एवाविकसो ब्राह्मणस्यैव परीक्षेन ह्येव एवमर्थेन सौर विमलवर्षं मन्वित सर्वाथं सिद्धिका शब्दा विदोः अनुवाद । अन्वय १ सूत्र ८

जघन्येन शुद्र भवप्रदगम् । उरकोणा स्त्रियेया नोकः ॥ एव काय परपन्तरमुक्तम् । गुण प्रत्युभयेताड्वि
नास्त्पन्तरम् ॥ नमनायिकपु मिथाहृष्टे मामान्यवत् ॥

जघन्यन ॥ शुद्रभनभद्रणम् ॥

उरकोणा, अन्वयेगा ॥ लोका ॥

=जघन्यकरी मूद्रमभव (= भासकैकाल के धारापर अन्तर) लिखा गया है ?
=उरकोकरि अर्भवनाव लोक ई अर्भाव "इरी" अर्थस्वाव लोफ के प्रवेश है वेते कालके
समय प्रदश है" सर्वाथं सिद्धि ध्वनिका मुद्रित युद्ध १०१

ध्वं काय । प्रविठ अन्तरम् उरकम्, गुण, = इद्रस प्रकार कायको अयेगा से अन्तर कहा गया । गुणस्थान की

नति ० उमपव ० अथि ०

न ० अरिर्न ७ अन्तरम् ॥

भय-कायिकम् ०, सिद्धाहृष्टे ०

सामान्यतर ०

=अयेषा से दानो (पुत्रियो अल अग्नि-भवत कायिको में और धनस्यत्तिकायिकानि) में सी
=अन्तर नहीं है (कर्माकि उनके मिथगत्य गुणस्थान नहीं है)
=भय (द्रीी द्रय-त्रीद्वय-वृत्तिरिन्द्रिय-भवेन्द्रिय) कायिकों में मिथ्याहृष्टी का
संश्लेष (प्रकृषण में कथिध गुणस्थान) सदृश्य (अन्तर) है (नाना जीवकी अयेषा)
अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर मुद्रित है उरकृष्ट कुछ हीन १३२ सागर है ॥

(१) गुण स्थल परपथं में पुंकिर है एउजु यही पर गुणस्थान के लिये इच्छिभार जाये है अतः गुणस्थान के स्वभाव होने अनुसक्त माना है

(२) पुषियर रि चउत्रो बरतसिधिका रिनाना बरन्तं बालिख यउर्युपरवरेद्रोत्रागुणु कायिकारस्तथा धनस्यति नायिका उमभेउदि मिथ्याहृष्टया वर्तन्व ॥

पुषयो आरि-चउत्रो ॥ यनस्यदि-कायि ब्रह्म ॥ चउ-पुषयो मल मनिन्यवन (कायिककानि) चारोका तथा धनस्यति कायिकोका

बन्तं ॥ ॥ य प्रसिख यका ० पुषयो-मयु नैद्रागुणु = सिद्धिहास नहीं है क्योंकि मूनि (कायिक) अल (कायिक) अल (कायिक) एकल

कायिका, । तथा ० बरापति कायिका ॥ उमभे ॥ अथि = कायिक और (उमभेया) धनस्यति कायिक, सानो (पुषियथावि चार और धनस्यति) में ही

मिथ्याहृष्टया वर्तन्व ७

मिथ्याहृष्टानाथले आश हाते है अर्थात् पुषियदीकारिक, अलकायिक, अन्विकायिक, अन्विक कायिक पणन कायिक
और धनस्यति कायिकों में गुणस्थानकी अयेषाते कुछ अन्तर नहीं है क्योंकि स्वकीय स्वकीय
मिथ्याहृष्ट गुणस्थान ही वर्तता है अन्वयाहृष्टा है ॥

एवमिवासी अणुस्फुरणवकीसकृतपदसंश्लेषेण और विप्रलम्बय मन्वित मनीय सिद्धिका शब्दार्थः विधी शत्रुशब्द अन्वय १ सुप्र २

शेषाणा षडचन्द्रियवत् ॥ (४) योगानुवादेन-कायवाङ्मानमयागिना मिय्याः दृष्टयमयतः स्फुरद्विटि सयतासयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगेकैवलिना नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ मासादन सप्यग्द्विटिसम्भूमिय्याः दृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया मामान्यवत् ।

शेषाणां षडचन्द्रियवत् ०

नवसकार्ये मे] पंचे ब्रुये [गुणस्थानकर्म] निका अर्थात् चार क्षणक

भूमीवालोका, सयोगेकैवलियोका और अयोगेकैवलियोका [अन्तर] [पहिले कथा हुआ]

षडचन्द्रिय सद्रुद्य है अर्थात् षडेन्द्रियोका और पृष्ट २३५ के अनुसार संश्लेष में कौचित

गुणस्थान सद्रुद्य है इसलिये शेष द्रव्यकुल द्रव्यकार्योका अन्तर गुणस्थान सद्रुद्य है

सो अंतर पृष्ट २२५ के अनुकूल चार क्षणक भूमीवालोका और अयोगेकैवलियोका

नानावीचकी अपेक्षासे एक समय है उत्कृष्ट करि 'कः मास है । एकजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥

नहीं है सयोगेकैवलियोका नानावीचकी अणुशास और एकैकीकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥

[४] चाम-अनुवादेना। काय-शब्द-भोगस योनिना ॥ ([४] भोगोकी अपेक्षा से काय-वचन-मनो योगी

मिय्याः दृष्टि-वर्तक-सम्पन्नदृष्टि-संयत्तासंपत्त- मिय्याददर्शनवासे, अंतस्त्वमी, सम्पन्नदर्शनवासे, वैश्वसंपत्ती,

प्रमत्त-अप्रमत्त-संयोगैकैवलियोका नानावीचकी प्रमत्तसंपत्ती, अप्रमत्तसंपत्ती, संयोगेकैवलियोका नानावीचकी

अपेक्षायाः एकैकीच अपेक्षया च अंतरत्वं प्रमत्तवासे और [=च] एकैकीचकी अपेक्षासे अंतर

न भवति । सासादन-सम्पन्नदृष्टि-सम्पन्नमिध्यादृष्टयोः नहीं है । सासादन सम्पन्नदृष्टि और मिध्यागुणस्थानकर्मनिष्कार

नानावीच-अपेक्षया । सामान्यवत् ० नानावीचकी विवक्षासे संश्लेषः (विषयसे कथित) (गुणस्थान) क्व है उच्चारित-अपेक्ष

यस्य निष्वासी अणक्यसहास्य षड्दीमकृत्य पक्वच्छेद और विषयपर्यय सहित मन्त्राय स्थितिका प्राप्त्वा; विदो शुभुभाय मन्थान्य १ पुर ८

श्रेयाणा पञ्चान्द्रियवत् ॥ (४) योगानुवादेन-कायवाहमानमयागिनां मिथ्य दृष्ट्यसयत-म्यरदृष्टि
 सयतार्सयत्प्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया । एकजीवापेक्षया । च नास्त्यन्तरम ॥ सासादन
 सम्यग्दृष्टिसम्यग्भूमिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया मामान्यवत् ।

श्रेयाणा। पक्वोन्द्रियवत् ॥ [प्रसक्तार्थो मे] वत्वे इये [गुणस्थानवर्ती] निका अर्थात् चार एक

भेगीवार्तेका, सयोगकेवलियाका और अयोगकेवलियाका [अन्तर] [पहिले कहा हुआ]
 पक्वोन्द्रिय सङ्घ है अर्थात् पंचेन्द्रियाका अन्तर पृष्ठ २३५ के अनुसार संश्लेष में कथित
 गुणस्थान सङ्घ है इसलिये श्रेय इष्टुक श्रेयाका अन्तर गुणस्थान सङ्घ है

सा अन्तर पृष्ठ २३५ के अनुकूल चार एक भेगीवार्तेका और अयोगकेवलियाका
 नानाजीवकी अपेक्षासे एक समय है दक्षुष्ट करि का भास है । एकजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥

[४] साग-अनुवादेन। कार-सां-मानस योनिनां ॥ [४] भोगिकी अपेक्षा से काम-वचन-मनो योगी ।
 सिध्यादृष्टि अस्मत्त-साम्यदृष्टि संवत्तप्रसक्त-
 प्रसक्त-अप्रसक्त-सयोगकेवलिनां । नानाजीव-
 अस्वथागा ॥ एकजीव अपेक्षया ॥ च अन्तर ॥ ॥
 न कस्ति । सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यग्भूमिथ्यादृष्टयोः । नहीं है । सासादन सम्यग्दृष्टि और मिथ्यगुणस्थानवर्तीनिकां । ॥ १ ॥ १५१ ॥
 नानाजीव-अपेक्षया । सामान्यवत् ॥ ॥ १ ॥ १५१ ॥ अन्तर एक समय है दक्षुष्ट पक्वके अर्थव्यपत्तासे माता है (पृ ० २२२)

एतानि ताही बपनसंज्ञाय कर्तव्यं कृत्यं चरन्ते और विभक्त्यर्थं सारिव सर्वाथ सिद्धिका कृष्यः सिद्धी जगुवाव । अथाय एक सत्र ८
 जघन्यनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् ॥ एक जीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेः सामा
 न्यवत् ॥ गासादन गम्यदृष्टिसम्पत्तिमिथ्यादृष्टेऽनाना जीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पत्न्यो
 पमास्त्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥ असंयतसम्पद्दृष्ट्याऽध्यापमत्तान्ताना नाना
 जीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त ।

बघन्येन । एक ॥ समयः । उत्कर्षेण । वर्ष
 पृथक्त्वम् ॥ एकजीवः । प्रति अन्तरम् ॥
 नकं अस्ति ८ पुंवेदेषु । मिथ्यादृष्टेः । सामान्यत्वम् ॥

सासादन्तसम्पद्दृष्टिः सम्पत्तिमिथ्यादृष्टयोः ।
 नाना जीव-अपेक्षया ॥ सामान्यत्वम् ॥

एकजीवः प्रति अघन्येन । पत्न्योपमा
 असंयतेय-भागः ॥ च अन्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण ।
 सागरोपम-शतपृथक्त्वम् ॥
 अतएवसम्पद्दृष्टिः सादि-अपमत्त-अन्तानां ।
 नाना-जीव-अपेक्षया ॥ नकं अस्ति ८ अन्तरम् ॥
 एकजीवः प्रति अघन्येन । अन्तर्मुहूर्तः ।

बघन्यकारि एक समय है । उत्कर्षकारि वर्ष

नीति से अमर नौ से हीन है । एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल

नहीं है । गुलबंद में मिथ्यादृष्टी का संशेष (में पूर्ण तक गुणस्याव) सम है

अर्थात् मिथ्यादृष्टी गुलबंदी का नाना जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है एक जीव
 के लिए अघन्यकारि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकारि कुछ हीन एकसौ बचीस सागर
 प्रमाण है (देखो पृष्ठ २२२)

= (गुलबंदी में) सासादन गुणस्थान और विषय गुणस्थान वालों का (अन्तर)

= बनेक जीव की अपेक्षा से संशेष (में क्षयित गुणस्थान) सम है अर्थात् अघन्य
 एक समय है उत्कृष्ट पत्न्य का असंयतावर्षा माग है (पु० २२२, २२३)

= (गुलबंदी सासादन मिथवासे का) एक जीव के लिये बघन्यकारि पत्न्योपमा के
 असंयतावर्षा माग और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकारि (अन्तर)

= तीन सौ सागर प्रमाण से अधिक और नौ सौ से नीचे (अतःपृथक्त्व) है

= (गुलबंदी) असंयमी सम्पद्दर्शनवासे से अघन्य गुणस्थान सकनिका

= बनेक जीव की विवक्षा से विरह काल नहीं है
 = एकजीवकी अपेक्षा से बघन्यकारि अन्तर्मुहूर्त है

पदानिनासी शगरुपाद्यस्य षडैरुक्तं प्रत्येकं और भिन्नस्वर्षं सतिव सर्वांश्च सिद्धिका प्रत्ययः द्विती अनुवाद । अध्याय एक अष्ट ८

उपशान्तकथायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ शेषाणासामान्यवत् ॥

(६) कथापद्युवादेन - क्रोधमानमायालोभकथायाणामिष्यादृष्टाद्यनिवृत्तुपशमकान्ताना मनोयोगिवत् ॥

उपशान्तकथायस्य १; नानाजीव-

अपेक्षया ॥ सामान्यवत् ॥

एक जीवं १; प्रतिक नक्त अस्ति १ अन्तर १॥
शेषाणां १;

सामान्यवत् ॥

(६) कथाप-अनुवादेन १; अपेक्ष-मान-माया अपेक्ष-
कथायाणां । मिष्याद्यदि-शादि-अनिवृत्ति-उपशमक-
अन्तानां ॥ मन्तः (अन्तस्य) योपिप्यवत् ॥

= (श्रेष्ठ वर्तिसो मं) उपशान्तकथाय (म्पाराहृषी) गुणस्थानाभासेका अनेक जीव की

= अपेक्षाने (विरहकाल) संश्लेष (प्रकृत्य मं कश्चित् गुणस्थान) सख्य है

अर्थात् सपत्न्य एक समय है उत्कृष्ट पुष्करत्त्वर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)

= एक जीवके छिपे विरहकाल अथवा अन्तर नहीं है

= (श्रेष्ठरहितोमिं) श्लेष वा षडैरुक्ते (कृष्णकर्मधीके अनिवृत्ति नवम गुणस्थान

के अन्तानां मं से अन्तके वा पिकसे तीन , वेदरहित साम्प्रदाय-द्वारस

साम्प्रदाय अरुक्त, क्षीणकथाय अरुक्त, समयोगकालि और अयोगकालि) निरुक्ता

(विरहकाल)

= संश्लेष (प्रसंग मं पूर्वकश्चित् गुणस्थान) सख्य है अर्थात् चारसफरक कर्मधीयालों

का और अयोगकालिधियों का नानाजीवकी अपेक्षा से सपत्न्य एक , समय

है उत्कृष्ट अन्तस्य है एक क्षीणकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है समयोगकालिधियों

का नानाजीव अपेक्षा से और एक क्षीण प्रति अन्तर नहीं है

= (६) कथायके कथनादुसारकरि-क्रोध-मान-माया (= कृष्ट) श्लेष

= कथायांशालों का मिष्यासकृतेनवाले से अनिवृत्तिकृत्य उपशममायासे

= अन्तानां उपस्थान) कर्मनिष्ठा मन्तोमेती सख्य है अर्थात्

प्रदानवत्सो ब्यालस्यशाप क्लीकुरु मन्वेष्ट और विमन्थयं सति प्रार्थितिका शब्दः हिरी अत्रुपाद । अन्थाय १ इव ८
द्वयो क्षपक्योर्नाजिवापेक्षया ज्वन्यनेक समय । उत्कर्षेण संतरसर सातिरेक ॥ केवलशोभस्य
सूक्ष्मसापरायोपशमकस्य नानाजिवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ क्षपकस्य तस्य
सामान्यवत् ॥

(ब्रौह्म-मान-भागा-श्लोम कथावशात्) मिथ्यावृष्टि अंत्यवत् सम्परावृष्टि (बीषा) संघटासंघव (पाचवा) प्रमथ (छटा) अप्रमथ
(घनवा) गुणस्थानवालोका नानाबीभ अपेक्षासे और एकबीभ अपेक्षासे अन्तर नहीं है । (चार कथावशात्) सासादन-
सम्परावृष्टि और मिथ्यावृष्ट्याववासे (दोनों) का अनेक जीवके लिये अथवा एक समय है उत्कृष्ट फल्यके असंख्यातवा
साग है (गु २२२) एक बीषकी अपेक्षासे (नू दोर्वा गुणस्थानोम) अन्तर नहीं है । (ब्रौह्म-मान-भागा-श्लोम कथावशात्)
अपूर्वकण उपसम्पन्न और अनिवृष्टिकरण उपसम्पन्नका अन्तर अनेक जीवकी अपेक्षासे वचन्य एक समय है उत्कृष्ट हीन
कर्त्तसे छपर और नो कर्त्तसे नीचे है (गु २२४) एकबीषकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है (गु २३८, २३९)

द्वयो ॥
कथनोऽ नाना-बीभ-अपेक्षया ॥ अचान्तेषु, =सक भेषीवालोका अनैकबीभकी अपेक्षासे वचन्यकारि
एककथन उत्कर्षेण। संस्तर' ॥ स अतिरेकः। =एक समय है । उत्कृष्टकारि कुछ अधिक एक वरत है
केवल-शोभस्य ॥ एतस्मात्पराय उपसम्पन्नस्य। =केवल (संकलन) लोभकथाववासी एतस्मात्पराय उपसम्पन्न भेषीवाश्लेका
नाना-बीभ-अपेक्षया ॥ सामान्यवत् ॥ =अनैकबीभकी अपेक्षासे संशेष (प्रकरणं कथित गुणस्थान) कथ है अर्थात् वचन्य एक
समय है उत्कृष्ट हीनसे ऊपर नीचे कर्त्त है (गु २२४)

सकृदसि ॥ मरिच नभ अस्ति अन्तरम् ॥ तस्य ॥ न्येक बीषकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है । तिस (एतस्मात्पराय गुणस्थान)
क्षणकस्य। सामान्यवत् ॥ = एतस्मात्पराय उपसम्पन्नस्य। =अनैकबीभकी अपेक्षासे संशेष (प्रकरणं कथा हुआ गुणस्थान) कथ है अर्थात्

एतस्मात्पराय उपसम्पन्नस्य। =अनैकबीभकी अपेक्षासे संशेष (प्रकरणं कथा हुआ गुणस्थान) कथ है अर्थात्

एतानिवासी वगैरुपलक्षणं धर्मीलकृतं पदच्छेदं और विभक्त्यर्थं सहितं सर्वाभिनिदिका कृत्स्नं हिंदी अनुवाद । अन्वय १ छ ८
 अकषायेषु उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया म,मान्यवत् । एक वि प्रते न,स्यन्तरम् ॥ शेषाणा त्रयाणा
 च नारस्यन्तरम् ॥ सामादनसम्पत्तदुर्नीनाजीवापेक्षया

अकषायेषु १ उपशान्तकषायस्य • नानाजीव-
 अन्वयः १ सामान्यवत् •

एकवच, प्रथि • न अस्ति अन्तरम् ॥ शेषाणां १
 शेषाणां १

सामान्य-वत् •

[७] ज्ञान भवुषादेन १ मत्प्रज्ञान-पुण्यज्ञान-विभंग
 शानियु १ मित्याद्य ॥ नाना जीव अपेक्षया ॥ च
 एक जीव अपेक्षया ॥ न • अस्ति • अन्तरम् ॥ च
 सासदन्तसम्पत्तः १ नानाजीव-अपेक्षया ॥

वचन्य एक समय उत्कट छमास है । एक जीवकी अपेक्षास अन्तर नहीं है ।

-कषाय धर्वातनि में तपश्चांत कषायगुणस्थानशालेका अनक जीवकी
 -अपेक्षासे संश्लेष (प्रसंगमें पूर्वकथित गुणस्थान) सह्य (अन्तर) है
 अर्थात् वचन्य एक समय है उत्कट रुपकत्व वर्ण है (देखो पृष्ठ २२४)

-एक जीवके लिये वियोगकाल नहीं है । वच हुए अथवा अवशेष
 -टीन (धीमकषाय चारहवां गुणस्थानवर्ती चरहवां गुणस्थान में सयोग-

-देवली और चौदह गुणस्थानविषे अयोग केरली) निक
 -(धिरहकाल) संश्लेष (प्रसंगमें पहले कथित गुणस्थान) वत् है
 अर्थात् धीणकषाय (चारहवां) गुणस्थान शालेका और अयोग केवलियों का

नाना जीव की अपेक्षा से वचन्य एक समय है । उत्कट छमास है । इन्हीं
 गुणस्थानों में एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है । सयोग केवलियों का

नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है (पृ० २२५)

[७] ज्ञानके अनुवादकर भति अज्ञान, पुनःप्रज्ञान, पुनःअवि-
 -ज्ञानियों मित्याद्यटीका नानाजीवकी अपेक्षासे और (-च)

-एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल नहीं है
 -(उत्कटीन कृत्वातिये) सासादनसम्पत्तदुर्नीनाजीवका

- (उत्कटीन कृत्वातिये) सासादनसम्पत्तदुर्नीनाजीवका

पदानिवाही वगणयताव यत्कृतञ्च परञ्चैव और विमलत्पर्व सति सर्वाथसिद्धि का शब्दश्चः हिदी अनुशाव । अथवाय १ एव ८
 मामान्यत्रव ॥ एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ आशिनोविकश्रत वधिज्ञानिनु असंयतसम्पददृष्टीर्नाना
 जीवपक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वमोटी दंजोना ॥ संयताभ्यंतस्य
 नाना तीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्यनान्तर्मुहूर्त । उरय पेंण पटपटिमाणे पमाणि नातिरेकाणि ॥
 प्रभताप्रभचयोनानाजीवोक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उरय पेंण त्रयस्त्रिंशत्सागरो
 पमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णाम्

साधान्यश्च •

एक जीव १, प्रति • न • अस्ति ७ अन्तरम् ॥॥

याभिनोविक-प्रवचनविधानिद १; अर्धपठ-

सम्पाद्ये; १; नाना जीव अपेक्षया ॥॥ न अस्ति अन्तरम् १॥

एकजीव १; प्रतिक्रियन्ते १; अन्तर्मुहूर्तः १

उत्कर्षेण; पूर्वकोटी १; वंशोना १ संयताभ्यंतस्य १;

नाना जीव अपेक्षया १॥ न अस्ति अन्तरम् ॥॥ एकजीव १;

प्रति; वचनपेन १; अन्तर्मुहूर्त १; उत्कर्षेण १

एव अतिरेकाणि ॥॥ पट् पटि-सागरोपमणि १॥ प्रभव

अभयथा १; १; नाना-जीव-अपेक्षया १; अन्तरम् १॥

न अस्ति एकजीव १; प्रति; अचान्येन १; अन्तर्मुहूर्त १;

उत्कर्षेण १; सातिरेकाणि १॥ त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमणि १॥

चतुर्णाम् १;

= संक्षेप (प्रसंगमे पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात्

वचन्यकृति एक समय है उत्कर्षकृति पक्षका अर्थस्मात्प्रधानता है पृ० २२३

= एक शीघ्री अपेक्षा (= प्रति) विरहकाल वा अन्तर नहीं है

= मतिज्ञानी प्रवचनानी, अर्थात्ज्ञानियों में अविश्व

= नमपददृष्टिका अनेक जीवकी विश्रयासे विरहकाल नहीं है

= एक जीव की अपेक्षा से वचन्यकृति अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षकृति कुछ हीन करोव पूर्व है । (उक्त सीतों छानियोमें) वंश संस्मीका

= अनेक जीव की अपेक्षा से अंतर (विरहकाल) नहीं है । एक शीघ्री

= अपेक्षा से वचन्यकृति अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकृति

= कुछ अधिक छासति सागर प्रमाण है । (उक्त सीतोंछानियोमें) प्रभव

= और अभयव गुणस्थानवालों पर नानाजीव की अपेक्षा से अन्तर

= नहीं है । एक जीवके लिये वचन्यकृति अन्तर्मुहूर्त है

= उत्कर्षकृति कुछ अधिक वेगीव सागर प्रमाण है

= (प्रति-प्रवचनय छानिया में) चार (आठ) अर्धेहण्य, नवमी

= नतिर्दृक्त्वात्, दशमं चक्षेत्रं (अस्मात्) उरयावकप्रणय गणस्थाने)

पटानिषासी धर्गास्वयसहाय षष्ठीउक्कृष्ट पदच्छ्वर और विर श्लेष सहित सर्वाधं सिद्धि का दृश्य । इती अनुवाद । अप्याय १ छत्र ८
उपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एफ जीव प्रति जघन्येनात्सुर्हृत् । उत्कर्षेण पद्यष्टि । गरो
पमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णां क्षपकाणा सामा-यवत् । किं तु अवाधिज्ञानिषु नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक-
समय । उत्कर्षेण वर्णपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । मन पर्ययज्ञानिषु प्रगत्ताप्रमतसैयतयोर्नानाजी
वापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुक्कृष्ट चान्तसुर्हृत् ॥

दशमस्कानाम् । नाना-जीव अपेक्षया ॥ सामान्यवत् = उर दशम श्रेणीवर्गीयों का नाना जीवकी अपेक्षा से संश्लेष (मैं उक्त) सम है अर्थात्

एकजीव ॥ प्रतिष्ठ चचन्येन ॥ अन्तसुर्हृत् १ उत्कर्षेण १, एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तसुर्हृत् है । उत्कृष्टकरि

स-अतिरेकाणि ॥ पृथुष्टि-सागरोपमाणि ॥ = कुछ अधिक छायासिद्धि सागर प्रमाण है

चतुर्णां ॥ क्षपकाणां ॥

सामान्यवत् =

किन्तु = अतिशयानिषु १ नाना-जीव-

अपेक्षया ॥ चचन्येन ॥ एकः ॥ समय ॥ उत्कर्षेण ॥

कर्म-पृथक्त्वम् ॥ एकजीव १, प्रति न अस्ति अन्तरम्

स्वत पर्यय-ज्ञानिषु १, प्रमा-अप्रमासंयतयोः १,

नानाजीव-अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम्, एकजीव १,
प्रतिष्ठ चचन्यम् ॥ उत्कृष्टः १, च अन्तसुर्हृत् १

जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ण है (पृष्ट २२४)

= कुछ अधिक छायासिद्धि सागर प्रमाण है

= (मति शुद्धानियोगे) चार धक्केभेगी (आठवां अपूर्वस्वरण नवमां अनिष्टवि

द्वारा, दशवां दशसंसात्मराय, चारहावां छीष्काणय शुभस्थान) वालों का

= (विशदकाल) संश्लेष (प्रस्तव में पूर्व कथित शुभस्थान) सहस्र है अर्थात् अनेक

जीव कीअपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट च्छ मास है एक जीव की

अपेक्षा से कुछ विरह काल नहीं है (द्वितीयां पृष्ट २२५)

न्यारन्तु अवाधिज्ञानियों में (अपेक भेषियोंका विरह काल)अनेक जीवकी

= अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि

= पृथक्त्व (मन्य चीन और नाव) वय है एक जीवकी अपेक्षात अन्तर न १ है

= अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ एक जीव की

= अपेक्षासे (= प्रति) जघन्य और (= च) उत्कृष्ट अन्तसुर्हृत् है

एता निवासी चागन्धर्वस्य कर्कशस्य पत्न्येन और विमलस्यै सहित सर्वायैशिक्षिका कल्प्यः द्विती अनुवाह । अन्ध्याय १ स्रव ८
 चतुर्णांमुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जवन्त्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षण पूर्वकोटी
 देशो १ ॥ चतुर्णा क्षपकणामवाधिज्ञानिवत् ॥ द्वयो केवलज्ञानिनो सामान्यवत् ॥ (८) सयमानुवादेन-
 सामाधिकच्छेदोपस्थापन

चतुर्णां १, उपशमकानां १।

नानाजीव-अपेक्षया ॥

सामान्य-वत् ०

एकजीव १, प्रति ० अथन्तेन १, अन्तर्मुहूर्तः १।

उत्कर्षण १, पूर्वकोटी ॥ पयोना ॥ चतुर्णां १।

क्षपकणाम् १

अवाधिज्ञान-स्य ०

इतोः १, केवलज्ञानिनोः १, सामान्य-वत् ०

[८] सयम अनुवादेन १, सामाधिक-च्छेदोपस्थापन-

- = (मन पर्यय ज्ञानियों में) चार उपशम भेदी (अपूर्वकरण अनिर्वाचिकण
- = एकसामान्यतया उपशोचकणाय गुणस्थान) वर्तियों का अनेक जीव की अपेक्षा से
- = सद्येय (प्रकरण में पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सद्य (विरहकाल) है
- = अर्थात् सबन्ध अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पृथक्सर्व है (पृष्ठ २२४)
- = एक जीव के लिये जवन्त्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
- = उत्कृष्टकरि कुछ हीन करोड़ पूर्व है । (मनः पर्यय शानियों में) चार
- = एककोषी (अपूर्वकरणसे एकसामान्यतयावत्क और क्षीणकणाय गुणस्थान) वालों का
- = (विरह काल) अवाधिज्ञानियों के सद्य है अर्थात् अनेक जीव की अपेक्षा से
- द्वयन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्सर्व है एक जीव प्रति अन्तर नहीं
- है (देखो पृष्ठ २४८)
- = दो (सयोग और अयोग) केवलज्ञानियों का सामान्य (में तक गुणाधान) सम है
- अर्थात् अयोगकेवर्तियों का नाना जीव अपेक्षा से कबन्ध एक समय है उत्कृष्ट
- सद्य मास है एक जीव प्रति कुछ विरह काल नहीं है । सयोग केवर्तियोंका नाना
- जीव और एक जीव अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)
- = (८) सयम के कयमानुवादेन सामाधिक और च्छेदोपस्थापन

०टाशिशासी अगस्त्यसहाय वकीलकुठ परदखर और शिरश्चर्य महित मर्बांय सिद्धि का अन्वय । इदी अनुवाद । अथवा १ छय ८
 उपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जवन्येनात्तर्मुहूर्त । उत्कर्षण षट्पदि गगरो
 पमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णां क्षपकाणा सामान्यवत् । किं तु अवाधिज्ञानिषु नानाजीवापेक्षया जवन्येनैक-
 समय । उत्कर्षण वर्णपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । मन पर्ययज्ञानिषु प्राप्ताप्रमत्तसैयतयोर्नानाजी-
 वापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जवन्यमुक्कटं चान्तर्मुहूर्त ॥

उपशमकानाम् ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥ सामान्यवत् ॥ उत्तरम् भेणीवर्षायां का नाना जीवकी अपेक्षा से संशेष (सं उक्त) समा है अर्थात्
 एकजीवं ॥ प्रतिष्ठ जवन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥ उत्कर्षण ॥ एक जीव के लिये जवन्यकरी अन्तर्मुहूर्त है । उत्कटकरी
 स-अतिरेकाणि ॥ प्रपदि-सागरोपमाणि ॥
 षट्पदि ॥ क्षपकाणां ॥

सामान्यवत् ॥
 =उत्तरम् भेणीवर्षायां का नाना जीवकी अपेक्षा से संशेष (सं उक्त) समा है अर्थात्
 जवन्य एक समय है उत्कट पृथक्त्व वर्ण है (पृष्ठ २२४)
 =एक जीव के लिये जवन्यकरी अन्तर्मुहूर्त है । उत्कटकरी
 =कुठ अधिक छयासाठि सागर प्रमाण है
 =सति शुश्रानिमिषिं) चार छक्कभेणी (आठवां अर्धवत्सर्य नसमां अनिबन्धि
 करण, दशवां सरसाम्भारय, चारदशां वीणकपाय गुणस्थान) बालों का
 =तिरहकाल) संशेष (प्रकरण में पूरे क्षपित गुणस्थान) सहाय है अर्थात् अनेक
 जीव कीअपेक्षा से जवन्य एक समय है उत्कट अत्र मास है एक जीव कई
 अपेक्षा से कुछ विरह काल नहीं है (विज्ञो पृष्ठ २२५)
 =नस्तु अवधिज्ञानियों में (अथक भेषियाका विरह काल)अनेक जीवकी
 =अपेक्षा से जवन्यकरी एक समय है उत्कटकरी
 =पृथक्त्व (प्रप्य तीन और नव) वय है एक जीवकी अपेक्षास अन्तर न प है
 =मन पर्यय ज्ञानियों में प्रमत्तवर्षमी और प्रमत्तवर्षयमियों का
 =अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ एक जीव की
 =अपेक्षासे (- प्रति) जवन्य और (-य) उत्कट अन्तर्मुहूर्त है

किन्तु अवाधिशानिषु ॥ नानाजीव-
 अपेक्षया ॥ जवन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षणः ॥
 वर्ण-पृथक्त्वम् ॥ एकजीवं ॥ प्रति न अस्ति अन्तरम्
 क्त्वा पर्यय-ज्ञानिषु ॥ प्रमत्त-अप्रमत्तवर्षयोः ॥
 नानाजीव-अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् एकजीवं ॥
 प्रतिष्ठ जवन्यम् ॥ उत्कटः ॥ य अन्तर्मुहूर्तः ॥

एता निरासी जगत्स्यराय वक्ष्यन्ते परं चैव और विमलस्यं सहिव सर्वायसिद्धिका अन्धकारः सिद्धी अनुवाह । अस्याय १ एव ८
 चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रसि जयन्त्येनान्तर्गुह्यं । उत्कर्षण पूर्वकोटी
 देजो ॥ चतुर्णा क्षयकणामवाचिज्ञानिवत् ॥ द्वयो केवलज्ञानिनो सामान्यवत् ॥ (८) सयमानुवादेन-
 सामाधिकच्छेदोपस्थापन

श्रुत्याम् १, उपशमकानां १।

नानाजीव-अपेक्षया ॥

सामान्य मत् ७

एकजीव, प्रतिष्ठ चयन्तेन १, अन्तर्गुह्यं १।

उत्कर्षण १, पूर्वकोटी ॥, देजोना १॥ श्रुत्यां १।

क्षयकणाम् १।

अवाचिज्ञान-मत् ७

द्वयोः १, केवलज्ञानिनोः १, सामान्य-मत् ७

[८] सयम अनुवादेन १, सामाधिक-च्छेदोपस्थापन-

- = (मन पर्यय श्रानियों में) चार उपशम श्रेणी (अपूर्वस्य अनिर्वाचकण
- = एवमात्म्यराय-उपशान्तकरण गुणस्थान) वर्तियों का अनेक जीव की अपेक्षा से
- = संशय (प्रकरण में परिते कथा हुआ गुणस्थान) सख (विरहकाल) है
- = अर्थात् सचन्य अन्तर एक समय है उक्त एवस्यवर्ष है (पृष्ठ २२४)
- = एक जीव के लिये जयन्त्यकारि अन्तर्गुह्यं है
- = उत्कर्षकरि कुछ हीन कराव् पूर्व है । (मन पर्यय श्रानियों में) चार
- = उपशमणो (अपूर्वस्यसे एवमात्म्यरायक और क्षीणकणाय गुणस्थान) बालों वा
- = (विरह काल) अवाचिज्ञानियों के सख है अर्थात् अनेक जीव की अपेक्षा से
- = जयन्त्यकारि एक समय है उक्तकरि एवस्यवर्ष है एक जीव प्रसि अन्तर नहीं
- है (देखो पृष्ठ २४८)
- = दो (सयोग और अयोग) केवलज्ञानियों का सामान्य (में उक्त गुणस्थान) सम है
- = अर्थात् अयोगक्रेवठियों का नाना जीव अपेक्षा से सचन्य एक समय है उक्त
- = यह मास है एक जीव प्रसि कुछ विरह काल नहीं है । सयोग क्रेवठियोंका नाना
- = जीव और एक जीव अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)
- = (८) सयम के कयनानुवादेन सामाधिक च्छेदोपस्थापन

पटनिनासी बगारपसहाय वकीकृत्य पस्त्रेञ्च और विमयत्पर्य सहित सर्वाथसिद्धिका शक्यं सिद्धीञ्जुवाञ्च अन्याय १ सूत्र ८

गुद्धि भयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्यमुच्छ्रुत चान्तर्मुहूर्त ॥
द्वयरायशमक्योनानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एक जीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण पूर्व जोटी देजोना
द्वयो क्षपकया सामान्यवत् ॥

(१) द्युदिसंयथेषु १ प्रमथ प्रमथयो १ नाना = द्युदिसंयथिर्मा में प्रमथ (उडा) अप्रमथ (सातवां) गुणस्थानबालोका अनेक
जीव अपेयथा ॥ नान्द्राचि अन्तरम् ॥ एकजीव , = जीवकी अपशा से विरहकाल (अन्तर) नहीं है एकजीव के
प्रतिप्रमथन्यम् ॥ उत्कृष्ट ॥ चकञ्चन्तर्मुहूर्त ॥ = लिये जघन्य और (- व) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है
द्वया १ उत्पन्नकयोः १ = (सामाधिक और च्छ्रेयोपस्थापना द्युदिसंयथिर्मा में) दो उत्पन्नश्रणी
नानाजीव ॥ अप्रमथाः ॥ सामान्यवत् = अपूर्वकरण और अनिगुणिकरण गुणस्थान) बालों का (विरहकाल)

एकजीव १, पातकञ्चन्येन १, अन्तर्मुहूर्तः १, = नाना जीव की विवक्षासंसर्गेषु (विषय में ऊक गुणस्थान) सरह है अर्थात्
उत्पन्न १, एवकोटी ॥ वैशोना , = एक जीव कीप्रवेशासे (= प्राति) जघन्यत्परि अन्तर्मुहूर्त है
द्वया १ क्षपकयोः १ = उत्कृष्टकरि कुछदीन (एक) करोड पूर्व है । (उपर्युक्त दो द्युदिसंयथिर्मा में)
सामान्यवत् = दो क्षपक श्राप्ते (अपर्वकरण और अनिगुणिकरण गुणस्थान) धर्तियों का
= (वियोगकाल) संशेष (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सरह है अर्थात् नानाजीव
कीलिये जघन्य एकप्रमथ है उत्कृष्ट छे मास है । एकजीवके लिये अन्तर नहीं है

(१) सामाधिक और च्छ्रेयोपस्थापन संयम प्रमथ, अप्रमथ, अपूर्वकरण अनिगुणिकरण गुणस्थानों में कथित है । परिहार विशुद्धि नाम
प्रायः, अत्रपथ गुणस्थानों में सूत्र साध्याप संयम बलात्। च्छ्रेयोपस्थापन गुणस्थान में और यथावत्प्रात साम उत्पन्नात्कृत्यावत् अयोग
के लिये एक बार गुणस्थानों में कथित है ॥

उपनिषादी अगस्त्यस्य ऋषिः कृत्वा पञ्चैव और विनस्तप्य सहिउ धर्वादिभिः का उच्यते: हिदी अनुषाद् । अथाप १ खल ८
 परितरशुद्धिसयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट
 चात्युद्धते ॥ सूक्ष्मसाभ्यरायशुद्धिभयतेषुपशामस्य नातानिवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति नास्त्य
 न्तरम् ॥ तस्यैव क्षयकस्य सामान्यवत् ॥ यथाख्याते अक्रयायवत् ॥

परितर शिशुदित्तपतेषुः प्रमथ अप्रमथयोः

नाता वीर अपेक्षया ॥ नः अरिउप्रन्तरम् ॥

उक्रमाथ प्रति अवन्यम् ॥ उत्कृष्ट ॥ अन्तर्मुहूर्त

शुभसाभ्यापशुद्धिसयतेषुः उपशमभयकस्यः

नाता नीर-अपेक्षया ॥ सामान्यवत् ॥

एकजीवः प्रति नः अस्तिः अन्तरम् ॥

वस्य । क्षयकस्यः । एतः

सामान्य-वत् =

यथाख्याते । अक्रयायवत् ॥

=परितरशुद्धिसयमित्येते प्रमथ और अप्रमथ गुणस्थानावर्तयोका

=अनेक जीवकी विरथास विरहकाल वा अन्तर नहीं है ।

=एकजीवकी अपेक्षा (= प्रति) अवन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है

=शुभसाभ्यापशुद्धिसयमित्येते उपशमभयोर्वातेका (विरहकाल)

=प्रतीकजीव प्रति सशेष (विषयमे पूर्व कथित गुणस्थान) सद्यः है अर्थात् अवन्य अन्तर

एक समय है उत्कर्ष पृथक्त्ववर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)

=एकजीवकी अपेक्षा (= प्रति = अपेक्षासे) वियोगकाल नहीं है

=तिम (यस्मात्साभ्यरायशुद्धिसयमी) क्षयकभोणी धातेका ही (अन्तर)

=संशेष (प्रकरणमें पहिले कब्याडुआ गुणस्थान) सद्यः है अर्थात् नाताजीव प्रति अवन्य

एक समय है । उत्कृष्ट छे मास है एकजीव प्रति अन्तरनहीं है

=यथाख्यातसंशेषमे (विरहकाल) क्रायाय (वर्जित)

(उपशाठक्रयाय-स्त्रीणकपाय सयोगकेबली अयोगकेबली) निके समान है अर्थात् फलाय

राहतये उपशाठक्रयायवातेका नाताजीव प्रति शुभस्थानवत् है (पृष्ठ २४६)

(= अवन्य अन्तर एक समय है । उत्कृष्ट अन्तर पृथक्त्ववर्ष है (पृष्ठ २२४)

एकजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥

एकनिधसी बाराहप्रकार बरिसकृत फरबेद और विषयवर्ण्ये सहित सर्वायसिद्धिका व्यवस्था सिद्धी बलुवाय । अन्वय १ अत्र ८ स्यतामप्यतस्य नानाजीवापेक्षया एकजीवपेक्षया च नास्त्यनन्तरम् ॥ अस्यतेषु मिथ्यानृतेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उक्तेण प्रयत्निशस्सागरोपमाणि देशानानि ॥ देशाणा प्रमाणा सामान्यवत् ॥

शंयासं तवस्य १, नाना-बीज-अपेक्षया ॥ १ ॥ च
एकजीव प्रमाणा न-असिद्ध बन्तस्य अतएव १ ।
मिथ्याः नानाजीव-अपेक्षया न असिद्ध बन्तस्य ॥ ॥
एकजीव, ' प्रावि ० अचन्येन, बन्तर्मुहूर्तः ॥
उक्तंय १ प्रयत्निशस्य ॥ सामान्यमापि क्षेत्रानानि
देशाणा १ प्रमाणा १ ।
सामान्यवत् ०

(अकटापेयु) देशाणां प्रमाणां सामान्य (गुणस्थान) ब् (पृष्ठ २४६) इस वाक्य का आशय यह है कि कृष्णमद्वितानिमें बीजकामय गुणस्थानवर्तीका और अयोग केवलियों का (बन्त)नाना जीव की अपेक्षा से अचन्य एक समय है उत्कृष्ट है । मात है । उक्तर्मुक दो गुणस्थानों में एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है । कृष्ण वसिष्ठानि में सयोगकेवलियों का नाना जीवकी अपेक्षा से और एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है (देखो पृष्ठ २२५) ॥

- =सयमासंयमी (पौत्रावा) गुणस्थान वाले) का अनेक बीवकी अपेक्षासे और (=च)
- =एक बीवकी अपेक्षा से गिरह काल अवशा अन्तर नहीं है । असंयमितो में
- =मिथ्यादृष्टीका अनेक बीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है
- =एक जीव के लिये अचन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
- =तत्कृष्टकरि कुछ हीन वेदीय सानार प्रमाण है
- =(असंयमितो में) वषे हुये हीन (सासाद्वन मिम-असंयत गुणस्थान वाले) निका
- = (द्वियोगकाष्ठ=बन्तर) संस्येय (प्रकल्प में प्रथम कहा हुआ गुणस्थान) सम
- है अर्थात् सासाद्वन सम्प्रगटी का अन्तर अनेक बीव की अपेक्षा से अचन्य एक
- समय है उत्कृष्ट फलके असंख्यावर्ती माग है । एक बीवके लिये अचन्य अन्तर
- फलके असंख्यावर्तीमाग है उत्कृष्ट कृष्णानि अर्द्ध प्रारंभ परिपूर्ण है (पृष्ठ २२३)
- मिथ्यगुणस्थानवर्ती का अन्तर (अन्तर्मुहूर्तों में) नाना जीवकी अपेक्षा से

